अमरकान्त

जन्म : 1 जुलाई, 1925; ग्राम भगमलपुर (नगरा), जिला बलिया, (उ.प्र.)।

प्रकाशित कृतियाँ

सूखा पत्ता, काले-उजले दिन, कटीली राह के फूल, ग्रामसेविका, सुखजीवी, बीच की दीवार, सुन्नर पांडे की पतोह, आकाशपक्षी, इन्हीं हथियारों से (उपन्यास)।

जिन्दगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मित्र-मिलन तथा अन्य कहानियाँ, कुहासा, तूफान, कलाप्रेमी, प्रतिनिधि कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, एक धनी व्यक्ति का बयान, सुख और दुख का साथ, अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ (दो खंडों में) (कहानी-संग्रह)।

कुछ यादें, कुछ बातें (संस्मरण)।

नेऊर भाई, वानर सेना, खूँटा में दाल है, सुग्गी चाची का गाँव, झगरू लाल का फैसला, एक स्त्री का सफर, मँगरी, बाबू का फैसला, दो हिम्मती बच्चे (बाल साहित्य) ।

पुरस्कार व सम्मान : सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त

पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार, यशपाल पुरस्कार, जन-संस्कृति सम्मान, मध्य प्रदेश का 'अमरकान्त कीर्ति' सम्मान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का सम्मान, उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' साहित्य अकादमी से पुरस्कृत।

विशेष : विदेशी भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं, पेंग्विन इंडिया में कहानियाँ प्रकाशित, दूरदर्शन पर कहानियों पर फिल्में प्रदर्शित, रंगमंच पर कहानियों के नाट्य-रूपान्तरों का प्रदर्शन।

निधन: 17 फरवरी, 2014

इन्हीं हथियारों से

अमरकान्त

राजकमल पेपरबैक्स

पहला पुस्तकालय संस्करण राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 2003 में प्रकाशित

राजकमल पेपरबैक्स में पहला संस्करण: 2008

चौथा संस्करण: 2021

अमरकान्त

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110 002 द्वारा प्रकाशित

शाखाएँ: अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006 पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211 001 36-ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : व्ब्ल्यू.राजकमलप्रकाशन.कॉम ई-मेल: info@rajkamalprakashan.com

बी. के. ऑफसेट नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032 द्वारा मुद्रित

कीमत: ₹499

इन्हीं हथियारों से नोवेल बाय अमरकांत

आईएसबीएन: 978-81-267-1518-3

लेखक की ओर से

यह रचना उत्तर प्रदेश के एक छोटे-से जनपद पर केन्द्रित स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। सन् 1942 ई. में 'भारत छोड़ो' जनक्रान्ति के दौरान कुछ दिनों के लिए बलिया में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया था। गाँवों में पंचायत सरकारें कायम हुई थीं। परन्तु, यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, बल्कि उस आन्दोलन से जुड़े व्यक्तियों के निजी अनुभवों, ऐतिहासिक घटनाओं तथा बयालिस से लेकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक के समय की एक यथार्थवादी परिकल्पना है। वस्तुतः बलिया के बहाने, एक कल्पित कथा द्वारा इस ऐतिहासिक जमाने का स्मरण किया गया है, जब देश की जनता ने स्वाधीनता के लिए विदेशी हुकूमत के विरुद्ध बगावत का झंडा उठाते हुए जबरदस्त संघर्ष किया, अनगिनत कुर्बानियाँ दीं और भयंकर दमन का सामना किया।

इस तरह का उपन्यास लिखने की मेरी योजना पुरानी है, जो स्वास्थ्य सम्बन्धी दुर्घटनाओं के कारण टलती रही। अन्ततः 'साक्षात्कार' के अनुरोध पर उक्त योजना को ही कार्यान्वित करने का साहस कर बैठा, जो आज इस रूप में प्रस्तुत है। श्री आग्नेयजी और हरि भटनागर को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनके सहयोग के बिना एक कठिन बीमारी के समय इसका लेखन सम्भव ही नहीं था। पहले इसकी अनेक किस्तें 'साक्षात्कार' के अंकों में 'आँधी' शीर्षक से धारावाहिक रूप से छपीं, किन्तु हिन्दी साहित्य में आँधी जैसे शीर्षकों की भरमार है, इसलिए नाम बदलने का विचार कवि अमरनाथ श्रीवास्तव के सहयोग से सम्भव हो सका। मित्र शेखर जोशी और हरीशचन्द्र पांडे से भी लेखन में बड़ी मदद मिली। अतः

इन मित्रों के प्रति भी धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

20-02-2002

- अमरकान्त

कहानी संदर्भ

आज हर रास्ता टाउन-हॉल की ओर जा रहा है। चाहे भृगुक्षेत्र, जापलिनगंज या बमपुलिस मोहल्ला हो, प्रत्येक गली, सड़क और चौराहे से निकलकर लोग उधर ही लपक रहे हैं। चारों ओर से सिमट आए बरसाती जल से लबालब तालाब की भाँति टाउन हॉल का अहाता समय से पूर्व ऐसा ठसाठस भर गया है कि सूई फेंककर ऊपर-ऊपर ही खोज

लीजिए। पाँच बजे की साँझ, आकाश अकस्मात वादलों से ढककर एक विशाल मटमैला तम्बू बन गया है, यद्यपि कुछ ही घंटे पूर्व दोपहर में जून मास की लाल, मिरचई धूप निकली थी।

सुरंजन शास्त्री को इस सभा के लिए विशेष रूप से बनारस से बुलाया गया है। सन् 1932 के आन्दोलन के दौरान जब यह यहाँ गवर्नमेंट हाई स्कूल में टेंथ में पढ़ रहे थे तो हड़ताल और प्रदर्शन के लिए उन्हें स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। वह गिरफ्तार हुए और उन पर कोड़े पड़े। जेल से रिहाई पश्चात वह बनारस के राष्ट्रीय विद्यालय में आगे की पढ़ाई के लिए चले गए, जहाँ से उन्होंने शास्त्री की परीक्षा पास की और अब वहीं रहकर आगे की पढ़ाई करते हुए आन्दोलन की तैयारी कर रहे हैं।

आकाश भरमा रहा है। कभी लगता है तेज हवा के साथ मूसलाधार वर्षा होगी। ऊपर चीलें डैने फैलाकर मौसम का आनन्द ले रही हैं। आस-पास तितेये, बरें और मधुमक्खियाँ उड़ रही हैं तिनकों की तरह। स्थान के अभाव में अहाते के पेड़ों, पुस्तकालय भवन की छत और बगल के मकानों की छतों पर बैठे या खड़े लोग ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं। मंच पर खादी धोती और खादी का ही लम्बा कुर्ता पहने सुरंजन शास्त्री का लम्बा शरीर नजर आ रहा है। उनकी तेज और ललकारती आवाज लगातार मकानों को लाँधकर आकाश-मार्ग से दूर-दूर तक पहुँच रही है:

'दोस्तो, भोजपुरी भाषा के इस छोटे-से जिले बलिया के इतिहास पर आपने कभी गौर किया है ? इतिहास भूलने की चीज नहीं है। इतिहास वह दर्पण है, जिसमें हम अपनी खूबियों और कमियों को देख सकते हैं। इनकी जानकारी हमें और ताकतवर बनाकर नए समय की नई चुनौतियों का सामना करने की बुद्धि देती है। यहाँ का इतिहास हमारे देश के इतिहास का ही अंग है, फिर भी हमारी कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं।

'गंगा और छोटी सरयू के संगम पर बसा यह छोटा-सा शहर और अंचल प्राचीनकाल से ही अनेक ऋषि-मुनियों की तपस्या-भूमि रहा है। यहाँ भृगु ऋषि और दरदर मुनि के मन्दिर हैं और इसे भृगुक्षेत्र भी कहते हैं। यहाँ कार्तिक पूर्णिमा के दिन बड़ा धार्मिक सम्मेलन होता था, जिसमें देश के

हर भाग से बड़े-बड़े सन्त, महात्मा शामिल होने के लिए आते थे। यह मेला आज भी और हर वर्ष होता है, और इस अवसर पर असंख्य ग्रामीण जनता आकर संगम-स्नान करती है। आप तो जानते ही हैं कि इस मेले में दूर-दूर के व्यापारी आते हैं और यहाँ हाथी छोड़ हर तरह के पशु और सामान बिकते हैं। हिन्दी

सातवीं

तथा अन्य भाषाओं के प्रख्यात कलाकार और साहित्यकार भी इस मेले में आते थे और आप तो जानते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी अपनी मंडली के साथ यहाँ आए थे। उन्होंने अपना प्रसिद्ध नाटक 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी, टका सेर खाजा' खेला था और हिन्दी प्रेमियों की सभा में भाषण दिया था।

'कोई कहता है राजा बलि के नाम पर बलिया बना, कोई कहता है बाल्मीकि के नाम पर, परन्तु मेरा यह कहना है कि यह बलिदानी भूमि है, यहाँ सदा देश और समाज के लिए बलिदान होनेवाले लोग पैदा हुए, इसलिए इसका नाम बलिया पड़ा। यहाँ के बहादुर लोगों के स्वभाव को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह एक सार्थक नाम है।

'मैं अब इस क्षेत्र की भाषा की ओर आपका ध्यान दिलाता हूँ। यह क्षेत्र पूरी तरह किसी भी शासक के नियन्त्रण में नहीं रहा-न मगध राज्य और न ही दिल्ली के किसी शासक के। यहाँ के सांस्कृतिक महत्त्व का अन्दाजा यहाँ की भाषा से लगाया जा सकता है। यहाँ की भोजपुरी भाषा में तत्सम शब्दों की भरमार है, देशज शब्द कम ही हैं। तत्सम शब्दों को ढाल या तोड़ लिया गया है। इन शब्दों पर गौर कीजिए 'कुकुर आईल', 'बाँदर गईल'। बात यह है कि राजनीतिक रूप से यदि यह क्षेत्र किसी के अधीन हुआ भी है तो उसने कभी अपनी अस्मिता नहीं खोई है। यह किसी कीम के लिए बड़ी खूबी है। अपनी संस्कृति को भूल जाना, उसकी उपेक्षा करना, दूसरों का अन्धानुकरण करना या पिछलग्गू बनना पराधीनता का ही लक्षण है।

'इस क्षेत्र की दूसरी विशेषता यह है कि हमारी बोली में एकवचन नहीं है यानी हम एकवचन में नहीं, बहुवचन में बोलते हैं। यहाँ कोई व्यक्ति 'मैं' नहीं, 'हम' है। 'हम जात बानी', 'हम खात बानी'। सामूहिक रूप से बोलता है यहाँ का हर पुरुष, हर स्त्री, हर बच्चा। यह प्राचीन गणतन्त्र होने की निशानी है। एक सम्राट भी 'हम' बोलता है, उसके 'हम' में तानाशाह का दर्प होता है, लेकिन यहाँ का हर व्यक्ति 'हम' बोलता है, चाहे वह कितना भी छोटा और नगण्य क्यों न हो। इससे लगता है कि बहुत पहले यहाँ छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं था, यह तो बाद में आया, जब उस गणतन्त्र का विघटन हो गया। फिर भी कुछ खूबियाँ तो रह ही गईं। हमारी कल्पना है कि जब हमारा देश स्वतन्त्र होकर गणतन्त्र बनेगा तो हर व्यक्ति में 'हम' का भाव होगा, देश का और उच्च मानवता का भाव। यह सिर्फ राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र हो जाने से ही नहीं होगा, बल्कि ऐसा समाज बनाने से होगा, जिसमें हर तरह का शोषण, अन्याय समाप्त हो जाएगा।

'हम भोजपुरी लोग जल्दी आवेश में आ जाते हैं, लड़-भिड़ जाते हैं, तब तर्क और बुद्धि को भी नहीं मानते। परन्तु, यह आवेश अनैतिक नहीं होता। जब कोई अपमानित करता है, दबाने की कोशिश करता है, अन्याय करता है तो हम आवेश में आ जाते हैं। यह सरल और सच्चे लोगों की निशानी होती है। जिस कौम को गुस्सा नहीं आता, वह गुलामी, जुल्म, शोपण के खिलाफ क्या लड़ेगी? यह अच्छी बात है कि हमें अपनी राजनीतिक गुलामी पर गुस्सा आता है, इसका अर्थ यह भी हुआ कि हम किसी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गुलामी को भी वरदाश्त नहीं कर सकते।

'क्या आप बलिया जिले के नगवाँ गाँव के मंगल पांडे को भूल गए ? गुलाम हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देनेवाली सन् 1857 की क्रान्ति की पहली चिनगारी। 30 जनवरी 1831 ई. को जन्म हुआ था मंगल पांडे का। वे बैरकपुर रेजीमेंट की पाँचवीं कम्पनी के 1446 नम्बर के सिपाही थे।

'शुरू से ही मंगल पांडे के अन्दर अंग्रेजी राज्य के प्रति बगायत की भावना मचल रही थी और 29 मार्च 1857 को बैरकपुर परेड स्थल पर उसने उस

भावना को अमली जामा पहना दिया। बलिया के उस बहादुर सैनिक ने किस तरह अंग्रेजों की सत्ता को चुनौती दी, कइयों को धराशायी किया और अन्त में वीरतापूर्वक फाँसी के फन्दे पर झूल गया, यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की ऐसी कहानी है, जिस पर हम अभिमान करते हैं और जो स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य है।

'8 अप्रैल का ऐतिहासिक दिन था वह। बैरकपुर के जल्लादों ने मंगल पांडे को फाँसी देने से इनकार कर दिया था तो कलकत्ता से जल्लाद बुलाकर उनको फाँसी पर लटकाया गया। याद रखिए कि हिन्दुस्तान की प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की जो प्रथम चिनगारी बलिया के वीर सैनिक मंगल पांडे की बन्दूक से निकली, यह समूचे देश में फैल गई। हर जगह बगावत की लपटें ब्रिटिश हुकूमत को खाक करने के लिए उठने लगीं। मंगल पांडे सिर्फ बलिया के ही नहीं बल्कि हमारे देश के प्रथम स्वातन्त्र्य सेनानी और शहीद हैं, जिन पर हर हिन्दुस्तानी को गर्व है। आज मंगल पांडे की शहादत पुकार रही है कि आप आगे बढ़कर इस विदेशी हुकूमत को जड़ से उखाड़कर समुद्र में फेंक दें।'

इसी समय श्रोताओं की भीड़ में से एक नौजवान उठकर दाहिने हाथ की मुट्ठी को हवा में लहराते हुए जोर से पतली आवाज में चिल्लाया: 'इन्कलाब !'

यह चीख आतिशबाजी की 'आसमानी' की तरह तेजी से आकाश में जाकर विलीन हो गई और उसके जवाब में 'जिन्दाबाद' का समवेत स्वर गूंज उठा।

सुरंजन शास्त्री ने हाथ ऊपर उठाते हुए आगे कहा:

13 'हमारे भोजपुरी अंचल ने स्वातन्त्र्य संग्राम में आगे बढ़-बढ़कर हिस्सा लिया। ब्रिटिश हुकूमत को एक और जबरदस्त चुनौती इस क्षेत्र के बाबू कुँवर सिंह ने दी। आरा (जगदीशपुर) के 80 वर्षीय कुँवर सिंह का सहतवार में ननिहाल था। वह अपनी सेना के साथ शाहाबाद, लखनऊ और आजमगढ़ में अंग्रेजों के दाँत खट्टे करते हुए हमारे जिले के गाँव नगरा, सिकन्दरपुर और मनियर से भी होकर गुजरे। यहाँ के लोगों ने

उनकी धन-जन से सहायता की। गाँव-गाँव में लोकगीत बने। जिन जमींदारों ने अंग्रेजों का साथ दिया उनकी थुड़ी-धुड़ी हुई। बादल गरजने और विजली चमकने पर औरतें अपने बच्चों को किस्सा सुनाती हुई कहती थीं, 'देखो, बाबू कुँवर सिंह और उनके सिपाहियों की तलवारें चमक रही हैं, उनके घोड़े दौड़ रहे हैं, अंग्रेज भाग रहे हैं।' अंग्रेज हुकूमत ने आपके देश को पददलित किया है, उसका शोषण किया है, आप उसका बदला लेने के लिए कब उठेंगे ?'

कुछ देर तक फिर नारे लगते रहे।

'गुलामी भयंकर अभिशाप है। चिरई-चुरंग से लेकर मनुष्य तक कोई भी गुलामी पसन्द नहीं करता। गरीब-से-गरीब मजदूर भी नमक के साथ सूखी रोटी खा लेगा, लेकिन किसी का गुलाम बनकर चिकना-चिकना भोजन पसन्द नहीं करेगा। तिलक ने ठीक ही कहा है- 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' तिलक जब गिरफ्तार हुए और माँडले जेल से छूटे, उन अवसरों पर यहाँ जबरदस्त हड़ताल और जन-प्रदर्शन हुए। अनेक विद्यार्थी स्कूलों से निकाल दिए गए, उन पर नाना प्रकार के जुल्म ढाए गए।

'फिर आया महात्मा गांधी द्वारा छेड़ा गया सन् 1921 ई. का असहयोग आन्दोलन, जिसमें लोगों ने खुलकर भाग लिया। जेल गए और लाठी-गोली खाई। अनगिनत वकीलों,

मुख्तारों और सरकारी कर्मचारी अपने काम छोड़कर सत्याग्रह में शामिल हुए। विद्यार्थी स्कूलों से निकल आए और आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। गाँव-गाँव में विदेशी कपड़ों की होली जली। चरखे पर सूत कातकर खादी पहनने का संकल्प किया गया। विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार और स्वदेशी अपनाने का निश्चय। अद्भुत आन्दोलन था वह। अंग्रेज सत्ता ने यहाँ के कला-कौशल, शिल्प, उद्योग-धन्धों को चौपट करके अपने देश का मात, शिक्षा, जीवन शैली, सब जनता पर थोप दिया था। गांधीजी ने

अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के द्वारा अंग्रेजों के शोषण और अन्याय का प्रतिरोध किया था। अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग कोई नई चीज नहीं है। गांधीजी ने जनता से जुड़कर जनता के इतिहास से यह हासिल किया है। युगों से भयंकर हथियारों से लैस आतताइयों और क्रूर अन्यायी शासकों ने जनता पर जुल्म ढाए हैं तो उसने अहिंसा, असहयोग, स्वावलम्बन, एकता, सत्याग्रह आदि इन्हीं इथियारों से उनका मुकाबला किया है। जनता तो अहिंसक होती ही है।

'एक बात और। गांधीजी ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं को रचनात्मक कार्यों का महत्त्व समझाया है। हर कार्यकर्ता के लिए, चाहे वह किसी भी पार्टी का क्यों न हो, रचनात्मक कार्य बेहद जरूरी है। एक सड़क है यह, जिस पर चलकर कार्यकर्ता जनता के दिलों तक पहुँचते हैं, उनके दुःख-सुख में शामिल होते हैं, उनकी लड़ाई में उनका साथ देते हैं। इसके बिना किसी आन्दोलन का सफल होना कठिन है। यदि सफल हो भी जाते हैं तो परिणाम सुखद नहीं होते। वास्तविकता और व्यवहार में जाए बिना किसी सिद्धान्त की रक्षा नहीं हो सकती।

'जहाँ तक अहिंसा का सवाल है, आज के जमाने में उसकी उपयोगिता जनता के व्यापक हितों के लिए इस्तेमाल किए जाने से ही सिद्ध हो सकती है। शोषक इसका इस्तेमाल अपने पक्ष में कर सकते हैं। इससे सावधान रहने की जरूरत है। अहिंसा, कायरता और पलायन का पर्याय नहीं है। यह जनहित के लिए अपने को कुर्बान करने का नाम है। यदि गांधीजी ने स्वातन्त्र्य आन्दोलन और स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए इसका इस्तेमाल न किया होता तो इसकी विशेष उपयोगिता और सार्थकता न होती। हमारी लड़ाई अहिंसात्मक अवश्य है, लेकिन वह पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रश्न पर किसी प्रकार का समझौता नहीं करेगी।

'असहयोग आन्दोलन में क्रूर हुकूमत ने लाठियों, गोलियों और गिरफ्तारियों से लोगों को दबाने की कोशिश की। उस आन्दोलन में गरीब और साधनहीन लोग भी शामिल हुए। ऐसे कार्यकर्ताओं और उनके परिवारों की आर्थिक समस्याएँ थीं। उनके हल के लिए मुठिया आन्दोलन शुरू किया गया। घर-घर मिट्टी की हँडिया बाँट दी गई। उस हँडिया में एक-

एक मुट्ठी चावल या आटा डालिए और जब हँडिया भर जाएगी तो कार्यकर्ता उसे ले जाएँगे। इसी समय जनता में यह प्रचार हो गया कि गांधीजी विष्णु के अवतार हैं, इसलिए कुछ लोगों ने मुठिया को 'विशुन चुटकी' कहना शुरू किया। विष्णु के नाम पर हँडिया में चिटुकी-चिटुकी अन्न इकट्ठा होने लगा। गांधीजी कोई अवतार नहीं हैं, लेकिन जनता की जय वैज्ञानिक ढंग पर शिक्षा नहीं होती तो राजनीतिक आन्दोलन में धार्मिक अन्धविश्वास घुस जाते हैं। खैर, कहीं-कहीं कार्यकर्ताओं के लिए सामूहिक भोज का इन्तजाम होता था। बड़े-बड़े हंडों में चावल पकाया जाता था। जनता के आन्दोलन इसी तरह जन सहयोग से चलाए जाते हैं।

'इस आन्दोलन में जनता की भागीदारी का अन्दाजा इससे भी आपको हो जाएगा

कि अनेक नौजवानों ने अपनी शादियों में दान-दहेज लेने से इनकार कर दिया। उनका कहना था 'यदि दहेज ही देना चाहते हैं, तो ग्यारह या इक्कीस चरखे बनवाकर दे दीजिए।' ये चरखे गरीबों में बाँट दिए जाते थे। अनेक लोगों ने नशा करना छोड़ दिया। कई दुकानदारों ने गाँजा, भाँग, शराब की अपनी दुकानें बन्द कर दीं। जिन्होंने नहीं कीं, उनकी दुकानों पर पिकेटिंग की गई और दुकानें जबरदस्ती बन्द करा दी गई। आन्दोलन की व्यापकता का हाल यह था कि घर-घर चरखा चलने लगे। लोग तकली पर सूत कातते हुए मीटिंगों या अन्य गन्तव्यों पर जाते थे। चरखा सिर्फ प्रतिरोध का ही प्रतीक नहीं बल्कि आर्थिक स्वावलम्बन का भी माध्यम है। चरखे के गाने आपको याद हैं न ? 'कभी चरखा का टूटे न तार, चरखवा चालू रहे,' 'हम चरखे से लेंगे सुराज, चरखवा चालू रहे।' इन गीतों द्वारा शासन से हास-परिहास भी होता था। क्या पंक्ति है... हाँ, गांधी महात्मा दूल्हा बने हैं, दुल्हन बनी सरकार, चरखवा चालू रहे।' सभा में जोरों की हर्ष ध्वनि हुई। लोग तालियाँ पीटने लगे।

'बड़े आन्दोलनों के दौरान भी जीवन के सामान्य व्यापार बन्द नहीं होते। हँसी-ठट्ठा भी होता रहता है। आप चाहें तो इसे हँस-हँसकर जीना कह सकते हैं। इस आन्दोलन की वजह से गांधीजी ने यहाँ आने पर बलिया को 'दूसरा बारदोली' कहा था। इस सभा में अपने देश और इस जनपद की

शानदार परम्परा का इसलिए ध्यान दिला रहा हूँ कि आपके पास इसका शानदार इतिहास है, यहाँ की विशाल क्रान्तिकारी जनता है। आज सन् 1942 का 25 जून है, बहुत जल्दी देश में आजादी की लड़ाई छिड़ जाएगी, आप इसके लिए तन-मन-धन से तैयार रहिए।'

जोर-जोर से नारे लगने लगे।

'साथियो, सन् 1930-32 का आन्दोलन 'नमक सत्याग्रह' नाम से विख्यात है। गांधीजी ने एक लम्बी पदयात्रा के बाद समुद्र के किनारे डाँडी में नमक कानून तोड़कर इसका सूत्रपात किया। आप जानते हैं कि मनुष्य के इतिहास में लम्बी-लम्बी यात्राओं का उल्लेख मिलता है। सभी यात्राएँ ज्ञान की खोज, धर्म-प्रचार, लोगों को आपस में जोड़ने और उनके दुःख-दर्द को दूर करने के लिए की गईं। ऐसी यात्राएँ महात्मा बुद्ध ने कीं। आदि शंकराचार्य और अनेक सन्त-महात्माओं ने कीं। गुरु नानक और अन्य सिख गुरुओं की यात्राएँ सभी जानते हैं। दूसरे देशों से अनेक खोजी विद्वान इस देश में आए और यहाँ से अनेक लोग दूसरे देशों में गए। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार को ही लीजिए, यहाँ से अनेक लोग बर्मा, चीन, कोरिया, जापान आदि दूर देशों में गए। कवि कालिदास और तुलसीदास ने भी खूब यात्राएँ कीं। आज के जमाने में राहुल सांकृत्यायन की यात्राओं पर गौर कीजिए। परन्तु ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध गांधीजी की यह पदयात्रा अभूतपूर्व थी। दूसरे देशों में विग्रह पैदा करने, उन पर विजय प्राप्त करने के लिए सिकन्दर, नेपोलियन, चंगेज खाँ, नादिरशाह तथा अन्य आक्रमणकारियों ने बड़ी-बड़ी यात्राएँ की हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी भी लम्बी यात्रा करके यहाँ व्यापार करने आई और दिए गए व्यापारिक अधिकारों का दुरुपयोग करके हमें गुलामी की जंजीर में जकड़ दिया। प्रकाश और अन्धकार फैलानेवाली इन दो किस्म की यात्राओं का भेद आप बखूबी समझ सकते हैं।

'नमक सत्याग्रह ने गरीब जनता को आजादी के इस आन्दोलन से जोड़ा। पिछले आन्दोलन से यह आन्दोलन तेज हुआ। हमारे अंचल में भी नमक कानून तोड़कर खूब नमक बनाया गया। बनता था और उसकी नीलामी होती थी। लोग फौरन उस नमक

को खरीद लेते थे। इस बार भी नौजवान आगे आए। हुकूमत ने भी नमक सत्याग्रहियों पर खूब जुल्म ढाए। लोगों को सरेआम बेंत से पीटा गया। वे हर प्रहार पर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते थे। कितने मार खाते-खाते बेहोश हो गए, मगर उन्हें कोई ताकत झुका नहीं पाई। जिस देश की जनता इतनी हिम्मती हो उसे कीन अधिक दिनों तक गुलाम बनाए रख सकता है ?'

फिर नारे लगने लगे। एक नौजवान ने अपनी मौलिकता का परिचय देने के लिए उठकर एक नए शहीद के नाम पर नारा लगाया 'उद्धम सिंह' तो लोगों ने जवाब दिया 'जिन्दाबाद।'

'दोस्तो, हम अपने इतिहास के एक नए मोड़ पर खड़े हैं। दूसरा विश्वयुद्ध जोरों पर है और यह विशाल ब्रिटिश साम्राज्य जिसका सूरज कभी नहीं डूबता था, मार-पर-मार खा रहा है। पूरब और पश्चिम दोनों ओर। हम भी जनतन्त्र की विजय चाहते हैं, लेकिन हमारा कहना है कि पहले हमें आजाद कीजिए और तब देखिए कि किस जोश-खरोश के साथ हम आपकी मदद करते हैं। आप तो अपनी आजादी के लिए युद्ध कर रहे हैं और हमें गुलाम बनाए हुए हैं। यदि आपके दिल में खोट है तो इसका यह अर्थ हुआ कि आप अपने साम्राज्य और हमारी गुलामी के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं और बहाना यह कर रहे हैं कि यह जनतन्त्र की रक्षा का संघर्ष है। गांधीजी ने ठीक ही कहा है, ब्रिटिश हुकूमत भारत के कन्धे पर एक लाश के समान है। सदियों से हम यह लाश ढो रहे हैं। हमारी कमर टूट गई है। जब तक यह लाश नहीं हटाई जाती, हम स्वतन्त्र और स्वाभिमानी मनुष्य की तरह नहीं खड़े हो सकते। हमारी कौम अपंग बनी रहेगी। फिर हम आपकी मदद क्या करेंगे-खाक ? हटाइए आप इस हुकूमत की लाश को और अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर समुद्र पार करके अपने देश लौट जाइए। परन्तु अंग्रेज सरकार चालबाजी-भरे अपने आश्वासनों का लेमनचूस थमा रही है।

'अभी-अभी स्टैफर्ड क्रिप्स गए हैं। गांधीजी ने उनके चिकने-चुपड़े प्रस्तावों की असलियत समझकर उन्हें ठुकरा दिया है। सत्ताधारियों के, साम्राज्यवादियों के मीठे-मीठे आश्वासन भी बड़े खतरनाक होते हैं। आपको याद है, जब रावण जैसे प्रतापी सम्राट को मारीच से काम लेना हुआ तो वह उससे मिलने गया। पहुँचते ही उसने मारीच को सिर नवाया था। जानते हैं कवि तुलसीदास ने इस सम्बन्ध में क्या कहा है। याद कीजिए उनकी यह चौपाई :

'नवनि नीच कै अति दुखदायी,
जिमि अंकुश, धनु, उरग, बिलाई।
भयानक दुष्ट केकई प्रिय शब्द,
अकाल की फूल देवी की तरह।

'हाँ, साम्राज्यवादी खल शक्तियाँ प्रहार करने के पहले झुकती हैं। उनका प्रिय वचन दहशत पैदा करता है जैसे अकाल के कुसुम। ऐसी है यह विदेशी सरकार। इसी सरकार ने प्रथम महायुद्ध के समय मीठे वायदे किए थे और युद्ध समाप्त होने पर क्या मिला-जालियाँवाला बाग कांड। ऐसी धोखेबाज सरकार से सदा सावधान और चौकन्ना रहने की जरूरत है। यह हुकूमत पहले मीठी-मीठी बात करती है और मतलब निकल जाने पर पानी से भी पतली हो जाती है। अब साम्राज्यवादियों पर विश्वास नहीं किया जाएगा। यह आजादी की आखिरी लड़ाई है। हम या तो आजादी लेंगे अथवा उसके लिए

अपनी जानें कुर्बान कर देंगे। हम जनपद के प्रसिद्ध कवि श्री जगदीश ओझा 'सुन्दर' की कविता की कुछ पंक्तियों के साथ अपना स्वर मिलाकर कहते हैं :

'बोझ गुलामी का ढोने को पलभर भी तैयार नहीं,
पर के घर में पर के शासन का कोई अधिकार नहीं
सच को दबा सके दुनिया में कोई है हथियार नहीं,

जा सकता भारत का धन अब सात समुन्दर पार नहीं,
ऐसी हो ललकार, जुल्म का सघन अँधेरा छँट जाए,
शत्रु फिरंगी शीश झुकाकर अपने घर पलट जाए।'

कविता समाप्त होने के बाद जोर-जोर से नारे लगने लगे। कुछ लोगों ने 'सुन्दरजी, जिन्दाबाद!' के भी नारे लगाए।

'हाँ दोस्तो,' सुरंजन शास्त्री ने तेज जोशीली आवाज में कहा, 'आप क्षितिज की ओर देखिए, एक बड़ी आँधी आने के आसार हैं। यह आँधी गुलामी को नष्ट कर देगी, आतताइयों को मिटा देगी। आप इसे आजादी की आँधी कहिए, गांधी की आँधी कहिए, बुढ़िया आँधी कहिए, महाआँधी कहिए, मनुष्य के इतिहास की यह सुपरिचित आँधी है। हाँ, यह प्राचीनतम आँधी है। मानव इतिहास में यह अक्सर आई है। जहाँ गुलामी है, जहाँ जुल्म है, अन्याय है, तानाशाही है, वहाँ बार-बार आई है। मुक्ति की आँधी है यह। वह कभी फ्रांस में आई, कभी रूस में। अन्य देशों में भी यह आ चुकी है। 1857 में भी हमारे देश में आई थी। आइए, हम मिल-जुलकर इसका स्वागत करें। इसको सफल बनाने में अपनी आहुति दें। अपना खून! अपनी कुर्बानी! आगे बढ़िए, आजादी की महाआँधी आने का गंगा हुलसकर स्वागत कर रही है, तरंगित हो रही है और चिरैया ढोल बजा रही है- क्योंकि यह गुलामी और जुल्म को मिटाकर आजाद, शोषणहीन समाज बनाने का संकल्प लेकर आ रही है।'

अपना भाषण समाप्त करके सुरंजन शास्त्री जनता से नारे लगवाने लगे। सभा विसर्जित होने के बाद जब लोग बाहर निकले तो किसी को अलग से पहचानना मुश्किल था, देशभक्ति के जोश से सबके चेहरे एक ही समान थे।

1

प्रत्येक कक्षा में घुमाए गए नोटिस के अनुसार ठीक समय पर, तेजी से घंटा बजने लगा और लड़के गवर्नमेंट हाई स्कूल के हॉल के सामने बाहर मैदान में कतार बनाकर खड़े हो गए। विशेष सूचना यह दी गई थी कि चूँकि इंग्लैंड के सम्राट द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध का अल्टीमेटम दे देने से द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया है, इसलिए स्कूल के अध्यापकों और छात्रों की ओर से अपने सम्राट के प्रति समर्थन, एकजुटता और राजभक्ति प्रकट करने के लिए एक सभा होगी और उस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भी पारित करके वाइसराय के पास भेजा जाएगा।

खुशनुमा मौसम था 9 सितम्बर 1939 ई. के उस दिन। बादलशून्य साफ-सुथरा नीला आकाश और गर्मी में राहत देती चंचल हवा। हेडमास्टर साहब छात्रों के बीच आकर यूँ भी गम्भीर रहते हैं, लेकिन आज इतने अधिक थे कि किसी देश के सेनापति लग रहे थे। आज उनके हाथ में बेंत नहीं है। उनकी गर्दन बेहद तनी हुई है, जैसे अकड़ गई हो। हाथ-पैर भी तने हुए और चेहरा इतना सख्त कि उसमें सभी स्वाभाविक रेखाएँ तिरोहित हो गई

हैं।

परन्तु प्रस्ताव पास कराने के पहले जब उन्होंने 'ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज कभी नहीं डूबता' वाला अपना भाषण आरम्भ किया तो वह सख्ती खत्म हो गई, शरीर में लचक, आँखों में मटक और जबान में लपलपाहट न मालूम कहाँ से आ गई। वे तेज बोलते हुए तारीफ के पुल बाँधे जा रहे थे और उनकी उपमाओं में सूरज, चाँद, सितारे, ध्रुवतारा से कम ऊँचाईवाली कोई भी वस्तु नहीं आई। इसके बाद हिटलर की हैसियत और ताकत बताते समय उन्होंने छोटे-छोटे कई कीट-पतंगों को याद किया। अन्त में, स्वयं उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि 'हमारे सम्राट को वैसी ही विजय मिले, जैसी नेपोलियन और कैसर के विरुद्ध मिली थी !'

संयुक्त प्रान्त-इस समय उत्तर प्रदेश के छोटे-से शहर बलिया के वकील सीतानाथ का पुत्र नीलेश अपनी कतार में से निकलकर विज्ञान कक्षा की ओर जल्दी-जल्दी चल देता है ताकि पहले पहुँचकर आगे बैठने को मिल जाए। विज्ञान के अध्यापक प्रभात बनर्जी अपना कार्य पूरा करके कक्षा में ही धीरे-धीरे टहलते हुए छात्रों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह इस तरह के आयोजनों में कम ही जाते हैं और फुरसत भी उन्हें नहीं रहती, क्योंकि अपने खाली समय में उस दिन पढ़ाए जानेवाले पाठ की मुख्य बातें ब्लैकबोर्ड के दोनों ओर चाक से लिखते हैं ताकि लड़कों को समझाने में आसानी हो। हेडमास्टर साहब भी नाराज रहने के बावजूद उनसे कुछ नहीं कहते ।

नीलेश उनको जब अचम्भे से देखता है तो प्रभात बनर्जी बड़बड़ाने लगते हैं, "बेकार की मीटिंग करने से समय खराब होता है। इतना समय बीत गया, लड़के क्या पढ़ेंगे-खाक ?" "मास्टर साहब, हिटलर कौन है?" नीलेश डरते-डरते पूछता है।

"जर्मनी का शासक है। अंग्रेजों ने पुचकार-पुचकारकर उसे सहकाया, अब वह भास्मासुर बन गया है, उन्हीं को भस्म करने चला है तो बाप-बाप चिल्ला रहे हैं। लड़ाई का अल्टीमेटम खैर, जाओ, तुम बैठो, तुम लोगों का कोई मतलब नहीं है ऐसी नुमाइशी मीटिंगों से; मेहनत से पढ़ो, जब पढ़-

लिखकर बड़े और समझदार हो जाओगे तो खुद सोचकर तय करना कि तुम अपने देश के लिए कुछ करोगे या तमाशा के बन्दर की तरह दूसरे के डमरू बजाने पर नाचोगे !"

इतना कहकर प्रभात बनर्जी प्रयोगशाला के अन्दर चले जाते हैं। पढ़ाई के मामले में बड़े सख्त हैं प्रभात बनर्जी। खुद परिश्रम करते हैं और अपने हर छात्र से उम्मीद करते हैं कि यह भी खूब मन लगाकर पढ़े और परिश्रम करे। उन्होंने कभी भी विज्ञान कक्षा में ऐसे छात्र को भी प्रविष्टि नहीं दी, जिसके नम्बर विज्ञान विषय में साठ प्रतिशत से अधिक होने पर भी गणित विषय में पचास प्रतिशत से कम हों-चाहे हेडमास्टर ही क्यों न सिफारिश करने आ जाएँ। कक्षा में लापरवाही या शरारत करनेवाले लड़के को वह बुरी तरह फटकारते हुए कहते हैं, "क्या करोगे, मुर्गी चराओगे? फिर विज्ञान विषय क्यों लिया ?" यदि कोई जूता निकालकर बैठता या पैर हिलाता है तो उसका जूता अपने हाथ से बाहर मैदान में फेंक देते या उस लड़के को ही कक्षा से बाहर निकाल देते हैं। बस, मध्यावकाश में ही कुछ मनोरंजन कर पाते, और तरीका यह था कि संस्कृत और हिन्दी के अकेले अध्यापक घोघा पंडित और उर्दू के अध्यापक मौलवी अब्दुल हक को पास बुला लेते और तीनों एकान्त में अपने किस्म का अध्यापकीय हँसी-मजाक और हुड़दंग करते, यहाँ तक कि एक दिन एक लड़के ने उन्हें एक साथ एक-एक टाँग पर नाचते हुए देख लिया। उनकी परस्पर मैत्री का जो भी कारण हो, किन्तु हर बंगाली की तरह प्रभात बनर्जी के बारे में भी सबकी यही धारणा थी कि वह किसी क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य हैं।

युद्ध के अल्टीमेटम के बाद देश के राजनीतिक क्षितिज पर आँधी उठने के आसार नजर आने लगे। चूँकि जर्मनी और उसके साथी धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध जारी युद्ध घोषणा में ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रमंडल के देशों के साथ हिन्दुस्तान को भी अपने पक्ष में शामिल कर लिया था, इसलिए इसके विरोध में विभिन्न प्रान्तों में बने कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे दे दिए। देश की जनता के वास्तविक प्रतिनिधि तो वे हैं, उनसे कोई विचार-विमर्श किए बगैर मनमाने ढंग से यह ऐलान क्यों किया गया ? प्रथम युद्ध में भी भारत

की जनता ने साथ दिया था, अपनी कुर्बानियाँ दी थीं, लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद सभी वायदे भुला दिए गए और पुरस्कार में मिला जालियाँवाला बाग तथा अन्य दमनकारी कार्रवाइयाँ। इस दूसरे महायुद्ध का भी क्या उद्देश्य है? इस युद्ध में हिन्दुस्तान के लोग धन-जन की हानि क्यों करें? क्या मिलेगा इस देश की जनता को ? इंग्लैंड की सरकार इस देश को गुलाम बनाए रखे, यहाँ के लोगों का उत्पीड़न करे, उन पर लाठी-गोली चलाए, जेल में ठूसे और बिना पूछे ही उनको युद्ध में शामिल कर ले, इस दावे के साथ कि यह आजादी और जनतन्त्र की रक्षा की लड़ाई है !

स्कूल से छुट्टी होने पर नीलेश की मुलाकात दयाशंकर, गोवर्धन और नफीस से हुई। नफीस ने पूछा :

"कहो भाई, लड़ाई शुरू हो गई है, फौज में चलोगे? मैं तो भरती हो रहा हूँ।"

"तुम जाओ, तुम्हारे जैसा पहलवान में कहाँ हूँ?" नीलेश ने मुस्कुराकर कहा। "

अरे, छोड़ो यार, नीलेश को हम आजाद सेना में भरती कराएँगे।" दयाशंकर ने कहा।

"मेरा एक सुझाव है-हमारे हेडमास्टर साहब टाउन क्लब के 'सुल्ताना डाकू' नाटक में जोकर का पार्ट करें तो खूब जमें।" गोवर्धन अपने मजाक से खुश होकर खिलखिलाने लगा।

नीलेश से दयाशंकर और गोबर्धन एक कक्षा ऊपर पढ़ते हैं और नफीस एक कक्षा कम। गोबर्धन बड़ा भावुक और सनकी है तथा महत्त्वाकांक्षी भी। वह अपने गाँव मनियर के लक्ष्मणदास नामक एक बेहद दुबले-पतले और नाटे क्रान्तिकारी से बेहद प्रभावित था। एक बड़े सेठ का लड़का, पढ़ने में सतही लेकिन हिम्मती और ईमानदार तथा अपने दोस्तों के लिए जान देने को तैयार। एक वर्ष पूर्व पुलिस ने कुछ नौजवान छोकरों की सरगर्मियों से परेशान होकर एक जाली षड्यन्त्र केस बनाकर कुछ लड़कों के साथ दयाशंकर और गोबर्धन को गिरफ्तार कर लिया, परन्तु ये कोई

सबूत न मिलने पर मारने-पीटने के बाद जल्दी ही रिहा कर दिए गए।

16 / इन्हीं हथियारों से

दयाशंकर और नफीस तगड़े दोस्त हैं। समान कद और काठी। वे समान गति, जुम्बिश और स्टाइल से चलते हैं। पहले उन्हें दंड-बैठक करने, कुश्ती लड़ने और दौड़ लगाने, हॉकी फुटबाल खेलने, दोनों जून धारोष्ण दूध पीने और लड्डू तथा भोजन प्रतियोगिताओं में भाग लेने के अलावा कुछ भी नहीं आता था। परन्तु एक बरात में जब दयाशंकर बिहार के सासाराम कस्बे में गया तो वहाँ संयोग से उसकी मुलाकात कुछ क्रान्तिकारियों से हो गई। वहाँ से लौटा तो काफी बदला हुआ था। फिर तो सशस्त्र क्रान्ति के पक्ष में उसके उद्गार अक्सर सुनने को मिलने लगे। दयाशंकर बैरिया के एक अच्छे खाते-पीते काश्तकार का लड़का है, जो बलिया कचहरी में अहलमद हैं। यह और उसका छोटा भाई, दोनों ही कचहरी के पास ही एक किराए के मकान में अपने पिताजी के साथ रहकर पढ़ाई कर रहे हैं। परिवार की स्त्रियाँ दोनों जगह आती-जाती हैं और जब गाँव में होती हैं तो शहर में उसके पिताजी ही दोनों जून खाना बनाते हैं। दयाशंकर पढ़ने में तेज तो नहीं है, लेकिन वह जीवन में कुछ बनना चाहता है, कुछ करना चाहता है और उसे अपने पिताजी का कचहरीवाला काम बेहद नापसन्द है।

एक गरीब जुलाहे का लड़का है नफीस। कभी तहसीली स्कूल में, कक्षा दो में नीलेश का सहपाठी रहा था, जब दोनों टाट पर एक ही साथ बैठते और शरारत करते। किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों की वजह से उसकी पढ़ाई में बाधाएँ आई और वह कुछ पिछड़ गया। लेकिन इस जिले का मशहूर धावक और खिलाड़ी है यह। हॉकी मैचों के दौरान ही उसकी दयाशंकर से दोस्ती हुई, जिसका एक कारण यह भी रहा हो कि दोनों ही हॉकी इस तरह खेलते, जैसे क्रिकेट में छक्का मारा जाता है।

यह रहस्य ही है कि नफीस को इतनी हँसी क्यों आती है? क्या वह इतना संवेदनशील है कि हर बात उसे गुदगुदाकर हँसा देती है? या हर विचार उसके दिमाग में घुसकर हँसी का रूप धारण कर लेता है। क्या हँसी स्वाभिमान-रक्षा की भूमिका निभाती है? जब दयाशंकर गम्भीर होकर

जोशीली बातें करता होता, तो भी वह बीच में कई बार हँस देता। उस पर दयाशंकर की विचारधारा का प्रभाव है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, लेकिन नफीस उसके साथ परछाई की तरह डोलता रहता। दिलचस्प बात तो यह है कि एक बार जब दोनों काजीपुरा के पास रेल की पटरी के किनारे एक बदनाम सरकारी मुखबिर की अंटी ओढ़ाकर पिटाई कर रहे थे, उस समय भी नफीस हँसे जा रहा था।

सोलह की उम्र पार करते ही जब नीलेश आठवीं से नवीं कक्षा में पहुँचा तो बाहर की दुनिया के साथ उसके अन्दर भी अनेक परिवर्तन हो रहे थे। वह लम्बा हो गया, शर्म से चुप रहने लगा और कई उलझनों का शिकार भी हो गया। तभी उसकी दोस्ती गोबर्धन, नफीस और दयाशंकर से हुई थी। वे सदा देश की आजादी और क्रान्तिकारियों की बातें करते। उनसे कई पुस्तकें पढ़ने को मिलीं, जिनमें गांधीजी की आत्म-कथा, क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ, कुछ उपन्यास और ब्रह्मचर्य, हठयोग, आसन, प्राणायाम विषयों पर कुछ पुस्तकें थीं। गांधीजी की पुस्तक का गहरा असर पड़ा उस पर। सत्य की खोज कैसे उनको जनता और आजादी के संघर्षों के बीच ले गई? एक साधारण आदमी जुल्म-अन्याय का कैसे प्रतिरोध कर सकता है ?

ब्रह्मचर्य, हठयोग विषयक पुस्तकों की अनेक बातें उसकी समझ में नहीं आईं। ऐसा लगता है कि वे पुस्तकें नौजवानों को ध्यान में रखकर ही लिखी गई थीं। शुरू से आखिर तक उसमें काम भावना का हौवा खड़ा किया गया था। जब पशु-पक्षी घास-पात खाकर पीड़ित रहते हैं, तो अन्न, मिर्च-मसाला, पूड़ी, हलवा आदि पकवान, मांस-मछली जैसे तामसिक उत्तेजक खाद्य पदार्थ खानेवाले मनुष्य की क्या दशा होगी? नौजवान पच्चीस वर्ष तक अपने को काम-भावना से दूर रहकर शरीर और मन को पवित्र रखें, तब शादी करें। शादी के बाद भी पति-पत्नी संयम से रहें। आदर्श तो यह है कि पति-पत्नी का शारीरिक मिलन जीवन में एक बार हो, इतने से सन्तोष न हो तो वर्ष में एक

बार। इससे भी मन न माने तो महीने में एक बार। लेकिन सीमा का उल्लंघन पतन के रास्ते पर ले जाता है।

गांधीजी भी काम से दूर रहकर देह और मन की पवित्रता पर जोर देते थे, लेकिन उनकी यात बहुत कुछ समझ में न आने पर भी असर करती थी, क्योंकि यह इसे देशसेवा और स्वातन्त्र्य आन्दोलन के लिए जरूरी समझते थे। इसी से नैतिक शक्ति प्राप्त होती है, जो सत्याग्रह में सहायक होती है।

उसके अपरिपक्व शरीर, मन, बुद्धि पर इन गम्भीर बातों का विचित्र असर हुआ। वह आदर्शों की रोमानी, रंगीन दुनिया में विचरण करने लगा निरन्तर सपनों में खोया-खोया कि यह देह और मन की पवित्रता बनाए रखकर सत्य पर चलता है और अपना जीवन देश पर बलिदान कर देता है। वह उन सपनों में यह भी देखता कि शहीद होने के बाद उसके देशवासी उसकी याद में आयोजित बड़ी-बड़ी सभाओं में उसके मार्ग पर चलने का संकल्प करते हैं।

दूसरी तरफ अन्य किस्म की वास्तविक इच्छाएँ थीं, जिनका देशसेवा-आदर्श से कोई सम्बन्ध या विरोध नहीं था। पता नहीं कब से और क्यों उसे अनेक वस्तुएँ सुन्दर लगने लगीं। जैसे आकाश, तारे, चाँद, पेड़, पत्ते, फूल, सुन्दर स्त्री, पुरुष और बच्चे। यह देखता रह जाता। बार-बार देखता। उसके अन्दर कुछ उथल-पुथल होने लगती उत्साह, उमंग, अनजान पीड़ा का सुख। उसे मद्धिम-सा अस्पष्ट अहसास होता कि वह परिवार में ही घुला-मिला, दबा-दवाया लड़का नहीं है, बल्कि उसका कुछ निजी भी है, जिसको वह खोजना और पहचानना चाहता है।

उन्हीं दिनों उसे एक अनोखा अनुभव हुआ। करीब तीन बजे थे। घर की सभी औरतें खा-पीकर निश्चिन्तता से आराम कर रही थीं। उसके स्कूल की छुट्टी थी। उसी समय हसीना नामक वह चूड़ीहारिन सिर पर टोकरी लेकर अन्दर आई, जिसे वह पहले भी दो-तीन बार देख चुका था। लेकिन इस बार तो ठगा-सा देखता ही रह गया।

हसीना टोकरी उतारकर और आँगन में एक बोरे पर बैठकर सभी को

चूड़ियाँ या कड़े दिखाने लगी। माथे और कानों को वह अच्छी तरह साड़ी के आँचल से ढके हुए थी और कन्धों पर एक हल्की-सी सफेद चादर पड़ी थी। उम्र उसकी सत्रह, अठारह, बीस, वाईस कुछ भी हो सकती है। उसका निकाह महरज्जब नामक एक मनिहार से हो चुका था, जो उसे कुछ खास-खास घरों में पहुँचाकर स्वयं दिन-भर शहर में फेरी लगाकर धन्धा करता था। कुँवारी और अविवाहित उम्र के चेहरे से अलग हटकर उसका चेहरा था अपना ही रंग, अपना कद और पृथक अनोखे सौन्दर्य की भाषा में सम्प्रेषण करता हुआ।

पहले बरामदे में बैठकर वह उसे देखता रहा। उसके मुख पर कोमलता थी और गम्भीरता भी। मजाक की कोई बात होने पर उसके होंठों पर सूक्ष्म-सी हरकत होती जिससे लगता मुस्कुराहट या हँसी आनेवाली है, जो अन्ततः नहीं ही आती। किसी छोटी चिड़िया की तरह बारीक आवाज, लेकिन जिस चतुराई के अल्फाज में चूड़ियों की तारीफ करती, उस पर सहसा विश्वास नहीं होता।

उसके चले जाने के बाद उसने अपने अन्दर तूफान का अनुभव किया। ऐसा क्यों ? ऐसा तो कभी नहीं हुआ, जैसे किसी सौन्दर्य-देवी के दर्शन कर लिए हों। स्फूर्ति, पवित्रता... उसका मन उड़ने लगा। पता नहीं कहाँ से आँखों में आँसू आ गए।

उसके आने का कोई दिन निश्चित तो था नहीं। एक महीने या दो महीने में वह किसी दिन आ सकती थी, जब वह स्कूल में ही रहता था। किन्तु एक दिन रविवार को आगमन से उसे खुशी हुई। हसीना ने उसे एक-दो बार अचम्भे से देखा।

फिर उससे मुलाकात नहीं हुई। कुछ महीने बीत गए। फिर भी वह उसके खयालों में बनी रही। सोते समय वह याद आती और सुबह जागने पर भी। साफ नीला आकाश, तरंगित नदी और फूलों

को भी देखकर उसका खयाल आता। इन खयालों से यह अत्यधिक

उत्साह में रहता और पढ़ाई में भी उसका मन खूब लगता। परन्तु, एक दिन माँ की बातों से उसे ज्ञात हुआ कि कुछ दिन पहले प्रसव के समय उसकी मृत्यु हो गई थी।

"बड़ी नेक थी बेचारी..." आनन्दी ने कहा था।

उसके मन को बड़ा आघात लगा। वह बहुत दुःखी हो उठा। वह घर से बाहर निकल गया और सरयू नदी के एकान्त किनारे बैठकर देर तक उसी के बारे में सोचता रहा।

जब वह नहीं रही तो उसकी याद भी दूर होते-होते किसी जल-विहीन नाजुक पौधे की तरह लुढ़ककर सुख गई।

देशसेवा के उसके सपने जारी थे। नवीं कक्षा की परीक्षा अच्छे नम्बरों से पास होकर वह दसवीं कक्षा में पहुँचा। बोर्ड की परीक्षा गोबर्धन तो नहीं पास कर सका, परन्तु दयाशंकर द्वितीय श्रेणी में निकल गया। नीलेश ने अब निश्चय किया कि खूब परिश्रम करके वह बोर्ड की परीक्षा में प्रथम आएगा, लेकिन जल्दी ही उसका सोचा हुआ गड़बड़ा गया।

सितम्बर का महीना, करीब चार बजे थे। नीलेश बाहर के कमरे में बैठकर पढ़ रहा था। उसे पता नहीं लगा कि बादल कब घिर आए, चारों ओर अँधेरा छा गया और तेज हवा के साथ जोरदार बारिश होने लगी। वह खिड़की के पास आकर बाहर खड़ा हो गया और बाहर का दृश्य देखने लगा।

मूसलाधार बारिश में सामने के मकान और वृक्ष धुँधले नजर आने लगे हैं, जैसे कोहरे में डूबे हों। सारा माहौल एक ही भाव में मग्न। सड़क से एक लारी गुजरने के साथ ही भरर-भरर, छरर-छरर की आवाज पूरब से पश्चिम की ओर चली गई। एक भटका हुआ कौवा एक छत के उड़कर किसी दूसरी छत पर जाकर कहीं छिप गया। देखते-ही-देखते उसके दरवाजे के सामने पानी लग गया जिसमें दूर खड़े शीशम के वृक्ष का प्रतिबिम्ब काँपने लगा, जो बीच-बीच में हवा और तेज होने के कारण पानी में ही घुल-मिल जाता। कुछ बकरियाँ, कुत्ते और गदहे दीवारों से सटकर खड़े थे।

पानी जिस तेजी से आया, उसी तरह निकल भी गया। काफी बादल फटकर उड़ गए और चटक धूप मकानों और वृक्षों के शीर्ष पर नजर आने लगी थी। अचानक उसने देखा, सड़क के दूसरी ओर ठीक सामने रतनसिंह मुख्तार की लड़की नम्रता घर के अन्दर से दौड़ती हुई आई और अपने दरवाजे के सामने खड़ी होकर खुशी से इधर-उधर देखने लगी। लेकिन हवा के तेज झोंके उसके पाँव एक जगह स्थिर नहीं होने दे रहे थे। वह डगमगा जाती। वह पुनः पैर जमाकर खड़ी हो जाती और हवा की तरफ मुँह करते ही तत्काल हँसती हुई शरीर तिरछा कर लेती, जिससे उसका सलवार-कुर्ता हवा से सरसराता हुआ चिपककर शरीर की रेखाओं को उभार देता। उसने तीन-चार बार ऐसा किया और अन्त में हँसती हुई गौरैया की तरह वहाँ से फुर्र हो गई।

वह चुपचाप कुर्सी पर आकर बैठ गया। उसकी आँखें खिड़की के बाहर ही देख रही थीं। दिमाग में शून्य भर गया था उसके। दिल के अन्दर हलचल...फिर भी कुछ-कुछ जाना-पहचाना।

कुछ सुस्थिर होने पर उसे खयाल आया कि अभी दो वर्ष पहले नम्रता फ्राक पहनकर इधर-उधर दौड़ती और चिल्लाती रहती थी। इस बीच वह भी बड़ा होकर शर्मीला हो गया था और जान ही नहीं पाया कि कब नम्रता लम्बी और बड़ी हुई और कब दिल्ली में नौकरी करनेवाले अपने मौसाजी की लड़कियों से प्रभावित होकर इस छोटे शहर में भी सलवार-कुर्ता पहनने लगी, जहाँ ग्यारह-बारह वर्ष पार करते ही हाथ पीले कर दिए जाते थे। पहली बार उसने गौर किया कि नम्रता की आँखें अचम्भे से फैलकर आकाश की तरह खूबसूरत दिखाई देती हैं और उसका प्रस्फुटित शरीर अपने मनोहारी आकार में बेहद आकर्षक।

वह देर तक बैठा रह गया खोया-खोया। कमरे में धुँधला अँधेरा छा गया। नम्रता उसके घर में हमेशा आती रहती थी। वह इधर उसे बहुत ही मामूली, मूर्ख, बातूनी और मनशोख लड़की समझने

लगा था। वह घर के अन्दर आती, सभी के पास बैठकर चाय-चायें बोलती और कभी इतनी देर बैठती कि सभी ऊब जाते और अक्सर दो-चार मिनट में ही चली जाती। यह उम्र में बड़ा होने के नाते उससे दूरी बनाए रहता और कोई ऐसा मौका नहीं देता कि यह कॉपी-किताब लाकर सिर खाने लगे। काफी सोचने पर भी उसे नम्रता की कोई अन्य विशेषताएँ याद नहीं आईं। ऐसी लड़का में है क्या कि वह आज उसके लिए व्याकुल हो रहा है।

भावना का यह ज्वार उस समय उठा, जब वह शान्त और निश्चिन्त होकर अपना पूरा समय पढ़ाई में दे रहा था। इस प्रकार की उथल-पुथल की न उसने कामना की थी और न कल्पना ही। वह स्पष्ट देख रहा था कि हसीना के सम्बन्ध में उसके अन्दर भावना ही भावना थी, कुछ भी पार्थिव नहीं था। किन्तु अब सूक्ष्म और स्थूल का ऐसा मिश्रण कि वह अपने को हतप्रभ और पराजित महसूस करने लगा। देशसेवा के पवित्र आदर्शों में खोंचा लग गया और वह मजबूरी में अपना सिर धुनने लगा।

दूसरे दिन सवेरे उठा तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह कमरे में बन्द होकर पढ़ने बैठ गया, किन्तु एक मिनट के लिए भी तबीयत नहीं लगी। बाहर आनेवाले हर व्यक्ति के कदमों की आहट मिलने पर दिल धड़कने लगता कि नम्रता आ गई है। और जब नम्रता आई तो अपनी व्याकुलता से डरकर वहीं बैठा रह गया। जब वह चली गई, तब भी वह जड़ बना रहा। उसकी हालत दयनीय हो गई और वह रुआँसा हो गया।

दिन पर दिन बीतने लगे। जितना ही वह नम्रता को अपने खयालों से दूर ठेलने की कोशिश करता, वह हर प्रतिरोध को निष्फल करके पहले की तरह ही मुस्कुराती हुई आ विराजती। वह रोज ही सोचता कि आज नम्रता से बात करेगा, मगर मौका आने पर उसके मुँह से बकार नहीं निकलती। यह आश्चर्य की बात थी कि बचपन में जिसके साथ खेला-कूदा था, उसके निकट जाने में भी उसे परेशानी महसूस होती थी। कल्पना और वास्तविकता के इस संघर्ष के फलस्वरूप उसकी हालत बदतर हो जाती और वह अपने को बहुत तुच्छ महसूस करने लगता।

अन्त में उसने थककर आत्मसंघर्ष छोड़ दिया और नम्रता को साहसपूर्वक

देखने लगा। दो-तीन बार उससे व्यर्थ की बातें पूछने की कोशिश की, जैसे 'नम्रता, आज तुम्हारे यहाँ खाने में क्या बना है?' वह खुश होकर जवाब देती। तब वह चुप होकर बेहद गम्भीर हो जाता और मूर्ख की तरह दूसरी तरफ देखने लगता। उसे समझ में नहीं आता कि आगे कौन-सी बात करे। एक-दो बार में ऐसा लगा कि नम्रता उसको सवालिया दृष्टि से देख रही है। एक दिन तो महसूस हुआ कि उसको देखने के लिए नम्रता ने अपना मुँह घुमाया, जो आधी यात्रा करके मंजिल के पहले ही स्थिर रह गया और होंठ नाजुक खूबसूरती से चुम्बन की तरह सिकुड़ गए।

उस दिन के बाद वह एक बच्चे की तरह मचल गया, जो हर नए खिलौने और वस्तु को छूकर महसूस करना चाहता है। यह भावना उसकी दिन पर दिन प्रबल होती गई, किन्तु कई अवसर आने पर भी उसको स्पर्श करने की हिम्मत नहीं हुई।

दशहरे की छुट्टियाँ हो गई थीं। एक दिन नम्रता लगभग तीन-साढ़े तीन बजे आई, लेकिन उस समय उसकी दादी जीरादेई को छोड़कर घर में कोई नहीं था। आनन्दी को खोजती हुई उसने बाहरवाले कमरे में 'चाचीजी, चाचीजी' पुकारते हुए प्रवेश किया, जहाँ वह पहले से ही मौजूद था। उसे लगा, उसके दिल की धड़कन ही बन्द हो जाएगी। नम्रता ने उसे चौंककर देखा। वह ठिठक गई। पता नहीं उसे क्या हो गया, वह बिजली की गति से उठा और आगे बढ़कर दोनों हाथों में नम्रता का चेहरा लेकर अस्फुट स्वरों में बोला, "तुम कहाँ थी नम्रता ?"

नम्रता का चेहरा पहले फक हुआ, फिर उस पर भय भरी रुदन की लकीरें उभरीं, जो कुछ क्षणों में गुस्से में बदल गईं और वह झटके से कुछ पीछे हटकर उसके बढ़े हाथ पर हल्के-से प्रहार करने

के बाद पीछे घूमकर दौड़ती हुई अपने घर की तरफ बाहर निकल गई।

वह आकाश से गिरा तो उसे पथरीली वास्तविकता का ज्ञान हुआ। उसने क्यों ऐसा किया ? नम्रता से वह क्या चाहता था? उसने पड़ोसी को तो

धोखा दिया ही, अपने माँ-बाप और परिवार की इज्जत धूल में मिला दी। वह क्या जवाब देगा? सबको और छोटे भाइयों को कौन-सा मुँह दिखाएगा ? यह सब सोचकर उसकी हिम्मत कूच कर गई। थोड़ी देर में तो सभी आ जाएँगे, तब उनका सामना कैसे कर पाएगा? यह बिना कुछ सोचे-समझे बाहर निकल गया और निरुद्देश्य मालगोदाम की तरफ तेजी से चल पड़ा।

संयोग से मालगोदाम के सामने सड़क के किनारे गोवर्धन और रामचन्द्र सिंह खड़े होकर बातें कर रहे थे। रामचन्द्र उसकी कक्षा का सबसे तेज विद्यार्थी था उसका ऐसा अभिन्न मित्र, जिसकी राजनीति में रत्ती-भर भी दिलचस्पी नहीं थी। वह भड़सर नामक गाँव में रहता था, शहर किसी खास काम से आया था और अब वापस लौट रहा था।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ, दिन-भर घर में रहकर तबीयत ऊब गई है..." नीलेश ने सूखी हँसी हँसते हुए कहा।

"चलो, यह तो बड़ी अच्छी बात है, वहाँ मकई का भुट्टा, मकई का भात, दारा, लावा, दूध, दही खाने का आनन्द है। देहातों में घूमेंगे, फिर लौट आना। बाबूजी को पता है न?"

"ले चलने में तुम्हें कोई संकोच हो तो बोलो," नीलेश ने खिसियाकर कहा।

जिस उद्देश्य से बात कही गई थी, यह सिद्ध हो गया। रामचन्द्र सिंह ने हँसते हुए कहा, "कैसी बात करते हो, यार ? तुम्हारे लिए कैसा संकोच ? हमारा घर तुम्हारा और तुम्हारा घर तो मेरा है ही।"

गोवर्धन उसे नासमझ की तरह घूरते हुए जब चला गया तो वे भी गन्तव्य के लिए रवाना हुए। हवा एकदम थम गई थी। उमस के कारण वे पसीने से लथपथ थे। भृगुआश्रम के आगे वे कुछ दूर तक बाँध पर चले और मठिया के आगे नीचे उतरकर विपुल धूल से भरी सड़क पर अग्रसर हुए।

भड़सर गंगा के किनारे बसा हुआ गाँव था, जिसका काफी हिस्सा कटकर नदी में समा चुका था। वे शाम को पहुँचे जब धुँधलका गाढ़ा हो गया था। उसका दिल रो रहा था। बाहर से बेहद सुस्त और उदास। रामचन्द्र ने

कारण पूछा, किन्तु वह हँसकर टाल गया।

रामचन्द्र के माँ-बाप मर चुके थे और उसके चाचा-चाची ने उसे बड़ा करके पढ़ाया-लिखाया। यह जानकर आश्चर्य हुआ उसे कि रामचन्द्र की दो साल पहले ही शादी हो चुकी है। वह अपनी पत्नी राधिका से नीलेश की काफी तारीफ कर चुका था, इसलिए उसका घर में भी बड़ा स्वागत हुआ। राधिका अत्यन्त सुन्दर ग्रामीण स्त्री थी, जिसकी उम्र सोलह ते अधिक नहीं थी। उसने कोई पर्दा नहीं किया और वह नीलेश से खुलकर मिली। वह उसे 'नीलेश-नीलेश' ही कहकर पुकारती, जैसे उससे बड़ी और बुजुर्ग हो। शायद इसलिए कि सहपाठी होते हुए भी रामचन्द्र दो-तीन वर्ष बड़ा था नीलेश से और उसे छोटा भाई ही मानता था।

राधिका ने उसे तरह-तरह की चीजें बनाकर खिलाई। उसके चाचा रामयश सिंह उसके पास आकर बैठ जाते। वह बेहद नाटे थे, अक्सर खैनी खाते हुए नजर आते। गाँव में 'गांधीजी' के नाम से पुकारे जाते। चरखा नहीं कातते थे वह, न शुद्ध खादी ही पहनते। राजनीति से वह दूर रहते, इसलिए जेल जाने का सवाल ही नहीं। लेकिन गाँव में सुलह-समझौता कराने और सामान्य लोगों से अलग अनोखी बुद्धिमानी की बात करने से उनका यह नामकरण हुआ था। उनकी भोजपुरी भी कुछ अलग किस्म की थी। वह कहते 'ए बचवा, खईलड हाऽऽ" तब उनका मुँह खुल जाता और खैनी-तम्बाकू से पीले दाँत दिखाई देने लगते। उन्होंने एक बार अत्यन्त गम्भीरता से कहा :

में !" "ए बबुआ, आतमा तऽ सबमें बड़ुएस ? गाय-गोरू, चील-कौवा, फतिंगा, कपड़ा-लत्ता सभी

उसे बड़ी हँसी आई, लेकिन बहुत कठिनाई से रोककर उसने स्वीकृति में सिर हिलाया। भोजपुरी में 'बाँ', 'बाड़े' या 'बाटे' की जगह पर उसने 'बड़ुएस' नहीं सुना था। उसे उनसे बात करने में बड़ा आनन्द आता। वह उस समय अपना दुःख भूल जातां कुछ देर के लिए। सुखी करनेवाली और

भी बातें थीं। जब उसने मोटी साढ़ीवाले दही में दारा (मकई की दलिया) और गुड़ डालकर बने व्यंजन का सेवन किया तो वह दूसरे ही लोक में पहुँच गया। वह रामचन्द्र के साथ गंगा तट पर भी गया, जो समुद्र बनी थी और जिसका ओर-छोर नहीं दिखाई दे रहा था। करईल (काली मिट्टी) का इलाका, रात में झींगुर और साँप बोलने की आवाजें सुनाई देतीं और दीवारों से असंख्य पीले-पीले छोटे बिच्छू चिपके रहते।

परन्तु उसका मन दगदग करता रहता कि आखिर इन सबका अन्त क्या होगा ? घर में क्या हो रहा होगा ? सब जगह उसके नाम पर धुड़ी-थुड़ी हो रही होगी। उसके पिताजी शर्म के मारे घर से बाहर नहीं निकल रहे होंगे। नम्रता के पिताजी ने उन्हें भला-बुरा कहा होगा। यह सब सोचकर वह इतना भयभीत हुआ कि गंगा में जाकर अपना जीवन समाप्त करने का खयाल आ जाता। यह सोचकर उसे थोड़ी राहत मिलती कि मौत के साथ ही उसकी असहनीय पीड़ा समाप्त हो जाएगी।

तीसरे दिन वह भीतर आँगन में बैठा रामचन्द्र की चाची से बात कर रहा था कि उसका सहपाठी

तेजी से अन्दर आकर बोला, "अरे नीलेश, चलो, बाबूजी आए हैं।"

'बाबूजी' से क्या अर्थ है, इसे समझे विना जब वह रामचन्द्र के साथ बाहर आया तो देखकर उसकी जान ही सूख गई कि एक बड़े घोड़ेवाले एक्के पर उसके पिताजी किसी बादशाह की तरह बैठे हैं। उनके चेहरे पर सदा की तरह अपार धैर्य, शान्ति, आनन्द और आत्मविश्वास का भाव। रामचन्द्र ने आगे बढ़कर कहा, "बाबूजी, हम दोनों कुछ देर बाद शहर के लिए रवाना होनेवाले थे। आप थोड़ा आराम कर लें, कुछ जलपान..."

सीतानाथ वहीं से अत्यन्त आत्मीय स्वर में बोले, "बेटा, नाश्ता करके ही चले थे। बहुत दूर थोड़े ही है। वहाँ भी काम है... बाद में, प्रभु की इच्छा होगी तो फिर आएँगे।"

नीलेश एक्के पर इस तरह चढ़ा जैसे किसी फाँसी के कैदी को सूली की तरफ ले जाया जा रहा हो। यद्यपि सड़क कच्ची थी, लेकिन एक्का मजबूत

था; और जब पक्की सड़क आ गई तो घोड़ा सरपट भागने लगा, जैसे बनारस-इलाहाबाद में गहरेबाजीवाली दौड़ हो रही हो। वह डरा, सिकुड़ा और सूखा हुआ था यह सोचकर कि घर पहुँचने पर पिताजी खूब गरजेंगे-तड़पेंगे। किन्तु जब एक्का दरवाजे पर खड़ा हुआ और वह उतरकर उनके साथ भीतर गया तो सीतानाथ ऐसी आवाज में बोले, गोया कोई आकाशवाणी हो रही हो।

"शैलजा की अम्मा, नीलेशजी को कुछ खाने-वाने को दो। प्रभु सब कल्याण करेंगे।"

वह दक्षिणी बरामदे में आनन्दी के पास जाकर बैठ गया, जो उसे देखते ही फफक-फफककर रो रही थी। वह ढाढ़स बंधाने के लिए एक शब्द भी नहीं बोल सका। किस मुँह से क्या कहता यह ! बाद में जब आनन्दी की रुलाई रुकी तो देखकर वह सन्न रह गया कि उसकी माँ की आँखें सूजकर लाल हो गई हैं।

अब भी उसके मन में आशंका थी कि खाने-पीने के बाद उसके पिताजी या कोई और कुछ कहेगा, मगर ऐसा हुआ नहीं। कुछ देर बाद उसके छोटे भाई सुरेश ने मजाकिया ढंग से पूछा : "भैया, वहाँ मकई का भात खाने को मिला था ?"

यहाँ से आने के बाद वह पहली बार बोला, "हाँ, मेरे कहने पर एक जून बना था। दारा-दही भी मिला..."

जब वह रात में सोने के लिए बिस्तरे पर लेटा तो उसकी माँ सिरहाने बैठकर सिर में आँवला का तेल लगाने लगी।

"क्या करती हो, अम्मा ? मुझे क्या हुआ है, मैं तो ठीक हूँ।"

"तुम दूर से आए हो, तुम्हारा सिर दर्द करता होगा।"

वह कुछ न बोला। उसके दिमाग में तरह-तरह के विचार आ रहे थे। क्या नम्रता ने अपने घर में किसी प्रकार की शिकायत नहीं की उसके विरुद्ध ? यदि की होती तो अवश्य उन लोगों ने यहाँ पर कुछ कहा होता, और तब उसके पिताजी या अम्मा के चेहरे पर खिंचाव, नाराजी या क्रोध जरूर होता। सहसा उसका मन अपने पिताजी के प्रति कृतज्ञता से भर गया। जब नासमझी की उम्र में किताबी ज्ञान के हौवे से अभिशप्त ऊँचे आदर्श की ओर छलाँग लगाने की कल्पना करते-करते एक काली कोठरी में पहुँच गया था, उसके पिता ने उसे बाहर खींचकर एक हवादार कमरे में खड़ा कर दिया, जहाँ वह साँस ले सकता है, अपना कद नाप सकता है और अपने अगले कदमों की सही दिशा का अन्वेषण भी कर सकता है। बचपन में तो उन्होंने अंगुली पकड़कर चलना जरूर सिखाया होगा, लेकिन जवानी के आरम्भ में भी यह उसके लड़खड़ाते हुए मन को सँभालकर आधार देंगे, इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। उन्हीं की वजह से वह यहाँ पर है और उन्हीं की परम्पराओं पर चलकर वह आगे बढ़ सकता है। इस तरह सोचते हुए और जीवन की भावी आदर्शवादी योजना बनाते उसे कब नींद आ गई, पता ही नहीं चला।

2

मार्च में मौसम बदल गया। जब बोर्ड की परीक्षा शुरू हुई, शहर में कांग्रेस द्वारा छेड़ा गया व्यक्तिगत सत्याग्रह जोरों पर था। हिन्दुस्तान की जनता को युद्ध में शामिल करने से राष्ट्रीय नेता प्रसन्न नहीं थे और इसके विरोध स्वरूप सत्याग्रह आरम्भ किया गया था। जेल जानेवाले सत्याग्रही को जनता स्वागत करते हुए फूल-माला पहनाती थी और वह युद्ध के खिलाफ नारे लगाते हुए गिरफ्तारी देता था।

देश का माहौल गरमा रहा था। विशेष बात यह हुई कि जनवरी के महीने में सुभाषचन्द्र बोस नजरबन्दी से भागकर जर्मनी चले गए और इस आशा में कि वहाँ से वह दूसरे देशों से मिलकर देश को आजाद कराएँगे, हिन्दुस्तान की जनता क्रान्तिकारी जोश से भर गई थी। बहुत से लोग, खास तरह से नौजवान व्यक्तिगत सत्याग्रह की आलोचना करने लगे। फूल-माला

पहनकर जेल जाने से क्या होगा ? आराम का आन्दोलन, किसी को भी कोई विशेष कष्ट नहीं, न गिरफ्तार होनेवाले को और न ही गिरफ्तार करनेवाले को। लोग ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ जबरदस्त कार्रवाई करना चाहते थे।

भड़सर से आने के बाद नीलेश ने डटकर मेहनत की थी। हाई स्कूल परीक्षा समाप्त होने के तीन-चार दिनों बाद की बात है। हवा अभी गर्म नहीं हुई थी। सुबह और शाम का समय बड़ा सुहावना होता। दोपहर को वह उत्साहपूर्वक घर के अन्दर प्रवेश कर गलियारे से होता हुआ जा रहा था तो आगे उत्तरी बरामदे से आती बातचीत सुनकर उसके पाँव ठिठक गए।

"अम्माजी, बड़ी कुटिल है वह औरत। आप तो जानती ही हैं कि पिछले दशहरे के समय वह मेरे लड़के की शिकायत लेकर आई थी। अरे वही जब नीलेश बाबू अपने दोस्त रामचन्द्र के गाँव भड़सर एक दिन के लिए चले गए थे। कहने लगी, नीलेश ने नम्रता को इतना डाट दिया है कि वह फूट-फूटकर रो रही है। बताइए, गऊ जैसा मेरा लड़का, किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, क्या वह पराई लड़की को डाट भी सकता है ?"

"ए दुल्हन," जीरादेई ने आनन्दी से कहा, "पड़ोस का मामला है, प्रेम-मुहब्बत बना रहे, तभी अच्छा है।"

"तो क्या मैं लड़ाई कर रही हूँ? यही तो आई थी। वह क्यों नहीं देखती कि नम्रता बहुत बोलती है, पढ़ाई का नुकसान करती है-तभी डाट दिया होगा। लड़का पढ़ने-लिखनेवाला है, हमेशा फर्स्ट

आता है। मैंने खूब सुना दिया है, तभी से मुँह फुलाए हुए है।" "ए दुल्हन, नम्रता भी बड़ी तेज है, आठवीं में फर्स्ट आकर नवीं में गई है।"

आनन्दी चिढ़ गई। वह जानती है कि जीरादेई का मायका और नम्रता का ननिहाल एक ही गाँव कारों में होने से उसकी सास सदा उन लोगों का पक्ष लेती है।

"हुँह, पढ़ा-लिखाकर क्या कराएगी वह? क्या दफ्तर उलटवाएगी? कलक्टर बनेगी वह ? अकेली लड़की, सोलह वर्ष से कम क्या है, हमेशा घोड़ी की तरह दौड़ती रहती है। यह नहीं कि हाथ पीले करके ससुराल भगाएँ उसे।"

नीलेश आगे की बात सुनने के भय से पीछे मुड़कर वहाँ से बाहर निकल गया। यह चकित था। नम्रता सही बात क्यों छिपा गई ? शालीनता, उदारता, पड़ोसपन या शर्म-संकोच के कारण ? जो भी हो, क्या यह सही नहीं है कि उसने अपने असत्य कथन से नीलेश को लांछन और बेइज्जती से बचा लिया है, जिसकी कल्पना या आशंका से उसकी आँखें माँ-बाप, भाई-बहन और दूसरे लोगों के सामने स्वतः ही झुक जाती हैं? लेकिन सत्य जानने का उपाय क्या है? नम्रता अब उसके यहाँ आती नहीं, बहुत कम दिखाई देती है। वह स्वयं उसको दूर से ही देखकर आँखें घुमा लेता है। और दो-तीन बार जब वह रास्ते या मन्दिर में सामने पड़ जाती तो अपना मुँह झटके से दूसरी ओर फेर लेती।

नीलेश के चाचा उमानाथ होली में दो-तीन दिनों के लिए आए। सीतानाथ की प्रैक्टिस गिर रही थी। उनकी गृहस्थी एक पहाड़ी खच्चर की तरह थी जिस पर जितना बोझ लाद दो, वह चलता ही रहेगा। लेकिन वह मन-ही-मन जरूर चाहते थे कि हाई स्कूल करने के बाद नीलेश कोई नौकरी-चाकरी करे, जिससे कुछ राहत मिले। उमानाथ ने उनके संकेत को समझकर अपना विरोध प्रकट किया।

"बनारस से मेरा तबादला तीन साल बाद ही होगा। नीलेश मेरे साथ रहकर पढ़ेंगे। जब तक पढ़ना चाहेंगे, मैं पढ़ाऊँगा। आपको चिन्ता करने की जरूरत नहीं। वह पढ़ने में अच्छे हैं। पहले का जमाना गया, जब हाई स्कूल करने से काम चल जाता था। अब तो लड़कों को अधिक से अधिक पढ़ाना चाहिए। मई के आखिर तक नतीजा निकलेगा, जुलाई के शुरू में इनको बनारस जरूर भेज दीजिएगा, ये क्वीन्स कॉलेज में पढ़ेंगे।"

नीलेश एक खास ढंग से गर्मी की छुट्टियाँ व्यतीत करते हुए परीक्षा-फल

की व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। मोहल्ले के कुछ सीनियर जुनियर साथियों के साथ सुबह गंगा स्नान करने चला जाता। देर तक वे तैरते, एक-दूसरे पर गीला बालू फेंकते, ऊँचे कगारों या किनारे खड़ी पालवाली बड़ी, ऊँची नाव पर से जल में कूदते छपाक-छपाक। और अन्त में शरीर में नदी की बलुई मिट्टी लगाने के बाद मल-मलकर नहाते। जब वे लौटते तो सूरज माथे पर चमकता मालूम होता और पगडंडीनुमा रास्ता भट्टी की तरह जलता रहता। वे बदन से उतारकर धोए-छाँटे शरीर के कपड़े सिर पर रख लेते और कदम रखे नहीं जाते तो तेजी से दौड़ पड़ते। और यह भी बरदाश्त नहीं होने पर कपड़े नीचे जमीन पर पटककर उसी पर कुछ देर तक के लिए खड़े हो जाते। ऐसे ही उपायों से वे किसी तरह सरयू तट पर आ जाते।

घर पहुँचकर वह पहले डटकर नाश्ता करता। अमूमन पूड़ी-सब्जी ही होती। कड़ाही में भैंस का घी जब खौलने लगता तो उसमें आटे की लोइयों को बेलकर बनाई गई छोटी-छोटी पूड़ियाँ डाल दी जातीं, जो जल्दी ही फूलकर नाव की तरह तैरती हुई हल्की सुर्ख हो जातीं-तब छनवटे से

छान-निकालकर थाली में डाल दी जातीं। देनेवाले और खानेवाले की प्रतियोगिता दर्शनीय होती थी। कभी-कभी बड़े कटोरे में गर्म गाय के दूध में भाड़ में भुना चिउड़ा और देशी शक्कर डालकर दे दिया जाता। साथ में चम्मच भी होता, जिससे हिलाकर और निकालकर खाइए।

तत्पश्चात यह बाहरवाले कमरे में जाकर चारपाई पर पड़ा रहता। शरीर का पता ही नहीं लगता, बस थकान-ही-थकान। कुछ देर बाद थकान का अस्तित्व भी कमरे की तपन में तिरोहित। परन्तु उस भट्टी में भी उसे नींद आ जाती। करीय डेढ़ बजे जगाए जाने पर पसीने से लथपथ वह उठता, हाथ-पैर-मुँह धोने के बाद चौके में भोजन के लिए बैठ जाता, जिसके बाद फिर कमरे में जाकर सो जाता और चार-साढ़े चार बजे जागता। यदि नींद न आती तो अखवार या कोई किताव पढ़ने की कोशिश करता।

शाम होने के बाद वह नहा-धोकर मोहल्ले के दोस्तों के साथ ही बाहर निकल जाता। पहले तो वे चौक में जाकर शर्वत पीते। मानिक बाबू की मशहूर दुकान थी। लस्सी हो या खस अथवा सन्तरे का शर्बत, वह बर्फ के खूब महीन टुकड़े करके डाल देते। उस भीषण गर्मी में शीतल पेय से कलेजे में तरी आ जाती और आँखों में रोशनी जल उठती। वहाँ से उठकर वे स्टेशन प्लेटफार्म पर जाकर टहलने लगते अथवा रेल की पटरी पकड़कर सागरपाली की तरफ दूर निकल जाते।

इसी तरह दिन बीतने लगे और अप्रैल मास समाप्त होने को आया। नीलेश का स्वास्थ्य सुधर गया था। उसके गाल भर गए। छाती आगे निकल आई, आँखों में चमक और चेहरे और होंठों पर लाली दौड़ने लगी।

"भैया मोटे हो रहे हैं..." एक दिन घर में सुरेश ने हँसते हुए कहा।

"अरे पापी, दूर हो यहाँ से। लड़के पर नजर क्यों लगा रहा है? कितने दुबले हो गए हैं नीलेश। इम्तहान में दिन-रात मेहनत करनी पड़ी।" आनन्दी ने सुरेश को गुस्से से घूरते हुए कहा।

"अच्छा अम्मा, मैं अपने को ही कहता हूँ-में खूब मोटा हो गया हूँ..." सुरेश खिसिया गया। "तुम भी मोटे नहीं हो, ए बच्चा," जीरादेई ने सुरेश से कहा, "गाल की हड्डियाँ तुम्हारी कितनी निकल आई हैं। नहीं, तुम भाई-बहन में कोई मोटा नहीं है। न तुम मोटे हो और न नीलेश बाबू ही। मरद-मानुष के लड़कों को इतना दुबला थोड़े ही होना चाहिए।"

नीलेश कुछ न बोलकर बाहर के अपने कमरे में जाकर शीशे में मुँह देखने लगा। एकान्त में वह ठहाका लगाकर हँस पड़ा। सुरेश ठीक ही कह रहा है। सवेरे कसरत तो वह लगातार डेढ़-दो वर्ष से कर रहा है, लेकिन इधर ही खास वात क्या हो गई? दूध भी वह पहले से पीता रहा है-फिर भी ? गंगा का पानी क्या दूध का काम कर रहा है? लेकिन यह तो जानता ही है वह कि गामा पहलवान की तरह मोटा हो जाने पर भी उसकी माँ और दादी उसे हड्डियों का ढाँचा ही कहेंगी।

एक दिन नहाकर लौटते समय चौक में उसे गोवर्धन मिल गया। घर आने

का बार-बार अनुरोध करने पर वह दूसरे दिन तीसरे पहर गोवर्धन की कोठी पर पहुँच गया, जिसका कमरा ऊपरी मंजिल के दाहिने एकान्त में स्थित था। गोवर्धन के पिताजी शहर के बड़े सेठों में से एक थे, जो कई महीने से अस्वस्थ चल रहे थे। पढ़ाई और उम्र में नीलेश से बड़ा होने पर भी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने की वजह से गोबर्धन का साल खराब हो गया था और उसने नीलेश के साथ ही हाई स्कूल की परीक्षा दी थी। गोवर्धन के पिताजी ने जेल रिहाई के साथ ही बेटे को गद्दी पर विठाना शुरू किया था और बोर्ड की परीक्षा के बाद पढ़ाई बन्द करा दी, चाहे वह पास हो या फेल।

विरासत में गोवर्धन को अपने पिता जैसा शरीर मिला था। लम्बा तो था ही, धीरे-धीरे वह मोटापे की ओर बढ़ रहा था। पढ़ने में वह भले ही साधारण हो, उसमें अन्य कई गुण थे। वह बहुत सादगी से रहता। उसमें कोई छिछलापन, लालच, ईर्ष्या द्वेष नहीं था। वह गम्भीर रहता, कम बोलता और अक्सर मुस्कुराता रहता। वस्तुतः वह बहुत ही सच्चा, भावुक और एक हद तक सनकी भी था। दोस्तों

की सदा मदद करने और मीका पड़ने पर उनके लिए जान देने को भी तैयार रहता। दयाशंकर और नफीस का वह पक्का साथी था और एक बार नफीस के एक बदनाम ठेकेदार के गुंडों द्वारा घिर जाने पर वह फौरन अकेले ही उसकी मदद को पहुँच गया और सख्त चोट लगने पर भी उस समय तक डटा रहा, जब तक दूसरे साथी लड़के वहाँ पहुँच नहीं गए। स्वतन्त्रता की लड़ाई में अपना सबकुछ कुर्बान करने की शपथ खाई थी उसने और जेल में काफी पिटाई और यन्त्रणा के बाद भी अपने किसी साथी का नाम बताने और किसी के विरुद्ध कुछ कहने से साफ इन्कार कर दिया था।

उसके जीवन में गड़बड़ी की शुरुआत उस समय हुई जब उसके पिता ने उसके क्रिया-कलापों पर रोक लगाते हुए उसकी व्यापारिक शिक्षा-बही-खाते की समझ, कारोबार की वास्तविक समझ एवं व्यावहारिक जानकारी

और सही तथा कुशल व्यापार नीति की सीख का सम्पूर्ण दायित्व अपने प्रमुख मुनीम किशुनीलाल साहू को सौंप दिया, जो बेहद महत्त्वांकाक्षी, काँइया, बेईमान, लफ्फाज, ऐय्याश था। उसके बाद गोबर्धन अक्सर किशुनीलाल के साथ इधर-उधर आता-जाता दिखाई देता। यह सब चलते दोस्तों का साथ-संग भी छूट गया।

"कोई खास बात थी क्या?" नीलेश ने मुस्कुराकर पूछा।

"यार, इत्मीनान से बैठो, पानी-वानी पीओ, कुछ गपशप करेंगे। स्कूल तो जाना नहीं है।"

गोबर्धन की आँखों में किसी अनजान पीड़ा की चिकनाई तैर रही थी। जब वह पानी लेने चला गया तो नीलेश उठकर दीवार की आल्मारी के पास पहुँच गया, जिसके कुछ खानों में पुस्तकें रखी हुई थीं। किन्तु, ऊपरी खाना खाली था, जिस पर मिट्टी का एक बड़ा ढेला रखा हुआ था।

शीघ्र ही गोवर्धन लौट आया, जिसके पीछे एक नौकर अपने एक हाथ में दो गोंद-लड्डुओं से सुशोभित तश्तरी और दूसरे हाथ में पानी का गिलास लिए हुए था। बार-बार अनुरोध करने पर नीलेश को दोनों ही लड्डू खाने पड़े।

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक है आजकल ?" पानी पीने के बाद नीलेश ने पूछा।

"क्यों ?" गोबर्धन ने चौंककर देखा।

"मुझे लगा, आजकल तुम प्राकृतिक चिकित्सा करा रहे हो।"

"कैसे भाई ?" गोबर्धन हैरान था।

नीलेश ने हँसते हुए कहा, "गांधीजी की एक पुस्तक में पढ़ा था कि मिट्टी के प्रयोग से बुखार आदि कई बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं। आल्मारी के ऊपरी खाने को देखकर मुझे लगा कि शायद तुम अस्वस्थ हो।"

गोबर्धन ने उड़ती दृष्टि से आल्मारी की ओर देखने के बाद सिर झुका लिया। उसके चेहरे पर

हल्की-सी उदासी उतर आई।

"क्या मैंने कोई गलत बात कह दी ?"

"जाने दो इस बात को।" गोबर्धन धीमी आवाज में बोला।

"कुछ तो बताओ।"

निमम नीलेश के बार-बार आग्रह करने पर गोबर्धन ने कहा, "नीलेश, यार मैं पहली बार किसी को बता रहा हूँ। तुमसे इसलिए कह रहा हूँ कि तुम सरल हो, मेरी बात सहानुभूति से सुनोगे, मेरा मजाक नहीं उड़ाओगे और किसी दूसरे साथी से यह बात नहीं कहोगे।"

गोबर्धन पर सहसा भावुकता का ऐसा दौरा पड़ गया, जिसकी वजह से नीलेश अपने को एक अकल्पनीय और अशोभनीय स्थिति में महसूस करने लगा। उसने नीलेश का हाथ अपनी दोनों गरम-गरम हथेलियों के बीच में लेकर दबाते हुए अपना किस्सा आरम्भ किया। भावना-उच्छ्वसित स्वर में बोलते समय उसके मोटे-मोटे होंठ, छोटे तुतलाते हुए बच्चे की तरह गोलाई में हिलने लगते।

फिउसने यह तो नहीं बताया कि इशरतगंज मोहल्ला में उसका जाना कब आरम्भ हुआ, परन्तु वहाँ

एक कमसिन वेश्या को अपना दिल दे बैठा, जिसका नाम था ढेला। वह बचपन में सबको प्यारी थी, सबसे हिल-मिलकर दुइयाँ की तरह बोलती रहती। वह ढेले की तरह इधर-उधर लुढ़कती रहती, इसलिए पुकारने का उसका नाम ढेला या ढेलवा पड़ गया। वैसे सही और सुन्दर नाम उसका

लवंगलता था, परन्तु बलिया जैसी छोटी जगह में यह नाम जबान पर चढ़ा ही नहीं, चाहे घर हो या बाहर। सुन्दर काफी थी, गोरी, बड़ी-बड़ी आँखें, चोखा चेहरा, गर्व से भरी अदाएँ।

गोबर्धन ढेला का ऐसा दीवाना हो गया कि एक दिन गंगा नदी के किनारे जाकर और वहाँ से मिट्टी का एक बड़ा ढेला लाकर उससे अपनी आल्मारी को सुशोभित कर दिया उसने। इससे क्या तृप्ति मिलती थी उसे, यह तो वही जानता है, मगर यह तो सिद्ध होता ही है कि साधारण लोग मिट्टी के ढेलों को भी भगवान समझकर कितनी श्रद्धा और भक्ति से पूजते हैं।

क्या गोबर्धन का प्यार सच्चा था ? दरअसल जो भी काम करता यह उसके प्रति सच्ची भावनाओं से भर जाता। तब उसकी भावनाएँ संक्रामक हो जाती थीं, जिनके प्रभाव से किसी का बचना मुश्किल था। क्या ढेला पर उसका कोई प्रभाव पड़ा ? उसका विश्वास था कि ढेला भी उसे प्यार करती है। एक दिन यह इतना विचलित हुआ कि ढेला के सामने शादी का प्रस्ताव रख दिया उसने। कहने का अर्थ यह था कि कुछ समय बाद वह अपनी गद्दी का मालिक हो जाएगा-तब तक ढेला इन्तजार करे और अन्य ग्राहकों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे। ढेला इस प्रस्ताव पर हँसती रही थी, जैसे बहुत खुश हो।

गोबर्धन ने कई बार ढेला के सामने इस प्रसंग को छेड़ा था। वह हँसकर कहती, "ठीक है, समय आने पर सबकुछ हो जाएगा।"

ढेला की आदतें उसके माँ-बाप को पसन्द नहीं थीं। जवानी में भी वैसी ही है, जैसी बचपन में थी। अब भी जिससे प्यार-पुचकार पाती, उधर ही लुढ़क जाती। गोबर्धन के प्रति जो विशेष व्यवहार कर रही थी वह, वैसा क्या किसी वेश्या-पुत्री को करना चाहिए? वह जब चाहे चला आता है और ढेला सब काम छोड़कर उधर लपक जाती। देर तक उससे गुटर गूँ, गुटर गूँ बातें करती रहती। उसकी माँ श्यामदासी खीझ जाती, उसे डाँटती-फटकारती और अपने कटु अनुभवों का वास्ता देकर समझाती। उसकी सीख में एक खास बात यह थी कि वेश्या-पुत्री को एक सूदखोर बनिए की तरह निर्दयी यानी मीठी छुरी बनना चाहिए, जो दूसरों की बरबादी पर

खुशहाल बनता है। नौजवानों के चक्कर में तो उसे कभी नहीं पड़ना चाहिए, जो आदर्शवादी होते हैं, और भुखमरी के कगार पर पहुँचा खुद रफूचक्कर हो जाते हैं।

श्यामदासी का विचार था कि ढेला हमेशा शरीफ, खानदानी, सलीकेमन्द और अधेड़ रईस से साबका रखे, जो उर्दू-फारसी जानता हो, जिसमें बोलने-चालने और व्यवहार की तमीज हो, जो शेरो-शायरी करता हो, ऐय्याश और दिलफेंक हो और रुपए-पैसे को हाथ का मैल समझता हो। जवान, खूबसूरत और पैसे को प्यार करनेवाले कंजूस या दरिद्र आशिक बड़े खतरनाक होते हैं। वह गोबर्धन जैसे बाँगड़ और गँवार नौजवान से भी दूर रहे, जो ठीक से पहनना-ओढ़ना और बोलना नहीं जानता और भावनाओं में नाक फुलाकर हमेशा 'ढेला रानी, ढेला रानी' कहकर गहरी साँसें छोड़ता है और बातें करते समय बीच में 'धू' की आवाज निकाला करता है।

बातचीत के दौरान बीच-बीच में मुँह दाएँ या बाएँ घुमाकर 'धू' कहना उस पिछड़े शहर के कुछ नवयुवक आधुनिकता का लक्षण समझते थे। इसकी शुरुआत उस समय हुई जब दो वर्ष पहले दयाशंकर का एक रिश्तेदार कन्हैया इलाहाबाद से आया था। वह टेंथ में पढ़ता था, इलाहाबाद के बारे में अनोखे अनुभव और फिल्मों के लम्बे किस्से सुनाता, स्वयं सहगल और के.सी. डे के गाने गाता और यह बताना न भूलता कि किस तरह अल्फ्रेड पार्क में पुलिस का मुकाबला करते हुए चन्द्रशेखर आजाद ने अपनी कनपटी पर गोली मार ली थी। हटर-हटर उसकी बातें बड़ी दिलचस्प

होतीं, जिनके बीच वह 'थू' कहता। इससे धूक का निष्क्रमण तो नहीं होता था, बल्कि वैसा लगने पर भी वह मात्र एक धीमी और खोखली आवाज ही होती थी। था तो वह बलिया का ही, लेकिन अपने को अलग शहरी और नए जमाने का दिखाने के लिए 'हऽऽ' के स्थान पर 'हटे' शब्द का भी इस्तेमाल करता जैसे 'वह बड़ा बहादुर हटे।' ये आदतें दयाशंकर ने सीख लीं, जिससे गोवर्धन ने ग्रहण कर लीं, जो वेश्या-पुत्री के घर में इतनी

मुखरित हुईं कि उन्हें गँवारपन का ही पर्याय मान लिया गया।

यह खेल बहुत दिनों तक नहीं चला और एक दिन जब गोवर्धन आया तो ढेला का मुँह बड़ा गम्भीर था। उसकी आँखों में पागलपन का ऐसा भाव, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। पता नहीं क्या-क्या वह कहती गई।

"कभी सोचा है आपने कि मेरे माँ-बाप का क्या होगा? मेरे छोटे भाइयों का क्या होगा ? यह एक मामूली रंडी का खानदान है, यहाँ कई लोग हैं। सबको दोनों जून दाल-भात खिलाने का जिम्मा सिर्फ मुझी पर है। हमारे पेट पर लात मारने आए हैं? आप लोगों के पास पैसा है, बड़ा दिल है, प्यार है, इज्जत-आबरू है, देशभक्ति है, धर्म-धजा है। यहाँ सिर्फ जिस्म है, जिस्म छोड़ और कौन-सी खास बात है मुझमें। उसके अलावा और कुछ नहीं मिलेगा यहाँ। प्यार और शादी आप बड़े लोगों के चोंचले हैं, अपनी औरतों को तो आप इज्जत से रखते नहीं, हमें क्या रखेंगे ? आप चले जाइए यहाँ से और कभी न आइएगा।"

इतना कहकर वह तमतमाए चेहरे के साथ पैर पटकती हुई भीतर चली गई। गोबर्धन का चेहरा काला पड़ गया था। वह कुछ देर तक खड़ा रहा, गोया उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा हो। फिर चला गया। बाद में वह दो बार और उसको मनाने के लिए गया, मगर वह उससे बातचीत करने को भी तैयार नहीं हुई। इस तरह वह रिश्ता टूट तो गया, किन्तु वह उसे भूल नहीं पाया और भूलने के लिए नियमित ताड़ी शराब पीने लगा।

गोबर्धन के चुप होने पर नीलेश मुँह मोड़कर जमीन की तरफ देखने लगा। महसूस हुआ उसे कि किसी महफिल में बुलाकर उसका अपमान कर दिया गया हो। उसकी आँखों से भय, आतंक और शर्म के भाव झाँक रहे थे। अचानक उठकर उसने गोबर्धन से कहा:

"अब मैं चल रहा हूँ-"

गोबर्धन चौंक गया, "अरे थोड़ा रुको। मैं तुम्हारी राय लेना चाहता था, पर लगता है, यह सब तुम्हें अच्छा नहीं लगा है। मैं इसके लिए तुमसे माफी

माँगता हूँ। हाँ, एक अनुरोध जरूर करूँगा। डॉक्टर रामहर्ष सिंह के यहाँ एक महात्मा कुछ दिनों से ठहरे हुए हैं, क्या तुम चलोगे ?"

"क्यों, साधु का चक्कर क्यों ?"

"नीलेश, तुम मुझे समझने की कोशिश क्यों नहीं करते? तुम भले ही मुझसे नफरत करो, लेकिन यह सच है कि मैं उनकी राय लेना चाहता हूँ। वह ऐरे-गैरे पेशेवर महात्मा नहीं हैं, सद्गृहस्थ हैं और संन्यासी का जीवन बिताते हुए मानव कल्याण की समस्याओं पर सोचते-विचारते हैं।" "अकेले क्यों नहीं चले जाते ?"

"अकेले जाने की हिम्मत नहीं, नीलेश। तुम साथ दोगे तो चला चलूँगा। मैं खुद पूछेंगा भी नहीं, सबकुछ एक कागज पर लिखकर ले चलूँगा।"

"इतना बड़ा किस्सा !"

"हाँ, तुम साथ दो तब..."

नीलेश ने अब गोबर्धन की ओर देखा, जिसका मुँह किसी चिन्ता और सोच में सूखकर छोटा पड़ गया था। द्रवित होकर उसने अपनी सहमति दे दी, "ठीक है, कब चलना है ?"

"कल शाम को। सात बजे तुम घर पर ही रहना, मैं ही तुम्हारे यहाँ आऊँगा।"

लवंगलता उर्फ ढेला की कहानी सिर्फ इतनी ही नहीं है। यह गोवर्धन से सम्बन्ध विच्छेद करने के बाद एक दिन भी चैन से न रही, जबकि उसके चोखे सौन्दर्य पर अपना सबकुछ लुटा देने की कसमें खाया करते थे एक-से-एक खूबसूरत, प्रभावशाली और सम्पन्न लोग। इसमें दोष किसका है, ढेला का या उसके लक्षणों का ?

अपनी माँ के कहने पर ही उसने गोवर्धन को तीता-कड़वा सुनाकर विदा कर दिया था, मगर जब वह अपमान और दुःख से छोटा मुँह लेकर वहाँ से चला गया तो वह बिस्तरे पर ढहकर बिलखने लगी। उसके हृदय को लगा आघात आँसुओं से भी हल्का न होकर एक असहनीय दर्द बनकर उसको भीतर-ही-भीतर खदड़ने लगा। कैसा दर्द था वह ?

दिन बीतते गए और लाख कोशिश करने पर भी वह अपनी पीड़ा से मुक्त नहीं हो सकी। गाहकों से निबटने के बाद हर वेश्या को अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार अच्छा खाना-पीना, अच्छी नींद, और पर्याप्त शारीरिक एवं मानसिक विश्राम की जरूरत होती है, किन्तु इनके प्रति ढेला की अरुचि और उदासीनता बढ़ती ही गई। रात का अधिकांश समय आँखों में ही गुजर जाता और दिन में जब यह लेटकर आँखें बन्द करती तो कुछ ही देर में पलकें खुल जातीं और खाली-खाली आँखों से ऊपर देखनी लगती।

यह उठकर बैठती तो बैठी ही रह जाती। कभी लगता उसके दिल पर दबाव काफी बढ़ गया और कभी यह कि उसके अन्दर हवा-ऑक्सीजन काफी कम है, जिससे साँस लेने में कठिनाई हो रही है।

"अरे क्या हो गया है तुम्हें, हमेशा सोचती रहती हो ? ठीक से खाती-पीती नहीं। क्या तुम्हें तकलीफ है कोई?" श्यामदासी ने पूछा।

"नहीं अम्मा, कोई खास बात नहीं..." ढेला ने सूखी मुस्कुराहट से जवाब दिया।

"मैंने तुम्हें बार-बार समझाया है कि बेसवा का मतलब है जवान, खूबसूरत देह। देह ही उसकी माई है, बाप है, धरम है, ईमान है। बड़ा-से-बड़ा दरियादिल, दिलफेंक भी शरीर से चुचकी-पिचकी की ओर नहीं देखता, जैसे प्लेग के बीमार चूहे को साँप भी नहीं पूछता। यहाँ घटिया, गरीब, उचक्के, बदमाश, लुटेरे, हत्यारे, शरीफ, धनी, ऊँचे वसूल बघारनेवाले मजहब और सियासत के पहुँचे हुए लोग क्यों आते हैं ? हमारे शरीर के साथ कुछ समय काटकर शान्ति-सुकून के लिए ही न !"

उसने कुछ रुककर सवालिया निगाह से बेटी को देखा, लेकिन जब कोई

उत्तर नहीं मिला तो वह बोली :

"तजुर्बा हासिल करने के लिए बहुत-से नौजवान लेखक, कलाकार भी आते हैं। मगर ये सभी उजबुक, ढोंगी, मतलबी होते हैं। काम पूरा हो जाने पर लौट जाते हैं वे अपनी दुनिया में। किसलिए ? पाक-साफ होने का नाटक करने के लिए। इनके पास हमें देने के लिए धन-दौलत के अलावा कुछ नहीं। हमें भी इनसे और कुछ नहीं चाहिए। इसी से कहती हूँ, अपने शरीर और जवानी की कीमत समझो। उसकी फिक्र करो, उसे बचाए रखो, रक्षा करो, जैसे सभी अपनी जान की रक्षा करते हैं। तुम्हारी उम्र ही क्या है ? काफी समय है, खूब खाओ-पीओ, गाओ, नखरीली-बातूनी बनो और खूब दौलत कमाओ। ये मरे हमें बहुत-सी बीमारियाँ दे जाते हैं। जहाँ कोई बीमारी लगे, फौरन दवा कराओ, लापरवाही नहीं। अब तुम्हीं बताओ, हमारे खानदान का चिराग अकेली तुम ही हो। देह गिराओगी तो हम भूखों मर जाएँगे। पैसा-कौड़ी भी नहीं कि जब चाहे बाजार से माल खरीदकर काम चलाएँ, धन्धा को आगे बढ़ाएँ...।"

ढेला यह सब जानती थी और अपनी अम्मा से कई बार सुन चुकी थी। इन बातों की सच्चाई

को यह स्वीकार कर चुकी थी, फिर भी अब दिल से इतनी मजबूर हो चुकी थी कि बरदाश्त न कर सकी और रोकर सिसकने लगी। उसकी माँ चौंक उठी और झट उसकी बगल में बैठकर उसके हाथों को सहलाती हुई समझाने लगी :

"छिः-छिः, इस तरह कहीं रोना चाहिए? चुप रहो, तुम तो बचपन से ही बड़ी बहादुर और हँसमुख हो ? बेसवा तो दुनिया को हँसाती है, सुख देती है। यहाँ आकर लोग मन बहलाते हैं और सुख-सुकून हासिल करके पवित्र, ताजादम होकर दुनिया में बड़े-बड़े काम करते हैं। बस यह समझो, हमारी रोनी-मनहूस सूरत देखकर आनेवाला बिदक जाएगा। दर्द-तकलीफ हमें भी होते हैं, बीमारी-परेशानी हमें भी होती है, मगर इन सबको जब्त करके

हँसना पड़ता है। मैं जानती हूँ, पैदा करके तुम्हें कोई सुख नहीं दे सकी मैं। मैं तो गाहकों से छूटने पर किसी काम की नहीं रह जाती थी, दिन-भर मुर्दा पड़ी रहती। तुमको तो मोहल्ले की बूढ़ी रंडियों ने पाला-पोसा। इत्तफाक से तुम्हारी नानी जिन्दा थी। तुम भी घर-बाहर डोला करती, भीड़-भाड़ में तुम्हें अच्छा लगता। तुममें दया-दर्द भी बहुत था। कोई बीमार पड़ता तो उसके पास जाकर घंटों बैठी रहती। जानती हो, हमें पैसा भी बचाना पड़ता है, जिससे विपत्ति पड़ने पर बेसहारा न हो जाएँ। ऐसे समय गाहक यह भी पूछने नहीं आता कि मरी या जिन्दा है। बीमारी वगैरह के इलाज में काफी खर्च करना पड़ता है। फिर एक मामूली रंडी क्या खाएगी और क्या सन्तान को खिलाएगी ? यही उसकी जिन्दगी है, इसीलिए कहती हूँ, रोना-धोना बन्द करो, बहादुर बनो, होशियार बनो, तन्दरुस्त बनो, ऐसा न हो तुम्हें किसी के सामने गिड़गिड़ाना पड़े। खूब कमाओ, फिर कहती हूँ। तुम्हार गला मीठा है, तुम इतनी खूबसूरत हो, मैं तो कहती हूँ, एक दिन तुम्हारे नाग का डंका बजेगा, तुम पर दौलत की बारिश होगी।"

ढेला कुछ देर तक रोने के बाद चुप हो गई। फिर सिर उठाकर मुस्कुराती हुई बोली, "तुम फिक्र न करो, अम्मा। तुम जैसा कहोगी, वही करूँगी मैं। किसी के सामने गिड़गिड़ानेवाली नहीं मैं।"

श्यामदासी अपनी बेटी के प्रति कभी भी आश्वस्त नहीं रही। शुरू से ही ढेला बड़ी उदार, खिलाड़ी, बातूनी, सबसे मेल-जोल और प्रेम-मुहब्बत रखनेवाली लड़की थी। वह देखते-ही-देखते सबसे हिल-मिल जाती, चाहे वह दरवाजे पर आया भिखमंगा ही क्यों न हो। ऐसे मैंगतों को वह घर से ढूँढ़-ढाँढ़कर एक-दो रुपए तक दे देती। श्यामदासी माथा पीट लेती। 'घर बिलावनी' कहकर दाँत पीसती हुई उसे मारने दौड़ती, मगर उसका निर्दोष, मुस्कुराता चेहरा देखकर रुक जाती। तब सहसा डर भी जाती कि इतनी खूबसूरत, भोली-भाली बच्ची को कोई बहला-फुसलाकर ले जाए तो वह क्या करेगी ? कमली और ज़रीना तो पहले ही उससे जलती हैं। किसके मन में क्या है, कौन जानता है ? इसलिए दस की उम्र फाँदते ही एक रस्म करके उसकी छिदी नाक में एक बड़ी-सी नथुनी पहना दी गई, जो फब इसलिए रही थी कि ढेला तेजी से शरीर फेंककर कई नटुरी रंडियों से लम्बी हो गई थी और साड़ी में पीछे से तो पूरी औरत लगती।

तब श्यामदासी दलालों की मदद से एक ऐसे रईस और जईफ को तलाशने लगी, जो 'कामधेनु' भी सिद्ध हो। वैसे शौकीन रईसों को बाजार का पता रहता। एक तो वे खुद अँखियानते रहते, फिर उनके दलालों की भी कमी नहीं थी। वे किसी कुशल गणितज्ञ की तरह बचपन से आँख गड़ाकर हिसाब लगाते रहते कि माल कब तैयार हो जाएगा। इन सबके बीच खैनी की तरह सूखे, टेढ़े सत्तर वर्षीय रईस विलायत खाँ एक आदर्श पुरुष थे, जिनसे नाजुक शरीर और सेहत को कोई खास नुकसान भी नहीं हो सकता था। वे बड़े जमींदार थे, ठेकेदार और अंग्रेजभक्त भी और ऐसी सीधी-सादी, नेक और वफादार दो बीवियों के शौहर के रूप में मशहूर, जो फुरसत मिलने पर तिलावत करने बैठ जातीं। विलायत खाँ ने गुनाह तो बहुत किए, फिर भी उनसे पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं थे और जिन्दगी के आखिरी दिनों में कमसिन, नाजुक और हसीन गुनाह का एक अन्तिम हौसला पूरा करके निहायत पाक-साफ फकीर की जिन्दगी बिताने की तमन्ना भी रखते थे।

दौड़ में कई स्वनामधन्य रईसों के रहते हुए भी जीत विलायत खाँ की हुई, जिनको कुछ रकीबों की गाली भी सुननी पड़ी। दो हजार रुपया दो साल में अग्रिम एकमुश्त और दो सौ रुपए महीना के हिसाब से दो वर्ष के ठेके पर नथुनी उतारने का सौदा पटा, जिसकी महत्त्वपूर्ण रस्म उस दिन सम्पन्न हुई, जब ढेला ठीक साढ़े बारह वर्ष पर पहुँच गई। इस सस्ती के जमाने में, जब गेहूँ एक रुपए का सोलह सेर (कच्चा) मिलता था, दो हजार एकमुश्त अच्छी रकम थी, जिसकी उड़ती हुई या उड़ाई गई सूचना मिलने पर इशरतगंज मोहल्ले में ईर्ष्या की भूसी जलने लगी और जिसकी परिणति हुई कमली से एक लम्बे वाकयुद्ध में।

श्यामदासी ने आसमान की तरफ दोनों हाथ फेंककर कहा "हरामजादी, चोट्टी, जलती है। तेरी जैसी घटिया रंडी तो इस मोहल्ले में कोई नहीं है। खुद काली, ठूंठ की तरह है, लड़की भी एकदम ठूंठ पैदा की है। चवन्नी-अठन्नी पर घटिया गाहकों को इकट्ठा करती है, उसी का नतीजा है यह।

रंडी बिरादरी की नाक कटा दी है इसने। जानती नहीं, बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर शहर में आते हैं तो खाँ साहब के यहाँ जरूर जाते हैं। बड़े-बड़े पुलिस अफसर सलाम करते हैं खाँ साहब को। अधिक जबान लड़ाएगी तो पुलिस कप्तान को बुलवाकर कटवा दूँगी तेरी गन्दी जीभ। जिन्दगी भर के लिए कालापानी भेजवा दूँगी। तेरे गन्दे, घटिया लफंगे गाहकों को भी तेल-पिलाए बेंत से पिटवाऊँगी।"

ढेला को पसन्द थे आकाश, हवा, रोशनी, हरे-हरे पेड़-पौधे, डैने फैलाकर उड़ते हुए पक्षी, खिलौने, लोगों की चहल-पहल और सहेलियाँ। और साढ़े बारह वर्ष की उम्र में संरक्षक-गाहक के रूप में विलायत खाँ जब उसके सजे कमरे में आया तो वह कौतुक से देखती ही रह गई सूखा, पतला, नाटा और झुर्रीदार शरीर, कड़कड़ तांजेब का सफेद कुर्ता, लट्ठे के पैजामे का लटकता नारा, मेहँदी खिजाब लगी लम्बी दाढ़ी, छोटी मिचमिचाती आँखें। ढेला को वह एक ऐसा खिलौना लगा जो चाभी भरने के बाद खुट-खुट चलने लगता है। वह बेतहाशा हँसने लगी।

"आओ मेरी जान। क्या गजब की हँसी है, जैसे झरना। खुदा की कसम, दाँत है कि अनार के दाने या मोती। आगोश में आओ, मैं तुम्हें एक तोहफा देना चाहता हूँ।"

उसने जब उसे अपनी ओर खींचा तो वह उसकी गोदी में पसरकर खिलखिलाने लगी, जिससे वह गिरते-गिरते बचा। फिर उसकी देह को दबाते हुए बोला :

"बोलो मेरी जान, अपने मुँह से कह दो, जो तोहफा माँगोगी, उसे दुनिया के किसी कोने से लाकर तुम्हारे नाजुक कदमों में रख दूँगा। बोलो, क्या चाहिए तुम्हें ?"

"लूडो," ढेला ने उसकी ओर शरारत से देखते हुए कहा।

"लूडो ?" विलायत खाँ ने अचम्भे से अपनी छोटी-छोटी आँखें फैलाने की कोशिश की, "मैं तुम्हें सोने का लूडो-बोर्ड और गोटियाँ बनवाकर दूँगा, मगर अभी नहीं। इस समय तो तुम अपनी नाजुक उँगली में अँगूठी पहनो,

जो तुम्हारे लिए खास तरह से बनवाई गई है। वह आज का मेरा खास तोहफा है। आज से मैं दो साल के लिए तुम्हारा गाहक हूँ, तुम्हारे हुस्न का भौंरा हूँ, तुम्हारा आशिक हूँ, शौहर हूँ। सिर्फ मेरी हो तुम, तुम्हारे जिस्म पर सिर्फ मेरा हक है, उम्मीद है तुम वफादार बनी रहोगी। किसी दूसरे मर्द की तरफ नहीं देखोगी। औरतों की ये बातें मुझे पसन्द हैं। वे जिस मर्द के नीचे आ जाती हैं, उसकी ताजिन्दगी वफादार बनी रहती हैं। मैंने खूब गुलछर्रे उड़ाए, जिस औरत पर तबीयत आ गई, उसे हासिल कर लिया। उसको फूल की तरह रखा, उस पर दिल, धन-दौलत लुटाया। औरत तो इसीलिए बनी है। हाँ, मैं कह रहा था, यह सब करने के बावजूद मेरी बीवियाँ आज तक वफादार हैं, तुम भी वफादार रहना। इस शहर में हुस्न का मेरे जैसा कद्रदाँ खोजे नहीं मिलेगा। शरीर में खूब ताकत है मेरे, प्यार से लबालब है मेरा दिल, जवान से जवान औरत

मुझसे खुश रहती है..." उसने बाईं आँख दबाकर उसकी छाती में गुदगुदाना शुरू किया, जिसकी वजह से तेज हँसी से

ढेला का शरीर चारों ओर हिलने-उछलने लगा, मिरगी का दौरा पड़नेवाले किसी रोगी की तरह। इस भूचाल को सँभालना विलायत के वश में नहीं था, जिससे बचने के लिए वह विस्तरे पर लेट गया।

ढेला की जब हँसी रुकी तो विलायत खाँ ने उठकर उसकी उँगली में अँगूठी पहना दी। तत्पश्चात वह अपना प्यार-करतब प्रदर्शित करने लगा, जिसके बारे में उस बादल की उपमा दी जा सकती है, जो सिर्फ गरजता ही है। अँगूठी देखकर ढेला की माँ ने खुश होकर कहा, "लाओ, मैं अँगूठी बक्से में रख देती हूँ। खराब दिन आने पर यही चीजें काम आती हैं। कह देना, भूल गई या निकालकर रखी थी, कोई चुरा ले गया। कोई दूसरी माँग लेना। यह बुड्ढा नेक है, दिलफेंक है, होशियार बनो, दिमाग का इस्तेमाल करो। फिर कोई मुफ्त नहीं दे रहा है वह। ऐसे खूसट के पास तो कोई औरत धूकने भी जाना पसन्द नहीं करेगी। यह तो हम हैं, कि इसको घर में घुसने दिया। सस्ते में छूट गया है यह। अब तुम्हारे ऊपर है कि इससे

अधिक-से-अधिक पैसा निकलवा लो। इसने दुनिया को लूटा है, मगर यहाँ वह अपने को लुटवाने आया है। पैसे निकलवाने के लिए नखरे, झूठ, फरेब रंडी का धरम है। यही समय है, जब बूढ़ी हो जाओगी, बीमार पड़ जाओगी तो कौन पूछेगा तुम्हें।"

कुछ क्षणों तक रुककर श्यामदासी अपनी लड़की के होंठ-बिचके शरारती चेहरे को देखती रही, फिर गुस्से से झनककर बोली, "लड़कपन न करो उससे। मजाक न बनाओ उसका। बड़ा जालिम है। जब ताड़ लेगा तो बड़ा नुकसान हो जाएगा। यही सब खराबियाँ हैं तुम्हारी। तुम अब छोटी बच्ची नहीं हो। मरद ने तुम्हें छू लिया है, अब तुम औरत हो गई हो। वह छोटे से खजाह कुत्ते की तरह है, वह काटेगा नहीं, उसे थोड़ा-सा प्यार दे दो, थपकी दे दो, इतने से ही वह दुम हिलाता रहेगा...।"

विता "हटो, बेकार की बातें करती रहती हो। तुम बड़ी लालची हो।" ढेला मुँह बिगाड़कर वहाँ से उठकर चली गई।

विलायत खाँ के साथ खेल-खेल में ही बीतने लगे ढेला के दिन। वही उसका साथी था। सहेली था, उसका खिलौना था। उसके पतले और छोटे मुँह पर लम्बी, हिलती दाढ़ी देखकर वह खुश हो जाती। उसके आते ही वह लूडो या ताश खोलने का हठ करती। वह मान जाता। खेल में वह बीच-बीच में उसकी तारीफ करके उसे छाती से चिपकाने की कोशिश करता, मगर वह बनावटी गम्भीरता से उसे परे ठेलकर कहती, "हटिए, यह क्या मजाक है। खेल खेलिए, आप हार रहे हैं।"

वह जान-बूझकर हार भी जाता और तब ताश होने लगता फ्लश। इसमें भी वह हर बाजी हार

जाता। ढेला अपने जीतने पर खूब ताली पीटती और बहुत-से रुपए रखवा लेती। इसके बाद वह विलायत खाँ को चिढ़ाने पर बैठ जाती, "ऐ, आप हलवा खाते हैं ?"

"क्यों नहीं खाता मेरी जान! एक रोज अपनी बेगम से बनवाकर तुम्हारे लिए बेहद लजीज बादाम का हलवा लाऊँगा।"

"हलवा तो दाढ़ी से चिपक जाता होगा ?"

"अरे तो क्या हुआ? बाद में पानी से साफ कर देता हूँ।"

"साफ क्यों करते हैं, उसी तरह रहने देते, उसके वहीं सूखने से आपकी दाढ़ी सख्त हो जाएगी और हिलेगी-डुलेगी नहीं।"

"जैसा कहोगी, वही करूँगा, मेरी जान।" विलायत खाँ हँसते हुए कहता।

"खाते वक्त कैसे मुँह चलाते हैं, जरा चलाकर दिखाइए।"

चप-चप मुँह चलाकर दिखाने के बाद वह ही-ही हँसते हुए उसको गोद में खींच लेता और वह आसानी से चली भी जाती। इस तरह काफी देर तक उनके बीच चोंचलेबाजी होती रहती, जो विलायत खाँ को भी बेहद पसन्द आती। वह कौतुक-भरे प्यार से उसकी चमकती बड़ी-बड़ी आँखों, शरारत से सिकुड़ती-फैलती नाक और फरकते होंठों को देखता ही रह जाता। कभी-कभी वह सोचता कि

पैसा वसूलने के लिए उसके साथ अधिक-से-अधिक समय गुजारना जरूरी है। और कभी यह खयाल आता कि ऐसे निर्दोष बेपनाह हुस्न पर जितना भी खर्च कर दो, यह कम है। लेकिन एक दिन अचानक उसे अपनी लड़की नफीसा याद आ गई, जो डेला की उम्र की ही थी। नफीसा की तरह भोली यह भी है। यह डर गया। 'या खुदा' कहकर वह उठ खड़ा हुआ और बिना कोई कारण बताए यहाँ से चल दिया घर की ओर। उसके अन्दर अल्लाह का डर, शर्म, अफसोस, पश्चाताप सबकुछ था। वह घर पहुँचने के बाद हाथ-पैर धोकर जानमाज़ पर तिलावत करने बैठ गया। उसे लगा कि यह खूब पाक-साफ बन गया है, उस पर खुदा की रहमत बरस रही है और यह बहिश्त की तरफ उड़ा जा रहा है।

ये दुर्लभ भावनाएँ कुछ ही समय के लिए उसके अन्दर रहतीं, दूसरे दिन वह पुरानी राह पर चल निकलता। उसकी हालत शराबियों की तरह थी, जो दिन-भर के पवित्र निश्चय के बाद अपने समय पर शराबखाने की ओर कदम बढ़ा देते हैं। उसने गद्दारी, अंग्रेजों की चापलूसी, तिकड़म, बेईमानी, शोषण, लूट-खसोट से खासी जमीन-जायदाद-धन-दौलत खड़ी कर ली थी। इसके लिए कौन-से गुनाह नहीं किए थे उसने। बाद में शराब और मौज-मस्ती। फिर तो इसकी आदत ही पड़ गई उसे। क्या जिन्दगी एक आदत नहीं है?

बहरहाल, रईस विलायत खाँ ठेका का समय खत्म होने के चार महीने पहले ही हसीन गुनाह के बाकी अरमान लिए हुए ही हृदय गति रुक जाने से इस खूबसूरत दुनिया से कूच कर गया।

ए

4

ढेला का दूसरा जीवन आरम्भ हुआ, जो उसके लिए बड़ा ही कष्टदायी सिद्ध हुआ। ठेके के जीवन में कितना मजा था। विलायत खाँ के साथ उसे खेल का आनन्द आया। उसके लिए यह सर्कस का जोकर था। उसके साथ खूब खाया-पीया उसने। खूब हँसी-खिलखिलाई वह। कमाई भी क्या थी, जैसे वह जेब में रुपए का पेड़ लेकर चलता हो, जब चाहा, निकालकर झोर दिया। धन-दौलत देखकर उसकी माँ बेहद उत्तेजित हो जाती। उसके चेहर पर खून दौड़ने लगता, उसकी आँखें चमकने लगतीं। वह सभी रुपए बटोरकर बक्से में रख आती या बैंक में जमा कर देती। बस उसमें से एकन्नी लेकर ढेला पर न्यौछावर करके किसी भिखमंगे को दान कर देती।

खिलाने-पिलाने में भी कड़ी कंजूस थी श्यामदासी। पहले तो हाथ ही तंग रहता लेकिन आर्थिक अरक्षा का भय अब भी बना हुआ था, जो उसके हाथ रोक देता। उसके धन्धे में हमेशा मन्दी रही, अब अकल्पनीय तेजी ने उसे पागल बना दिया। उसका खयाल था कि रंडियों को अपने गाहकों को लुभाकर उनसे ही खाने-पीने का जुगाड़ बैठाना चाहिए, कमाई के पैसों को

खर्च करना दरिद्रता का लक्षण है।

किन्तु ढेला अपनी उम्र पर थी। विलायत खाँ के साथ हँसी-खुशी और खिलाई पिलाई उसके शरीर और मन के लिए सेहतमन्द साबित हुई। विलायत खाँ के मरने पर वह बहुत दुःखी हुई। उसके साथ बिताए दिन वह भूल ही नहीं पाती। पता नहीं क्यों उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते। वह कारण समझ नहीं पाती। श्यामदासी उसे देर तक समझाती। वह चौदह की उम्र पार करके पन्द्रह के पास पहुँच गई थी, जब उस पर बौर छा गई, जिसकी खुशबू दूर-दूर तक पहुँच गई। उसने पहले बड़ा विरोध किया, काफी रोई-ठुनकी और बार-बार समझाने, डॉटने और डराने के बाद बड़ी मुश्किल से राह पर आई।

उसका दरवाजा सबके लिए खोल दिया गया। वह सही अर्थों में नगर-बधू थी, मगर फीस ऊँची

रखी गई थी, यानी सबसे कम पाँच रुपए, जो निचली अदालत के एक सामान्य वकील की सामान्य फीस से कुछ अधिक थी। अधिक की कोई सीमा नहीं, जो वेश्या की कमसिनी, खूबसूरती, सलीका और कुशलता तथा ग्राहक की रईसी, दरिया दिली और मर्दानगी पर निर्भर करती थी। कुछ शौकीन समय का सदुपयोग करने के लिए एक-एक रुपए के नोटों की गड्डी लाते और संगीत का लुत्फ उठाते हुए उसमें से बीच-बीच में कुछ निकालकर ढेला पर न्यौछावर करते जाते। ऐसे लोगों की संख्या कम थी और उनका भी यह शीक बनावटी और खोखला था। दरअसल, सभी एक ही तरह के थे, कोई ऐसा नहीं था, जिसे अलग खड़ा किया जा सके। यदि कोई रईस भी था तो उसकी मानसिक बनावट काफी घटिया थी। वे देर तक रूमानी या मुहब्बत की बात भी नहीं कर सकते थे और ऐसी कोशिश करते भी तो उनकी भाषा गलत और गँवारू होती। सभी एक खास मशीन की तरह व्यवहार करते। शराब या ताड़ी से गन्धाते हुए, बन्दर की तरह लाल गिड़गिड़ाती मुद्रा, थूक-लार से भरी अस्फुट लफ्फाजी। ढेला के नाजुक दिल को काफी आघात लगता। उसके अन्दर जो भी रस था, यह

सूखकर वीरान रेगिस्तान में बदलने लगा।

उसकी जिन्दगी में रोज एक ही तरह की घटना होने लगी, निरन्तर ऊब और थकान। ग्राहकों में भी कोई जिन्दादिल और दिलचस्प नहीं। वे सभी जल्दबाजी में रहते, जैसे वहाँ से किसी ऊँची और महत्त्वपूर्ण मंजिल की तरफ जाना हो। अधिसंख्यकों की उम्र अधिक होती थी जो जिन्दगी में काफी पापड़ बेल चुके थे, बेल रहे थे। सच्ची हँसी-खुशी और उसकी चाह उनके पारिवारिक जीवन से खत्म हो चुकी थी। बच्चे जनते-जनते उनकी बीवियाँ जवानी में ही सुस्त, पुरखिन, बातूनी और झगड़ालू तक हो चुकी थी और वे ऊब से बचने के लिए किसी नसेड़ी की तरह इधर चले आते थे। ढेला स्वयं इस तरह की जिन्दगी से चिड़चिड़ाई रहती। उसकी तबीयत होती, जोर-जोर से चिल्लाए, किसी से लड़े-झगड़े। कभी-कभी वह अपनी माँ पर झल्ला जाती।

एक बार एक गँवार किस्म का ग्राहक अपने अन्दर शराब उड़ेलकर करीब साढ़े दस बजे सुबह ही आकर दरवाजा खटखटाने लगा। ढेला सबेरे ही उठ गई थी और नहा-धोकर नाश्ता करने के बाद सोने जा रही थी। धन्धा तीन या चार बजे से शुरू होकर रात में ग्यारह बजे तक चलता था। ढेला ने झाँककर देखा। वह क्रोध से आगबबूला हो गई। जाकर अपनी अम्मा से बोली:

"उस कमीने से कह दो, इस समय जाए यहाँ से।"

"अरे कैसी जबान निकालती हो बेटी। सवेरे की बोहनी बहुत अच्छी होती है, इसे न बिगाड़ो, जबान से गाली नहीं निकालनी चाहिए गाहक के लिए। गाहक ही तो हम लोगों का सबकुछ है, मालिक है, भगवान है। बड़ी मुश्किल से सवेरे का गाहक आया है, उसे न दुत्कारो...।" "नहीं, बिदा कर दो फौरन उसे..." ढेला का चेहरा क्रोध से तमतमा गया।

"अरे, कैसी बात करती हो ढेला? इससे बड़ी बदनामी फैलेगी। इससे गाहक तो नाराज होगा ही, चार गाहकों को भी बिगाड़ेगा। बड़बड़ाना शुरू कर दिया तो मोहल्ले में शोर होगा। हमसे जली हुई कमली, ज़रीना, सभी

हमारा बाजार बिगाड़ने में जुट जाएँगी।"

"तुम हो पक्की लालची। तुम्हें कायदा, अच्छा-बुरा, सेहत-तन्दरुस्ती, किसी का कुछ भी ख्याल नहीं। तुम किसी को आराम करते देख नहीं सकती। एक ढेबुआ के लिए तुम किसी की भी जान ले सकती हो। इसी लालच की वजह से अच्छा खाना-पीना भी नहीं मयस्सर हो रहा है।"

"अरे, कैसी जबान बोल रही हो। ऐसी बात नहीं कहते। जो कुछ कर रही हूँ, तुम्हारे ही लिए, खानदान के लिए ही। तुम्हारी नानी कितनी सुन्दर और सलीकेमन्द थीं। ऐसी बेड़नी, जो सिर्फ गाना-बजाना करतीं, जिस्म की तिजारत से कोसों दूर रहतीं। एक बार तो एक मनचले को जूतियों से पीटा भी था। क्या गाती थीं और कितना अच्छा नाचती थीं। ठुमरी, दादरा, भजन, कजरी, पूरबी कुछ भी गया लो। बड़ी मशहूरी थी उनकी, दूर-दूर तक बुलाई जातीं, उनकी पार्टी नाटक-याटक भी

करती थी। भाँड़ों की तरह। मगर एक बार में ही चौपट हो गया। पहले प्लेग आया फिर अकाल। बाजार खत्म, धन्धा चौपट, गाँव छोड़कर इधर-उधर भागना पड़ा। जय दाना-दाना को तरसने लगीं तो जिस्म के बाजार में बैठ गई।"

"अब छोड़ो यह फालतू का किस्सा, कई बार सुन चुकी हूँ। मैं भी सिर्फ गाना-बजाना करना चाहती हूँ। मुझे यह हैवानियत पसन्द नहीं..." ढेला गुस्से में बोली।

श्यामदासी ने गिलहरी की तरह जबान निकालकर कहा, "कैसी बात करती हो ? जो रोजी-रोटी है, अन्न-दाना है, उसे हैवानियत कहती हो? यह बात ख्वांय में भी न सोचना। यह धन्धा है, व्यापार है, बड़े-बड़े बनिया-व्यापारी कई तरह के धन्धे करते हैं, यह भी एक धन्धा है। वे अपना माल बेचते हैं, हम भी वही करते हैं। फर्क यह है कि ये धन्धे में ठेके लेने के लिए सरकार के अफसरों की चापलूसी करते हैं, घूस देते हैं, डाली भेजते हैं, देश से

गद्दारी करते हैं। हम क्या ऐसी नीच हरकतें करते हैं ? बड़े-बड़े वसूल और ईमान की बात करनेवाले, रोब-दाब का घमंड करनेवाले जब यहाँ आकर नाक रगड़ते हैं तो क्या हम उन्हें बुलाने जाते हैं? हम कोई धोखा नहीं करते। हम सोलहो आने ईमानदार हैं। भीतर और बाहर एक तरह। एक बार एक बड़ा अंग्रेज अफसर तुम्हारी नानी के पास आया और लगा अंग्रेजी में प्यार का इजहार करने। यह खबर शहर में बिजली की तरह फैल गई। तुम्हारी नानी का रुतबा बढ़ गया। इशरतगंज की सभी रंडियाँ उनसे डरने लगीं। उस अंग्रेज के कीमती तोहफे लेकर बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी अफसर पहुँचने लगे। तुम ठीक अपनी नानी पर गई हो। वैसी ही खूबसूरत, वैसा ही गला। तुम मेरा कहना मानो तो पता नहीं कहाँ पहुँच जाओ, अपनी

नानी से अधिक मशहूर हो जाओ...।" "बस छोड़ो, मुझे नींद लग रही है..." ढेला की आँखें झपकने लगीं।

"ठीक है, मैं उस गहकी को मना कर देती हूँ, हाँ, एक बात और ध्यान से सुन लो। यह गँवारों का शहर है। पक्का गाना, नाच, ठुमरी, दादरा यहाँ किसी को पसन्द नहीं। यहाँ के लोग लौंडों के नाच-गाने पर लट्टू रहते हैं। कोई गाहक तुम्हारे यहाँ आ जाता है तो ऊपरवाले की मेहरबानी समझो। रंडी-बेसवा की कद्र तो इलाहाबाद-बनारस में होती है, जहाँ एक-से-एक पक्का गानेवालियाँ हैं। दुनिया में बड़ी शोहरत है उनकी। फीस भी इतनी ऊँची... यहाँ के गँवार क्या देंगे, यहाँ तो एक रुपया में चार अठन्नी भुनानेवाले लोग हैं। यहाँ रंडी के पेशे में कोई फायदा थोड़े ही है, दोनों जून की रोटी-दाल चल जाती है, यही बहुत समझो। बहुत-से तो धनी-मानी नफीस, सलीकेमन्द रंडियों को छोड़कर गँवार लौंडों के पीछे भागते रहते हैं। यह शौक तो बड़ा सस्ता है। रंडी का शौक तो दिल चाहता है, दिलफेंक चाहता है, यहाँ तो वह आवे जो अपने घर-परिवार को बरबाद करने की हिम्मत रखे। गँवार, छोटे दिलवालों के इस शहर में गाने-बजाने का खयाल भूलकर भी दिल में न लाना, नहीं तो तुम तो भूखों मरोगी ही, हम सभी की हालत वैसी ही हो जाएगी।"

बैठे-बैठे ही ढेला का खूबसूरत चेहरा एक ओर लटक गया और वह नींद के

आगोश में चली गई, बस उसकी साँसों के आवागमन की हल्की, मृदु आवाज सुनाई दे रही थी।

चौक से जाने पर इशरतगंज की दाहिने मुड़नेवाली पहली गली का पहला ही मकान ढेला का है। उसके कमरे का बाहरी दरवाजा गली में प्रवेश करते ही दाहिनी तरफ तीन सीढ़ीवाले एक चबूतरे पर चढ़ते ही मिल जाता है।

गर्मी आ गई है। सुबह सात बजे, नहाने-धोने के बाद धुली, सुरमई साड़ी पहन और धुले बालों को चेहरे के अगल-बगल कन्धे और पीठ पर फैलाए ढेला हवा का लुत्फ उठाने के लिए कमरे के बाहर चबूतरे पर खड़ी होकर सड़कों को निहार रही है। बादलों के घेरे के बीच से दिखाई देनेवाले

पूर्णिमा के चाँद की तरह उसका चेहरा दिखाई दे रहा है। अचानक चार लड़कों के एक छोटे-से दल पर उसकी निगाह पड़ी। सोलह से अठारह उन्नीस वर्ष के बीच के ये नौजवान जिनमें दयाशंकर, पिलपिली, चेंगन और हीरा शामिल हैं, गंगा-स्नान करके आपस की हँसी-मजाक पर उछलते हुए घर लौट रहे थे। उनके हाथ में या कन्धे अथवा सिर पर नहाकर धोए गीले कपड़े हैं। अचानक लपिली का ध्यान ढेला की तरफ गया और उसने अपने साथियों की तरफ देखकर उधर संकेत किया। जब सभी देखने लगे तो पिलपिली ने शरारत से भरकर हाथ के इशारे से ढेला को बुलाया।

पिलपिली की इस हरकत पर उसके दूसरे साथी कुछ शरमाकर दूसरी ओर मुँह करके हँसने लगे। मगर अपनी वर्तमान जिन्दगी की घुटन और ऊब से दबा ढेला का मन खुश हो गया, जैसे ताजी हवा मिट्टी की धूल को उछाल दे। उसे मजा आ गया और आजादी के लिए तरसता उसका हृदय उन किशोरों से बोलने, बतियाने, उनसे हँसी-मजाक और उनके साथ ठहाके लगाने के लिए मचल उठा। और तब उसने भी हाथ के इशारे से उन्हें बुलाया। वे एक जगह ठिठककर अविश्वास से आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखने लगे। लेकिन इस बार ढेला ने हाथ के साथ आँखों से भी इशारे

किए। फिर भी, अचानक उसकी तरफ बढ़ने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। दयाशंकर उनमें उम्र में सबसे बड़ा था और एक राजनीतिक क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य होने की वजह से उसके चेहरे पर गम्भीरता थी। उसने ढेला की ओर हवाई दृष्टि से देखकर विपरीत दिशा में मुँह मोड़ लिया। पिलपिली की उम्र सत्रह वर्ष की थी, दयाशंकर से छोटा, लेकिन शरारती। दरअसल, बचपन में वह बड़ा चुप्पा और शर्मीला था, लेकिन बड़ा होने पर अप्रत्याशित विचित्र हरकतें करके तेजी से अपने को साहसी बनाने की कोशिश कर रहा था। ढेला के आमन्त्रण पर अपनी शर्म को दबाने के लिए इस तरह हँसने लगा हिल-हिलकर, मानो किसी स्प्रिंग पर बार-बार उछल रहा हो।

अन्त में दयाशंकर आगे बढ़कर गम्भीर स्वर में बोला, "यार, तुम लोग क्या खुथ की तरह खड़े हो गए ? आओ, देखें, क्या कहती है ?"

जब वह छाती निकालकर आगे बढ़ा, तो उसके दोस्त भी उसके पीछे शर्म और हिम्मत की परस्पर टकराहट की अकड़ के साथ चल पड़े।

जब वे नजदीक पहुँचे तो ढेला ने नियन्त्रित प्रसन्नता से दमककर किन्तु व्यस्त मुद्रा में दरवाजा ठेलकर और अपने कमरे के अन्दर जाकर संकेत से उनको वहीं बुलाया। वे एक क्षण के लिए ठिठके, फिर चबूतरे पर एक शर्मीली हड़बड़ाहट में एक-दूसरे को धकियाते हुए सीढ़ी से धड़ाधड़ चढ़ गए, जैसे प्रत्येक को ही सबसे पहले कमरे के अन्दर पहुँचने की जल्दी हो। सभी नंगे पैर थे, जिनमें बालू और सड़क-धूल के कण चिपके हुए थे। दयाशंकर ने अधिक जिम्मेदार होने का परिचय देते हुए कमरे के बाहर चबूतरे पर तीन-चार बार अपने पैरों को थप-थप पटका, जिसका अनुकरण करके उसके दोस्तों ने भी कमरे में प्रवेश किया।

अभी उनको दुधमुँहा किशोर ही समझना चाहिए, जिन्हें उम्र ने उनके अनजाने में ही यौवन की दहलीज पर खड़ा कर दिया था, जो अनेक प्रतिवन्धों एवं प्रताड़नाओं से घिरे हुए भी, इस दुनिया का सबकुछ जानने और बड़ा-से-बड़ा साहसिक कार्य करने को उत्सुक थे। वह ऐसा समय था, जब बलिया के सख्त, ग्रामीण सामन्ती सामाज में एक पिघलाव हो रहा

था, जिससे अच्छे खाते-पीते परिवारों से एक ऐसा मध्यम वर्ग पैदा हो रहा था जिसका कुछ निजी था, जो पुराने को तोड़ना भी चाहता था। इसमें एक ओर राजनीतिक जागृति और दूसरी ओर साहित्य एवं फिल्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। प्रान्तों में कांग्रेस के मन्त्रिमंडल बनने से बहुत-से प्रतिबन्ध हटा दिए गए, अनेक आजीवन कारावास की सजा भुगत रहे क्रान्तिवीर छोड़ दिए गए, जो किताबें जब्त की गईं वे खुलकर बेची जाने लगीं। समाचार पत्र स्वतन्त्रता के पक्ष में सही समाचार और बेबाक टिप्पणियाँ छापने लगे। यहाँ तक कि इतिहास-पुस्तकों के नए संस्करण आ गए जिनमें कांग्रेस तथा अन्य दलों के स्वातन्त्र्य

आन्दोलन के विवरण विस्तार से छापे गए।

इन घटनाओं से जनता में खास तरह शिक्षित नौजवानों में अभूतपूर्व जागरूकता देखने में आई। इन्हीं दिनों में वामपक्षीय दलों के मजदूर-किसान आन्दोलन भी जोर-जोर से शुरू हुए थे। इस दिशा में समाजवादी पार्टी और साम्यवादी पार्टी विशेष रूप से सक्रिय थीं। ये दोनों पार्टियाँ किसानों और नौजवानों को नए ढंग के उद्देश्यपूर्ण आन्दोलन के लिए संघटित कर रही थीं। और चूँकि समाजवादी पार्टी के नेता जयप्रकाश नारायण बलिया जिले के ही थे, इसलिए बलिया की जनता खास तरह से नौजवानों पर समाजवादी पार्टी का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। यदि आप खद्दर का पैजामा और खद्दर का ही कॉलरवाला कुर्ता और कंधे से एक झोला लटकाए किसी नौजवान को देख लें तो समझ जाइए कि वह जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया और आचार्य नरेन्द्र देव में अटूट श्रद्धा तथा विश्वास रखनेवाला समाजवादी है। यदि यह न हुआ तो साम्यवादी अवश्य है, जो भारत में भी रूस की तरह समाजवादी क्रान्ति का स्वप्न देखता है। ल

क्रान्तिकारी साहित्यिक पुस्तकों के अलावा शरतचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि के अनेक उपन्यास और कहानी-

संग्रह सहज उपलब्ध हो रहे थे। इसके साथ बोलता सिनेमा आ गया था, जिसमें 'देवदास', 'अछूत कन्या' आदि फिल्में दिखाई गई थीं। इनका भी नौजवानों पर जबरदस्त असर था। क्रान्तिकारी होकर किसी लड़की से प्यार करने की प्रत्येक मध्यवर्गीय नौजवान की तमन्ना थी। और 'देवदास' की कहानी तथा उस पर बनी फिल्म ने नौजवानों में एक रहस्यमयी भावुकता भर दी थी, जिसमें बहकर वह किसी वेश्या को प्यार करने, उसका उद्धार करने का स्वप्न देखता था। समाज हिल रहा था, उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया तेजी से आरम्भ हो चुकी थी। अब व्यक्ति सिर्फ सामन्तवादी समाज का कोई जड़ हिस्सा नहीं था, उसका अहम्, निजीपन जाग रहा था। उसे अब महसूस हो रहा था कि उसकी निजी एवं सामाजिक आकांक्षाएँ हैं, जिनकी सार्थकता के लिए वह कुछ करना चाहता था-अपना मौलिक योगदान।

संये चारों किशोर नौजवान व्यक्तिगत रूप से कुछ जानते नहीं थे। शुरू में लोगों के गाली-गलौज, सुनी-सुनाई बातों, शादी-ब्याह में मिलनी के दिन सुने हुए मुजरे तथा स्वामी शिवानन्द की 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' पढ़कर उन्हें जरूर मालूम था कि वे वेश्याएँ पैसे के लिए अपने शरीर को बेचनेवाली घटिया चरित्र की औरतें होती हैं, परन्तु बाद में जब उन्होंने, विशेष रूप से दयाशंकर और पिलपिली ने 'देवदास' पढ़ी और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और उत्थान के लिए अपना सबकुछ कुर्बान करने का संकल्प किया, वेश्याओं के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त सहानुभूति जाग उठी। दयाशंकर का सपना था और तमन्ना भी कि किस तरह जवान लड़कियों और वेश्या-पुत्रियों को अपनी क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य बनाया जाए, जो राजनीतिक गुलामी, शोषण और अन्याय के मजबूत किलों को ध्वस्त करने के लिए पिस्तौल और बन्दूक लेकर मैदान में निकलें।

"ऐ, दरवाजा बन्द कर दो," ढेला ने एक ढीठ खुशी से चहककर अंगुली से संकेत करते हुए हीरा से कहा, जो सबसे पीछे छाती पर सिर गाड़े वीरतापूर्वक खड़ा था। यह उसी मुद्रा में पीछे घूमकर दरवाजा बन्द करने के बाद ठीक उसी जगह और वैसे ही लौट आया। दयाशंकर एक ओर बाईं तरफ सिर उठाकर इधर-उधर दीवारों को देख रहा था, जैसे उसे किसी की परवाह न हो। और सबसे शरारती पिलपिली, चेंगन और हीरा के मुख

भय, नासमझी और सिटपिटाहट से रहिला की तरह छोटे हो गए थे।

"ऐ, सड़क पर तो काफी उछल रहे थे, यहाँ आकर डरपोक की तरह क्यों खड़े हो ? साफ बताओ कि किस बात पर हँस रहे थे। यह भी बताओ, कभी वेश्या के घर गए हो ? मगर मैं तुम्हारे लिए वेश्या नहीं हूँ, दोस्त हूँ। तुम लोगों से बात करना चाहती हूँ। यहाँ भी उछल सकते हो, मगर जोर-जोर से नहीं, शोर करने से अम्मा की नींद खुल जाएगी।"

ढेला ने यह बात पिलपिली की ओर देखकर कही थी शरारत से, दोस्ती से, किंचित प्यार से, जिसने शर्म-संकोच और अटपटेपन को काफी हद तक दूर कर दिया और ये सभी उसे तिरछी दृष्टि से देखकर अपने काँपते होंठों में मुस्कुराने लगे। पिलपिली पर कुछ अधिक ही असर हुआ और फिर वह हँसी का स्प्रिंग बनकर लटपटाती आवाज में बोला:

हम एक-दूसरे की ग्रैविटी काट रहे थे। तुम अपनी ग्रैविटी कटवाओगी..."

" पिलपिली की बात पूरी नहीं हुई, क्योंकि उसके अन्दर उठा हँसी का एक जोरदार फव्वारा, जिसे वह दबाने की कोशिश भी कर रहा था, उसे हिला हिलाकर उसका दम ही निकालने लगा। दूसरे साथी भी उसी तरह हँसने लगे। और ढेला भी जिसे पिलपिली का मजाक खाक पत्थर कुछ भी समझ में नहीं आया; फिर भी उसकी बेहाल हँसी ने, जो मुँह और होंठों पर रुदन की वक्र रेखाओं के रूप में उभर रही थी, उसको इस तरह गुदगुदाना शुरू किया कि वह अन्त में बेतहाशा ही-ही-ही करके चीखती हुई-सी दोहरी हो गई। उसके लिए ऐसी कोई बात नहीं थी, यह हमउम्र लोगों का साथ-संग था तथा अपनी घुटन और ऊब से उबरने की इच्छा थी, जैसे गुम और वातहीन स्थान पर अचानक तेज, शीतल और सुखदायी बयार चलने लगे।

जब प्रवाह थमा तो ढेला ने होंठों पर उँगली रखकर शी-शी करते हुए सबको चुप कराया, फिर फुसफुसाई आवाज में बोली:

"हाँ, यह बताओ, यह ग्रैविटी क्या होती है ?"

पिलपिली ने गम्भीर होकर कहा, "अरे, तुम ग्रैविटी नहीं जानतीं? बड़ी फिसड्डी हो। देखो, यह धरती हर चीज को अपनी तरफ खींचती है, इसीलिए हर चीज पृथ्वी पर टिकी हुई है। हमारे पास एक ऐसा औजार है, जिससे हम किसी आदमी या चीज के नीचे से ग्रैविटी को खुट-खुट काट देते हैं और वह आकाश में उड़ने लगता है। एक दिन हमारे क्लास में संस्कृत के पंडितजी ने मुझे एक घूसा मारा और मैंने गुस्से में उनके पैरों के नीचे से ग्रैविटी काट दी। और वह ऊपर उड़कर कमरे की छत से सटकर लटक गए। छत न होती तो गैस के गुब्बारे की तरह आसमान में उड़ने लगते। खैर, जब उन्होंने वादा किया कि आइन्दे किसी लड़के को नहीं मारेंगे, मैंने एक रबड़ साल्यूशन से ग्रैविटी जोड़ दी और वह नीचे आकर पहले की तरह संस्कृत पढ़ाने लगे। अगर तुम्हारा कोई दुश्मन हो तो बताओ, हम उसकी ग्रैविटी काट देंगे और वह बाप-दादा चिल्लाते हुए आसमान में उड़ने लगेगा।"

संयमित हँसी का एक और ज्वार आया और हँसते-हँसते ढेला की आँखों में आँसू आ गए। इसी समय बाहर चबूतरे से किसी ने दरवाजा खटखटाया। ढेला ने होठों पर उँगली रखकर उनको फिर चुप कराया। वह समझ गई कि कोई सिरफिरा ग्राहक है, जो लड़कों को अन्दर आते देखकर अन्दाजा लगा बैठा है कि धन्धा अभी से शुरू हो गया है। उसने पिलपिली से धीमे स्वर में कहा :

"ऐ, थोड़ा-सा दरवाजा खोलकर फॅफरे से बता दो, इस समय जाए और शाम को आए..." पिलपिली डर गया और सकपकाकर इधर-उधर देखने लगा। इस पर दयाशंकर गम्भीरतापूर्वक आगे बढ़ा और बताए हुए तरीके से बाहर खड़े एक अधेड़ व्यक्ति से धीमे से कहा, "बाबा, जाइए इस समय... बाद में आइएगा...।"

यह ग्राहक किसी पालतू जानवर की तरह, कहते ही घूमकर सिर झुकाए चला गया, जिसके बाद वे हँसने लगे। चेंगन कम शरारती नहीं था, परन्तु इस असाधारण स्थान और परिस्थिति में किसी खिलौने की तरह सिर्फ हँसने का ही कार्य कर रहा था। लेकिन, अब उसके अन्दर एक असाधारण

साहस का उदय हुआ और उसने शरमाकर हँसते हुए पूछा "ऐ, हार्डी बनोगी ?"

ढेला ने इसका भी अर्थ नहीं समझा, लेकिन यह सोचकर कि यह भी कोई मजाक की बात होगी, फिर बेतहाशा हँसने लगी। कक्षा में पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति सम्बन्धी अध्याय पढ़ाए जाने के बाद उन्होंने, बेमतलब उपदेश झाड़नेवाले या पिटाई करनेवाले अध्यापकों, चिड़चिड़ाकर कर्कश चिल्लानेवालों, छात्रों को सतानेवाले लंठों-बदमाशों, चापलूसों, चालबाजों, व्यभिचारियों और अन्यायी अंग्रेजों के पैरों के नीचे से गुरुत्वाकर्षण शक्ति को काटकर उनको अचानक आकाश में उड़ाने का मजाक आविष्कृत कर लिया था। उनके बीच अक्सर इस तरह के मजाक का दौर चलता तो वे इस सम्बन्ध में अजीब-अजीब अविश्वसनीय कल्पनाओं द्वारा बदमाशों और आतताइयों को काल्पनिक दंड देकर खूब खुश होते।

इसी तरह उनके बीच हार्डी बनने का मजाक भी प्रचलित था, जिसको सिर्फ वे ही समझ सकते थे। हार्डी बनने के लिए वे आपस में एक-दूसरे से खोपड़ियाँ लड़ाते, कुछ दूर से दौड़कर पास आते और अपने शरीर को तिरछा कर परस्पर जोर से टकरा-टकराकर एक-दूसरे को गिराने की कोशिश करते। एक टाँग पर दौड़ने की प्रतियोगिता करते, लेटकर छाती पर अधिक-से-अधिक ईंटें रखने की कोशिश करते, रात-रातभर जागकर पढ़ने की बाजी रखते। जब चेंगन ने यह सब बताकर ढेला को चुनौती दी तो पहले वह खूब हँसी, फिर बोली, "ऐ, यह मजाक यहाँ नहीं चलेगा। कोई और चीज बताओ..."

"ऐ, यह 'बाबा' खेलता है, खेलोगी?" हीरा को भी अब हिम्मत आई, लेकिन जब ढेला ने सवाल किया तो उसका मुँह ईंगुर की तरह लाल हो गया।

बात तो वैसे गम्भीर थी, लेकिन यह भी उनके बीच मजाक ही है। चेंगन

बहुत मोटा था। डॉक्टरों की सलाह पर सन्तुलित भोजन करने, चर्बी का सेवन छोड़ने और महँगी-महँगी दवाएँ लेने पर भी उसका मोटापा बढ़ता ही गया। फिर एक डॉक्टर ने, जो विलायत से पढ़कर आया था, उसे सीमेंट की फर्श पर नंगे बदन (सिवाय जाँघिया के) लेटकर शरीर के ही बल से कमरे में चारों ओर उछलने का सुझाव दिया। इससे सभी अंगों की कसरत होगी और चर्बी छँटेगी। इस कसरत को 'बाबा' खेलना कहा गया। यह काम भी चेंगन ने बड़ी मेहनत से किया। वह पानी के बाहर तड़पती, उछलती गरई

मछली की तरह हरकतें करता। इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ तथा वह कुछ और ही मोटा हो गया। इस पर भी कम हँसी नहीं हुई। अचानक ढेला यह देखकर कि देर हो रही है, गम्भीर होकर बोली, "तुम लोगों की बात मान लूँ तो मेरी हड्डी-पसली नहीं बचेगी। अब तुम लोग जाओ... आइन्दा जब आओगे तो मैं तुम लोगों के साथ ताश खेलूँगी।"

वे चले गए और ढेला हसरत से उनको जाते हुए देखती रही। वह काफी देर तक उनकी बातें सोच-सोचकर कभी हँसती और कभी मुस्कुराती रही। फिर तो उसे पता ही नहीं लगा कि कब नींद आई। करीब एक बजे खाने के लिए जगाए जाने पर ही वह मुश्किल से उठी।

5

एक दिन सुबह ढेला जब उसी दिन की भाँति बाहर चबूतरे पर खड़ी थी, दयाशंकर पता नहीं किधर से अत्यधिक व्यस्ततापूर्वक तूफान की गति से आया और उसकी ओर एक बड़ा लिफाफा बढ़ाते हुए रहस्यमय, अर्थपूर्ण दृष्टि से उसको देखते हुए धीरे-से बोला :

नि "इसमें दो सौ रुपए हैं, रख लो।"

"क्यों ? उस दिन हमारे घर आने की फीस है? मैंने तो कुछ माँगा नहीं। तुम लोग तो दोस्त हो, उस दिन बड़ा मजा आया। मैं रोज तुम लोगों को देखती हूँ, मगर उस दिन के बाद आए ही

नहीं। ये रुपए ले जाओ, मैं नहीं लूँगी।"भ्या।

ढेला क्या, दयाशंकर को भी मालूम नहीं था कि पिलपिली की शेखी की वजह से मोहल्ले के किसी अन्य लड़के ने उसके घर में सारी बातें बता दीं, फलस्वरूप इशरतगंज के रास्ते से आने-जाने और गंगा-स्नान पर ही रोक लग गई। ढेला की बात सुनकर दयाशंकर की गम्भीरता और भी गहन हो गई। उसने किंचित आदेशात्मक स्वर में कहा:

"इसे रख लो। ये पार्टी के रुपए हैं, पुलिस मेरे पीछे पड़ी है। उस दिन ही मैं जान गया कि तुम बहुत सरल हो, दोस्तों के लिए बहुत कुछ कर सकती हो, पार्टी के लिए बहुत काम की हो सकती हो। ये रुपए छिपाकर रख दो, किसी को भी मालूम न होने पाए। मैं दो-चार दिन में निश्चिन्त होकर तुमसे ले लूँगा। बाद में पार्टी के बारे में तुमको बताऊँगा। हाँ, इसके बारे में किसी को पता लग गया तो हम तुमको गोली मार देंगे।"

इतना कहकर वह ऐसी बज्र गम्भीरता से, जिसमें कर्मवीरता प्रदर्शन का भी भाव होता है, कुछ टेढ़ा मुँह करके रंगमंच के महानायक की तरह घूमकर तेजी से चला गया।

ढेला घबरा गई, जिससे उसके चेहरे पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें नजर आने लगीं। पार्टी, गोली-पिस्तौल, उसकी समझ के बाहर की बात थी। फिर वह अपनी कमाई का एक पैसा भी अपने पास नहीं रखती थी, इस लिफाफे को कहाँ छिपाकर रखे, यह उसकी समझ में नहीं आया। वह तेजी से अपने कमरे के अन्दर गई, भीतर से दरवाजा बन्द किया और बिस्तर लगी बड़ी पलंग पर बैठकर ऊपर दीवार की तरफ आँखें टाँगकर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी, मगर कुछ देर बाद उसके दिमाग में दर्द होने लगा।

कुछ देर तक इसी तरह बैठने के बाद उसे एक विचार सूझा। फिर शीघ्रता से उठकर उसने पलंग पर बिछे मोटे गद्दे उठाकर उसके नीचे लिफाफा घुसेड़ दिया, जिसकी गर्द साल में एक या दो बार ऊपर से ही डंडे से पीट-

पीटकर निकाली जाती है। उसे राहत मिली और वह खुश हो गई। खुशी इस बात की भी थी कि कई बार उसके मन में रुपयों का वह लिफाफा अपनी अम्मा के सुपुर्द करने का भी खयाल आया, लेकिन बाद में उसने अपने को धिक्कारा! डर यह भी कि श्यामदासी उन रुपयों को हड़प लेगी और हल्ला भी मचाएगी। रुपए के लिए ही अपने शरीर को बेचनेवाली एक वेश्या-पुत्री की रुपयों के लिए ही किसी की विश्वासिनी बनने की यह भावना स्वयं उसकी समझ के परे थी, फिर भी, उसकी तुलना उस बन्द अँधेरी घुटी-घुटी कोठरी से की जा सकती है, जिसके फाँफर से अचानक झिर-झिर हवा और रोशनी की कोई लकीर आ जाए।

ढेला ने कई दिन तक उसकी प्रतीक्षा की। रुपए का लिफाफा उसके दिल का बोझ बना हुआ था। और दस दिनों बाद करीब दो बजे रात को, जब तीन घंटे पहले ही धन्धा बन्द हो चुका था और वह सोने की कोशिश कर रही थी, बाहर दरवाजे पर धीरे-धीरे खट-खट हुआ। यह सोचकर कि कोई गाहक होगा, वह चुप लगाए रही। फिर वही खटखटाहट और धीमी पुकार 'ढेला'। वह पहचान गई और उठ खड़ी हुई। जब बहुत आहिस्ते से उसने दरवाजा खोला तो अँधेरे में दयाशंकर का टेढ़ा, रहस्यमय और किंचित सशंक चेहरा देखकर अचम्भे से स्तम्भित रह गई।

दयाशंकर ने बोलने का मौका दिए बगैर बहुत ही धीमी आवाज में कहा, "लिफाफा दे दो।" ढेला चुपचाप कमरे में आई और लौटकर उसके हाथ में लिफाफा बढ़ा दिया, जिसे लेकर वह घूमकर अँधेरे में गायब हो गया। सि

वह फिर एक पक्ष तक नहीं आया, लेकिन ढेला की उत्सुकता बनी रही। वह दयाशंकर के बारे में ही सोचती रही और उसका खयाल मशीनी जिन्दगी की ऊब की तरफ से उसका ध्यान हटाने में मददगार सिद्ध हो रहा था। कभी उसे दयाशंकर बड़ा घमंडी लगता, कभी रहस्यमय, कभी बातों, विचार और उमंग-उत्साह से खाली, खोखला और कभी हिम्मती तथा नेकफर्मी-दृत

और फिर कई दिनों बाद, करीब उसी समय, रात में वैसी ही मन्द खटखटाहट। जब उसने दरवाजा का फैफरा किया तो दयाशंकर ने उसी के बीच में हाथ डालकर दरवाजा खोल दिया और स्वयं कमरे के भीतर घुसकर कहा :

"मैं कुछ देर तक रुकूँगा, पुलिस मेरा पीछा कर रही थी, मैं उनको चकमा देकर यहाँ चला आया। न आता तो पकड़ा जाता। माफ करो, मैं तुम्हें... परेशान नहीं करूँगा..."

उसके मुँह से ताड़ी की गन्ध आ रही थी, जिसके अन्य नशों से पृथक मद्धिम खटमिट्ठापन को पहचानना ढेला पहले ही सीख गई थी। उसको यह भी आश्चर्य हुआ कि क्या पुलिस इसका हमेशा पीछा ही करती रहती है? साथ ही, यह भी डर लगा कि कहीं अम्मा की नींद खुल न जाए। इशरतगंज में धन्धा अमूमन ग्यारह बजे बन्द हो जाता है, कोई खास दूधारू मेहमान हो तो बात दूसरी है। मगर इस तरह के उखड़े, मनबहके, सूखल-संठ आगन्तुक से अम्मा बहुत नाराज होती थी, जिसके विरुद्ध बार-बार टेला को चेताया भी करती। मुश्किल तो यह है कि ढेला जैसी उदार और मरव्वती वेश्या-पुत्री, दयाशंकर को वहाँ से भगा भी नहीं सकती थी, जो पता नहीं क्यों किसी बड़े मकसद के लिए उस पर विश्वास करता था और विश्वास-रक्षा की उससे उम्मीद भी।

एक के बाद एक बने पृथक दो कमरे ढेला के लिए हैं। बाहर चबूतरे से घुसने पर जो कमरा पड़ता है, उसमें फर्श पर बड़ी दरी और सफेद जाजिम बिछी है, जहाँ खास शौकीनों का संगीत, नृत्य से स्वागत होता है। बादवाले कमरे में एक बड़ी मसहरी रखी है, जिस पर एक मोटा गद्दा, चादर और अमूमन एक बेडकवर बिछा होता है। ढेला बड़ी सफाई पसन्द है, कमरों में धूल और कोई गन्दगी देख नहीं सकती। धन्धे के समय बेडकवर जरूरी। उसके बाद उसे अगले दिन एक भूतपूर्व असफल और बेहद गरीब रंडी कमकरिन द्वारा छँटाई के लिए हटा दिया जाता, जो चीका-बर्तन, झाड़-पोंछा तथा अन्य प्रकार की सफाई-दफाई से लेकर दोनों जून नाश्ता-खाना तैयार करने के लिए कुल पन्द्रह रुपए लेती है। ढेला की माँ को यह फिजूलखर्ची पसन्द नहीं है, क्योंकि जहाँ दो चादरों से काम चल

जाता था, अब चार अतिरिक्त बेडकवर और चार चादरें रखनी पड़ती हैं। कई तरह की साड़ियाँ, पेटीकोट, चोलियाँ, सलवार, कुर्तियाँ अलग। कभी-कभी वह मुनमुनाती है 'ऐसे फैशन से रंडी खानदान का दिवाला पिट जाएगा,' फिर भी, वह मन-ही-मन ढेला की तारीफ भी करती है कि सफाई-दफाई और फैशन से ऊँचा रेट रखने और अच्छे ग्राहकों को आकर्षित करने में काफी मदद मिल रही थी, जबकि अन्य घरों का रेट आठ आना से लेकर चार रुपए से अधिक नहीं बढ़ पाता। हाँ, वेश्या का व्यवसाय जवानी, खूबसूरती, ऊँचे रख-रखाव और व्यवहार-बात में फलता-फूलता है।

"यहाँ और कोई चारपाई नहीं है। तुम मसहरी पर सो जाओ, मैं नीचे जाजिम पर सो जाऊँगी।" ढेला ने दूसरी ओर मुँह करके कहा।

"तुम काहे को नीचे सोओगी? मैं एक कोने में पड़ा रहूँगा... बस थोड़ी देर

दोनों मसहरी पर ही सोए, एमदम चित। अब वह छोटा-सा लैम्प बुझा दिया गया, जिसे बीच में ढेला ने जला दिया था। अँधेरे में चेहरों पर दो-चार मच्छर उड़ने लगे। दयाशंकर ने पाटी पकड़ ली थी, जबकि ढेला उससे किसी हरकत की उम्मीद कर रही थी। आँखें दोनों की ही मुँदीं। बाहर सड़क पर किसी के नंगे पैर धम-धम चलने की आवाज नदी-दिशा की ओर से आकर चौक की दिशा में निकल गई। फिर सन्नाटा छा गया। ॐ

दियाशंकर एक बार भी न हिला न कसमसाया। ढेला थकी थी, मगर उसे नींद नहीं आई। उसकी आँखों में कड़वाहट भर आई थी। सबसे तकलीफ उसे चित लेटने में हो रही थी, क्योंकि बाई या दाई करवट पैर मोड़ और हाथ आगे पसारकर लेटने से उसे बड़ा आराम और सुख मिलता था। फिर भी, इस कष्ट-भरी स्थिति में वह दयाशंकर के बारे में ही सोचकर परेशान हो रही थी।

पहले तो उसके अन्दर दयाशंकर के प्रति एक व्यंग्य-भाव का उदय हुआ। बनते हैं क्रान्तिकारी और तमन्ना है किसी वेश्या के पास सोने की ? फिर

इतना संकोच क्यों ? इतने बहाने क्यों ? यह भी तो नहीं कि पैसे की कोई कमी है। लेकिन जब यह उसकी उम्मीद के विपरीत चुप और स्थिर पड़ा रहा तो वह हैरत और उत्सुकता से भर उठी। ऐसा आदमी तो उसने आज तक देखा नहीं और वह उसके सम्बन्ध में सबकुछ जानने के लिए व्याकुल हो उठी।

तब उसका मन इस बात से परेशान हो उठा कि यह बेहद तकलीफ से पाटी से सटकर सिकुड़ा हुआ लेटा है। वह सदय हो उठी उसके प्रति और बुरे विचारों के लिए अपने को कोसने लगी। लेकिन समय बीत नहीं रहा था, नींद भी नहीं आ रही थी। वह इन्तजार करने लगी कि देखें क्या होता है, मगर एक-एक क्षण जैसे एक-एक युग हो। फिर एक बार ऐसी इच्छा हुई कि यह उसकी ओर करवट लेकर उसकी छाती पर अपनी बाँह पसार दे, देखें वह क्या करता है। लेकिन उसकी हिम्मत नहीं हुई। बेशक इसकी अधिकारिणी नहीं समझ सकी अपने को वह क्योंकि रुपए देकर उसकी देह को खरीदने का संकेत भी नहीं दिया था दयाशंकर ने और उसकी स्वयं की भावनाएँ माँ, खानदान और धन्धे पर कुर्बान थीं।

अचानक दयाशंकर की साँस भारी-भारी चलने लगी, जिसका संक्रमण तीव्रता से ढेला के अन्दर भी हुआ। वह उद्वेलित हो उठी और साँस को नियमित करने की उसकी कोशिश नितान्त असफल। फिर भी दोनों के शरीर अचल और स्थिर थे।

अचानक दयाशंकर उठा और धीरे से बोला, "मैं जा रहा हूँ...।"

ढेला हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। तब तक दयाशंकर कमरे के अन्धकार में ही निकास-द्वार के पास पहुँचकर खड़ा हो गया था। ढेला ने स्वयं उसके पास पहुँचकर तथा टकराहट से बचकर धीरे-से दरवाजा खोल दिया। वह सिर झुकाए बीच से निकल गया बिना कुछ बोले ही।

दरवाजा बन्द करके वह मसहरी के किनारे चुपचाप बैठ गई। ढेला को महसूस हुआ कि हर तरह की गन्ध से पृथक एक विशेष स्मृति-प्रिय, सुखद, मन्द मन्द खट्टी-मीठी पुरुष की गन्ध कमरे में ठहरी हुई है। एक

ऐसा अनुभव, जो उसक लिए सर्वथा नया है। वह उस ओर करवट लेकर, जिधर वह सोया था, लेट गई और बिस्तर में सिर गाड़कर कॉप-काँपकर सुबकने लगी। लेकिन इसका कारण क्या था ? क्या वह अपमानित हुई थी या उपेक्षित ? अथवा किसी अन्य कारण से दुःखी? अथवा यह प्रतिक्रिया प्राकृतिक थी, ऐसे हल्के भूकम्प की तरह, जो अन्दर की कोई परत खिसकने से घटित होता है और जिसे धरती का करवट बदलना कहते हैं।

शायद ढेला की जिन्दगी अनजान में ही एक नया करवट ले रही थी, जिसका ज्ञान उसे किंचित भी नहीं था। दूसरे दिन वह सामान्य थी, स्वस्थ थी, प्रसन्न थी। हँस रही थी, गुनगुना रही थी। उसका शरीर सदा की तरह धन्धा करने में लगा था। पैसे बरस रहे थे और उसकी माँ खुश थी। फिर भी इन अबाधित क्रिया-कलापों से एकदम अलग उसका मन प्रथम बार उलझ गया था, अल्हड़ युवती की हवा में लहराती साड़ी की तरह, जो गुलाब के काँटे में सहसा फँस गया हो।

मन उसका बार-बार उस काँटे से छूटने की कोशिश करने लगा, मगर उलझाव और भी बढ़ता गया। विस्तृत रेगिस्तानी ऊब और निराशा से भरी उसकी जिन्दगी में एक अनोखी नखलिस्तानी दिलचस्पी पैदा हो गई, जब उत्सुकता और उम्मीद से नित्य उसकी प्रतीक्षा करने लगी। ग्राहकों के बीच भी, वह सभी घृणित अहसासों से असम्पृक्त होकर कीचड़ में कमल की तरह उस दिन की स्मृति में खो जाती। और दूसरे समय भी, वह उसी के सम्बन्ध में सोच-सोचकर चकित होती रहती।

उसके दिमाग में अब अक्सर उसकी मृदु ध्वनियों की आहट आती मालूम होती और हृदय में एक मीठी टीस उठने लगती। और ऐसी ही व्याकुल प्रतीक्षा के डेढ़ महीने बाद वह एक रात उसी

तरह, उसी समय आया और उसी तरह सो गया। ढेला का दिल पहले से ही तेजी से धड़क रहा था और अब लगा कि उसकी धड़कन ही रुक

जाएगी। वह उससे न कुछ बोल सकी और न ही कोई इशारा ही कर सकी, बल्कि आँखें बन्द करके चुपचाप पड़ी रही।

राम करीब आधा घंटा बाद दयाशंकर ने उसकी ओर करवट बदलकर अपनी दोनों बलिष्ठ बाँहों के घेरे के अन्दर खींचकर उसे अधिकारपूर्वक अपनी छाती से सटा लिया, जैसे यह भी कोई पार्टी-कार्य हो। ढेला के अन्दर हाहाकार करता हुआ ऐसा तूफान उठा कि कँपकँपी और रुलाई छूटने लगी। बड़ी मुश्किल से वह अपने को स्थिर कर सकी। फिर यह बेहद नरम हो गई शरीर और जान से रेशम की तरह। उसके अन्दर एक कुँवारी लड़की की प्रथम अनुभवों की ही तरह रंग-बिरंगी रोशनियाँ जलने लगीं- एक कली की तरह प्रस्फुटन की प्रक्रिया से गुजरनेवाले अछूते मन के अनुभव। उसकी छाती में मुँह गड़ाकर उसकी प्रिय गंध को साँस में भरते हुए यह उसकी बोली के कुछ शब्द सुनने के लिए व्याकुल हो उठी।

लेकिन दयाशंकर ने सहसा उसे मुक्त कर दिया और उठकर बोला, "जा रहा हूँ...।"

वह आकाश से जमीन पर गिरी। उसने गिड़गिड़ाकर अनुरोध करना चाहा। 'मत जाओ,' किन्तु उसकी जबान जैसे तालू से चिपक गई। उसने डगमगाते कदमों से जाकर दरवाजा खोला। दयाशंकर के चेहरे पर कोई भाव नहीं था। नहीं, बाहर के किंचित उजले अन्धकार में ढेला को लगा कि दयाशंकर के होंठों पर एक मुस्कुराहट उभर आई है। शायद विजय के सन्तोष की अथवा गर्व की ? अथवा परपीड़ा के आनन्द की ?

परन्तु उसके जाने के बाद ढेला अपने को बेहद आहत और अपमानित महसूस करने लगी। उस पर गुस्सा भी बहुत आया ढेला को जैसे, जो अधिकार उसे आज तक नहीं मिला, उसे स्वयं दयाशंकर दे गया हो। या एक अनोखे, सुखद एवं सर्वथा नूतन रासायनिक प्रक्रिया से रूपान्तरित होकर उसने स्वयं उसे प्राप्त करने का अधिकार हासिल कर लिया हो।

फिर भी, दयाशंकर के गले से लगकर वह खुश थी। खुशी से उसका रोम-रोम चैतन्य हो गया था पानी में नहाई गौरैया की तरह। प्राप्त और अप्राप्त

के बीच में अवस्थित इस तरह की अकल्पनीय खुशी आज तक अनगिनत पुरुषों में से कोई भी उसे नहीं दे सका। यह खुशी वास्तविकता से युक्त सपना थी अथवा अनजान रंगीन सपनों से भरी वास्तविकता ? फिर भी इस खुशी ने फौरन अहसास करा दिया कि उसका एक प्रिय है, जो उससे दूर चला गया है। अचानक वियोग की खुशी से भरकर वह बिस्तर पर छटपटाकर बिलखने लगी।

उसे उम्मीद थी कि वह आएगा। और आया भी वह उसी वक्त। उत्तेजित, स्पन्दनमय प्रसन्नता में उसने छोटा-सा लैम्प जलाया उसका चेहरा देखने के लिए। वह गम्भीर था। उसने सोचा था कि जब वह मुस्कुराएगा तो अपने पास उसे खींच लेगी। परन्तु उसके पहले ही वह अपनी पाटी पर लेटकर आँखें बन्द कर चुका था। ढेला गुस्से और किंचित अभिमान से लैम्प बुझाकर लेट गई।

उसके शरीर से आज भी ताड़ी मिली एक हल्की, मीठी खुशबू आ रही थी जिसे नाक से भरकर वह उस दिन के प्रथम अनुभव का स्मरण करके व्याकुल हो उठी। उसे कँपकँपी छूटने लगी, जिसे रोकने के लिए उसने अपने दाँतों पर दाँत बैठा दिया। ऐसी हालत में भी वह एक उच्च स्वाभिमान से भरी थी और कोई ऐसी हरकत नहीं करना चाहती थी. जिससे दयाशंकर की नजर में हल्की और ओछी हो जाए।

सांगसहसा चित अवस्था में ही दयाशंकर पाटी की ओर से उसकी ओर खिसक गया। कुछ देर चुप रहकर, बहुत धीमे स्वर में उसके कान के पास अटक अटककर बोला वह

2) "मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बहुत-सी बातें, पता नहीं क्या-क्या। लेकिन तुम्हारे पास आकर मेरा कंठ अवरुद्ध हो जाता है। देश की आजादी के लिए संघर्ष करनेवाली एक क्रान्तिकारी पार्टी

का एक अदना सदस्य हूँ मैं और उस आजादी के लिए मैं भी अपनी जान कुर्यान करने की तमन्ना रखता हूँ। तुम्हारे बारे में सुना था, तुमको एक बार

दूर से देखा था, लेकिन उस सुबह अपने दोस्तों के साथ तुम्हारे कमरे में जाकर मैं चकित रह गया-क्यों, यह नहीं जानता। बाहर जाकर एक ख्याल आया कि तुम भी पार्टी की एक वीर सिपाही बन सकतीं हो। तुम जिस जिन्दगी में हो, इसके लिए तुम जिम्मेदार नहीं हो। तुम निर्दोष हो। समाज की यह व्यवस्था है, जो जिम्मेदार है। हम लोग देश को आजाद करके अपने यहाँ ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें सभी को बराबर समझा जाए, गरीब-अमीर का भेद मिटे, स्त्रियों की इज्जत हो। ऐसे ही खयाल मेरे दिमाग में आ रहे थे। यह कोई पार्टी का निर्देश नहीं था, मैं खुद अपने एक धनी दोस्त से दो सौ रुपए लेकर तुम्हें दे आया था, यह देखने के लिए कि तुम पर विश्वास किया जा सकता है या नहीं। और जब तुमसे दो सौ रुपए वापस मिल गए तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैंने निश्चय किया कि तुम्हें इस जिन्दगी से निकालकर ले जाऊँगा आजादी की लड़ाई में, क्योंकि तुम्हारा दिल साफ है, तुम्हारे अन्दर मजबूती है..."

अचानक चुप होकर उसने तिरछी दृष्टि से ढेला की तरफ देखा। दोनों चित लेटे थे। और उसका थोड़ा-सा घूमा हुआ मुँह उसके कान के पास फुसफुसा रहा था। कभी-कभी मुँह अधिक घूम जाता तो उसकी साँस ढेला के गाल का स्पर्श कर उठती। फिर भी अन्दर लघु कम्पनों और सिसकियों से भरी ढेला सीधी लेटी थी। आँखें बन्द। शरीर में कोई हरकत नहीं। उसका मन अवश्य किसी अन्तःसलिला की तरह अज्ञात, अनोखे और अछूते अनुभवों से आलोड़ित था, जो बाजारूपन के जुगुप्सा-भरे खोखलेपन से अलग और उससे ऊपर उठकर पुष्पित होती एक स्वतन्त्र, स्वाभिमानी, मृदुल एवं उर्वर नारी के निजी अहसास थे।

नींद आ रहीं है।

ढेला ने आँखें मूंदे ही नकार में सिर्फ सिर हिलाया। জামাদিত হলো চদা বানর

"सुन रही हो?

ढेला ने सिर के स्वीकारात्मक संचालन से ही उत्तर दिया।টে উলের টনির

का "उस दिन मैंने यह भी सोचा कि क्यों न तुम्हारी और साथ ही अपनी दृढ़ता की परीक्षा ली जाए। हम पहले भी अपनी शारीरिक मजबूती के लिए कई तरह की परीक्षाओं से गुजरे हैं। जैसे एक-दूसरे की बेंत से अन्धाधुन्ध पिटाई करना। पकड़ने जाने पर पुलिस कई तरह के कष्ट देती है, उनके लिए अपने को तैयार करना। सहनशीलता, संयम और परहेज के हमने अनेक प्रयोग किए हैं। परन्तु यह विचार नया था कि एक स्त्री के पास सोकर अपने संयम को डिगने न दिया जाए। सिर्फ इसी भावना से मैं तुम्हारे पास आया था। इस प्रयोग से हम दोनों की मजबूती का सबूत मिल गया है। आज भी इसी भावना से आया हूँ। तुम खरा सोना साबित हुई और पार्टी के लिए मैं तुम्हारा सहयोग लेना चाहता हूँ। अब भी समय है, अगर मेरी बातें तुम्हें उचित न लगें तो तुम साफ-साफ इन्कार कर सकती हो, अपने विचार बता सकती हो..."

उसका गला भर्रा गया और वह आगे बोल न सका। अब ढेला के शरीर में हरकत हुई। वह विपरीत दिशा में करवट बदलकर सिसकने लगी। दयाशंकर हतप्रभ हो गया। वह एक निश्चित उद्देश्य से और प्रयोग की ही निश्चित सीमा में सम्भाषण कर रहा था इस उम्मीद में कि आदर्शयुक्त उद्घोषणा और क्रान्तिकारी विचार तथा उद्बोधन का ढेला पर अनुकूल असर होगा और वह सहर्ष उसका साथ देने को तैयार हो जाएगी। लेकिन इस नई परिस्थिति में प्रयोग-सीमा का अदृश्य अर्मूत धागा खिंचकर कब टूट गया और क्यों, यह ज्ञात ही नहीं हो सका। फिर भी, प्रयोग अभियान के ही भ्रम या आत्म-छलावे में, उसने अथाह कोमलता से, जिसकी उसे आदत नहीं थी, उसकी बाँह पर हाथ रखकर उसे अपनी तरफ खींचा। ढेला ने अपने शरीर के संचालन से उसका हाथ झटक

दिया। दुबारा करने पर भी ऐसी प्रतिक्रिया हुई। तब उसने अपने को अलग करके कंपित सँधे स्वर में कहा, "मैं जा रहा हूँ।"

दयाशंकर का विश्वास था कि यह प्रयोग ही है, लेकिन उसकी बात पर ढेला ने करवट बदलकर आँसुओं से भीगा अपना मुँह उसकी दिशा में कर दिया। और उसकी आस्तीन पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा। दयाशंकर अचल रहा, जैसे अभिमान में हो अथवा उस जैसे व्यक्ति को डिगाना संभव नहीं। इस बार ढेला ने आस्तीन जोर से खींचा। दयाशंकर को सहसा महसूस हुआ कि धागा टूट चुका है और अब कुछ भी नहीं किया जा सकता।

वह उसकी तरफ मुड़ा और एक मूर्ख मुस्कुराहट के साथ उसे अपनी तरफ खींच लिया। ढेला उससे चिपककर उसके होंठों के पास रो-रोकर अस्फुट कुछ बोलने लगी। वह ऐसे दुःख-दर्द, खुशी, गर्व, स्वाभिमान, तृप्ति और पूर्णता की भावनाओं से भरने लगी, जिसकी उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी, जो नारी के लिए अपने प्रिय पुरुष से मिलने पर ही संभव है।

ढेला का मन धुनी हुई रुई की तरह बेहद हल्का और नरम हो गया। वह खुशी से, कृतज्ञता से मुस्कुरा रही थी, जिसका उसे पता भी नहीं था। उसे यह भी ज्ञात नहीं था कि यह दयाशंकर की बटनों, कपोलों, नाक और होंठों से खेल रही है। और बीच-बीच में प्यार और ममता से भरकर होंठों की कोमल पंखुरियों से उसकी बाँह और उंगुलियों का बार-बार स्पर्श कर रही है।

दयाशंकर निश्चल था, चित। उसके शरीर में कोई हरकत नहीं थी। वह अचानक उठ बैठा,

मगर बोला कुछ भी नहीं।

"क्या हुआ ? थोड़ा रुक जाओ।" के চটাস।

"नहीं..."। आवाज में अनजानापन।

"अच्छा रुको, मैं लैम्प जलाती हूँ..."

वह अब रोशनी में उसका चेहरा देखना चाहती थी, किन्तु उसका चेहरा

एक पराजित योद्धा

की तरह टेढ़ा, खिन्न, तेजहीन, रिक्त और प्रच्छन्न रोष से भरा था।

"क्या हुआ?" ढेला ने प्यार से उसके बालों को सहलाकर कहा।

वह उसको अप्रिय नजरों से घूरकर अत्यधिक कटुता से होंठों का संचालन करते हुए बोला : ग्राम "तुमने धोखा दिया है। तुमने मेरी अटल प्रतिज्ञा, मेरा संकल्प तोड़वा दिया। मैंने सोचा था कि तुम ऊँचा उठोगी, कुछ बनोगी, मगर तुमने मुझे किसी लायक न छोड़ा। तुम जो थी यह तो थी ही, साथ में तुमने मुझे भी गिरा दिया। तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी, जबकि ऐसी उम्मीद तुमसे करनी चाहिए थी मुझे। अफसोस है, मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं तुम्हें देने के लिए।"

वह उठ खड़ा हुआ। ढेला का चमकता खुश चेहरा अचानक फक पड़ गया। उसके सामने अँधेरा छा गया। उसकी आँखों में धरती और समान काँपने लगे। उसने अपने को स्थिर करने के लिए मसहरी का सिरहाना पकड़ लिया -चि ा ला

कुछ देर बाद वह स्थिर हुई तो उसका चेहरा काठ की तरह दिखाई देने लगा। उसने शान्त स्वर में कहा :

"परेशानी की कोई बात नहीं। जब तुम्हारे पास हो, पैसे किसी से भेजवा देना या दे जाना।" उसने आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया। दयाशंकर कुछ नहीं बोला और चुपचाप बाहर निकल

दयाशंकर उस दिन के बाद नहीं आया। उसने पैसे भी नहीं भेजवाए, जो ढेला को कभी-कभी आशा का सन्देश जैसा प्रतीत होता। फिर भी, वह अनुभव से समझ चुकी थी कि जीवन का ज्वार, खुशी और सच्चाइयाँ उसके लिए नहीं हैं, जिनकी ओर अपने से ही ऊबकर बढ़ी, किन्तु बाद में निर्ममतापूर्वक अपनी पुरानी हैसियत तक लीटा दी गई। कभी-कभी

उसका हृदय दयाशंकर के लिए क्रोध और घृणा से भर उठता। वह प्रतिशोध के लिए मचल उठती। लेकिन यह सब धुआँ ही सावित होता, जिसको हवा तेजी से उड़ा ले जाती है। तब उसे बाँह का तकिया याद आ जाता और उसके शरीर की खुशबू, सक्रिय कोमलता, आत्मीयता और मृदुता भी, जिन्हें झुठलाकर वह चला गया और जो उसका एकमात्र सत्य और उपलब्धि है। वह डर जाती और इस प्रिय स्मृति की अपनी ही दुर्भावनाओं से रक्षा करने के लिए आतुर हो जाती, जो एक अंकुरित कोमल पौधा था, जिसको सबकी नजरों से ही वह दूर रखना भी चाहती थी। कुछ ही दिनों में वह जो दे गया वह उसकी जिन्दगी में मृदु पीड़ा का सम्बल बनकर फैल गया।

उसका व्यापार पूर्ववत चलता रहा। शहर के सभी रईस जैसे उस पर कुर्बान थे। धन बरस रहा था और उसकी अम्मा प्रसन्न। वेश्या समाज में श्यामदासी की हैसियत अच्छी होती जा रही थी, जिसकी वजह से अहंकार और घमंड से चूर होकर वह हर वेश्या की उपेक्षा करने लगी, और आसानी से दूसरों की ईर्ष्या और कटुता का लक्ष्य बन गई।

लगभग डेढ़ वर्ष बाद ही उसके यहाँ गोबर्धन का आना-जाना शुरू हुआ, जो एक तिकड़मी मुनीम द्वारा अपने बीमार सेठ के पुत्र को बुरे पथ पर डालने के कुचक्र का परिणाम था। ढेला ने एक प्रशिक्षित, अभ्यस्त प्रदर्शन तथा बनावटीपन से उसे चालू करना शुरू किया, लेकिन वह कुछ ही दिनों में जुनून की हद तक उसे प्यार करने लगा। वह शराब पीकर आता जिसकी लत मुनीम द्वारा ही लगवाई गई थी, और वह खाद्य उपहार के तौर पर कलिया-पराठा, अथवा रबड़ी या भारत भंडार की शुद्ध घी की मिठाइयाँ ले आता। ढेला के पास किसी के लिए इतनी फुरसत नहीं थी, फिर भी गोवर्धन के साथ थोड़ा-बहुत मरब्बत इसलिए करती कि वह एक कमसिन, हमउम्र, अनुभवहीन, ताजा और भावुक नौजवान था और कुछ समय पहले ही दयाशंकर के साथ ही राजनीतिक कारणों से गिरफ्तार हुआ था। एक दिन समय मिलने पर जब उसने अपनी छोटी-सी जिन्दगी और कुछ दोस्तों के किस्से बताए तो ढेला को दयाशंकर की पीड़ा-भरी याद आई और इसी वजह से उसमें गोबर्धन के प्रति एक अनजान-सी सहानुभूति उत्पन्न हो गई। ऐले

1 दिन में तीन-साढ़े तीन बजे से ग्राहकों का आगमन शुरू हो जाता, जिनका प्रवेश उस छोटे-से चबूतरे के आगे गली में दूसरे दरवाजे से एक बड़े कमरे में होता, जिससे निकलने पर एक गलियारा ढेला के कमरों तक ले जाता। लगता, शादी-ब्याह अथवा छठी-बरही के किसी समारोह अथवा किसी त्योहार के शुभ अवसर पर रिश्तेदार या अतिथिगण आ-जा रहे हों। अथवा राष्ट्रीय ख्याति के किसी नेता के दरबार में अपने-अपने खास काम के लिए शहर के लोग इकट्ठे हो रहे हों।

उस कमरे में एक बड़ा तख्त और कई बेंचें रखी थीं दरी और सफेद चादर से सज्जित। कुछ लोग यदि एक साथ आ जाते तो कमरे में बैठकर अपने नम्बर का इन्तजार करते, जिनमें कई एक-दूसरे से परिचित भी होते, परन्तु वे किसी की ओर देखते नहीं बल्कि एक छूछी-सी तुच्छ मुस्कुराहट के साथ नीचे फर्श को निहारते रहते। ऐसे असाधारण अवसर पर श्यामदासी भी स्वयं इस उम्र में बेहद बन-ठनकर और जवान वेश्याओं की तरह बनावटी नखरे करके अथवा बगल से किसी बेचल्लू वेश्या को पच्चीस प्रतिशत कमीशन पर बुला लेती और कई बूढ़े खब्बीस और चिरकुट ग्राहकों को निबटा कर चालू कर देती, जिन्हें सिर्फ एक औरत चाहिए, चाहे वह कोई हो। ऐसे वक्त

वह अवश्य सोचती कि यदि बाजार से दो और जवान पट्ठी औरतें सस्ते दाम पर मिल जाएँ तो ढेला और खुद उस पर पड़ा बोझ कम हो जाए और कारोबार में तरक्की हो।

शाम के शुरू के खेपों में अनेक सामान्य वकील, मुख्तार, मुहर्रिर, अहलमद, पेशकार, नकलनवीस आदि होते, जो दिन-भर झूठ और तिकड़म से रुपए बटोरते, मुवक्किलों के सहारे पूड़ी, लड्डू और समोसे उदरस्थ करते और कचहरी छूटते ही जल्दी-जल्दी मुड़ियाते हुए सिर नीचा करके इशरतगंज की तरफ कदम बढ़ा देते। और शाम की अन्तिम किस्तों में रईसी के मारे, बुढ़ाते शौकीन और अन्य सम्पन्न लोग तथा दुकानबन्दी

के बाद लाभांश में से एक छोटा निजी अंश जेब में डालकर आराम, सुकून और ताजगी की खोज में कई सेठ-साहूकार और मुनीम आदि।

गोबर्धन अमूमन इस भीड़ में फँस जाता। वह किसी बेंच पर सिर झुकाकर बैठ जाता और कई परिचित, बुजुर्ग की नीची आँखें उसे, बिना किसी अधिकार के, अचम्भे और नाराजी से देखने लगतीं। जब ढेला को मालूम होता, उसे पहले ही बुला लेती। एक दिन ढेला ने अप्रत्याशित रूप से उसके बालों को सहलाते हुए पूछा :

"तुम रोज-रोज क्यों आते हो? दो या तीन दिन बाद आया करो।"

गोबर्धन उसके दाहिने हाथ को अपने हृदय पर रखकर अत्यधिक उच्छ्वसित होकर बोला, "मैं जानता हूँ मेरा मुनीम मुझे कीचड़ में ढकेलने के लिए ले आया था, मगर यहाँ आकर मैं जी गया। मुझे ऐसा हीरा मिला, जिसकी कल्पना नहीं की थी मैंने। जिस नीयत से दूसरे लोग आते हैं यहाँ, मैं नहीं आता। मैं कैसे बताऊँ, तुम्हारी आँखें, तुम्हारी बातें मेरी आत्मा की गहराइयों को छू लेती हैं। हाँ, मुझे तुम्हारा शरीर बेहद प्रिय है, लेकिन सिर्फ शरीर ही नहीं बल्कि तुम्हारी सच्चाई, तुम्हारी निश्छलता, तुम्हारी आत्मा। पूरी-की-पूरी तुम जैसी हो, जिसको मैं जितना जानता हूँ उसी का बार-बार अनुभव करने के लिए मैं आता हूँ..."

ढेला के मुख पर एक अस्पष्ट-सी मुस्कुराहट उभर आई थी। उसने अपने हाथ को उसकी छाती पर रहने दिया, जिसके स्पर्श-विन्दु पर वह उसकी तेज धड़कनों को महसूस कर रही थी। शरीर तो उसका बहाना मात्र था, वस्तुतः वह भावनाओं का पूंज था, जैसे उसके बाहर और भीतर के बीच किसी झूठ और कृत्रिमता का अस्तित्व न हो। सच्चाई का कोई परिष्कृत, सोंधा हुआ और फैशनेबुल रूप हो सकता है क्या ? प्यार की भावनाओं के दबाव में उसके पूरे शरीर में ही सक्रिय बदलाव आ जाता। उसके नथुने फूल-फूल जाते। होंठ गोले-गोले खूबसूरत आकार ग्रहण कर लेते, सारा शरीर जैसे उच्छ्वासों से भर जाता और बोली में तुतलाहट भी आ जाती। पहले ढेला उसको इस रूप में देखकर हास्यास्पदता की दिलचस्पी और मनोरंजन से खिलखिलाने लगती, परन्तु अब वही चीजें उसके अन्तर को

हिला रही हैं। उसे लगा कि यह तो मनुष्य की निर्मल शिशु सच्चाइयाँ हैं, जिनके लिए व्याकुल होकर वह दयाशंकर के पास जाकर असफल लौटी थी और जो गोबर्धन के पास विपुल मात्रा में पड़ी हुई हैं।

"गोबर्धन, तुम यहाँ इस समय नहीं, डेढ़ बजे दिन में आया करो। मैं खा-पीकर आराम करती हूँ। तीन बजे तक खाली रहती हूँ, तब खूब बातें करेंगे।"

ढेला ने उसके गाल को थपथपा दिया, जैसे कोई बच्चा हो। गोबर्धन की आँखें प्यार की ज्योति से दपदपा गईं। उसने कुछ क्षणों तक उसे देखा फिर सिर झुकाकर चला गया। ढेला ने पहली बार उससे ऐसा व्यवहार किया, कोई जान-बूझकर नहीं बल्कि अवश होकर। और उसके जाने के बाद वह स्वयं अपने कृत्य पर आश्चर्य करने लगी, जो उसके लिए असाधारण था, क्योंकि बनावटी प्यार के प्रदर्शन की जरूरत के समय भी वह अपने किसी भी ग्राहक के प्रति इस तरह का आचरण नहीं करती। केवल दयाशंकर के प्रति ही दिल से विवश होकर स्नेह एवं आत्मीयता से प्रस्तुत हुई।

अचानक यह दयाशंकर और गोबर्धन की परस्पर तुलना करने लगी। दयाशंकर पहुँच और समय

के परे था। वह उसके लिए एक रहस्यमय पहाड़ की तरह था, जिसके आकस्भिक विजय अभियान में शिखर तक पहुँचकर वह नीचे गिर पड़ी। यही अज्ञेय ऊँचाई उसकी शक्ति थी, जिससे आकर्षित होकर उस ऊँचाई तक पहुँचने की कल्पना करने लगी। और उसकी कमजोरी? उसका मन पीड़ा से कराह उठा। पहली बार उसे महसूस हुआ कि उसकी दुर्बलता, उसका कोई अहंकार और उससे ही उत्पन्न कोई विभ्रम था, अन्यथा वह उस रात अपने प्यार और आत्मीयता का सघन सुख कैसे दे सका ? उसका चेहरा रुदन की टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों से भर गया और वह नियति की क्रूरता से आहत होकर सिर धुनने लगी।

परन्तु गोबर्धन उसे सहज उपलब्ध था। उसका हृदय और अन्तर्मन भी उसके सामने खुला था। वह स्वयं उसके प्रति समर्पित था, उसके वश में था, जिसे वह उलट-पुलट सकती थी, प्यार कर सकती थी और तिरस्कृत भी। उसमें कोई अलंघ्य अज्ञेयता और रहस्यमयता नहीं थी, जो शक्ति का आधार स्तम्भ समझी जाती है। उसके सामने उसका कोई स्वाभिमान भी नहीं था। वह उसके पास आते और जाते समय एक समान सहज ढंग से मुस्कुराता रहता, जैसे कोई गुलाम हो। उसके पास जो कुछ भी था, उनका दुर्बलताओं में शुमार होता है, फिर उसकी शक्ति क्या है ? सोचते-सोचते ढेला का माथा चकराने लगा, क्योंकि कमजोर व्यक्ति तो काम निकलने के बाद खिन्न, पश्चातापी, रुष्ट और निर्मम होकर दूसरी ओर मुँह कर लेता है !

और तभी एक नामुमकिन खयाल से उसका मन अपूर्व दीप्ति से भर उठा। हाँ, गोबर्धन की शक्ति तो उसका प्यार ही है, सहज प्यार, सच्चा प्यार, जिसे किसी प्रदर्शन मुकुट, बनावटी कलंगी, वक्तव्य और शपथों की जरूरत नहीं होती, जो कभी-कभी दुनिया में ढूँढ़ने पर भी उपलब्ध नहीं होता और फिर भी अपने सहज प्रवाह में बेसहारे मन को जोड़ता है, उसे अदृश्य सम्बल देता है। इस तरह अहसास से वह अभिभूत हो गई। इसी प्यार और इसी सच्चाई के लिए तो वह न मालूम कब से व्याकुल है, जो ऊँचा होने पर भी लंघ्य है, दूर होने पर भी पहुँच में है, जटिल-कठिन होने पर भी समझ की सीमा में है। वह उस प्यार के प्रतिदान के लिए बेचैन हो उठी। के

लेकिन दयाशंकर को अपने मन से हटा नहीं सकी। वह पहला व्यक्ति है, जिसने उसमें सामान्य स्त्री होने की उम्मीद जगाई, सच्चे प्यार का अहसास कराया, उसका सुख दिया। वह प्यार एक न खत्म होनेवाली हसरत बनकर उसके अन्दर आज भी विद्यमान है। कैसे भूल सकती है वे क्षण ? वह यार ही सबकुछ है, उसकी याद ही सबकुछ है, दुनिया में और सब बेमानी है।

और जब गोबर्धन की याद उस पर हावी होती तो दयाशंकर उसे अहंकारी, निर्मम, उखड़, तुच्छ और पाखंडी लगता है, जिसके मुकाबले गोबर्धन बहुत

प्यारा, एकदम अपना, नित्य ताजा और नवीन, जीवन्त तथा प्रवहमान, जिसका स्रोत कभी सूखता नहीं, जो खुशी-खुशी दे रहा था और दिए जा रहा था।

ढेला शीघ्र ही एक भँवर में फँस गई, जिसमें कभी वह दयाशंकर की ओर जाती और कभी गोबर्धन की ओर। कभी दयाशंकर उसको यादों की बाँहों में जकड़ लेता और कभी गोबर्धन अपने प्यार की वास्तविकता के सुख से सराबोर करता। उसकी हालत उस बच्चे की तरह हो गई, जो कुछ दूरी पर खड़े खम्भों को दौड़-दौड़कर छूने की, किसी खेल प्रतियोगिता को जीतने की कोशिश कर रहा हो।

गोबर्धन अब रोज डेढ़ बजे आने लगा, जब ढेला सज-सजाकर उसकी प्रतीक्षा कर रही होती। उसकी अम्मा के कान खड़े हो गए थे। ढेला के लक्षण उसे अच्छे नहीं लग रहे थे। उसने कई बार मना किया, मगर ढेला बेहद नाराज हो जाती। एक बार उसने कह दिया, "तुम्हें सब पैसे मिल ही जाते हैं, फिर बीच में क्यों टिन-फिन किए रहती हो। मैं तुम्हारी गुलाम नहीं हूँ। मेरा भी शरीर है। मन है। पूरा हिसाब करके देख लो, पैसे कम लगे तो बोलो।"

श्यामदासी सिटपिटा गई। सचमुच डेढ़ बजे से तीन बजे तक उसका समय था। वह गोबर्धन

के प्यार की गहराई में उतरती गई। उनके बीच ऐसी कोई चीज न रही, जो गोपनीय हो। शरीर सुख से भी आगे वे निकल गए थे, जैसे उनकी आत्माएँ एक-दूसरे का स्पर्श करने लगी थीं। जन्म-जन्म की प्यासी वह एक गहरे कुएँ के शीतल और मीठे अक्षय जल-भंडार से छक-छककर अपनी प्यास बुझाने की कोशिश कर रही थी, जो प्यास और भी बढ़ा देती। वह एक सहज, सच्चे पुरुष के साथ, जो गहकी से अधिक उसका मित्र और प्रेमी था, और उसका अपना पुरुष होने का अधिकारी भी, स्त्री और सिर्फ स्त्री होने की गरिमा के सच्चे अहसासों से गुजर रही थी, जिसे

दयाशंकर ने धूल-धूसरित कर दिया था।

वे मिलते। ढेला पहले नाराजगी से बोलती, "देर से क्यों आए?" अथवा कोई और बहाना। फिर बिना किसी बात पर उसे स्नेह से देखकर हँसने लगती। उसकी आँखों की चमक में तेज धार थी। वे जल्दी कोई और बात करने लगते और लूडो या ताश अथवा कैरम खेलने बैठ जाते। कभी-कभी बारी-बारी से तीनों ही खेल खेलते। ये एक-दूसरे पर झूठ-मूठ ही बेईमानी के आरोप लगाकर आपस में झगड़ने लगते। ढेला जल्दी ही थक या ऊबकर हाथ से ही खेल बिखराकर उसकी गोद में लेट जाती और अपनी बाँहें ऊपर करके और पीछे की ओर मोड़कर उसके मुँह को अपने मुँह पर झुका लेती। यो कुछ देर तक उसी अवस्था में चुप-चुप उच्छ्वासों की टकराहट में एक-दूसरे को महसूस करते। वे अकथनीय भावना में मूर्छित होकर आँखें मूँद लेते। गोबर्धन अपने कानों में मैंजीरे की हल्की, मीठी, टुनटुन की तरह उसकी दिल की धड़कनें सुनकर उसकी, एक औरत की, जो धरती की तरह ही एक औरत थी, आत्मा की सच्चाइयों का अनुभव करने लगता जो पुरुष की शक्ति-प्रेरणा और अमोल निधि है।

ढेला गोवर्धन की छाती पर उसकी धड़कनों से प्रतियोगिता करने लगती। उसे यह जानकर अचम्भा हुआ कि दोनों की धड़कनों के समय और तेजी में कोई फर्क नहीं है। वे एक ही साथ बजकर एकाकार हो गए थे। वह गोबर्धनमय हो जाती और धीरे से उसके कानों में कहती, "तुम बेवकूफ हो।" गोबर्धन उसके हाथ को अपनी मुँदी आँखों पर रखकर अपने प्यार-लिपटे मोटे-मोटे होंठों के बीच से बोलता, "तुम 'तुम' हो।"

"यह कैसे ? मैं अपनी माँ की हूँ, इस शहर के मदों की हूँ, उनके पैसों की हूँ, अपने पेशे की हूँ, अपने और अपने खानदान के पेट की हूँ।" ढेला शरारत से हँस रही थी।

गोबर्धन ने कोई जवाब नहीं दिया।

"चुप क्यों हो गए ? जवाब देना पड़ेगा।"

गोबर्धन कुछ सोचकर कंपित स्वर में बोला, "तुम सिर्फ 'तुम' हो और मैं

सिर्फ 'मैं'। तुम स्त्री हो, अपने होने की गरिमा से भरी। तुम स्वयं मूर्तिमान गरिमा हो। पाप-पुण्य की संकुचित परिभाषा से परे, तुम संवेदना, प्यार और शक्ति का स्रोत हो। मैं पुरुष हूँ, लम्बे और शक्तिशाली शरीर के बावजूद स्वयं में दुर्बल और चंचल हूँ। निर्मम हूँ, क्रूर हूँ। मेरे अन्दर न कोई प्रकाश है और न ही मेरा कोई प्रयोजन। मैं अधूरा हूँ और भटक रहा हूँ। मेरा कोई उद्देश्य नहीं है और न ही लक्ष्य। यह सब प्राप्त करने मैं तुम्हारे पास आया हूँ, जो तुम्हारे पास ही है, मेरे पास नहीं। बस, इसके आगे मुझे नहीं मालूम और तुम भी आगे न पूछो।"

इतना-सा कहने में ही वह हाँफ गया था। लेकिन ढेला पर इसकी दूसरी ही प्रतिक्रिया हुई। उसने गोबर्धन को अपने हाथों पर से परे ठेलकर उठा दिया और स्वयं उठकर दोनों टाँगें फैलाए और अपने हाथों को जमीन पर टिकाए स्थिर दृष्टि से उसके चेहरे को देखने लगी। उसकी आँखों में स्नेह, क्षोभ, नाराजगी कुछ भी नहीं था, बल्कि वे स्वयं कुछ सोचती और खोजती हुई नजर आईं। फिर, वह धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में बोली :

"गोबर्धन, मुझसे ऐसी बोली न बोलो। तुम्हारी ये बातें तुम्हारे लायक नहीं हैं। मैं खुद उनके

लायक नहीं हूँ। नहीं, नहीं, गोबर्धन, मैं वह नहीं हूँ जो तुम कह रहे हो..." वह रो पड़ी। गोबर्धन अवाक होकर उसे देखने लगा। वह सरककर उसके पास पहुँच गया और अँकवार में

उसे लेकर चुपकारते हुए बोला, "इस तरह न रोओ। मैंने तुम्हारे दिल दुखाने के लिए कुछ भी नहीं कहा। इनमें कुछ भी बनावटी नहीं है। मेरी सच्ची भावनाएँ हैं। मैं तुम्हारे बारे में दिन-रात सोचता हूँ। फिर भी, तुम एक अर्थ में सही हो। बड़ी-बड़ी बातें, बड़े-बड़े सिद्धान्त सिर्फ व्यवहार से ही सार्थक और सहज हो सकते हैं, जिसके बिना जीवन से ही रस खींचकर गढ़े हुए सिद्धान्त, जीवन से अलग होकर बौने और नाकाम हो जाते हैं। तुम्हारे बारे में सोचकर ऐसी बड़ी-बड़ी बातें कर सका हूँ, फिर भी मैं महसूस कर रहा

हूँ कि ये बात कहकर मैं तुमसे अलग हो गया, तुमसे ऊँचा होने के ढोंग का शिकार होकर। नहीं ढेला रानी लवंगलता, तुम उन बातों को भूल जाओ। मैं तुमसे किसी भी अर्थ में अलग नहीं हूँ, अलग नहीं रहना चाहता। तुम जो हो, उसी रूप में मुझे बहुत प्रिय हो।" वह झुककर ढेला के बालों, खारे आँसुओं से भरे उसके कपोलों और होंठों तथा उसके हाथ की उँगलियों को बार-बार चूमने लगा।

वे फिर आपस में सहज हो गए अपनी कई मूर्ख हरकतों के साथ। वे अब पंजे लड़ाते, माया से माथा सटाकर जोर आजमाइश करते, पीठ से पीठ सटाकर एक-दूसरे को विस्थापित करने की कोशिश करते। ग्रैविटी काटने का मजाक भी दोनों के बीच चल निकला। एक दिन गोबर्धन ने कहा:

"आज मैं तुम्हारे सभी ग्राहकों के नीचे से ग्रैविटी काट दूँगा। वे सभी आकाश में उड़ने लगेंगे, बड़ा मजा आएगा।"

बेतहाशा हँसने लगे वे। फिर ढोला बनावटी गम्भीरता से बोली, "साथ में क्या तुम नहीं उड़ोगे ?"

"हाँ, यह तो खयाल आया ही नहीं। लेकिन परेशानी की कोई बात नहीं, मैं तुमसे सिफारिश करूँगा, रोऊँगा, गिड़गिड़ाऊँगा।"

लूँगी।" "ठीक है, मैं तुम्हारी सिफारिश से पिघल जाऊँगी और तुम्हार ग्रैविटी जोड़कर तुम्हें वापस बुला

इन मजाकों पर वे बहुत खुश होते और चहकते। कभी गोबर्धन उसे प्राचीन लोककथाएँ सुनाता-राजकुमारों और राजकुमारियों की इन कहानियों में बुराई पर अच्छाई और असत्य पर सत्य की विजय होती। एक दिन ढेला ने उससे कहा:

"कोई किस्सा हम लोगों के बारे में सुनाओ।"

"क्या कहना चाहती हो ?"

"वेश्याओं के बारे में ।... अच्छा छोड़ो। तुम आम्रपाली गणिका के बारे में सुनाओगे, जो बुरी थीं, बाद में भली हो गई। किस्से तो मेरी नानी भी सुनाती थीं। हाँ, यह भला-बुरा क्या है, तुम मुझे बताओ, गोबर्धन।"

"यह न पूछो, ढेला। उस दिन तुमने पूछा था और जो कुछ मैंने बताया, उससे तुम नाराज हो गई। ये भी ऊँची और बड़ी बातें हैं, जो व्यवहार में उलट जाती हैं। किसी उपदेश की नीयत से ये किस्से मैं नहीं सुनाता। ये पुराने किस्से हैं, जिन्हें जानने में कोई बुराई नहीं है। सच बात यह है कि ये तुमसे बात करने और तुम तक पहुँचने के बहाने हैं। और अगर तुम इनका अर्थ जानना चाहती हो तो मेरा एक प्रस्ताव मंजूर कर लो। तुम मुझसे शादी करने को तैयार हो जाओ, मैं बहुत आदर और प्यार के साथ तुम्हें अपने घर ले चलूँगा।"

"नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ?" ढेला उसके आलिंगन से छिटककर उत्तेजित स्वर में बोली। गोबर्धन ने फिर उसे आलिंगन में खींचकर उसे समझाया। उससे बार-बार निवेदन किया। तब

सहमत होकर ढेला ने हँसते हुए कहा, "अच्छा ठीक है, लेकिन अभी रुफ़ जाओ।"

लेकिन कुछ दिनों बाद गोबर्धन से बेहद नाराज श्यामदासी के दबाव, अपनी परिस्थितियों की। मजबूरी, और वेश्या-जीवन की विडम्बनाओं से भयभीत होकर जब उसने गोवर्धन को: कर्तुं बातें सुनाकर अपने जीवन से सदा के लिए अलग कर दिया, तो उसका एक-एक शब्द भारी हथौड़े की चोट की तरह, उसी के हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर रहा था।

ये दिन तो बीत गए। ढेला कमरे में लेटी है और उसके सिरहाने उसकी अम्मा बैठी है। ढेला का मुँह सूखकर छोटा पड़ गया है और आँखों के नीचे

काले गड्ढे बन गए हैं। श्यामदासी उसके माथे पर हाथ रखकर रोती हुई कहती है:

"क्या हालत बना रखी है, मेरी बेटी। तुम्हें तो बुखार है। खाँसी रुकने का नाम नहीं ले रही है। चलो आज जंगली मियाँ हकीम के यहाँ ले चलती हूँ। तुम घबराओ नहीं, मैं तुम्हारा हर इलाज कराऊँगी। जो कुछ मेरे पास है, लगा दूँगी..."

"अम्मा," ढेला धीमी आवाज में हाँफती हुई बोली, "पता नहीं मुझे क्या हो गया है। छाती में हवा नहीं है अम्मा। मैं वही हवा-तूफान चाहती हूँ जो बचपन में मेरे अन्दर रहा है। मुझे यह तूफान दे दो, अम्मा। मुझसे क्यों वह बेरहमी से छीन लिया गया है..."

"तुम इतना न बोलो, बुखार बढ़ जाएगा। तुम्हारे तूफान का कारण जानती हूँ बेटी। वे मरे जब से तुम्हारे पास आए, तुम्हारी जिन्दगी में तूफान आया, नहीं सबकुछ चैन से बीत रहा था। ये नौजवान बड़े धोखेबाज हैं बिटिया। दिन में ये वतन की आजादी के लिए काम करते हैं और रात रंडी के घर में बिताते हैं। खुद मौज करते हैं और रंडी को उलटा-सीधा पढ़ाकर उसकी जिन्दगी और धन्धा चौपट करते हैं। फिर आजादी मिल गई तो रंडी-बेसवा को क्या मिलेगा ? तब तो मर्द और भी जुल्म करने को आजाद हो जाएँगे। तुम वतन की आजादी के लिए काम करना चाहती हो उन मरों के सिखाने से ! तुम बाहर निकलोगी तो मरे मर्द तुम्हें रंडी ही समझेंगे। तुम पर पूरी तरह नजर रखेंगे, मौका मिलने पर धोखा देंगे, बदफैली करेंगे। पुलिसवाले पकड़ेंगे तो तुम्हें रंडी समझकर मजाक करेंगे और तुम्हारे जिस्म के साथ खिलवाड़ करने का मौका ढूँढ़ेंगे। वह मरा शादी करना चाहता है ? जब काम निकल जाएगा और जवानी ढल जाएगी तो चबाए हुए पान की सिट्ठी की तरह तुमको बाहर थूक देगा। इन हरामजादों की चिन्ता तो करो मत, इन्होंने तो तुम्हें मार डाला, तुम्हारी यह हालत की है। मैं तुम्हें भली-चंगी खड़ी करूँगी...।"

"अम्मा, ऐसी बात न करो। इसमें किसी का दोष नहीं है। आजादी के लिए लोग काम कर रहे हैं तो करने दो, शायद कोई अच्छा नतीजा निकले। मैं

यह काम नहीं करना चाहती, अम्मा। मेरा शरीर अच्छा नहीं है, मैं जल्दी अच्छा होना चाहती हूँ, तुम मुझे अच्छा करा दो..."

वह हाँफकर चुप हो गई। सहसा उसकी छाती में दर्द हुआ तथा गले में खुजली-सी हुई और वह खाँसते-खाँसते बेहाल हो गई।

मा बाल एसएन आग थी देखें अगर & डे वन मोरी एन

7

रात के आठ बजे थे, जब गोबर्धन और नीलेश डॉक्टर रामहर्ष सिंह के मकान पर पहुँचे। दूसरी मंजिल के बड़े हवादार बरामदे में सत्संग हो रहा था। एक किनारे तेज गैस-बत्ती जल रही थी और फर्श पर दरी और जाजिम पर दाएँ और बाएँ पार्श्व में कुछ श्रोतागण बैठे थे, जिनमें दो विद्यार्थी भी थे।

बीच में एक मसनंद के आगे साठ-पैंसठ वर्ष के एक बुजुर्ग बैठे थे, जिनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछे चितकबरी थीं। उनके बाल उलटकर झाड़े हुए और पीछे कंधों तक लटके। पहनावे में खादी का सफेद कुर्ता और धोती। इसके अलावा कुछ साधु लायक नहीं था। उनके मुख पर चढ़बाँकपन और पांडित्य प्रदर्शन का भाव नहीं और निरमिभान तथा विनम्रता से आँखें झुकी हुईं। वस्तुतः वह एक कॉलेज के प्रिंसिपल रहे थे और समस्त कर्तव्य पूरा करने के पश्चात वृन्दावन में सपत्नीक निवास करते हुए अध्यात्म का जीवन व्यतीत कर रहे थे।

वहाँ जो चौहद-पन्द्रह भक्त बैठे हैं, उनमें कई धनी बनने और पुत्र-लाभ, शत्रु-विनाश, ग्रह-शान्ति आदि की सफलताओं के लिए उपाय जानने और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए पधारे हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो प्रतिदिन आते हैं और उनका प्रवचन सुनकर चले जाते हैं। गोबर्धन और नीलेश सीढ़ी के पास ही उनके दाएँ पार्श्व में बैठकर प्रवचन सुनने लगे।

स्वामी वीरेश्वरानन्द ने एक व्यापारी की समस्या का समाधान करते हुए बताया, "कोई ऐसा मन्त्र, पूजा-पाठ नहीं है, जो चमत्कार करके आपका धन बढ़ा दे। परिश्रम, बुद्धिमानी, सही पूँजी निवेश, धैर्य, संग्रह-वृत्ति की वजह से धन में वृद्धि होती है। लापरवाही, आलस्य और अपव्यय छोड़ दीजिए। रोज सच्चे मन आधा घंटा रामचरितमानस का पाठ कीजिए। इससे मन को शान्ति मिलेगी और बुद्धि खुलेगी। व्यापार का उद्देश्य मानव-कल्याण ही है। बेईमानी, लूट-खसोट और घटिया तरीके से किया गया धन्धा, व्यापार नहीं है।"

एक वकील साहब को राय दी, "सन्तान नहीं है तो परेशान न होइए। समझिए कि प्रभु को यही मंजूर है। किसी गरीब रिश्तेदार के बच्चे या अनाथालय के बच्चे को गोद ले लीजिए और उसे पढ़ा-लिखाकर लायक बनाइए। उसे अच्छे काम पर लगाइए। रोज रामचरितमानस का पाठ कीजिए और दीन-दुखियों और अपने पड़ोसियों से स्नेह रखिए।"

उन्होंने आगे कहा, कि किसी को भी ज्योतिषियों, भविष्यवक्ताओं और ग्रह शान्त करनेवालों के चक्कर में पड़कर समय नष्ट नहीं करना चाहिए। यह कर्म-संसार है, कर्म से कभी बचना नहीं चाहिए। कर्म से सन्तोष मिलता है, सफलता मिलती है, सत्य मिलता है। शारीरिक और मानसिक श्रम का योग सर्वोत्तम होता है। प्रभु में विश्वास रखिए, सबसे प्यार कीजिए, इससे विरोधी शक्तियाँ अनुकूल बनती हैं। कोई अलौकिक शक्ति थोड़े ही आती है कल्याण के लिए? प्रभु पर विश्वास रखने और कर्म करने से वह अलौकिक शक्ति आपके अन्दर ही उत्पन्न होती है। उस शक्ति को पहचानिए और विकसित कीजिए। पहले आप अपनी रुचि का काम निश्चित कीजिए, फिर उसको करने का सर्वोत्तम तरीका जानिए। इसी सन्दर्भ में, प्रशिक्षण का महत्त्व है। जैसे संगीत या किसी अन्य विषय के लिए जरूरत होती है। सीखने की यह ललक हमारे देश की सर्वोत्तम परम्पराओं में से है। शारीरिक और मानसिक रूप से मजबूत बनकर, मानव और प्रभु-प्रेम से अनुप्रेरित होकर परिश्रम, मनोयोग एवं सच्चाई से अपना काम कीजिए, कल्याण होगा।"

इसके बाद मन को एकाग्र रखने और उसको विकसित करने के लिए

स्वामीजी ने एक उपाय बताया :

"यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। अधैर्य बड़ी खराब चीज है, इससे सही काम भी बिगड़ जाता है। इसका परिणाम कुविचार और दुर्व्यवहार है। धैर्य सन्तुलन है, शक्ति है, आशा है, विश्वास है। वह दूरदृष्टि और बुद्धिमानी है। उससे आप पहले से ही भविष्य देख सकते हैं और उसके मुकाबले के लिए सही नियोजन और सही तैयारी कर सकते हैं। धैर्य से ही सही समय पर सही दृष्टिकोण से सही काम होता है। जो मैं बताने जा रहा हूँ उससे अधैर्य नष्ट होता है और मन की शक्ति की पहचान होती है। इससे संकल्प शक्ति बढ़ती है और जीवन-संघर्ष में भाग लेने की हिम्मत आती है।"

स्वामीजी बहुत धीरे-धीरे बोल रहे थे। उनके मुख पर कभी-कभी सहज आकर्षण मुस्कान निखर जाती। उन्होंने अपना कथन जारी किया:

"पहले तो आप स्वस्थ रहने की कोशिश कीजिए। नियम से रुचिकर और सुपाच्य भोजन कीजिए। नित्य सुबह-शाम खुली हवा में टहलिए और यथोचित हल्का व्यायाम कीजिए। कोई काम करने के लिए स्वस्थ मन जरूरी है और यह स्वस्थ शरीर से ही आता है। इसके बाद यह अभ्यास कीजिए नित्य। आप यह जानते हैं कि मन बड़ा चंचल है, वह दिन-रात निरन्तर दौड़ता रहता है। उसे कभी भी विश्राम नहीं मिलता, जब हम सोते हैं, तब भी वह दौड़ता रहता है। आप कल्पना कीजिए कि इतने सक्रिय और शक्तिमान मन को थोड़ा विश्राम मिल जाए तो उसकी शक्ति कितना बढ़ सकती है।

"आपको जब भी फुरसत मिले, दिन में एक बार खुले बरामदे या कमरे में फर्श या तख्त पर चित लेट जाइए आराम से। शरीर को ढीला छोड़ दीजिए, फिर धीरे-धीरे साँस लीजिए। फिर अपने ध्यान को अपनी साँस पर एकाग्र कीजिए कि कैसे यह भीतर जाती है और बाहर निकलती है। कुछ भी न सोचिए, हर विचार से दिमाग को खाली कर दीजिए और सिर्फ साँस के आवागमन पर ही ध्यान लगाइए। यह बड़ा कठिन है, लेकिन बार-बार प्रयास करने पर कुछ सफलता मिलती है। इस अभ्यास को बढ़ाइए

आधा मिनट से एक मिनट, फिर दो मिनट। जितनी देर आप इसमें सफल होंगे, उतनी ही देर आपके मन को विश्राम मिलेगा और आपको आत्मिक शक्ति प्राप्त होगी।"

श्रोतागण में से एक व्यक्ति की शंका का समाधान करते हुए बताया उन्होंने, "असन्तोष, लालच, झूठ, आडम्बर, ये सभी मनुष्य में गिरावट लाते हैं। इनका त्याग कर सरल बनिए, प्रभु में विश्वास रखिए, तभी उक्त अभ्यास कीजिए। इससे आपको महसूस होगा कि आप ईश्वर के निकट हैं। अपने काम के प्रति आपकी रुचि बढ़ेगी। परिश्रम करने में आपको आनन्द आएगा। नए-नए विचार सूझेंगे। जिन्दगी एक लड़ाई है और जिस तरह युद्ध में जीत के लिए सत्य विचार, शारीरिक और मानसिक शक्ति, बुद्धिमानी, सावधानी और नवीनतम तैयारियों की जरूरत होती है, उसी तरह जीवन की लड़ाई में भी इन बातों की आवश्यकता होती है और यह क्रिया आपकी तैयारी में काफी सहायक सिद्ध हो सकती है।"

स्वामी वीरेश्वरानन्द चुप हो गए। गोबर्धन और नीलेश उनको आश्चर्य, श्रद्धा से देख रहे थे। दूसरे लोग भी स्तब्ध थे। कुछ देर बाद एक विद्यार्थी ने खड़े होकर पूछा, "स्वामीजी, विद्यार्थियों के बारे में कुछ बताने की कृपा करें।"

उन्होंने मुस्कुराकर उत्तर दिया, "देखिए, भोजन के बारे में यह नियम है कि नित्य रुचिकर और सुपाच्य भोजन प्रसन्नतापूर्वक इस विश्वास के साथ करना चाहिए कि उससे शरीर और मन को ऊर्जा मिल रही है। पेट भर खाइए, हाँ, आधा या एक कौर की भूख रह जाए, तभी खाना बन्द कर दीजिए। इससे शरीर हल्का रहेगा और खाने की रुचि बनी रहेगी। यही नियम पढ़ाई पर भी लागू होता है। एक विद्यार्थी को नियम से खूब पढ़ाई करनी चाहिए, लेकिन पढ़ाई की थोड़ी रुचि रह जाए, तभी बन्द कर दीजिए। इससे दिमाग की नसों को आराम मिलेगा और अगले दिन भी पढ़ने की रुचि बनी रहेगी।"

सन्तुष्ट होकर विद्यार्थी चले गए। अन्य भक्तों में कुछ अन्य लोग पहले ही प्रस्थान कर गए थे और शेष भी उठ खड़े हुए। जब बाहरी लोगों में गोबर्धन और नीलेश बचे रह गए तो स्वामी ने सवालिया निगाह से उनकी तरफ

देखा। गोबर्धन ने शर्म-संकोच से, पहले उनकी ओर, फिर वहाँ बैठे उन दो व्यक्तियों की ओर नजर घुमाई, जो डॉ. रामहर्ष सिंह के परिवार के ही थे। स्वामीजी के संकेत पर वे फौरन उठकर भीतर चले गए। तब गोवर्धन ने आगे झुककर उनके हाथ में दो पन्नों का यह कागज दे दिया, जिस पर विस्तार से उसकी समस्याएँ लिखी थीं।

स्नेहपूर्वक देखते हुए मीठे स्वर में पूछा: स्वामीजी ने गम्भीर होकर कुछ देर तक उस कागज पर लिखी इबारत पढ़ने के बाद उसको

"राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के पावन मार्ग पर चलनेवाले नवयुवक ने कुमार्ग की ओर कदम कैसे बढ़ाए ?"

गोबर्धन ने पहले सकपकाकर देखा, किन्तु उनकी आँखों में कुछ ऐसा था कि वह कुछ भी छिपा न सका। कैसे प्रमुख मुनीम किशुनीलाल उसके पिताजी के अस्वास्थ्य और अगाध विश्वास का लाम उठाते हुए अश्लील किस्से सुनाकर, अश्लील पुस्तकें पढ़ाकर और ताड़ी-शराब का स्वाद सिखाकर उसे इशरतगंज ले जाने लगा। यह सब सुनकर स्वामीजी कुछ सोच में पड़ गए। फिर सिर उठाकर वह शान्त स्वर में बोले:

"आपके पिताजी को अच्छा व्यापार है और आप उनकी इकलौती सन्तान हैं। समझ लीजिए, इस व्यापार को सँभालकर आगे नहीं बढ़ाएँगे तो सबकुछ चौपट हो जाएगा। क्या आपने सुना है कि राजा का मन्त्री और वैद्य अयोग्य, चापलूस, बेईमान और धोखेबाज हुए तो जल्दी ही उस राजा और उसके राज्य का नाश हो जाता है ?"

"जी हाँ।"

"तो सबसे पहले आप अपने बेईमान मुनीम किशुनीलाल को फौरन हटा दीजिए और उसके स्थान पर किसी काबिल, अनुभवी, परिश्रमी, ईमानदार और भरोसेमन्द मुनीम को ले आइए। दूसरी बात यह है कि अपने काम को अच्छी तरह सीखिए, समझिए, उसमें जागरूकता और सावधानी से रुचि

लीजिए ताकि मुनीम या कोई अन्य आपको धोखा न दे सके। तीसरी बात यह है कि अपने खानदानी व्यापार की सड़ी-गली परम्पराओं को छोड़कर उसकी श्रेष्ठ परम्पराओं को आगे बढ़ाइए। साथ ही व्यापार की नई बातों और तरीकों को सीखकर, वर्तमान और भविष्य पर ध्यान देते हुए

इसका कुशलता से इस तरह संचालन कीजिए कि वह फूले-फले। एक बात और।" स्वामीजी ने चुप होकर उसकी ओर गौर से देखा। गोबर्धन शायद मतलब समझ गया, इसलिए तत्काल बोला, "जी हाँ।"

"हाँ, मैं यह कहना चाहता हूँ कि पुरानी बातों को भूल जाइए और किसी नेक, बुद्धिमान और गुणी लड़की से शादी करके सन्तुलित जीवन बिताइए। समझ लीजिए कि इस दुनिया में आदर्श गृहस्थ जीवन से बढ़कर कुछ भी नहीं है। इसी जीवन पर सन्तुलन, विकास और अध्यात्म, तीनों ही टिके हैं। ईश्वर पर विश्वास रखिए और नित्य सच्चे मन से उसका स्मरण कीजिए।"

गोबर्धन के हृदय में ऐसी उथल-पुथल मची हुई थी कि वह रुआँसा हो गया। बड़ी कठिनाई से वह अपने आँसुओं को रोके हुए था, जिसकी कोशिश में तनी गर्दन के साथ चेहरा बाईं ओर घूमा हुआ था। स्वामीजी ने उसकी भाव-दशा समझकर शान्त स्वर में कहा :

"दुनिया में क्या कोई ऐसा है, जो कह सके कि वह दोष-मुक्त है? गलतियाँ तो सभी करते हैं। इसकी वजह से अपने को छोटा महसूस करने की जरूरत नहीं है। गलतियों को समझकर उनको छोड़ना और उनसे सीखकर आगे बढ़ना ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति है। यौवन इस जीवन और समस्त सृष्टि के केन्द्र में स्थित है। बड़ा ही समर्थ काल है यह। इसी काल में नए-नए संकल्प उठते हैं, नए-नए सपने, नए-नए विचार। साहस, शक्ति, आत्म-बलिदान का काल। कौन-सी चुनौतियों का सामना नहीं करता है यौवन? यौवन के अनुभवों से ही ज्ञान प्राप्त होता है।

"प्रेम-मुहब्बत का समय है यौवन। काम-भावना तो हर स्त्री-पुरुष में है। देव, दानव, पशु, पक्षी कौन मुक्त है इससे ? इसी से यह सृष्टि है। यह

ऊर्जा है, शक्ति है-यह मानवीय है। इसके बिना मानव जीवन सम्भव नहीं है। इसी वजह से स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। मिलकर सुख, सन्तोष, शान्ति, आशा और विश्वास प्राप्त करते हैं। इस काम भावना का महत्त्व समझना

चाहिए और इसको जहाँ-तहाँ बरबाद करना आत्मविनाशक है। स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के प्रति सच्चा प्यार उनको आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक ले जाता है और उनमें सामाजिक कल्याण के प्रति समर्पण का भाव उत्पन्न करता है। इसी सन्दर्भ में चरित्र की उपयोगिता और कीमत है। सच्चा प्यार चरित्रहीनता नहीं है, परन्तु उसका नित्य फैशन और स्वाद बदलने की आदत अवश्य घृणित है। स्त्री हो या पुरुष, चरित्र को नष्ट करना अपनी मानवीय पहचान को नष्ट करना है।"

ऐसे विषय पर इस तरह बेबाक बातें गोवर्धन और नीलेश ने आज तक नहीं सुनी थीं। शर्म और संकोच से उनकी आँखें नीचे झुकी थीं। दिन में कितनी गर्मी थी, लेकिन इस समय हवा के शीतल झोंके बाहर से आ रहे थे, जिससे राहत महसूस हो रही थी।

स्वामीजी ने कहा, "हमारे अनेक ग्रन्थों में काम के लिए तिरस्कार के शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। उसे पतन और अधोगति के लिए जिम्मेदार और तपस्या को भंग करनेवाला बताया गया है। यह सत्य हो सकता है, यदि उसका दुरुपयोग किया जाता है। परन्तु काम-भावना को ही तिरस्कृत करना उचित नहीं है। अनेक प्राचीन कथाओं में पुरुषों की तपस्या भंग करने के लिए स्वर्ग से अप्सराएँ आती हैं। क्यों पुरुष ही तपस्या करते हैं और स्त्री उसे भंग करती है? क्या यह स्त्री का एक खास वस्तु के रूप में इस्तेमाल करना नहीं है? इसका मतलब है कि ऐसे समाज में स्त्रियाँ भोग-विलास और मनोरंजन की वस्तु के रूप में समझी जाती हैं और समाज के उत्थान में उनकी कोई भूमिका नहीं है।

"हमारे आज के गुलाम देश और समाज में पतित सामन्तों और रईसों,

आलसी और कामचोर लोगों, उद्देश्यहीन लफंगों और दुष्टों की सन्तुष्टि के लिए वेश्यावृत्ति कायम है। पेट के लिए असंख्य स्त्रियाँ जिस्म बेचने को मजबूर हैं। इसके लिए कौन जिम्मेदार है? एक तो गरीबी है ही, दूसरे पुरुष समाज का स्वार्थ। यह समाज स्त्रियों का सम्मान नहीं करता। खरीद-फरोख्त की वस्तु समझकर उन्हें शोषण का शिकार बनाता है। शायद आजादी मिलने पर स्त्रियों की उन्नति की परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी और उन्हें वह इज्जत मिलेगी, जैसी हजारों वर्ष पहले रही होगी।"

स्वामीजी की इन बातों का न मालूम कैसा प्रभाव गोबर्धन पर पड़ा कि पहले उसका मुँह लाल हुआ जैसे भीतर साँस रोकने की चेष्टा कर रहा हो; अन्ततः दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगा। स्वामीजी ने चकित होकर उसकी ओर देखा। कुछ देर तक देखते रहे, फिर प्यार से बोले :

"रोइए नहीं, रोने के लिए मैंने ये बातें नहीं कही हैं। मेरे पास अधिकतर सफल लोग और बड़ी सफलताएँ प्राप्त करने के लिए आते हैं। वे अपनी बहुत-सी बातें छिपाते हैं और साफ-साफ कुछ भी नहीं बताते। उन्हें तो फौरन सफलता चाहिए। आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने बहुत सच्चाई से अपनी निजी समस्या और संकट की बातें मेरे सामने रखीं। नौजवानी ऐसी उम्र है, जब लोग एक नौजवान को सन्देह से देखते हैं और उससे बड़ी ऊँची उम्मीदें करते हैं। इसलिए उन पर बड़े-बड़े प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। एक नौजवान को सहानुभूति चाहिए, प्रेम चाहिए, विश्वास चाहिए जिससे वह टूटने न पाए। आप हिम्मत रखिए, मैं कोई उपदेशक नहीं हूँ, बल्कि मुझे अपना मित्र ही समझिए । मैं यहाँ पर कुछ दिनों तक हूँ, परेशानी महसूस करने पर आप फिर मेरे पास आ सकते हैं। बाद में भी, यदि मेरा नाम और वृन्दावन लिखकर कोई पत्र भेजेंगे तो मुझे मिल जाएगा।"

"स्वामीजी, मुझे माफ कीजिए असभ्यता के लिए। मैं आपके बताए रास्ते पर चलने की कोशिश करूँगा।" गोबर्धन ने आँसुओं से भीगी लाल-लाल आँखों से देखते हुए हाथ जोड़कर कहा। वे दोनों उठ खड़े हुए और लड़खड़ाती चाल से कुछ कदम चलने के बाद सीढ़ी से नीचे उतरने

लगे।

8

रात के साढ़े दस बजे नीलेश घर पहुँचा। वह दक्षिणी बरामदे के पास आँगन में बिछी चारपाई पर बेजान-सा बैठ गया। सीतानाथ मन्दिर से आकर मसहरी-लगे बिस्तरे पर जा चुके हैं। कुछ दूसरे भाई-बहन आँगन में अन्य चारपाइयों पर लदे नींद की बेहोशी में उल्टे-सीधे, टेढ़े-तिरछे पड़े हैं।

वह हाँफ रहा है। शरीर पसीने से लथपथ। डॉक्टर की छत से नीचे उतरकर, कुछ दूर चलने के बाद ही गोबर्धन से बिदा लेकर वह काफी तेजी से घर की ओर चल पड़ा था। थकान का लक्षण उसके शिथिल चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

"खाना लाऊँ? कहाँ रह गए थे?" आनन्दी ने उसके पास आकर उत्सुकता से देखते हुए पूछा। "जरा हाथ-पैर धो लूँ। सभी सो गए होंगे।"

"बीरेश ऊपर अपनी कोठरी में लेटे पढ़ रहे हैं। तुम्हारी दादी भी दरवाजा, खिड़की बन्द कर

रही हैं।"

"ठीक है, खाना परोसो, आता हूँ।"

अनिच्छा होने पर भी उसने चुपचाप खाना खाया। फिर उठकर अपनी माँ से बोला, "जरा ऊपर

खुली छत पर टहलकर आता हूँ। बड़ी गर्मी है।"

"बड़ा अँधेरा है, कीड़ा-मकोड़ा..."

"जल्दी आ जाऊँगा..."

वह सीढ़ियाँ चढ़कर सबसे ऊपरवाली खुली छत पर पहुँच गया, जहाँ भीषण गर्मी और उमस होने पर भी कोई सोता नहीं था। परन्तु, जाड़े में धूप खाने के लिए अथवा घर में रिश्तेदारों की भीड़ होने पर एकान्त खोजनेवालों की पढ़ाई-लिखाई के लिए उसका जरूर इस्तेमाल किया जाता। वह पूरब की दिशा में नीची चहारदीवारी के किनारे चुपचाप खड़ा हो गया। चारों ओर फैले घने अन्धकार में पूरा शहर-उसकी आकृतियाँ और आवाजें डूब चुका था। वायु न मालूम किधर से आकर धीरे-धीरे चल रही थी जिससे शरीर में शीतल सुख की लहरें दौड़ गईं। किसी काली चादर पर टाँके गए सफेद फूलों की तरह तारे आकाश में चटक चमक-चमककर मुस्कुरा रहे थे।

कुछ देर बाद वह धीरे-धीरे टहलने लगा। उसे लग रहा था, जैसे लम्बे दुःस्वप्न से जागा हो। उसे पुनः भय, शर्म और आतंक की वे भावनाएँ अपने अन्दर महसूस होने लगीं, जिनसे वह गोबर्धन के घर में उसका किस्सा सुनकर तथा डॉक्टर रामहर्ष सिंह के यहाँ स्वामी वीरेश्वरानन्द के प्रवचन के दौरान बेहद परेशान हो उठा था। कल्पना भी नहीं कर सकता था कि गोबर्धन जैसे साहसी और सच्चे मित्र की कभी ऐसी दुर्गति होगी। लेकिन इसके साथ यह प्रश्न भी सताने लगा उसे कि गोबर्धन और उसमें क्या फर्क है और कितना ? यदि उसके पिताजी एक्का लेकर भड़सर न पहुँच गए होते तो उसकी क्या दशा होती? यौवन काल का यह कैसा संकट है, जिसमें वह और गोबर्धन दोनों ही फँस गए थे। यह तो बाल-बाल बच गया, लेकिन गोबर्धन तो मझधार में पहुँचकर लहरों के थपेड़े खाते हुए भँवर में फँसकर डूबने-उतराने लगा और यदि स्वामीजी ने हाथ बढ़ाकर खींच न लिया होता तो शायद डूब भी जाता।

उसने स्वामीजी की प्रवचन की बातें याद करने की कोशिश की। जब वह गोबर्धन को समझा रहे थे, कैसे वह स्वयं अपराध-भाव से गड़कर मानसिक अवसन्नता की स्थिति में पहुँच गया था ? इसके साथ अनेक खयाल, जो उसने पुस्तकों में पढ़े, दूसरों से सुने और अपने से समझे थे, गड्ड-मड्ड होकर उसके दिमाग में उमड़ने-घुमड़ने लगे थे। 'नहीं-नहीं,' वह होंठों में ही बुदबुदाया।

उसने दो-तीन बार गहरी साँसें लेकर अपने फेफड़ों में ताजी हवा भरी और तत्काल संकल्प कर लिया कि वह गोबर्धन नहीं हो सकता, उसका रास्ता नहीं अपना सकता, उससे दूर रहेगा-वैसे विचारों

से भी। और अपने जीवन को शारीरिक, मानसिक पवित्रता, मजबूती, निष्ठा एवं साहस के मार्ग पर डालकर किसी महान कृत्य को अन्जाम देगा।

उसके अन्दर उत्साह का तूफान चलने लगा। जैसे कोई कमजोर या फेलियर विद्यार्थी परीक्षा नजदीक आने पर परिश्रम करके पास होने की रंगीन कल्पना से उत्साहित होकर पढ़ाई की विस्तृत योजना बनाता है, उसी तरह वह नीचे उतरकर अपने कमरे में आ गया और कागज-कलम लेकर परिश्रमपूर्वक अपने भावी जीवन का दैनिक कार्यक्रम बनाने लगा। जब योजना बन गई तो उसकी खुशी का अन्त नहीं था। वह छाती निकालकर पिंजड़े में बन्द शेर की तरह टहलने लगा।

योजना के अनुसार अगले दिन वह सवेरे चार बजे ही जाग गया। जागते ही बैठ गया। आँखें बन्द करके सच्चे मन से ईश्वर का स्मरण किया। फिर हाथ-मुँह धोकर टहलने के लिए रेल पटरी के किनारे-किनारे निकल गया। एक मील की दूरी में टहलकर वापस घर लौट आया। फिर बाहरी कमरे के एकान्त में पचास दंड और पचास बैठक करने लगा। फिर स्वामीजी के निर्देशानुसार जमीन पर चित लेटकर, अपने दिमाग को हर विचारों से शून्य करके ध्यान श्वास के आवागमन पर एकाग्र करने लगा।

सचमुच यह बहुत कठिन क्रिया थी, लगभग असम्भव ही। पगहा तुड़ाकर भागते बछड़े की तरह मन कुलाँचे मारने लगा। क्षणों में ही न मालूम कहाँ-कहाँ पहुँच गया। एक स्वामीजी की दाढ़ी की ओर चला गया, लेकिन शरीर और चेहरा गायब। फिर पता नहीं कैसे वह करीब दस वर्ष पहले, जब वह आठ दस वर्ष का था, कम्पनी गार्डन में पहुँचकर उस खूब नाटे, पतले और बूढ़े पादरी पर हँसने लगा, जो ढीले-ढाले पैंट में अपने पैरों को पंजे के विपरीत दिशाओं में करके चल रहा था। वह पुनः बछड़े को पगहे से

पकड़ कर लाता और खूँटे में बाँधने की कोशिश करता, लेकिन इस बार फिर तुड़ाकर उसके पिता के स्थानीय गवैया मित्र सुद्दीलाल के पास पहुँच गया जो आकाश में उड़ते हुए 'आ-आ-आ' आलाप कर रहे थे। अनेक बार ऐसा हुआ, मगर उसका मन जीवन के जाने-अनजाने, सम्बद्ध-असम्बद्ध दृश्यों के टूटे-फूटे हिस्सों में विचरण करने लगता। बार-बार कोशिशों के बाद जब उसे प्रथम सफलता मिली तो वह इतना थक चुका था कि उसी से सन्तुष्ट होकर उठ खड़ा हुआ इस संकल्प के साथ कि अगले दिन वह इस अभ्यास के समय को और बढ़ाएगा।

स्नान के बाद उसने आनन्दी से कहा, "आज से मैं हल्का-फुल्का खाना खाया करूँगा। अब मिर्च-मसाला, हलवा-पूड़ी, पूआ-मालपूआ, चाट-पकौड़े कुछ भी नहीं। गाढ़ी, लदकुआ रसेदार सब्जी भी नहीं। सवेरे नाश्ते में कोई हल्की चीज, दोपहर में रोटी, दाल-भात और सादी भुजिया-सब्जी। रात में नमक नहीं, सिर्फ दूध में केला और दो रोटियाँ सानकर।"

आनन्दी कुछ न समझकर उसे आँखें फाड़कर देखती रह गई। पास में बैठी उसकी दादी जीरादेई ने पूछा, "कौन दुःखे ए बाबू यह सब खाओगे? पेट के रोगी हो, बूढ़-पुरनिया हो या साधू-फादू ? इससे तो देह गिर जाएगी। कम खाओगे तो आँतें सिकुड़ जाएँगी। मरद-मानुष को दौड़-धूप करनी होती है, दुनिया से लड़ना पड़ता है, उसे तो रूखा-सूखा, तर-चिकना जो कुछ मिले, खूब हबककर भकोस-भकोसकर खाना चाहिए। उसे यह शोभा देता है। कहा भी गया है, बड़ा कौर बड़ा दौर।"

"नहीं दादी, यह गलत खयाल है। देखिए न, पहलवान लोग खूब खाते हैं, लेकिन कुछ समय बाद पेट के रोगी बन जाते हैं।"

"अरे, छोड़ो पहलवानों की बात। वे घंटों दंड-बैठक, जोर-कुश्ती करते हैं, फिर न मालूम क्या-क्या पेट के अन्दर उड़ेल-ठूस लेते हैं और गैंडे की तरह पड़े रहते हैं। न ठीक से चल पाते हैं, न ठीक से उठ-बैठ सकते हैं। न घूमना-टहलना, न बाजार-हाट न दफ्तर-कचहरी। मैं पहलवानों की तरह खाने के लिए थोड़े ही कह रही हूँ। घर में जो भी बने, पसन्द से खाओ। मकई, सावाँ-कोदो का भात बनता है वह भी खाओ, पूड़ी-सुहारी बनती है

वह भी। यह मत सोचो फलानी चीज फायदा

करेगी, फलानी चीज नुकसान। हर चीज खाने से हर तरह का रस बनता है और जी-मन खुश रहता है। हमारे घर में अंड-खंड चीज तो बनती ही नहीं।"

"हाँ अम्माजी, फल-मूल, रूखा-सूखा तो साधू-सधुक्कड़ खाते हैं। दिन-भर बैठे रहते हैं, कोई काम नहीं, कोई चिन्ता नहीं। जोरू न जाँता..." आनन्दी ने नीलेश की ओर तिरछी दृटि से देखते हुए कहा।

"बाबूजी भी तो सवेरे-शाम नाश्ता में बहुत हल्का लेते हैं। खाना भी हल्का ही खाते हैं।" नीलेश ने तर्क दिया।

"बाबूजी और तुम्हारी उमिर में बहुत फर्क है। ए बाबू, उनका तो खूब खाया-पीया शरीर है। उन्होंने जवानी में जो खाया है, शौक किया है, वह कोई क्या करेगा? इस उमिर में भी वह शरीर की लापरवाही नहीं करते। पूड़ी-कचौड़ी, साग-सत्तू जो भी सामने रख दिया जाता है, बड़े प्रेम से खा लेते हैं। दोनों जून दूध लेते हैं, गर्मी में जब तक आम मिलता है, शाम-सवेरे दो-दो लँगड़ा आम जरूर लेते हैं। यह सब पचाने के लिए शरीर की मेहनत करते हैं इस उमिर में। हर काम प्रेम से करते हैं। तुम्हारा शरीर खूराक-गिजा माँगता है, खाना से बचोगे तो भूख मर जाएगी, फिर शरीर पनपेगा कैसे ?"

नीलेश समझ गया कि खाद्य के सम्बन्ध में जीरादेवी के पास अनुभवों का अक्षय भंडार है, इसलिए इस विषय पर किसी बातचीत या बहस में उनसे जीत नहीं सकता। अन्त में यह कहकर कि अभी तो यह चलेगा, बाद में देखा जाएगा, फौरन उठकर वहाँ से चला गया।

घरवालों की चिन्ता और उदासी के बीच उसका दैनिक कार्यक्रम चल निकला।

पहले दिन नाश्ते में जब उसने थोड़ा-सा चिउड़ा और गुड़ खाकर पानी पीया तो सभी लोग बारी-बारी से आकर उसे चकित दृष्टि से देख गए। सीतानाथ के कानों तक यह बात पहुँची न थी, परन्तु बाद में मालूम भी हुआ तो कुछ देर तक चुप रहकर आनन्दी से बोले, "कर लेने दो अपनीवाली, देखें कब तक करते हैं..."

हल्का नाश्ता करने का उद्देश्य यह था कि भोजन के समय तक खूब भूख लग आएगी। और दोपहर में भी कुछ सही अन्दाज न होने से एक क्या कई कौर भूख रह जाने पर ही वह खाना बन्द करके उठ गया। और रात को भी योजनानुसार एक कटोरे दूध में दो रोटियाँ और दो केले मसलकर खा लिया। उसने भोजन का यह तरीका प्राकृतिक चिकित्सा की एक पुस्तक में पढ़ा था, जिसके अनुसार यह सम्पूर्ण खाना तो है ही, नमक-मिर्च, तेल-धी न होने से उदर विकार से दूर रखकर सात्विक विचारों को भी बढ़ाता है। स्वाद भी अच्छा लगा उसे तथा और ग्रहण करने की इच्छा भी थी, परन्तु अपने कार्यक्रम के महान उद्देश्यों का खयाल आते ही उसने संयम से काम लेने का ही निश्चय किया।

इस कार्यक्रम के साथ दिन बीतने लगे। वह सन्तुष्ट था। सादा भोजन करने से जब शरीर हल्का-हल्का महसूस होने लगा, तो यह सोचकर प्रसन्न हो जाता कि वह शारीरिक और मानसिक रूप से पवित्र और मजबूत हो रहा है। शाम को टहलते हुए वह दूर किसी एकान्त जगह में निकल जाता और वहाँ की साफ हवा अपने अन्दर तक गहराई से भरता। उसके अन्दर कोई आवाज उठती, 'आगे बढ़ो, आगे बढ़ो...'

इन्हीं पवित्र विचारों एवं संकल्पों के साथ वह कई बार गंगा के किनारे पहुँचा। वह देर तक खड़ा रहता और गंगा के जल को निहारता। धीरे-धीरे बहती लहरियाँ जब चमक उठतीं तो उसके हृदय में कोई रोशनी कौंध उठती। उसका मन गंगा की पवित्रता, उसकी रजत गतिशीलता और सुखद शीतलता में डूबने-उतराने लगता। धीरे-धीरे शाम का धुँधलका गाढ़ा होते-होते रात में बदल जाता, जिसमें तरंगित गंगा-प्रवाह का क्षीण आभास उसकी महान मंजिल की रहस्यमयता का परिचय करा

देता। फिर वह आशा से भरा हुआ तेज कदमों से वापस लौट जाता।

परन्तु मित्रों तथा परिवारजनों से वह कट गया। बातचीत, हँसी-मजाक और गाने-गुनगुनाने में अपने को भूलने की आदत उसने छोड़ दी, परिणामस्वरूप कोई भी ठोस मददगार न होने पर गम्भीर संकल्पों का समस्त दायित्व उसका दिमाग वहन करने लगा। पता नहीं कहाँ से अजीब-अजीब विचार और सपने आकर किसी बवंडर के तिनकों, पत्तों और धूल-धक्कड़ की तरह उड़ने लगते। कभी-कभी तो 'पवित्रता' शब्द ही देर तक चक्कर काटता रहता। पुस्तक अखबार पढ़ते, यहाँ तक कि किसी से संक्षिप्त बात करते समय भी, कोई अललटप्पू विचार उसकी एकाग्रता को दूर उड़ा ले जाता। इसी वजह से दोपहर में लाख कोशिश करने पर भी नींद नहीं आती और रात में भी बेहद उखड़ी-उखड़ी रहती। कभी वह महात्मा बुद्ध की तरह मानव-कल्याण के लिए घर-परिवार छोड़कर बाहर निकल पड़ता और कभी स्वामी विवेकानन्द की तरह विदेशों में धर्म-संस्कृति का ध्वज फहराने लगता। वह कभी देश की आजादी के लिए क्रान्तिकारियों के समान फाँसी का फन्दा चूमता होता।

कुछ ही दिनों में विचारों का वेग इतना तेज और सघन हो गया कि उस पर नियन्त्रण रखना काफी कठिन हो गया, जिसके लिए वह और व्यायाम और परहेज करने लगा, जिससे कठिनाइयाँ और बढ़ गई। उसने तो सिर्फ विचारों और भावनाओं की पवित्रता ही चाही थी और मन के विश्राम से दृढ़ संकल्प-शान्ति, परन्तु उसके बदले में मिल रही है मानसिक अव्यवस्था ठीक आकाश की तरह, जिसमें असंख्य जान-अनजान, दृश्य-अदृश्य छोटे-बड़े पिंड, कण आदि तेजी से चक्कर काटते रहते हैं, जिनको वश में रखना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।

एक दिन वह संध्याकाल में गंगा के किनारे बैठा हुआ था कि ठीक स्लेटी जल के ठीक ऊपर किसी हाथ की उँगलियाँ काँपती नजर आने लगीं। वह अविश्वसनीय ढंग से आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। उँगलियाँ गायब हो गई और उनके स्थान पर एक खूबसूरत नाक दिखाई देने लगी, जो रुदन

से लाल हो गई थी। उसके बाद भय और क्रोध से सिकुड़ी आँखें, फिर वक्ष और तब पूरा शरीर... वह घबरा गया। यह तो नम्रता है।

'नहीं, नहीं, यह नम्रता नहीं हो सकती,' वह होंठों में बुदबुदाया। यहाँ नम्रता का क्या काम ? इधर कभी भी वह उसके ख्यालों में नहीं आई। वह तो पहले ही उसे स्मृति से बाहर निकाल चुका है। जब वह दृढ़ संकल्पों के साथ आगे बढ़कर दुनिया में कोई बड़ा काम करना चाहता है-ऐसे समय में नम्रता का क्या प्रयोजन ? क्यों दिखाई पड़ी वह ? यह क्या कोई अपशकुन है ? इस खयाल ने उसे डरा दिया और वह उठकर तेजी से लौट पड़ा।

लेकिन, जितना ही वह तेज चलता, उतनी ही तेजी से नम्रता भी उसके पीछे-पीछे आ रही है, ऐसा उसे महसूस होने लगा। कई बार उसने पीछे चौंककर देखा, तब कुछ भी दिखाई न देता। यह सहसा दौड़ने लगा। क्या नम्रता भी हँसती हुई दौड़ रही है? वह रुक गया और एक जगह विपरीत दिशा में खड़ा होकर गहरी-गहरी साँसें लेने लगा। नम्रता सामने नहीं थी। फिर वह घूमकर आगे बढ़ा तो उसे नम्रता के पीछे-पीछे आने की आहट सुनाई पड़ी। कभी-कभी तो वह आँखों के सामने झलक दिखाकर गायब हो जाती। वह परेशान होकर वहीं दंड-बैठक करने लगा। इससे उसका ध्यान बटा और नम्रता ख्याल से गायब हो गई। परन्तु ज्यों ही वह कसरत बन्द करके आगे बढ़ा उसका मुखड़ा दिखाई पड़ा, जैसे बादलों से चन्द्रमा निकला आता है।

यह सब क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? किस बात के लिए यह कठोर दंड उसे मिल रहा है ? वह करुण भाव से ईश्वर की याद करने लगा। उसने अपने को क्षीर सागर में लेटे भगवान विष्णु के चरणों में झुका हुआ पाया, लेकिन वह उस समय दहशत में काँप गया, जब उस स्थान पर नम्रता को लेटकर मुस्कुराते हुए पाया।

वह फिर दौड़ा। इस तरह दौड़ते और चलते, सरयू नदी को पार करके जब वह शहर की सड़कों

पर आया तो उसे अचम्भा हुआ। यहाँ छोटे-बड़े मकानों तथा झोंपड़ियों से बाहर आती लालटेनों और ढिबरियों की पीली-पीली रोशनी की कतारें देखकर उसे कुछ ढाढ़स हुआ। आगे चलने पर चौक स्थित बजाजे की तीन मशहूर दुकानों की गैस बत्तियाँ दूर से ही चमकती नजर आई। वह खुश हो गया। अब विचारों से घिरा उसका दिमाग अकेला नहीं है, बल्कि उसका ध्यान बटाने के लिए ठोस दुनिया है-अनेक दुकानें और खोमचेवाले हैं, उत्साह से इधर-उधर लपककर जाती लोगों की भीड़ है, बातचीत, गप्पें और हा-हा-ही-ही है। अब उसके खयालों में नम्रता दूर-दूर तक नहीं है।

घर पहुँचने पर आनन्दी ने चिन्ता से पूछा, "कहाँ गए थे भैया ? हमेशा क्या सोचते रहते हो ? हँसते हो, न बोलते हो। भाई-बहन सभी उदास रहते हैं।"

न आई। "क्यों? मैं तो पहले की तरह खुश रहता हूँ।" नीलेश के मुख पर एक सूखी मुस्कुराहट उभर

वीरेश, सुरेश, धीरेश, उमेश, रमेश, सभी भाई उसके पास आकर खड़े हो गए। वे कभी उसकी ओर अनजान आशंका और कभी उत्सुकता से देखते। सुरेश ने मुस्कुराते हुए कहा, "बड़े भइया, मैं अलगे वर्ष अपनी कक्षा में फर्स्ट आना चाहता हूँ, अभी से खूब पढ़ रहा हूँ। गणित का एक सवाल नहीं आ रहा है, बताएँगे ?"

"लाओ न, वीरेश से नहीं पूछा ?"

"नहीं भैया, मुझसे एक बार भी नहीं कहा।" वीरेश ने अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा। सुरेश सिर झुकाकर व्यस्ततापूर्वक तेजी से भीतर गया और कुछ देर बाद गणित की पुस्तक, कॉपी और कलम के साथ लौट आया। वह बीज गणित का कोई समीकरण था, जिसे नीलेश ने अच्छी तरह समझाया और कॉपी पर हल करके दिखा भी दिया।

"बड़े भैया, मैं रोज आपसे ही गणित पदूँगा।" सुरेश ने खुश होकर कहा।

"पढ़ते क्यों नहीं ? मैं कहाँ मना करता हूँ ?"

नीलेश ने हँसते हुए यह बात कही थी, जिससे सभी भाई मुस्कुराकर टेढ़ी दृष्टि से उसे देखने लगे। आनन्दी तो इतनी उत्साहित हुई कि आगे बढ़कर उसने टेढ़ा सिर करके काँपती आवाज में पूछा, "ए बाबू, मूंगदाल-भरी पूड़ी, आलू-परवल की रसेदार सब्जी और खीर बनी है, लाऊँ परोस के ?"

नीलेश ने किंचित तटस्थ और सुस्त दृष्टि से अपनी माँ को देखा, फिर सहज चैतन्य होकर उठते हुए बोला, "अरे नहीं, मैं तो वही खाऊँगा, दूध, केला, रोटी।"

भोजन के बाद जब वह सोने के लिए बिस्तरे पर लेटा तो नींद तो उसकी उड़ी हुई थी, परन्तु यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि कुछ ही देर सुरेश को पढ़ाने और बातचीत करने से उसके दिमाग को बड़ा आराम मिला था। वह देर तक बैठकर उन लोगों के साथ बात करना चाहता था, हँसना चाहता था, लेकिन बड़ी निर्ममता से अपनी इच्छाओं का दमन करके वहाँ से उठ आया था। खीर और दाल-भरी पूड़ी उसे कितनी पसन्द थी !

वह फिर अनोखे विचारों से घिर गया। और शीघ्र ही अपनी मानसिक शक्ति और पवित्रता के प्रति पुनः संकल्पबद्ध एवं समर्पित होकर कुछ ऊँची-ऊँची कल्पनाओं में खो गया, जिनके बीच सहसा उसने यह देखा कि वह आकाश में उड़कर सफेद बादलों के बीच में पहुँच जाता है, जहाँ नम्रता मिल जाती है, जिसके आगे बढ़े हुए हाथ को वह थाम लेता है। वे दोनों साथ-साथ उड़ रहे हैं। इसके बाद वह दृश्य परिवर्तित हो जाता है और वह अपने आँगन में चारपाई पर नम्रता के साथ बैठा है, और आकाश में मटमैले बादल तेजी से पूर्व दिशा की ओर उड़ रहे हैं। कभी वह बादलों और कभी अपने घर-आँगन को देखता है और उसे लगता है, यह मकान, जिसके आँगन में चारपाई पर वह और नम्रता खुश-खुश बैठे हैं, पंश्चिम दिशा में किसी रहस्यलोक की तरह उड़ रहा है, उसी तरह जैसे

दौड़ती ट्रेन में बैठे मुसाफिर को बाहर के वृक्ष वगैरह विपरीत दिशा में जाते

हुए महसूस होते हैं।

अचानक उसकी ऊँघ टूट गई। यह फटी-फटी आँखों से कमरे की छत को देखने लगा। पहले तो उसे कुछ भी नहीं समझ में आया। फिर हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और कमरे में टहलने लगा। चारों ओर मच्छर भन-भन कर रहे थे। पसीने से यह लथपथ था। देर तक टहलने के बाद, मन सुस्थिर होने पर, वह पुनः लेटकर सोने की कोशिश करने लगा, जिसमें नाकामयाब होने पर श्वास के आवागमन पर ध्यान लगाने लगा। ऐसा भी न होने पर मन को जीवन की कुछ बीती हुई घटनाओं की तरफ मोड़ने लगा। पहले उसने नैनीताल के ऊपर 'चाइनापीक' पर वृक्ष की शाखाओं पर लगे मधुमक्खियों के छत्तों के सम्बन्ध में सोचा। तत्पश्चात अपने गाँव में एक छोटे गड्ढे के किनारे पास-पास रहने और अक्सर आपस में लड़नेवाले पट्टीदार भाइयों कुंजन और गौरी तथा उनकी चिचियाती लुगाइयों की ओर मन दौड़ाया। मगर हर दृश्य नम्रता में बदल जाता है।

वह बेहद दुःखी हो गया। क्या नम्रता ने खयाल का हर स्थान घेर रखा है? अपने को कहाँ ले जाए यह ? वह अचानक दहशत और दुःख-भरी एक दुर्घटना की याद करने लगा। कैसा मनहूस दिन था यह ! वे खेल रहे थे एक बड़े अहाते में, जब भयंकर भूकम्प आया था। वे भागे। पाँव ठीक से जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। क्योंकि वह डोल रही थी, और उसके अन्दर से अजीब डरावनी आवाजें निकल रही थीं। उसी समय एक गली के खंडहर की अकेली दीवार वीरेश के ऊपर गिर पड़ी थी। दीवार की ईंटें हटाने पर जब वीरेश का कुचला हुआ सिर दिखाई दिया तो किस तरह सीतानाथ को गश आ गया और घर की औरतों का रोना-पीटना शुरू हुआ। इस समय भी वह दुःखी हो गया और उसकी आँखें भर आईं, परन्तु अश्रु-बूँदों के बीच से उसे, काल्पनिक दीवार-ईटों पर अब नम्रता बैठी मुस्कुरा रही थी।

वह बेहद हताश और निराश हो गया। इतना दुःखी वह कभी नहीं रहा था। उसके समूचे शरीर में यन्त्रणा हो रही थी, पोर-पोर में पीड़ा। पता नहीं कब से उसका दिमाग थककर चूर हो गया था। लगा कि दिमाग की नसें फट जाएँगी। वह क्यों नरक का कष्ट पा रहा है? किसी बड़े सुख की कामना कहाँ थी उसे ? क्या वह कोई स्वर्ग चाहता था ? वह तो एक साधारण

कार्यक्रम पर चलना चाहता था ताकि आगे बड़ा व्यक्ति बनकर देश और समाज के लिए कुछ कर सके। लेकिन महान संकल्पोंवाले उसके कार्यक्रम को ध्वस्त करने के लिए बार-बार सामने आ रही हैं नम्रता की आँखें, उसकी विविध मनोरम मुद्राएँ-कभी मुस्कुराहट, कभी हँसी, कभी क्षोभ, कभी क्रोध में तनी भृकुटी। यह सब क्या है ? ऐसी जिन्दगी लेकर वह क्या करेगा, जिसमें उसकी सोची हुई कोई भी बात नहीं हो पा रही है, और उसका पवित्र संकल्प पछाड़ खाकर खंड-खंड बिखर जाता है। नहीं, ऐसी जिन्दगी वह समाप्त कर लेगा।

हाँ, जब वह जीवन समाप्त कर लेगा तो उसका रोज-रोज का दुःख भी नहीं रहेगा। उसके सम्बद्ध-असम्बद्ध, टुकड़े-टुकड़े ख्यालों का भीषण बवंडर उसके अस्तित्व के साथ ही मिट जाएगा। ऐसा सोचते ही, पता नहीं कहाँ से उसके अन्दर इत्मीनान की खुशी का एक झरना फूटने लगा जिसके शीतल जल में सभी परेशानियाँ डूबने लगीं। उसकी नस-नस में जो दर्द समाया हुआ था, वह धीरे-धीरे बाहर निकलने लगा, उस पर सुस्ती छाने लगी, पलकें भारी और मोटी हो गई और शीघ्र ही नींद के आगोश में चला गया, समस्त चिन्ताओं से बहुत दूर।

सवेरे वह देर तक सोता रहा और जब चारों ओर तेज धूप निकल आई और गर्मी महसूस होने लगी तो उसकी नींद खुली। इस बीच उसकी माँ कई बार कमरे में आकर उसे आश्चर्य और चिन्ता से देख चुकी थी। क्या बात है, इस समय तक वह तो व्यायाम आदि करके गुसलखाने में नहाने चला जाता था। कहीं बीमार तो नहीं ?

वह बहुत सुस्त था। शरीर भारी-भारी लग रहा था, वैसे कोई दर्द या तनाव नहीं था। धीरे-धीरे

सभी बातें याद आने लगीं। उसने चींककर बाहर देखा। आगे सहन में कितनी तेज और चटक धूप थी, धरती अभी से आवाँ बनने लगी थी। लेकिन अब उसे दुनिया की किसी चीज और उसके क्रिया-कलाप से क्या

मतलब? उसके होंठों पर एक बहुत ही क्षीण, सूखी मुस्कुराहट हरकत में आई और वह उठ खड़ा हुआ।

जब वह नहाकर आया तो आनन्दी प्यार से गिड़गिड़ाती हुई आवाज में बोली, "ए बाबू, दूध में चिउड़ा डालकर ले आऊँ ?"

"नहीं अम्मा, खाने की जरा भी इच्छा नहीं है।"

"न खाने-पीने से इच्छा मर गई है ए बाबू। दूध-चिउड़ा तो हल्की चीज है।" जीरादेवी ने कहा।

कुछ देर में आनन्दी बड़े कटोरे में दूध-चिउड़ा लेकर आई। नीलेश खाने लगा। खाते हुए वह सोच रहा था, आज का दिन उसके जीवन का आखिरी दिन है और कल वह अपनी जिन्दगी का अन्त कर इस दुनिया से विदा ले लेगा। अब उसे न किसी विशेष कार्यक्रम से मतलब है और न ही विशेष खान-पान से ही। कसरत, ध्यान किसी से भी नहीं।

जीरादेवी ने खुश होकर कहा, "ए बाबू, आज रसोई में जो कुछ बना है, खूब पसन्द से खाओ। आज सोमवती अमावस्या है, शिवालय में कीर्तन है। घर के सभी लोग खाना खाकर जाएँगे, जल्दी लौट आएँगे। तुम भी चलो, पूजा-पाठ से कोई भय-ताप नहीं सताता...।"

9

नीलेश सुस्त स्वर में बोला, "सबके लौट आने पर मन्दिर जाऊँगा।"

मृत्यु जिसका संकल्प एवं मुक्ति हो, ऐसे ही व्यक्ति की स्थिति नीलेश की हो गई, जो संसार की हर चीज से उदासीन होकर एक अँधेरी निश्चिन्तता में प्रवेश करते हुए सामने जो कुछ भी उपलब्ध होता है, उसी में बाकी दिन अपना ध्यान रमाता है।

नहाकर वह गुसलखाने से निकला। उसने अब तय कर लिया था कि अगला सोमवार उसके जीवन का अन्तिम दिवस होगा। उसके मुख पर

एक शहीदाना मुस्कुराहट थी। भोजन के समय उसने हर चीज परोसने की अनुमति देकर परिवारजनों को आश्चर्य में डाल दिया, फिर तो शीघ्र ही उसके सामने एक चमचमाती थाली में घी में छानी गई पूड़ियाँ, मिर्च-मसाला की कड़वी शोरवेदार सब्जी, पूए, ठेकुए, दही, मिर्चा का अचार, बूँदी के लड्डू आदि खाद्य पदार्थ आ गए। खाने में उसने कोई कंजूसी नहीं की और अन्त में जब हाथ धोकर उठा तो पेट हँडिया की तरह फूल आया था और शरीर भरे हुए बोरे की तरह भारी।

सबका खाना समाप्त होने पर मन्दिर जाने की तैयारी होने लगी। उन्हें सीतानाथ के कचहरी से लौटने के पूर्व ही आ जाना भी था। नीलेश में आए बदलाव को देखकर सभी विशेष रूप से प्रसन्न थे और वे एक-दूसरे को देखकर बार-बार नाक सुड़क रहे थे। जब वे चले गए तो नीलेश ने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और अपने कमरे में जाकर चारपाई पर पड़ रहा। पता नहीं कब वह गर्मी और पसीने के नीचे नींद में खरटि भरने लगा।

करीब चार बजे वे मन्दिर से लौट आए। नीलेश ने हड़बड़ाहट में उठकर दरवाजा खोला, बाहर से गर्म हवा का एक झोंका आया।

"बाप रे..." शैलजा सबसे पहले अन्दर घुसी।

नीलेश पसीने से नहाया हुआ था। धूप और लू में आने से सभी के चेहरे तमतमाए हुए थे। वे बारी-बारी से पानी ढारकर पीने लगे। जीरादेवी ने नीलेश से कहартаи॑

"ए बेटा, तुम भी दरसन कर आते, बड़ी रौनक हो रही है। पुन्न-महातम का दिन है।"

"अभी जाऊँगा, दादी।"

"कुछ खा-पी लो।"

"बहुत खा लिया है, एक गिलास पानी पीऊँगा।"

उसने गुलसखाने में जाकर फिर नहाया। तत्पश्चात कपड़े बदलकर निकल गया। मन्दिर जाने में उसका कोई उद्देश्य नहीं था। बस, घरवालों ने कहा था और वह जा रहा था। सड़क पर आते ही उसका ध्यान पेड़ पर बैठे एक कौए पर गया। वह देर तक कौए को देखता रहा और उसके मुँह पर एक मुस्कुराहट उभर आई।

साढ़े चार से अधिक हो रहा था। धूप अब भी चटक थी और हवा गर्म। कुछ दूर ही चला होगा कि उसे राजनाथ यादव मिला जो उसका सहपाठी और आजकल बेसब्री से हाईस्कूल परीक्षाफल का इन्तजार कर रहा था। वह दाएँ और बाएँ पृथ्वी को हिलाने की कोशिश करता हुआ तेजी से चल रहा था, लेकिन उसे देखकर पास आ गया।

"रेजल्ट कब आ रहा है ?"

"जब आ जाए," नीलेश का स्वर उदासीन था।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"ऐसे ही, कोई खास नहीं।"

"आजकल इतने सुस्त क्यों हो रहे हो, नीलेश ? सबसे कटे-कटे रहते हो। न किसी से मिलना-जुलना, न ही किसी से बोलना-बतियाना। तबीयत तो ठीक है न?"

"ठीक है..." नीलेश के मुख पर पुनः पहले जैसी शहीदाना मुस्कुराहट आ गई थी।

"खुश रहा करो, यार! ऐसी भी क्या मनहूसियत। देश और समाज को भूल गए, तुम नवीं कक्षा में कितने उत्साह से अन्ताक्षरी में भाग लेते थे। सभी स्कूलों में गोवर्धन, नफीस, दयाशंकर और तुम्हारी कितनी चर्चा होती थी।

अच्छा ठीक है, मैं कल दस बजे दिन में तुम्हारे पास आऊँगा, इस समय मैं काम से जा रहा हूँ। हाँ, एक जगह ले चलूँगा तुम्हें।"

"ठीक है..." नीलेश आगे बढ़ गया।

मालगोदाम के सामनेवाली कंकड़ों की पक्की सड़क सीधी सरयू तट तक चली जाती थी। और तहसीली स्कूल और जापलिनगंज वाले मोड़ के आगे उसकी एक शाखा फूटकर बाईं ओर मन्दिर की ओर बढ़ गई थी। मन्दिर तो आखिर मन्दिर है, फिर भी कोई मन्दिर बड़ा लोकप्रिय होता है, बाजार में किसी खूब चलती दुकान की तरह। कुछ वर्ष पूर्व यह एक गरीब मन्दिर था, लेकिन जब से सीतानाथ नियमित रूप से कीर्तन करने लगे हैं, इसकी शोहरत बढ़कर जनपद के गाँवों तक पहुँच गई है, यहाँ तक कि विशेष पर्वों पर अब पुलिस की व्यवस्था भी करनी पड़ती है।

सीतानाथ के अगाध विश्वास का अन्दाजा उस घटना से लगाया जा सकता है, जो वह स्वयं दूसरों को सुनाया करते हैं। "भैया, मेरे शरीर में ऊपर से नीचे तक बड़े-बड़े कच्चे फोड़ों की तरह न मालूम क्या निकल आया था। डॉक्टर, वैद्य और हकीम की न मालूम कितने घड़े दवाइयाँ पी गया, पर कोई फायदा नहीं। अब देखिए क्या होता है-एक रात मैंने सपना देखा, कोई कह रहा था, 'फौरन जाओ, बालेश्वरजी के मन्दिर में जाकर शंकर भगवान की सेवा करो। रोज नंगे पैर कुएँ से पानी भरकर मन्दिर की सफाई करो, शिवजी को नहलाओ, उनकी स्तुति, पूजा-अर्चना करो। इस जिले की जनता भगवान शंकर की उपेक्षा कर रही है, यह ठीक नहीं है।' खैर, मैं अगले दिन शाम को कचहरी से आने के बाद मन्दिर पहुँच गया। तब से मेरी सेवा जारी है। एक दिन का भी नागा नहीं हुआ। उन्हीं की कृपा से कुछ ही दिनों बाद फोड़ा-वोड़ा भी सव..." उन्होंने चिटुकी बजाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया।

इस सम्बन्ध में उमानाथ तथा अन्य लोगों का दूसरा ही कथन है। फोड़ों की वजह से सीतानाथ का चेहरा इतना खराब लगता था कि पट्टीदारों ने उसे

कोढ़ के रूप में प्रचारित कर दिया। उमानाथ ने कई बार उनसे आग्रह किया था कि वे पटना या कलकत्ता चलकर इसका निदान करा लें। पर वह कचहरी और शहर छोड़कर जाना ही नहीं चाहते थे।

हुआ यह कि जिन दिनों सीतानाथ ने मन्दिर जाना शुरू किया, उमानाथ नौकरी से आकर बैठ गए कि जब तक वह पटना जाने के लिए तैयार न होंगे, यह कहीं नहीं जाएँगे, चाहे नौकरी ही क्यों न छूट जाए। सीतानाथ बड़े भाई होने के नाते सदा उमानाथ पर अपनी तानाशाही चलाते रहते थे, परन्तु इस बार तो उमानाथ ही तानाशाह बन गए।

पटना मेडिकल कॉलेज में पूरी जाँच का कोई नतीजा न निकलने पर एक मशहूर प्राइवेट डॉक्टर को दिखाया गया। डॉक्टर शरण ने उनके किसी भी कच्चे फोड़े के खून-मवाद की जाँच का आदेश दिया, जिसके बाद निदान हुआ यह कि त्वचा का कालाजार है, जिसकी दवा भी एक ही है। और उसका कोर्स लेने के बाद वे फोड़े भूसे की तरह उड़ गए। लेकिन सीतानाथ का अब भी पहले जैसा ही विश्वास है। वह कहते हैं:

"भैया, सब शंकर भगवान की कृपा है, यह ठीक है कि उमानाथजी मेरे छोटे भाई हैं, मेरी बड़ी कद्र करते हैं। वह मुझसे पन्द्रह साल छोटे और मेरे लड़के के समान हैं। जब उन्होंने जिद्द ठान ली तो क्या मैं उनके साथ न जाता ? लेकिन, भाई, पटना और दवा तो एक बहाना है-असल बात तो यह है कि प्रभु चाहते थे कि उमानाथजी यहाँ आकर जिद ठान लें और मैं उनके साथ पटना जाऊँ। अगर वह न चाहते तो एक-से-एक बढ़कर डॉक्टरों वाले मेडिकल कॉलेज की जाँच क्या नाकामयाब होती और हम डॉ. शरण के यहाँ पहुँच जाते? मेडिकल कॉलेज से सीधे घर न लौट आते ?"

इसमें सन्देह नहीं कि इस छोटे-से कस्बे और गाँव की जनता सीतानाथ के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ है। इस मन्दिर के पुजारीजी, जो पहले मुश्किल से दोनों जून का भोजन जुटा पाते थे, अब दिन-पर-दिन सम्पन्न होकर उनसे इतने प्रसन्न रहते हैं कि शाम-सवेरे किसी भी बातचीत में उनकी याद करके उन्हें ढेरों आशीर्वाद देते हैं। दूसरे जिन लोगों का रो-रोआँ सीतानाथ

को आशीर्वाद देता था, वे भिखमंगे हैं, जो छोटे-बड़े धार्मिक एवं स्नान पर्वों के अवसर पर न मालूम कहाँ-कहाँ से इकट्ठे हो जाते हैं। ऐसे आयोजनों में भक्तों और भिखमंगों में गहरा रिश्ता होता है और वे एक-दूसरे को बेहद पसन्द करते हैं। वैसे भी, सम्पन्न भक्तजनों की पवित्रता एवं उच्चता के सन्तोष और गरीब तथा बेकारों की खाद्य-समस्या के समाधान का यह बड़ा ही कारगर तरीका है।

नीलेश ने जब मोड़ के पहले ही सड़क के दोनों किनारों पर भिखमंगों की कतारें देखीं तो उसकी आँखें फैली-की-फैली रह गईं। भक्तजनों की भीड़ स्त्री-पुरुष व बच्चे गंगा या सरयू में स्नान कर पानी-भरे लोटे लिए आती थी और पूजा-अर्चना के बाद लौटते हुए भिखमंगों के गन्दे एल्युमिनियम-कटोरों, छिपुलियों, आगे बिछाए गन्दे बोरों या कपड़ों पर चिउड़ा या तिलवा-तिलकुट की भुरुकनी, लाई-चना, पाई (बारह पाई का एक आना), पैसा (चार पैसा का एक आना), देबुआ (ताँबे का नेपाली पैसा शकरपाड़े के आकार का) आदि फेंकते जाते। तड़के सबेरे से शाम तक यह भीड़ जमी रहती और पात्र भरने पर उन्हें खाली करके फिर रख दिया जाता। जहाँ सम्भव था, शिफ्ट भी बदल जाती थी और दोपहर बाद एक परिवार के दूसरे चेहरे दिखाई देने लगते।

नीलेश के मुख पर सिर्फ कौतुक का भाव था और होंठों पर प्यारी-सी अनजान मुस्कुराहट। उसे लगा कि पहली बार ही वह उन्हें देख रहा है। आगे एक जगह सड़क पर ही कुछ देर रुक गया। भीड़ का रेला कम हो गया था और कुछ भिखमंगे कतार के पीछे जाकर कबड्डी खेलने लगे थे। उनमें कुछ बच्चे, तीन-चार नौजवान और अधेड़ उम्र का एक लँगड़ा व्यक्ति था, जिसके माथे पर टीका भी था। लँगड़ा ही कबड्डी पढ़ाते हुए आगे बढ़ा :

"चल कबड्डी आल-ताल,

मर गए बिहारीलाल, जिनकी मूँछें लाल लाल लाल..."

इसके बाद दूसरी ओर से एक काला, नाटा नौजवान पढ़ाते हुए आया :

यह कहते हुए वह काफी अन्दर घुस गया और किसी को छूकर भागा, लेकिन उसकी साँस बीच में ही टूट गई। फिर दोनों टीमों के बीच बेईमानी को लेकर चीख-चिल्लाहट मचने लगी, जिसमें एक छोकरे की तेज आवाज सुनाई दे रही थी, 'ए पंडितवा, लंगड़ा कहीं का, बेइमंटी करता है'। उसके जवाब में लँगड़ा भिखमंगा भी उसकी जाति का नाम लेकर उसे गालियाँ दे रहा था, पर उसकी आवाज साफ नहीं थी। इसके बाद ही भक्तों का एक रेला आया और वे चुप होकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए।

नीलेश आगे बढ़ गया। ऐसा ही होता था बीच-बीच में। जब भीड़ कम हो जाती तो लड़के और लड़कियाँ कतार के आगे या पीछे खेलने लगते अथवा कुछ भिखमंगिनें एक-दूसरे की ओर हाथ बढ़ाकर और मटक-मटककर लड़ने-झगड़ने लगतीं। यह युद्ध जोर-जोर से दयनीय आवाज में चिल्लाकर किसी भक्त से अधिक दान ले लेने या किसी को उसकी महत्त्वपूर्ण जगह से विस्थापित कर देने अथवा मनोरंजन के उद्देश्य से ही आरम्भ हो जाता। उसे यह गौर करके बड़ा आनन्द आया कि उन भिखमंगों की बोली मिली-जुली लेकिन यहाँ के सामान्य लोगों की भाषा से कुछ अलग हटकर थी। अक्सर नेटुओं और नेटुआइनों की तरह, जो साधारण बात चिल्लाकर ही बोलते हैं। उनकी बोली में गाली-गलौज था ही, अनेक अक्षर जीभों और तालुओं के बीच में दबकर गायब हो जाते थे और कुछ शब्दों के अन्त में आवाज की टेढ़ी-तिरछी लकीरें भी बन जाती थीं जैसे 'ए माई' की जगह पर 'ए माईयऽऽ', 'ए मलकाइन' की जगह 'ए मलिकइनिऽयाँ' और 'अरे साला' की जगह पर 'अए साआ' सुनाई देता था।

मन्दिर के कुछ पहले ही भिखमंगों की कतारें खत्म हो गई। उसके बाद एक कतार में माली बड़ी-बड़ी टोकरियों में फूलमाला लेकर बैठे ही विनम्र श्रद्धा से व्यस्ततापूर्वक भक्तजनों को पत्तों में लपेटकर सामान दिए जा रहे थे। उनकी बगल में हलवाइयों की दो दुकानें थीं। एक देशी घी की और दूसरी तेल की। दोनों ही दुकानों पर लाल-लालं जिलेबियाँ, इमरतियाँ और पूड़ियाँ छन रही थीं। तेल वाली मिठाइयाँ कुछ अधिक ही लाल थीं। इसके अलावा मोतीचूर के लड्डू, कलाकन्द, बालूशाही और अकबरी पहले से ही

बनाकर रखी हुई थीं।

अनेक लोग सपरिवार आए थे और सबेरे से थककर चूर-चूर हो गए थे। उन्हें खूब भूख लगी थी और वे पूजा-अर्चना के बाद पूड़ियाँ-मिठाइयाँ मुँह का लार घोटते हुए तौलवा रहे थे। देशी घी वाले हलवाई के सिर पर पगड़ी बँधी थी और दूसरा टेढ़ी दोपल्ली टोपी पहने हुए था। उनके चेहरों पर कोई भाव नहीं था, बस मुँह पर मुस्कुराहट की एक-एक छोटी, टेढ़ी और स्थिर लकीर खींच दी गई थी, जिन्हें देखकर किसी कुम्हार द्वारा निर्मित मिट्टी की मूर्तियों का स्मरण हो जाता था। अथवा किसी रंगमंच पर विशेष परिधान और मुखौटे पहनाकर उनसे विशेष अभिनय कराया जा रहा हो। उसे हँसी आने लगी। लेकिन अपने संकल्प की याद कर यह दूसरी ओर मुँह करके अपने को नियन्त्रित करने का प्रयास करने लगा।

इसके अलावा चारों ओर अनेक खोमचेवाले बिखरे थे, जो सेव-दालमोठ, चुरमुरे, दालपट्टी, लकठे, गट्टे, पपड़ी, बुढ़िया के बाल, रामदाना के लड्डू, गुलाब के लड्डू, बर्फ-मलाई, आलू-भरी छोटी-छोटी कचौड़ियाँ, घुघनी, फुलौड़ी, दहीबड़े, खेसिया, पापड़ आदि बेच रहे थे। इन्हीं के साथ तितैया की तरह सीटी, पिपिहरी, गुब्बारे, धनुष-बाण, लट्टू, घिरनियाँ, छोटे-छोटे बिगुल और ढोलक

तथा अन्य खिलौने बेचनेवाले अन्दर-बाहर, टेढ़े-तिरछे घूम रहे थे।

नीलेश सबको ध्यानपूर्वक देखता हुआ मन्दिर के अन्दर प्रवेश कर गया, जिसका पीछे का गलीवाला दरवाजा भी खोल दिया गया था। मन्दिर का बड़ा अहाता रंग-बिरंगी पोशाकों, उम्र और चेहरों के नर-नारी और बच्चों से भरा था। चारों और एक शोर उठ रहा था परिचित-सा। मन्दिर के अन्दर कहीं भजन गायक, रामायणी और कीर्तनिया लोग हारमोनियम, ढोलक, झाल, मैंजीरा और करताल के साथ रामायण पाठ कर रहे थे। वे चौपाई की एक-एक पंक्ति 'अरे रामा' से शुरू करके 'रामा हो रामा' पर समाप्त करते थे।

पराई... रामा हो रामा।" "अरे रामा, कौशल्या जब बोलन जाई... रामा हो रामा, अरे रामाऽ, ठुमुकि-ठुमुकि प्रभु चलहिं

धूप सहन से हटकर मन्दिर और वृक्षों के शिखर पर पहुँच गई थी। चारों ओर सीढ़ियों के नीचे जूते, चप्पल, स्लीपर और चमरीधे छितरे हुए थे, जिन्हें उतारकर लोग मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चना कर रहे थे।

इतनी भीड़ देखकर नीलेश की इच्छा हुई कि लौट चले, फिर कुछ देर के अनिश्चय के बाद पक्के कुएँ के वृत्ताकार चबूतरे के एक किनारे नीचे पाँव लटकाकर बैठ गया। कुएँ के आस-पास कम भीड़ थी। कुएँ की गड़ारी पर लिपटी एक लम्बी डोर से एक हल्की बाल्टी बँधी थी, जो प्यासे लोगों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हो रही थी।

धूप कुछ-कुछ भँवराने लगी थी, जिससे ताप में कुछ कमी आ गई। नीलेश चारों ओर मुँह घुमा-घुमाकर लोगों को देखने लगा। सबसे आश्चर्य उसे इस बात से हुआ कि वहाँ पुरुषों से अधिक स्त्रियों और बच्चों की भीड़ थी। यह शायद सच है कि माया, ममता, आस्था, आदर्श और धर्म इस देश में स्त्रियों की वजह से कायम है, लेकिन ऐसे आयोजन की और भी उपयोगिता थी उनके लिए। चौबीसों घंटे परदे में चौका-चूल्हा, सफाई-दफाई, शिशुपालन तथा घर-गृहस्थी के अन्य गम्भीर तथा उबाऊ कार्यों में व्यस्त वे अपनी घुटन की जिन्दगी से कुछ देर की मुक्ति यहीं आकर पाती हैं।

वे खुली हवा में साँस लेती हैं, दुनिया को आँखें फाड़-फाड़कर देखती हैं। शौक से चाट और मिठाई खाती-पीती हैं। अनेक पूर्व-परिचित तथा नव-परिचित स्त्रियों से लगातार हटर-हटर बातें करके अपनी कुंठाएँ दूर करती हैं। ऐसे में हर तरह की चर्चाएँ होती हैं, निन्दा और प्रशंसा होती हैं, पुरानी दुश्मनी दूर होती है और कई बार तो शादियाँ भी तय हो जाती हैं। नीलेश ने देखा कि मन्दिर के बाहरी खुले चबूतरे पर अनेक समूहों में बैठी वे एक-दूसरे की ओर झुक झुककर कैसे बेतहाशा बातें किए जा रही थीं।

न चाहते हुए भी अजीब-अजीब खयाल आ रहे थे उसके दिमाग में। वह

कुएँ की गच पर बैठा एक-एक नर और नारी को जो उसके सामने पड़ रहे थे, गौर से, घूर घूर कर देख रहा था, जैसे वह उनको पहचानता हो या पहचानने की कोशिश कर रहा हो। प्रत्येक में उसे अनोखापन नजर आता और तब भी महसूस होता कि कि इनमें से हर को कहीं-न-कहीं देखा है। उसे लगा कि उसके अन्दर उन व्यक्तियों की सहजता, श्रद्धा, आस्था और कर्मठता भर गई हो।

सहसा उसका ध्यान सामने मन्दिर के भीतर वृत्ताकार गलियारे की ओर चला गया, जहाँ श्रद्धालु बाहर से शिवलिंग की परिक्रमा करके घंटे बजा रहे थे। भीड़ के अचानक खैखरा हो जाने पर उसके सामने एक मुटल्ले भक्त का दृश्य दिखाई पड़ा, जो महीन धोती, रेशमी कुर्ता, गले में जंजीर, कलाई में घड़ी और अँगुलियों में कई अँगूठियों पहने था। उसने बाहर से ही भगवान शिवलिंग की ओर मुँह करके कुछ बुदबुदाकर स्तुति-प्रार्थना की, दोनों कानों के पास अँगूठे रखकर गाल बजाए, जोर से 'जय शिवशंकर, काँटा लगे न कंकर' कहा और दो-तीन बार हाथ उठाकर घंटा बजाया। इस समस्त पूजाकार्य के दौरान वह गर्दन मोड़कर अपनी बड़ी-बड़ी आगे उलटी आँखों से निकट खड़ी एक

नव-विवाहिता अपूर्व सुन्दरी को देख लेता था, जैसे किसी दावत में कोई निहायत सभ्य और शरीफ व्यक्ति सामने सज्जित खाद्य पदार्थों को ललचाई दृष्टि से निहार लेता हो। ऐसी दुर्लभ मुद्रा नीलेश ने कभी देखी नहीं थी और उस पर हँसी की सुरूहरी चढ़ गई।

दूसरा दृश्य और भी आकर्षक था। करीब पच्चीस वर्ष का एक दुबला-पतला नौजवान, जो तांजेब का कुर्ता और लट्ठे का पायजामा पहने था और जिसके बाल उलटे झाड़े गए थे, मन्दिर के बाहरी, खुले चबूतरे के एक किनारे सबसे अलग खड़ा था और वहीं से एक निहायत मौलिक तरीके से कुछ ही दूरी पर अपने परिवारजनों के पास कुछ हटकर खड़ी खूबसूरत लड़की को रिझाने की कोशिश कर रहा था। यह देर से लड़की को देख रहा था, पर उसकी दृष्टि लड़की के चेहरे पर नहीं थी बल्कि उसके पार्श्व से

कान के किनारे को स्पर्श करती हुई आगे चली गई थी, जैसे कोई दूसरी ही वस्तु दिलचस्पी से देखी जा रही हो। इस कठिन तपस्या में इस इच्छा की लपलपाहट थी कि वह जवान लड़की उसके अद्भुत और शानदार व्यक्तित्य का दर्शन करने का पूरा अवसर भी प्राप्त कर ले और उसका गूढ़ मन्तव्य भी समझ ले। उसे किसी बगुले या छिपकली की भ्रमोत्पादक एकाग्रता की याद आई और वह बेतहाशा हँसने लगा।

अचानक कुएँ पर किसी की पदचाप सुनकर वह होश में आया। सीढ़ियाँ चढ़कर कोई ऊपर आया था। उसने सिर घुमाकर देखा और उसे लगा कि अचानक तेज चमक के साथ कोई बिजली उस पर आ गिरी हो। उसका चेहरा काला पड़ गया था और वह कुछ क्षणों तक होश-हवास खोया बैठा रह गया। कुछ सँभलकर जब उसने फिर देखा तो नम्रता कुएँ में बाल्टी डालने की तैयारी कर रही थी। वह कुछ सोचे या वहाँ से चला जाए, इसके पूर्व ही उसके मुँह से आवाज फूट पड़ी :

"रुक जाओ..."

सलवार-कुरता और दुपट्टे में सज्जित नम्रता का बाल्टी पर झुका सुसन्तुलित चेहरा कुछ आरक्त हो गया और उसके होंठों पर एक अनजान, शिष्ट मुस्कुराहट काँपने लगी, जैसे बिना देखे ही वह नीलेश को देख रही हो। अन्त में धीरे से बोली :

"मैं भर लूँगी, गाँव में कई बार भर चुकी हूँ।"

"नहीं, मैं आता हूँ..." अपनी चप्पलें नीचे गिराकर वह फुर्ती से ऊपर चढ़कर उसके पास पहुँच गया। नम्रता सीधी खड़ी हो गई। वह कुछ सकपकाई, शायद अनिश्चित भय का कोई भाव उसके चेहरे पर दौड़ गया, परन्तु नीलेश ने उसकी ओर देखा भी नहीं। उसने डोर में बँधी बाल्टी उठाकर, पैर सँभालते हुए कुएँ में गिरा दी और नीचे गुड़-गुड़ की आवाज होने पर उसे ऊपर खींचकर गच पर रख दी।

"कैसे ले जाओगी? कोई बर्तन ?"

नम्रता के चेहरे का रंग अब बदल गया था। वह अनोखी आभा से चमक रहा था। वह अपनी बड़ी-बड़ी, खूबसूरत आँखें खोलकर प्रफुल्लित आश्चर्य भाव से उसे देख रही थी।

"मैं बाल्टी पहुँचा दूँ। डोर खोलकर पहुँचा दूँगा..." नीलेश ने एक ही क्षण उसको देखा था लेकिन दीपावली के दीयों की तरह वह भीतर से जगमगा गया था। उसके बाद उसके मुँह से जो वाणी निकली थी, उसमें कोई दम नहीं था और उसे वह बहुत ही भौंडी भी लगी।

"नहीं, नहीं, मैं बर्तन ले आती हूँ..." यह कहकर वह तेजी से कुएँ की सीढ़ी से उतरकर मन्दिर की ओर चली गई। अनिच्छा के बावजूद यह उधर देखता ही रह गया। एक लम्हे की चमक में उसे बरसाती शाम की वह मामूली-सी दुबली-पतली लड़की दिखाई देने लगी, जिसकी आकाश की तरह फैली आँखों और खूबसूरती से सिकुड़े होंठों ने उसके अन्दर अलौकिकता एवं लौकिकता की अनोखी अनुभूति जगा दी थी।

नम्रता जल्दी ही आई और फुर्ती से एक बड़े जग में बाल्टी का पानी उड़ेलने लगी। उसकी दृष्टि

नम्रता की झुकी हुई पीठ से होती हुई उसके पाँवों पर पड़ी। छोटे-छोटे, कोमल, साफ-सुथरे और खूबसूरत पाँव। उसकी आँखों में पता नहीं कहाँ से आँसू आ गए। उसे महसूस हुआ कि वह हया में उड़ा जा रहा है। उसके अन्दर दिव्यता, पवित्रता और बादलों की निष्कलंक सफेदी भर रही है। तभी वह बाल्टी का आधा पानी जग में लेकर बिना कुछ कहे यहाँ से चिड़िया की तरह फुर्र हो गई। यह होश में आकर अपने को धिक्कारने लगा। 'नहीं, नहीं, यह सब क्षणिक है,' यह होंठों में ही बुदबुदाया। संकल्प उसका अटल है। आखिरी है यह सब !

कुछ देर बाद जब वह आई तो उसके हाथ में वही जग था, जो खाली हो चुका था। नीलेश अब भी वहीं खड़ा था और उसके चेहरे पर स्याही-सी पुती थी। नम्रता ने उसको आश्चर्य से फैली आँखों से देखा जैसे उसकी

भावनाओं को भाँप रही हो। सहसा नीलेश कैसी करुणा और दुःख से भर गया और उसके मुँह से आवाज निकली, जैसे कुएँ या खाई में से बोल रहा हो :

"नम्रता..." उसका स्वर टूट गया। नम्रता भीग-सी गई। उसके मुख पर कुछ मृदुल रेखाएँ उभर आईं। फिर भी वह कुछ बोल न

सकी और नीलेश के मुख को एकटक निहारने लगी। "मैं तुम्हारा अपराधी हूँ... बहुत दिनों से तुमसे माफी माँगना चाहता हूँ..."

नम्नता अपना शरीर तिरछा करके दूसरी ओर देखती हुई भर्राए हुए स्वर में बोली, "किसलिए ?" "तुम्हारे दिल को चोट..."

"नहीं, नहीं," नम्रता ने दो बार सिर हिलाया। तत्पश्चात वह होंठों को भींचकर अपने को सँभालने की कोशिश करने लगी, जिससे उसके हाथों की मुट्ठियाँ बँध गई, चेहरा हल्का लाल हो गया और होंठ काँपने लगे। नीलेश ने अवाक होकर देखा कि उसकी आँखों में दो बड़े-बड़े आँसू अटके हुए हैं, फूल की पंखुरियों पर ओस बूँदों की तरह।

वह उसकी बातों का अर्थ ढूँढ़ने लगा। लेकिन जिधर गया, उसे शून्य मिला। वह उस शून्य में डूबने-उतराने लगा और उसे महसूस हुआ कि उसके फेफड़े में बहुत कम हवा बची है और वह ऐसी चीज के लिए तड़फड़ा रहा है, जिसके बारे में स्वयं उसे पता नहीं कि क्या चीज है !

नम्रता फिर झुककर जग में पानी भरने लगी थी। इस बीच उसने अपनी आँखें भी पोंछ ली थीं। जब वह खड़ी हुई तो उसके चेहरे पर हर्ष या विषाद का कोई चिह्न नहीं था।

"शायद और भी पानी की जरूरत पड़े," वह बोली, "अम्मा को कारों की सुदामा मामी और बोहारन नानी मिल गई हैं। उन लोगों के साथ कई छोटे बच्चे हैं। शहर में ही रहती हैं, कई महीने बाद मिली हैं।"

वह मुस्कराई और झट जग लेकर नीचे उतर गई। वह ठगा-ठगा-सा उसे

देखता रह गया। उसकी चाल में कोई कृत्रिमता और जल्दीबाजी नहीं थी। एक सहज, स्वाभाविक, निःशब्द और आकर्षक चाल। उसे लगा, जैसे कोई खूबसूरत ख्वाब देख रहा हो।

तभी उसे पानी का ख्याल आया। उसने फिर खाली बाल्टी कुएँ में डालकर पानी खींचने के

बाद मन्दिर की ओर देखा और सचमुच नम्रता आ रही थी। धूप डूब गई थी और ऊपर चारों ओर उसकी दमक ही शेष थी।

"आपने ठीक समझा। वहाँ पानी देखकर और लोगों को भी प्यास लग गई है," पहले वह मुस्कराई, फिर गम्भीर होकर अजीब तरह से सिर झुकाकर खड़ी हो गई।

"कुछ कहना चाहती हो ?" बिना कुछ सोचे-समझे ही नीलेश के मुँह से आवाज निकली। उत्तर देने में नम्रता से कुछ क्षणों का विलम्ब हो गया। फिर वह मुस्कुराने की चेष्टा करती हुई बोली, "मैं बहुत खुश हूँ।" "क्यों ?"

"दिन में आपके यहाँ से सभी लोग आए थे। उनसे मेरी माँ बहुत प्रेम से मिलीं। बड़ी देर तक बातें होती रहीं। मैं तो वहाँ से टल गई थी, लेकिन जब आई तो चाचीजी ने मुझसे कहा, तुमने आना-जाना क्यों छोड़ दिया। आया-जाया करो, जैसे आती थी।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? जब वे लोग चले गए तो और लोग भी आ गईं। अम्मा आज देर से घर जाएँगी। चाचाजी का कीर्तन सुनकर ही। तब तक पिताजी भी आ जाएँगे। इतनी देर तक बैठना बड़ा कष्टदायी हो रहा था। स्वयं ही बाहर या मन्दिर में अकेले इधर-उधर घूम आई। उसकी भी एक सीमा थी। फिर मन्दिर के चबूतरे पर एक किनारे बैठ गई। तभी मैंने देखा कि आप कुएँ पर पैर लटकाकर बैठे हैं..."

नीलेश चकित होकर उसकी बातें सुन रहा था। वह बहुत धीरे-धीरे बोल रही थी। नीलेश का ध्यान बार-बार उसकी बोली की मिठास पर चला जाता था। मोटा और महीन का अद्भुत मिश्रण...

कुछ रुककर और अगल-बगल देखने के बाद उसने कहा, "मैंने सोचा था कि जब आप मिलेंगे तो सबकुछ बताऊँगी, पर हिम्मत नहीं होती थी। आप स्वयं बहुत उदास लगते थे और मुँह दूसरी ओर कर लेते थे। यह भी सुनने में आया था कि पार साल आप घर से अपने एक मित्र के गाँव चले गए थे, जहाँ से चाचाजी आपको एक्के पर लाए थे..."

"तुम्हें यह सब किसने बताया ? " नीलेश के स्वर में उलझन थी।

नम्रता निर्लिप्त आवाज में बोली, "कुछ बातें देखी जाती हैं, कुछ सुनी जाती हैं, कुछ दीवारें कहती है, कुछ बिना सिर-पैर के हवा में उड़ती रहती हैं और कुछ के हम स्वयं भी गवाह होते हैं..."

वह चुप हो गई और उसकी ओर देखकर कुछ तल्खी से फिर बोली, "सबसे तुच्छ तो मैंने अपने को उस समय समझा, जब आपने मुझसे माफी माँगी। क्यों? क्या स्त्री इतनी हीन, अछूत और गई-गुजरी होती है कि उसकी वजह से पुरुष महानता से गिर कर अपराधी हो जाता है ? क्या स्त्री की कोई भावना नहीं होती, कोई विचार नहीं होते, उसके पास आत्म-सम्मान और विवेक नहीं होता ? क्या वह किसी के आचरण के औचित्य और अनौचित्य को नहीं समझ सकती ? वह क्या किसी को अपना आदर्श साथी नहीं मान सकती..."

सहसा उसकी जुड़ी हिम्मत ताश के घरोंदे की तरह टूट-बिखर गई और वह सिर झुकाकर तथा चेहरे को दाएँ हाथ की हथेली से ढककर धीरे-धीरे सुबकने लगी।

"क्या कर रही हो नम्रता ?" नीलेश ने हतबुद्धि होकर फुसफुसाई आवाज में कहा। नम्रता कुछ नहीं बोली। कुछ देर बाद सुस्थिर होकर जग में पानी उड़ेलने लगी। फिर खड़ी हो गई। उसकी आँखें भीगी थीं। उसने कहा:

"मैं आऊँगी, गेट के बाहर कुछ मिठाई-विठाई लेनी है..."

वह चली गई। नीलेश को विश्वास नहीं हो रहा था। नम्रता कौन-सी भाषा बोल रही है ? इतनी ही उम्र में क्या वह उसके अनुभव की भाषा है अथवा किसी किताबी भाषा का छायानुवाद ! क्या वे उसके अन्तर की दीप-छवियाँ हैं? क्या कहना चाहती है यह लड़की? इस तरह तो उसने स्वयं नहीं सोचा नारी के बारे में। क्या यह सच नहीं कि अनेक उच्चस्तरीय पुस्तकें पढ़ने और वीरेश्वरानन्द के प्रवचन सुनने के बाद भी उसने स्त्री को शरीर के अलावा कुछ नहीं समझा, जिसको अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए लज्जा, अनुशासन और अनेक बन्धनों और सीमाओं में रहना जरूरी है।

वह अपने अन्दर लघुता का अनुभव करने लगा। नए सामाजिक मूल्य के लिए वह अपने अन्दर और बाहर कब टकराया ? और यदि टकराया भी तो अपने लिए, जो उसे निजी कुंठा, हताशा और

मृत्यु की ओर ले गया।

मन्दिर के भीतर और बाहर हलवाइयों की दुकानों पर कई गैस-बत्तियाँ प्रकाशित हो उठीं। खोमचेवालों ने रेंडी की अनगिनत कुप्पियाँ जला दी थीं। चारों ओर एक चितकबरा अँधेरा फैल गया था। मन्दिर के अन्दर अब भी काफी भीड़ थी, लेकिन नीचे जमीन पर बैठे कुछ ग्रामीण परिवार धीरे-धीरे छँट रहे थे। शोर भी पहले से कम हो गया था।

नीलेश उस कुएँ की गच पर पहले की तरह फिर पैर लटकाकर बुझा-बुझा-सा बैठा था। कल तक वह अपने अन्दर कैसा नरक भुगत रहा था और आज नम्रता ने अपने अप्रत्याशित बात-व्यवहार से उसे नए अनुभवों के दूसरे ही लोक में फेंक दिया था। तभी उसने भ्रमता को गेट की तरफ जाते हुए देखा। वह अपने दाहिने हाथ में एक झोला लटकाए हुए थी।

नीलेश ने नीचे उतरकर चप्पलें पहनीं। जब वह गेट के बाहर पहुँचा तो नम्रता देशी घी वाली हलवाई की दुकान के सामने एक ओर खिसककर खड़ी दिखाई पड़ी, क्योंकि दो-तीन ग्राहक पहले ही से कुछ खरीद रहे थे। यह सिर इधर-उधर घुमाकर देख लेती थी। "अभी नहीं मिली ?" पास पहुँचकर नीलेश ने पूछा।

नम्रता की आँखों में चमक आ गई और होंठ मुस्कुराहट में हल्के-से खुल गए। उसने कहा, "दे रहे हैं..."

कुछ देर बाद नम्रता ने पूड़ी-मिठाई का पैकेट झोले में डालकर नीलेश से कहा, "मुझसे समोसे लेने के लिए भी कहा गया था, पर यहाँ तो किसी के पास नहीं है, क्या सिनेमा हॉल के पास चलेंगे, वहाँ मिल जाएँगे..."

नीलेश कुछ क्षणों के लिए हिचकिचाया। उसे डर भी हुआ कि इस छोटे-से पिछड़े शहर में किसी ने देख लिया तो ? परन्तु नम्रता के मुख पर कोई वैसा भाव नहीं था, बल्कि वह निर्भीकता से खड़ी उसको उत्सुकता से देख रही थी।

"चलो," वह उसके बराबर आ गया। वे साथ-साथ चलने लगे। भीड़ कम हो गई थी। भिखमंगों की कतारें गायब थीं। जब गैस की बत्तियाँ पीछे छूट गई और अँधेरा आ गया तो नम्रता स्वतः ही बोलने लगी, गोया ग्रामोफोन रिकॉर्ड पर सूई रख दी गई हो :

"मैं कुछ बड़ी हुई और सोचने-समझने लगी तो मेरी हालत अजीब थी। हर समय टोक-टाक, यह न करो, वह न करो। बड़ी कुंठा भर गई थी। हमेशा लगता था कि कोई गलत बात कर रही हूँ। कहीं भी कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। मैं अपने मन से खुद पढ़ती थी और अच्छे नम्बर लाती थी। दिल्ली में मौसी के यहाँ जरूर कुछ सीखने को मिला खास तरह से नए ढंग से पहनने-ओढ़ने और सिलाई, कढ़ाई और बुनाई के बारे में। लेकिन मौसी की लड़कियों पर भी कड़ी नजर रखी जाती थी। मैं नहीं जानती, शायद यह जरूरी भी हो, क्योंकि हमारा समाज इतना पिछड़ा और विकृत है कि लड़कियों को अँधेरे में ठेलने को सभी तैयार नजर आते हैं।"

उसने मुँह घुमाकर नीलेश की ओर देखा। वह सिर झुकाए चल रहा था। ये अँधेरे में बाई पटरी से बढ़ रहे थे। दिन-भर की गर्मी के बाद हवा में कुछ शीतलता आ गई थी।

"मैं आपके घर में आती-जाती थी। यहाँ अच्छा लगता था। आप सबसे बड़े थे, इसीलिए शायद गम्भीर रहते थे और किसी को लिफ्ट नहीं देते थे। लेकिन आपकी पढ़ाई-लिखाई, मेहनत और विचारों के बारे में घर के दूसरे लोगों से सुनने को मिलता। आते-जाते कभी-कभी बैठक में दोस्तों में आपकी बातचीत भी सुनाई दे जाती। कभी-कभी गलियारे में रुककर सुनने भी लगती। मुझे लगता कि घुटन की जगह ताजी हवा आ रही हो। देश और उसकी आजादी की बातें। मैं कभी-कभी वीरेश या सुरेश से कहकर आपकी कोई किताब पढ़ने को ले जाती। क्रान्तिकारियों की जीवनी, गांधीजी की आत्मकथा, जैनेन्द्र कुमारजी का 'त्यागपत्र', पंडित सुन्दर लाल की 'भारत में अंग्रेजी राज'। इस देश

के लिए भारतीय महिलाओं की कुर्बानियों की कहानियाँ पढ़कर बहुत रोई। मैं स्वयं प्रीतिलता, कल्पना दत्त और दुर्गा भाभी बनना चाहती थी। उन्हीं दिनों जैनेन्द्रजी की पुस्तक में रखा एक कागज मिला, जिस पर कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं..."

"नम्रता..." बड़ी मजबूरी की आवाज थी नीलेश की।

कहा: उस अन्धकार में नम्रता काठ की तरह दिखाई दे रही थी। उसने बहुत ही धीमी आवाज में

"मैंने कागज पुस्तक में रखकर वैसे ही लौटा दिया था। कागज पर लिखा था- "मैंने आज बड़ी-बड़ी आँखोंवाली एक लड़की देखी... कितना असहाय हो गया हूँ मैं..."

अचानक दोनों के बीच एक गम्भीर मौन छा गया। कुछ देर तक वे चलते रहे। बीच में दो-तीन पद-यात्री अपने ही में व्यस्त उनकी ओर बिना देखे

बगल से निकल गए। फिर आगे सड़क से एक खड़खड़या एक्के के गुजरने की आवाज लकीर की तरह सरयू तट की ओर बढ़ गई।

कुछ देर बाद चौराहे का टिमटिमाता लैम्प नजदीक आ गया। उनके चेहरों पर फीकी रोशनी पड़ने लगी, जो किसी खीस से सिकुड़े नजर आ रहे थे। चौराहे से आगे बाईं ओर मुड़कर वे उस सड़क पर आ गए जो चौक की ओर जाती थी और कुछ ही दूरी पर सिनेमा हॉल था। वहाँ आस-पास गैस-बत्तियों वाली कई दुकानें थीं और सिनेमा हॉल के ऊपर कुछ बिजली के लट्टू जले थे, जिसके पिछवाड़े से जेनरेटर की फट-फट आवाज सुनाई दे रही थी।

सिनेमा-हॉल के एक बाहरी हिस्से में स्थित समोसे की दुकान के आस-पास फैले विपुल प्रकाश में उनके चेहरे बड़े रहस्यमय और अनजाने लगे। कभी-कभी वे छिपी दृष्टि से एक-दूसरे को देख भी लेते थे।

नम्रता दुकान के पास चली गई और नीलेश कुछ इधर ही खड़ा हो गया। सचमुच समोसे शानदार थे, बड़े-बड़े, हल्के सुर्ख, उन समोसों की तरह नहीं जिन्हें आप मगद के लड्डू की तरह मुँह में डालकर और दाँत से दबाकर एक ही बार में उदरस्थ कर जाते हैं और उसके मसाले का भी पता नहीं लगता। शुद्ध घी में बने इस वृहदाकार समोसे को पूरे तीन गस्सों में ही निबटा सकते हैं और प्रत्येक गस्से से मुँह पूरा भर जाता है भकोसुआ (फला या गोझा) के समान और अद्भुत मसालों और हरा धनिया मिश्रित आलू की पीठी की खुशबू से मन और प्राण सराबोर हो जाते हैं।

समोसों का पैकेट भी सावधानीपूर्वक झोले में डालकर नम्रता घूम गई। इस बीच नीलेश उसे अचम्भे से देख रहा था। वे पहले की तरह ही चुपचाप लौट पड़े। चौराहे के लैम्प की रोशनी पार करके जब वे मन्दिर की तरफ अन्धकार-भरे सन्नाटे में आए तो नम्रता कहने लगी :

"वे पंक्तियाँ मेरे लिए स्पष्ट नहीं थीं, फिर भी पता नहीं क्यों भीतर से हिल-सी गई थी मैं। उन पंक्तियों के सामने रोज मैं बैठी रह जाती, पर बार-बार कोशिश करने पर भी कुछ समझ में नहीं आता। मैं स्वयं अपने

को निसहाय महसूस करने लगी। मेरे अन्दर और बाहर कुछ बदला-बदला

मालूम होने लगा..."

"चुप क्यों हो गई ?"

कुछ देर बाद ही नम्रता कंपित आवाज में बोली, "और उस दिन तो भूचाल-सा आ गया। जमीन और आसमान काँपने लगे। बहुत मुश्किल से अपने घर आई और कमरे में जाकर रोने लगी। अम्मा दौड़ी हुई आई थीं..."

कुछ रुककर उसने फिर कहा, "मैं काफी दुःखी रहने लगी। तभी हमारी कक्षा में एक नई टीचर आई दुलारी गुरुजी। वह बहुत योग्य हैं और लड़कियों की हर तरह की मदद करने को तैयार रहती हैं। पढ़ाई के बारे में नई-नई बातें बताती हैं। उम्र अधिक नहीं है लेकिन खद्दर की साड़ी पहनती हैं। उनके पति भी अध्यापक हैं। और कांग्रेस के सदस्य भी हैं। एक बार जेल जा चुके हैं। वह राष्ट्रप्रेम

और साहित्यप्रेम पर जोर देती हैं। लड़कियों से अन्धविश्वास छोड़ने और नयापन अपनाने को कहती हैं। मैं पढ़ने में ठीक-ठाक हूँ, इसलिए मुझे हमेशा उत्साहित करती हैं। कहती हैं हिम्मती और हँसमुख बनो। यह जीवन मुश्किल से मिला है, इसे प्यार करो। इस दुनिया को बदलने की कोशिश करो। इसका मतलब है पहले अपने को बदलो। स्त्री कोई काठ की लकड़ी, रेत-पाई नहीं है, उसमें भी सुन्दर इच्छाएँ हैं, स्वाभिमान है, विवेक है, अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध घृणा के भाव हैं, राष्ट्रप्रेम और साहित्यप्रेम है। तुलसीदास अगर सचमुच ही स्त्री को ढोर, गँवार समझते थे तो यह एकदम वाहियात और झूठी बात है। इसका विरोध करना चाहिए। खूब पढ़-लिखकर, नए ज्ञान-विज्ञान अपनाकर और तुच्छ अहंकार को छोड़कर स्त्री को अपना स्वाभिमान, अपना कद खड़ा करना होगा, रूढ़ियों और गलत बात का विरोध करना होगा..."

नम्रता की आँखें उस अँधेरे में भी चमक रही थीं, यद्यपि लगातार बोलने से

वह थक गई थी। नीलेश को उसकी ओर देखने और उससे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। कुछ देर तक चलते रहे वे चुपचाप ।

"उन्होंने कई पुस्तकें मुझे पढ़ने को दीं। खास तरह से प्रेमचन्द की 'गोदान', इलाचन्दजी की 'संन्यासी', यशपालजी की 'दादा कामरेड' और अज्ञेयजी की 'शेखर एक जीवनी'। उनकी एक-एक बात मेरे दिमाग में अंकित हो गई। एक-एक शब्द। उन्होंने मुझसे कई बार कहा है, 'इन पुस्तकों को ध्यान से पढ़ो, इनमें अपनी पहचान के लिए भारतीय नारी की व्याकुलता मिलेगी कई स्तरों पर। जबरदस्ती लादा गया परदा और हीन शर्म-संकोच, झूठी पवित्रता, झूठे पाप-पुण्य, झूठे स्वर्ग-ये सब नारी को सुन्न करने के उपाय हैं, इसी से उसकी पहचान नहीं बनती।

"पुरुष और स्त्री एक-दूसरे के लिए बने हैं। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। फिर नारी के लिए ही इतने जेलखाने क्यों ? राधा की स्वतन्त्रता क्यों नहीं? मीराबाई की गहन संवेदना और प्रीतम के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की गरिमा क्यों नहीं? धनिया सदियों से होरी के कदम से कदम मिलाकर शोषणयुक्त, अन्धकार-भरे भाग्यवादी और समझौतावादी समाज से निष्फल संघर्षों में सुख-दुःख की भागीदारी का प्रेम काव्य रचती रही। आगे नया, उज्ज्वल समाज बनाने के संघर्षों में ही नारी और पुरुष मिल-जुलकर परस्पर प्यार व त्याग की नई कविता रच सकेंगे। पुरुष की तरह ही नारी में भी पर्याप्त आध्यात्मिक शक्ति है, वह जीवन-संघर्षों में प्रो. मेहता और मालती की तरह, अपने जीवन-साथी के साथ प्रेम के उच्चतम आदर्श तक पहुँच सकती है..."

नम्रता की आवाज रुक गई। बोली में कँपकँपी आ गई। अपने को सँभालकर फिर कहा उसने, "मैं खुश हूँ। मैं जीवन को, लोगों को प्यार करती हूँ। गरीब, निरक्षर और सताई हुई स्त्रियों को अधिक। मैं अधिक से अधिक पढ़ना चाहती हूँ और कुछ करना चाहती हूँ। दुलारी गुरुजी के कहने से ही मैं रोज सबेरे एक घंटा चरखे पर सूत कातती हूँ। मेरी इच्छा है कि इन सूतों से कपड़े बनवाकर पहनूँ..."

मन्दिर नजदीक आ गया। नम्रता रुककर नीलेश की तरफ घूम गई, उसको

देखकर मूर्खतापूर्वक मुस्कुराई, फिर 'जाती हूँ' कहकर गेट की तरफ तेजी से बढ़ गई।

नीलेश कुछ देर तक उसे जाते हुए देखता रहा, फिर मुड़कर घर की ओर चल पड़ा। चौराहे को पार करके माल गोदाम जानेवाली सड़क की निर्जनता में जब वह पहुँचा तो उसे ठंडी होती रात के शीतल झोंकों की भी खबर नहीं थी। उसने देखा कि नम्रता से बचने के लिए वह भँवर में फँसकर डूबने जा रहा था, लेकिन नम्रता ने ही हाथ बढ़ाकर उसे किनारे खींच लिया।

कद्दावर, मांसल शरीर के बावजूद किसी बन्दरिया की तरह लघु चेहरा है सुरंजन शास्त्री का। पतले-पतले होंठों के शीर्ष पर उतनी ही वक्र लम्बाई की गझिन मूँछों की एक पट्टी नजर आती है। गोया कुशल माली ने किसी झाड़ी को काट-छाँटकर छोटा और सुन्दर रूप दे दिया हो। सभाओं में उनका गर्जन-तर्जन एवं ललकार मशहूर है, परन्तु बैठकर बात करते समय उस कथावाचक की तरह होंठों में ही मुनमुनाते हैं, जो थक-ऊबकर सत्यनारायण की कंथा जल्दी-जल्दी समाप्त करने लगता है।

लगभग आधा घंटे से उनकी मैंछें ऊपर-नीचे हिल रही हैं। उनके सामने नीलेश और राजनाथ यादव बैठे हैं और बगल की कुर्सी पर साधारण गलमुच्छ और बाघ मुख वाले एक काफी तगड़े व्यक्ति खद्दर की लुंगी, सफेद कुर्ता और जवाहर जैकेट में विराजमान हैं, जिनका शुभ नाम सदाशय व्रत है।

"आपने कभी सोचा है कि आजादी मिलने के बाद इस देश में कैसी सरकार बनेगी ?" उनके आते ही सुरंजन शास्त्री ने पहला प्रश्न दागा था, जिसका खास उत्तर न मालूम होने पर भी नीलेश निरुत्तर होना नहीं चाहता था।

"अंग्रेज चले जाएँगे तो आजाद सरकार बनेगी।"

"वह तो ठीक है, लेकिन किस तरह की सरकार ? राजतन्त्र, कुलीन तन्त्र, जनतन्त्र, धार्मिक तन्त्र, फौजी तन्त्र या नाजी-फासिस्ट तन्त्र ? अब यह देखिए कि ब्रिटेन जनतन्त्र होने का दावा करता है, लेकिन वह दुनिया के अनेक देशों को अपना उपनिवेश बनाए हुए है। फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन आदि देश भी करीब-करीब उसी तरह साम्राज्यवादी देश हैं। इटली में फासिस्ट और जर्मनी में नाजी सरकारें हैं। जर्मनी का तानाशाह हिटलर जर्मन जाति को दुनिया का सर्वोच्च आर्य जाति कहता है, जिसे दुनिया पर राज करने का अधिकार है। इटली का तानाशाह शासक मुसोलिनी रोम साम्राज्य की श्रेष्ठता और प्रभुता पुनः स्थापित करने का स्वप्न देखता है। ये दोनों ही राष्ट्रीय समाजवादी कहते हैं अपनी-अपनी सरकार को। सोवियत रूस में 'मजदूरों' की कम्युनिस्ट सरकार है... यह सरकार नस्लवादी सिद्धान्तों पर नहीं बनी है, बल्कि दुनिया में हर देश में किसान-मजदूर और शोषित-गरीब लोगों की सरकार कायम करने का सपना देखती है।

"समस्या यही है कि तानाशाही और हिंसा के बल पर क्या वास्तव में गरीबों की सरकार कायम रह सकती है ? हमारे देश में जहाँ अनेक धर्म और जातियाँ हैं, कैसी सरकार होगी ? नस्लवादी राष्ट्रीयता यहाँ के लिए उपयुक्त होगी या धार्मिक राष्ट्रीयता ? अथवा ऐसा जनतन्त्र जिसमें सभी धर्मों और जातियों को समान अधिकार प्राप्त हो और शोषित-गरीबों की उन्नति पर ध्यान दिया जाता हो ?"

सुरंजन शास्त्री की लम्बी मुनमुनाहट बन्द हो जाती है। सन्तोष की स्वप्निल, झिलमिलाती मुस्कुराहट के साथ वह पहले सदाशय व्रत, फिर नीलेश और राजनाथ यादव और अन्त में बाहर पक्के और बड़े आँगन की ओर देखते हैं, जहाँ कड़ी धूप पसरी है और आँखों को चनचना देती है। टाउन-हॉल के पीछे, चौक के एकदम पास 'भारत भंडार' का भवन कुछ पुराने मकानों को तोड़कर नया-नया बनवाया गया है जिसको एक सम्पन्न कांग्रेसी हलवाई परिवार ने किराए पर लेकर रेस्तराँ और होटल का दर्जा दे दिया है। वह अब शहर, देहात और बाहर के कांग्रेसियों, क्रान्तिकारियों तथा अन्य राजनैतिक कार्यकर्ताओं का विशेष अड्डा बन गया है, जिस पर चौबीसों घंटे खुफिया विभाग की तेज निगाहें रहती हैं।

"आप घबराएँ नहीं, सुरंजनजी आपको सब कुछ बताएँगे।"

नीलेश आश्चर्यचकित होकर सदाशय व्रत को देखता है, क्योंकि उसे स्वप्न में भी उम्मीद नहीं थी कि ऐसे कठोर मुख से निकला स्वर इतना विनम्र, कोमल और मीठा होगा।

सुरंजन शास्त्री की मूंछें फिर सक्रिय हो जाती हैं। वह देशभक्त नौजवानों को समाजवाद के सिद्धान्त और व्यवहार की शिक्षा देने के लिए एक कक्षा चलाते हैं अपनी पार्टी की ओर से। उन्होंने कहा कि कांग्रेस एक बड़ा स्वातन्त्र्य आन्दोलन है, जिसमें समाजवादी, कम्युनिस्ट तथा कई अन्य विचारों के लोग भी शामिल हैं। समाजवादी विचार के लोगों ने कांग्रेस के अन्दर ही 'कांग्रेस समाजवादी पार्टी' का गठन किया है, जिसके नेता हैं जयप्रकाश नारायण, डॉ. लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन, अरुणा आसफअली, युसुफ मेहरअली, सम्पूर्णानन्द आदि। कम्युनिस्ट लोग भी यहाँ एक अपना क्लास चलाते हैं और उनके नेता हैं पी.सी. जोशी, डांगे, रणदिवे, भारद्वाज, राहुल सांकृत्यायन आदि। इस समय समाजवादियों का मुख्य उद्देश्य कांग्रेस और गांधीजी के नेतृत्व में देश को ब्रिटिश गुलामी से मुक्त कराना है, परन्तु ये यह भी चाहते हैं कि कांग्रेसजनों तथा नवयुवकों को अधिक-से-अधिक समाजवादी विचार की शिक्षा दी जाए ताकि स्वतन्त्रता के बाद देश में किसान-मजदूर और साधारण जनता की समतावादी और समाजवादी सरकार बने।

"कार्ल मार्क्स वैज्ञानिक समाजवादी सिद्धान्त के प्रणेता हैं। आदर्शवादी और सुधारवादी ढंग के समाजवाद की पहले भी परिकल्पना की गई है, पर वह सम्पन्न लोगों की दया आदि पर ही निर्भर होता है, जो अन्ततः सफल भी नहीं होता और गरीबी जहाँ-की-तहाँ रह जाती है। समाज वर्गों में बटा रह जाता है। गरीब, गरीव बना रहता है और अमीर अधिक अमीर बनता चला जाता है। उत्पादन के साधनों पर जिस वर्ग का अधिकार होता है उसी वर्ग के हित में सरकार काम करती है। समाजवाद एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है, जिसमें उत्पादन के साधनों पर किसान-

मजदूर तथा अन्य साधारण लोगों का अधिकार होगा और उत्पादित धन का वितरण इस प्रकार होगा कि गरीब और अमीर का भेद मिट जाएगा। मोटे तौर पर यही समाजवाद है। चूँकि हमारे देश में भयंकर गरीबी और शोषण है, अतः समाजवाद के उपायों के द्वारा हम शोषण, निर्धनता मिटाकर सामान्य जन को समृद्ध कर सकते हैं।"

कुछ देर चुप रहने के बाद सुरंजन शास्त्री ने अन्त में कहा, "आपको दो पुस्तकें देता हूँ-एक हिन्दी में और दूसरी अंग्रेजी में। आपको समाजवाद की शुरुआती समझ हो जाएगी। हमारी कक्षा हफ्ते में दो बार होती है-एक वृहस्पतिवार और दूसरी इतवार को। ये पुस्तकें पढ़कर अगली बार आइए तो और बातें होंगी।"

नीलेश जब बाहर निकला तो भीषण गर्मी, उमस और थमी-थमी हवा में भी उड़ा जा रहा था। उसे सहसा नम्रता याद आई। खुशी से चमकती उसकी बड़ी-बड़ी आँखें। मन्दिर में उसने अपने उदार और स्नेही हृदय की झलक दिखाकर कैसे उसे कुंठा, हीनता, अपराध और मृत्यु की यन्त्रणा से उबार लिया था ! कैसे उसे सम्मान देकर अपने सामने और अपने बराबर खड़ा कर दिया था। और अब सुरंजन शास्त्री ने मानसिक विभ्रम और अनिश्चितता की स्थिति में विचार एवं कर्म की चमकती स्वर्णिम दृष्टि देकर उस पर भारी उपकार किया है !

'कक्षा' की अगली बैठक में सुरंजन शास्त्री ने उसके कुछ प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहा था, "राजनैतिक स्वतन्त्रता स्वयं में एक बड़ी उपलब्धि है। प्रगति की दिशा में एक गुलाम देश का पहला कदम। इसी तरह प्रगतिशील एवं विकासशील राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय एकता का बड़ा महत्त्व है। परन्तु ये ही सबकुछ नहीं है। भारत जैसे पिछड़े, निर्धन एवं अशिक्षित देश में पूर्वोक्त और जनतन्त्र भी हवाई और अमूर्त अथवा अर्ध-अमूर्त चीजें नहीं। उनके होने का ठोस अर्थ है करोड़ों लोगों की मुक्ति, उत्थान और विकास। स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता और जनतन्त्र का कोई निजी, संकीर्ण, जातीय, धार्मिक अथवा तानाशाही रूप नहीं हो सकता, बल्कि सभी जातियों, धर्मों और क्षेत्रों की अटूट समतावादी

एवं विकासशील एकता में ही उनकी सार्थकता निहित है, जो एक समाजवादी व्यवस्था में ही चरितार्थ की जा सकती है।"

कक्षा में जाने, पढ़ने-लिखने और यहस-मुबाहसा का सिलसिला यड़ा ही उपयोगी, उत्साहवर्धक एवं सुखद रहा। उन्हीं दिनों एक रात ट्रेन से हाई स्कूल का परीक्षा-फल आया। नींद न खुलने से वह स्टेशन नहीं जा सका। जब वह नींद से जागा तो चारों और हल्ला सुनकर चौंक उठा। घर के सभी लोग चिल्लाते, हँसते और दौड़ते हुए आए कि वह प्रथम श्रेणी में पास है। यह भी कि रामचन्द्र सिंह प्रथम, राजनाथ यादव द्वितीय और गोवर्धन तृतीय आए हैं। उसने स्वयं बाहर देखा कि मोहल्ले के लड़के गोपाल और महँगू तृतीय श्रेणी से ही बेहद प्रसन्न सड़क पर इधर-उधर उचिया रहे हैं।

"अम्मा, मिठाई मँगवाकर मोहल्ले में बटवा दो न। कितनी खुशी की बात है !" शैलजा ने सारे दाँत खोलकर हँसते हुए कहा। छकौड़ी-बो आकर कहने लगी- "हमारा नाती पास हुआ है, बेटी-दामाद से कहो बिटिया कि सुभ काम हुआ है, मोहल्ले में मिठाई बटवा दें कि सबको मालूम हो जाए, बबुअवा को सबका आसीर्वाद मिले।"

छकौड़ी कमकर का मकान सटा हुआ था उनके मकान से। सीधे-सादे छकौड़ी की लुगाई मोहल्ले की कुख्यात प्रचंड योद्धा थी, लेकिन पता नहीं कौन-सा हिसाब जोड़कर उसने आनन्दी से बेटी का रिश्ता कायम कर लिया था। कभी-कभी वह 'बबुनी-बबुनी' पुकारते हुए घर के अन्दर किसी काम से प्रवेश करके आनन्दी के पास जाने लगती और यदि सीतानाथ बरामदे या कमरे में होते तो जीभकाटकर आँचल आगे खींचती हुई जल्दी से टेढ़े-तिरछे निकल जाती।

"हाँ बिटिया, यह लो... वीरेश को भेज दो।"

नआनन्दी कंजूसी से मुस्की काटती हुई आँचल का खूँट खोलने लगी।

"वीरेश ! वीरेश ! कहाँ हो ?... मौके पर हमेशा गायब रहता है..." शैलजा

ने बनावटी क्रोध से नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा।

इसी समय सीतानाथ गुसलखाने से निकलकर सफेद धोती की लुंगी, बनियान में, कन्धे पर अँगोछा डाले, खड़ाऊँ पर खटपट करते और डोलते हुए आए। आते ही वह ठहाका लगाकर हँसे, फिर गम्भीर होकर बोले, "वाह ठीक है। सब प्रभु की कृपा है।" इसके बाद पीछे घूमकर घर के अन्दर बरामदे में लौट गए।

नीलेश काफी गम्भीर था। सब लोग देखते ही रह गए और उसने टुकी-भर मुस्कुराहट या 'हाँ-हूँ' द्वारा भी अपनी प्रसन्नता प्रकट नहीं होने दी। शायद दूसरों पर अपनी सफलता का प्रभाव और गाढ़ा करने के लिए अथवा यह प्रदर्शित करने और अपने गर्वीले आत्मविश्वास की पुष्टि करने हेतु कि यह उसके लिए बहुत मामूली कामयाबी है और गतवर्ष यदि मानसिक व्यवधान न पड़ा होता तो वह प्रान्त-भर में प्रथम आया होता।

गम्भीरता का मुखौटा धारण किए हुए और बिना कुछ बोले, वह भीतर चला गया। और जब वह नहा-धोकर और कुर्ता-धोती पहनकर गुसलखाने से निकला, मिठाई तो पहले आ ही चुकी थी-नम्रता और उसकी माँ भीतर प्रवेश कर दक्षिणी बरामदे में बैठी आनन्दी की ओर बढ़ती नजर आईं। नम्रता को देखते ही उसकी आँखें चौंधिया गई, जैसे धूप से उसकी ओर कोई शीशा चमका दिया गया हो। उस दिन मन्दिर में मुलाकात के बाद वह उसे पहली बार देख रहा था। हल्की पीली साड़ी और उसी रंग के ब्लाउज में। यह गुसलखाने के सामने ही ठिठककर खड़ा हो गया।

"आइए, धन्य भाग्य ।" आनन्दी चारपाई से उठ खड़ी हुई।

"अरे भाई, आपको बहुत-बहुत बधाई। अभी-अभी तो मालूम हुआ। नम्रता के पिताजी भी आनेवाले थे, उसी वक्त कोई आ गया।"

1. ठीक इसी समय कमरे में से शैलजा मिठाई का एक डिब्बा लेकर आई और ढक्कन खोलकर

बोली, "चाचीजी, मुँह मीठा कीजिए।"

"नहीं, नहीं," नम्रता की माँ कुछ पीछे हट गई, "अभी-अभी तो नहाकर निकली हूँ। जाकर

पूजा करूँगी, तब जाकर मुँह में कुछ डाला जाएगा।"

"भगवान का प्रसाद है बहिनजी। ले लीजिए एक लड्डू।"

"भेजवा दीजिएगा घर में।"

"मैं तो अभी भेजवाने ही जा रही थी सबके लिए। अब आ ही गई हैं तो..."

"नम्रता, तुम लो..." शैलजा ने डिब्बा उसकी ओर बढ़ा दिया।

"दीदी, मेरा भी...।"

"क्या तुम भी पूजा-पाठ करती हो ?"

"नहीं..." नम्रता हँसकर रह गई।

"तब तुम तो लो भाई। मेरे हाथ से खाओ।"

शैलजा एक लड्डू अपनी उँगलियों के बीच उठाकर नम्रता के मुँह की ओर ले गई, जिससे उसे मजबूर होकर अपना हास्य-भरा मुँह खोलना पड़ा और देखते-ही-देखते उसके खूबसूरत चमकते दाँतों के पार मिठाई ठेका दी गई, जिसे फौरन बाद कुछ दूर खड़े नीलेश की विपरीत दिशा में गर्दन मोड़कर और सिर झुकाकर वह अपने आरक्त, फूले हुए मुँह को भाकुर-भाकुर चलाने लगी।

नीलेश इसलिए खड़ा रह गया था कि यदि वे उसको बधाई देना चाहें तो उनको असुविधा न हो और वह भी नमस्कार कर ले। जब ऐसा नहीं हुआ तो वह बिना किसी की ओर देखे धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया। अब

नम्रता की माँ उधर देखती हुई आनन्दी से बोली:

"नीलेशजी को हम अपने घर में कल बधाई देंगे। कल शाम को सभी बच्चों को भेज दीजिएगा, वे सभी वहीं नाश्ता करेंगे।"

"यह तकलीफ क्यों करती हैं ?"

"अरे, कैसी बात कह रही हैं, बहिनजी? नीलेशजी के प्रथम आने से हमें कम खुशी थोड़े ही हुई है। हम कल अपने घर में खुशी मनाएँगे। नीलेशजी को बधाई देंगे। शैलजा बिटिया, तुम भी आना..."

उनके जाने के बाद किंचित हँसते हुए शैलजा ने कहा, "यह नया ढकोसला क्या है, अम्मा ? ऐसा प्रेम तो कभी नहीं दिखाया गया। यह कोई दिल्ली वाला ठाट है क्या ?"

"अरे नहीं, पिछले साल नीलेश पर जो झूठा लांछन लगाया था, उसी का पश्चाताप कर रही है। हमारे सीधे-सादे लड़के को बदनाम कर दिया। अब पहले दरजे में पास हुआ है तो मुँह छहुंदर की तरह निकल आया है। यह सब न करें तो लोग धूड़ी-चूड़ी न करेंगे?"

उन दिनों पिछड़े शहर में खुशी के मौकों पर कोई बधाई वधाई देने नहीं पहुँचता था। जिसके यहाँ कोई खुशी की बात होती वह मिठाई बाजार से खरीदकर या घर पर हलवाई बिठाकर कुछ बनवा लेता और मोहल्ले में और रिश्तेदारों तथा खास-खास दोस्तों के यहाँ बँटवा देता। जो नाइन या कमकरिन बाँटने जाती, वही खुशी के कारण की भी सूचना दे देती। और भूले-भटके कोई बधाई देने पहुँच भी गया तो प्रत्युत्तर में 'धन्यवाद' शब्द मुँह से नहीं निकलता और आँखें अजीब उजबुक की तरह देखने लगतीं। ऐसे शिष्टाचार को दिखावटी व्यवहार और शहरी खोखलापन समझा जाता।

नम्रता एक बार दिल्ली से लौटने के बाद जब सलवार-कुर्ता पहनने लगी तो स्कूल से लेकर मोहल्ले और रिश्तेदारियों तक किसी ने पसन्द नहीं किया। लोगों की नाक भीं सिकुड़ जाती। आँखें दूसरी ओर घूम जातीं।

फुसफुसाहट होने लगती। बाप रे, दो-तीन बार दिल्ली क्या हो आए, इन लोगों ने नाक में दम कर दिया है। हमेशा फेंटती रहती हैं- 'दिल्ली में तो यह होता है।' माँ-बाप ने तो लड़की को सिर पर चढ़ा दिया है। लड़की को तो ग्यारह-बारह वर्ष के बाद ही दीदा नवाकर चलना

चाहिए, शरीर को ढककर रखना चाहिए, ढंग से साड़ी पहननी चाहिए। यह तो काफी सहक गई है। ऐसी ही लड़कियाँ बेहाथ हो जाती हैं और माँ-बाप की नाक कटाती हैं...

नम्रता की मौसी की लड़कियाँ यहाँ भी आती थीं और वह भी अपने माँ-बाप के साथ यहाँ जाती थी। इसका रहन-सहन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। ये लोग दिल्ली के स्टाइल पर घर को साफ-सुथरा रखते, हमेशा धुले और प्रेस किए हुए कपड़े पहनते। नम्रता की माँ हमेशा कुछ-न-कुछ सीती, बुनती और काढ़ती रहती। नम्रता को भी इन सबका शौक था, लेकिन वह पढ़ने-लिखने में ध्यान अधिक लगाती थी, अतः अन्य बातों के लिए उसके पास फुरसत कम थी। ये सब बातें लोग पसन्द नहीं करते थे। इसको भी लोग खोखला, शहरी प्रदर्शन समझते। 'अपने को ऊँचा दिखाने की यह चालें हैं। हमें तो अपना भारतीय तरीका पसन्द है। भई, दाल-भात हाथ से खाने में जो मजा है, वह भला चम्मच से आ सकता है? अब घर को ही ले लीजिए, लोग-बाग उसमें बिना ढकोसला के प्रेम से निश्छलता के साथ रहते हैं तो वह गन्दा भी रहेगा। मौका आने पर साफ भी हो जाएगा। बच्चे धूल में लोट-पोटकर जितने तगड़े बनते हैं, उतने चाम-चूम से हो सकते हैं ?'

रक्षाबन्धन मनाने के उनके तरीके से भी लोग काफी कुढ़ते थे। वहाँ राखी, भाई-बहन का त्यौहार नहीं था। उस दिन शहर और आस-पास के गाँवों के ब्राह्मण देवता छत्तों की मधुमक्खियों की तरह भर-भर निकलकर आते रहते और घूम-घूमकर राखी रंगीन धागा बाँधते और दक्षिणा पाते। परन्तु नम्रता के परिवारवाले आठ-दस दिन पहले ही सुनाने लगते कि भाइयों को

राखी बाँधने के लिए नम्रता की माँ को कारों जाना है। अरे भाई, जाना हो तो चुपचाप जाओ, दुनिया को सुनाने की क्या जरूरत है?

"बहिनजी, रक्षाबन्धन तो भाई-बहन का त्यौहार है, आपके भाई तो यहीं रहते हैं, आप जाकर उन्हें क्यों नहीं बाँधतीं? शैलजा भी अपने भाइयों को नहीं बाँधती !"

आनन्दी चिढ़ गई, "हमारे यहाँ यह अशुभ समझा जाता है। हम लोग यह ढकोसला नहीं करतीं। इससे भाई-बहन का प्रेम बढ़ जाएगा? यह तो बाम्हन-बिसुन का त्यौहार है, वे लोग मन्त्र पढ़ते हैं, दक्षिणा लेकर आशीर्वाद देते हैं। राखी तो सबको बाँधी जाती है, पंडिताइनें घरों में सभी औरतों और लड़कियों को बाँधती हैं और दक्षिणा पाकर खुश होती हैं।"

ऐसी जली-कटी सुनकर नम्रता की माँ निरुत्तर हो गई थी।

दूसरे दिन मौसम में ठंडक आ गई। तेज पुरुवाई के चलने से आकाश में बादल दौड़ने लगे-गाढ़े नहीं, हल्के-हल्के। पृथ्वी पर धूप-छाँव का खेल होने लगा। शाम को जब वे नम्रता के घर पहुँचे तो गर्मी और उमस की भारीपन और दवाब की परेशानी से वे काफी हद तक मुक्त हो चुके थे। शैलजा को तो आनन्दी ने ही रोक दिया, 'वह विवाहित लड़की है, ससुरालवालों की इजाजत मिलने पर ही कहीं जाएगी-आएगी।' उमेश और रमेश की आँखें आई हैं, अतः ऊपर के शेष भाई ही पहुँच सके। बाहर के कमरे में मेज लगी थी, जिसके चारों ओर वे लोग बैठ गए। उसी समय रतनसिंह मुख्तार आए। मझोला कद, कुछ थुलथुल शरीर, खूबसूरत बड़ी आँखें, हँसमुख चेहरा। उनको देखते ही नीलेश

ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया, जिसकी देखा-देखी अन्य भाइयों ने भी वैसा किया। "बधाई नीलेशजी, बहुत बधाई। बड़ी खुशी की बात है। मैं तो कल ही आपके घर जानेवाला था, पर क्या करूँ, फुरसत ही नहीं मिलती, कोई-न-कोई मुवक्किल पहुँचा रहता है। मैं भी आप लोगों के साथ बैठता, मगर एक पेचीदे केस की तैयारी करनी है। आप लोग खूब इत्मीनान से बैठिए और खुशी मनाइए।"

कभी-कभी सुरेश की वाचालता अन्य भाइयों के लज्जा-भाव और सामान्य शिष्टाचार के अभाव की क्षतिपूर्ति भी करती थी। उसने रतनसिंह के जाने के बाद नम्रता की माँ से कहा, "चाचीजी, नम्रता दीदी को बुलाइए। आप भी आइए।"

"नहीं बेटा, तुम लोग खाओ। नम्रता तो भीतर फँसी है और मैं तो इस समय कुछ लेती नहीं।" नम्रता की माँ जल्दबाजी में इधर-उधर देखने के बाद भीतर चली गई।

चौदह-पन्द्रह वर्ष का एक छोटा-सा नीकर मेज पर प्लेटें और चाय के प्याले सजा गया। उनमें से कोई चाय नहीं पीता-उनके घर में वह बनती ही नहीं थी। फिर कई किस्म की गर्म-गर्म पकौड़ियाँ बारी-बारी से आने लगी। नीकर अब भीतर भदद करने लगा और नम्रता की माँ व्यस्ततापूर्वक सामान लाने लगीं। उसके बाद-पकौड़ियों के बाद साबूत आलू के पकौड़े जैसी चीज परोसते समय उन्होंने बताया कि आलू के भीतर कई तरह के मेवे का भरता है, जिसे बेसन के घोल में डुबोकर कड़ाही में तल लिया गया है। फिर गाढ़ी दही में उड़द के स्वादिष्ट बड़े आए। अन्त में मिठाइयों-खोए के लड्डू और गुलाबजामुन पेश की गई।

नम्रता की माँ ने आग्रह कर-कर के उन्हें खिलाया था। मना करने के बाद खाद्य सामान का आना जब बन्द हुआ तो नम्रता आकर दीवार से सटकर खड़ी हो गई। उसने पहले सिर झुकाकर हवाई दृष्टि से नीलेश को देखा, फिर अपनी नाक की सीध में। वह जामुनी साड़ी पहने थी और उसके सिर के दो-तीन बाल आगे उड़-उड़ रहे थे। चेहरे पर गर्मी का असर और व्यस्तता अवशेष की झलक।

उसकी माँ ने सफाई दी, "नम्रता ने सभी सामान अपने हाथ से बनाए हैं। सवेरे से ही लगी है, इसीलिए तो फुरसत मिलने पर अब आई है। मैंने कहा था, तुम सबके साथ बैठकर खाना-पीना, मैं सब बना दूँगी, पर मानी ही नहीं।"

"चाचीजी, सभी चीजें इतनी अच्छी बनी हैं कि मैं उँगली चाटता रह गया।" सुरेश की वाचालता फिर सामयिक और उपयोगी सिद्ध हुई।

"और दें ? मिठाई, दहीबड़े कुछ भी..."

"अरे नहीं, चाचीजी, जब आपने पेट में कोई जगह रहने ही नहीं दी तो खाएँगे कैसे ?"

सामान सचमुच अच्छे बने थे, जो नम्रता द्वारा ही बनाए गए थे यह जानते हुए भी नीलेश की हिम्मत नहीं हुई थी शिष्टाचारवश कुछ कहने की। किन्तु सुरेश ने उसको रास्ता दिखा दिया, "सचमुच हर चीज इतनी अच्छी बनी है कि बयान नहीं हो सकता। अच्छा-से-अच्छा हलवाई भी क्या बनाएगा।"

नम्रता खीझ गई कि क्या नीलेश यही बात सुरेश के पहले नहीं कह सकता था। उसने त्वरित, तीक्ष्ण दृष्टि से नीलेश को देखा, मगर उसका चेहरा इतना निर्दोष और सुन्दर लगा कि उसका दिल मोम की तरह पिघल गया और वह सिर सीधा कर तथा खुशी से आँखें फैलाकर, ऊपर छत को कुछ क्षण निहारने के बाद तेजी से घर के अन्दर चली गई।

जब वे चलने को हुए तो नम्रता की माँ उन्हें विदा देने के लिए बरामदे तक आई, पीछे नम्रता भी थी। उसने नीलेश से कहा :

"यह तो अच्छा हुआ, बेटा, कि तुम एकदम पास हो, नम्रता जब चाहे मदद ले सकती है। यह भी घर ही है, तुम जब चाहे आ सकते हो और देख सकते हो कि नम्रता ठीक पढ़ रही है या नहीं।" "चाचीजी, नम्रता खुद तेज हैं..."

"मदद की जरूरत तो होती ही है..."

सभी भाइयों ने हाथ जोड़े। नम्रता जी भरकर देख रही थी नीलेश को। उसकी आँखों में अद्भुत चमक थी और उस चमक के केन्द्र में भी एक ज्योति-बिन्दु की आभा, गोया किसी रजत आभूषण में जड़ा हुआ नग अथवा दूर, गहरे आकाश से लगातार आती किसी सितारे की रहस्यमयी

चीजें तेजी से बदल रही हैं। घटनाएँ घट रही हैं खट-खट। स्टेशन पर न रुकनेवाली मालगाड़ी की तरह, जिसका एक-एक डिब्बा सामने आकर आगे निकल जाता है। नीलेश जिस दिन कांग्रेस-समाजवादी पार्टी का सदस्य बना, उसके उत्साह का अन्त नहीं था। क्या दूध की तरह उबाल ? सुरंजन शास्त्री ने इसी मुहावरे का इस्तेमाल किया था, "देखिए, आधुनिक बनिए। इसका मतलब दूसरों की नकल नहीं. अपने देश की प्राचीन सड़ी-गली. अप्रासंगिक एवं बेकाम चीजों की भी नहीं। इसका अर्थ है अपने इतिहास, संस्कृति और समाज से सबक लेते हुए अपने अन्दर और दूसरों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना और नई चुनौतियों का नए संकल्पों के साथ सामना करना। आप मध्यमवर्ग से आते हैं, यह सुविधावादी वर्ग है, इसका जोश-उत्साह दूध के उबाल की तरह होता है, इसलिए जनता से अपने को जोड़ने के लिए एक समाजवादी कार्यकर्ता को बाहर समाज में और अपने भीतर, दोनों जगह संघर्ष करना पड़ता है-मध्यमवर्गीय मनोवृत्तियों से भी संघर्ष ।"

पता नहीं, क्या-क्या उसके अन्दर भर गया है। हर आदमी से कहकर वह अपने हृदय का बोझ हल्का भी नहीं कर सकता। अनेक बातें तो एकदम निजी हैं। बार-बार उसे नम्रता की याद आती। अनेक बातें थीं, जो वह सिर्फ नम्रता से कहना चाहता था। क्या बात है कि वह गोवर्धन की तरह नम्रता के हाथ को अपने हाथों में लेकर अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कर सकता? क्या स्वभावगत शर्म-संकोच ? अथवा सामाजिक डर? या कोई प्राचीन निषेधात्मक बज्र आदर्श ?

दरअसल, वह राजनीति के बारे में भी नम्रता से बातें करना चाहता था, क्योंकि वह भी देश, समाज और साहित्य के सम्बन्ध में सोचती-विचारती थी। हाँ, समाजवाद के बारे में, जिससे वह समाज को बदल देना चाहता है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की खाई को मिटा देना चाहता है। नम्रता क्या सोचती है इन प्रश्नों के बारे में? इन समस्याओं पर कई पुस्तकें थीं उसके

पास और एक दिन जब अचानक यह खयाल आया कि क्यों न वह ये पुस्तकें नम्रता को भी पढ़ाए तो वह बेहद खुश हो गया। इसके बाद तो प्रतिदिन वह नम्रता के आने का इन्तजार करने लगा। सबेरे उठने के बाद से ही उसकी प्रतीक्षा आरम्भ हो जाती जो शाम तक निराशा में बदल जाती। वह परेशान हो जाता। वह घर क्या आती, आजकल तो दिखाई भी नहीं देती। फिर वह उसके घर क्यों नहीं जा सकता ?

उसे यह विचार बड़ा नया लगा। उस समय नम्रता की माँ की बात और नम्रता की चमकती हुई आँखें भी नहीं याद आईं। जैसे अँधेरे में कोई रास्ता दिख गया हो। यह सोचकर वह उत्साहित हो गया कि एक दिन नम्रता के यहाँ जाकर पुस्तकें दे आएगा।

इसी बीच उसने खद्दर पहनना शुरू कर दिया-धोती-कुर्ता या पैजामा। समाजवादी लोग कॉलर याला लम्बा कुर्ता पहनते थे-कमी एक झोले की रह गई थी। इससे उसे जो आन्तरिक प्रसन्नता हुई, उसका बयान तो नहीं किया जा सकता, लेकिन वह सिर्फ असाधारण गम्भीरता द्वारा ही प्रकट होने लगी।

आधुनिक बनने के इसी जोश में उसने एक दिन अपने को आइने में देखकर बड़ी कैंची की मदद से दाढ़ी-मूँछ के नरम-नरम बाल तराश दिए। यूँ ही नहीं हो गया यह सब, बल्कि उसके पूर्व उस सम्बन्ध में गम्भीर विचार भी किया गया। जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण तथा डॉ. लोहिया के कृतित्व एवं विचार का मिश्रित रूप था, उसका राजनीतिक आदर्श उस समय-और उनके सफाचट चेहरों ने प्रतीक चिह्न के रूप में उसके अन्दर अनोखा भक्ति-भाव उत्पन्न कर दिया था। हाँ, उन्हीं की तरह महान नेता बनना चाहता था वह अथवा यौवन-प्रभात की रंगीन, रूमानी, खुशनुमा और चहचहाती भावनाओं का कोई कर्म-रूप था उसका यह प्रयास ?

उसका नया चेहरा सर्वप्रथम घर में ही देखा गया। किसी अनहोनी घटना को पहले निरखकर लुत्ती लगाने में माहिर हैं शैलजा और सुरेश। और शादी के बाद तो शैलजा की किसी बात, सूचना या शिकायत का

ब्रह्मवाक्य की तरह गहरा असर होता है। जब नीलेश भीतर आ रहा था, उसी समय

शैलजा ने जल्दी-जल्दी आनन्दी के पास जाकर उसके कान में कुछ फुसफुसा दिया।

आनन्दी ने नीलेश को घूरकर देखा, फिर क्रुद्ध आवाज में पूछा, "यह क्या किया ए बाबू ?"

"क्या है अम्मा ?" नीलेश ने हँसते हुए पूछा।

"यह तो बड़ा अशुभ है, बाबू...।"

"क्या अशुभ है ?"

"बाप के रहते..."

नीलेश समझ नहीं सका। उसके चेहरे पर हैरानी-परेशानी दौड़ गई। इसी समय जीरादेवी ने आकर छाती पर हाथ रखकर चिन्ता प्रकट कर दी:

"हाय ए नीलेश बाबू, यह क्या किया ? बाप के जिन्दा रहते क्या दाढ़ी-मूँछ पर छुरा लगाया

जाता है ? तुमने किसी से पूछा नहीं। कितना खराब है यह।"

"छुरा नहीं, कैंची लगी है, दादी।"

"अरे लोहा तो है। एक तरह से छुरा ही है वह।"

अपने मुँह से 'बाप की मृत्यु' जैसे शब्द कोई भी नहीं कहना चाहता था, अन्यथा यह कहा जाता कि बाप के मरने के बाद, दसवीं के दिन ही उनके लड़के दाढ़ी-मूँछ पर छुरा लगवाकर मुंडन कराते हैं और जीवित अवस्था में

ऐसा कराना बाप को मारने जैसा ही है। एक दूसरे अर्थ में भी यह अशुभसमझा गया है कि गृहस्थ जीवन से भागकर ही कुछ लोग मुंडन कराके साधु-संन्यासी बन जाते हैं।

सीतानाथ ने कचहरी से आने पर बाहर ही नीलेश को देख लिया था, मगर वह कुछ बोले नहीं। भीतर जब आनन्दी ने उनसे शिकायत की तो वह ठठाकर हँस पड़े। उन्हें याद आया, जब वह चौदह-पन्द्रह वर्ष के थे, उनकी शादी कर दी गई और एक वर्ष के बाद गौना भी हो गया। उसके बाद एक निश्चित दिशा में स्थिर गति से बढ़ते हुए वह समाज के हर नियम-आचार पर चुपचाप चलते रहे।

उन्हें स्वयं स्थिर जीवन पसन्द था, जिसकी करुणा एवं आदर्श की सीमाओं में वह अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुए प्रभु का गुणगान करते रहे-परन्तु जब नीलेश ने साहसपूर्वक पुरानी मान्यताओं को तोड़ते हुए, नई चुनौतियों को स्वीकार करके, कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण करने के बाद खद्दर पहन लिया और दाढ़ी-मूँछ सफाचट करा ली तो उन्हें जरा भी बुरा नहीं लगा। जैसे उन्होंने नीलेश में अपने अभावों- प्राचीन, अप्रासंगिक, असम्बद्ध घरेलू साहस और आदर्शों की क्षतिपूर्ति और नए कर्त्तव्यों का हस्तान्तरण, विकास तथा विस्तार देख लिया हो। जब अपना ही लड़का जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस की तरह नई परम्परा कायम करके नया कीर्तिमान स्थापित करेगा तो क्या उससे माँ-बाप और खानदान की इज्जत नहीं बढ़ेगी ?

सीतानाथ ने अपना विचित्र तर्क प्रस्तुत कर दिया, "अरे शैलजा की अम्मा, किस चक्कर में पड़ी हो ? लड़के के दाढ़ी-मूँछ काटने से क्या मैं मर जाऊँगा ? एकदम वाहियात बात। समय स्थिर रहने पर समाज भी स्थिर रहता है, तब बहुत-सी पुरानी बातें सड़े हुए पानी और कीचड़ की तरह एक जगह जमी रहती हैं। बहुत से अन्धविश्वास हाथ-पैर तोड़कर हमारे अन्दर बैठ जाते हैं। अब समय तेजी से बदल रहा है, शैलजा की अम्मा! ठीक बहते दरिया के पानी की तरह नए-नए ख्यालात आ रहे हैं। तालीम बहुत-सी पुरानी बातों को खत्म कर देगी। ऐसे समय में लकीर का फकीर बनने में क्या फायदा ? आज तो अंग्रेजी हुकूमत का वह सूरज डाँवाडोल है,

जिसे हम समझते थे कि कभी डूब नहीं सकता। नए विचारों और नई हिम्मत से विदेशियों को हराने के लिए हमारा लड़का आगे बढ़ रहा है, इसे क्या कम समझती हो ?"

गला खैखारकर, हाथों को हिलाते हुए उन्होंने नाटकीयता से कहा, "फिर जवाहरलाल नेहरू को देखो। बड़े नेता हैं, विलायत में पढ़े हैं, जब उनके बाप मोतीलाल जिन्दा थे, तभी इंग्लैंड में उन्होंने

दाढ़ी-मूँछें क्या बनवाई कि आज भी कायम हैं। और उनके विलायत से आने के बाद भी उनके पिता कई सालों तक जिन्दा रहे। और हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्रजी, श्रीकृष्णजी और श्रीशंकरजी के दाढ़ी-मूँछ वाले चित्र कभी देखे हैं ? यह केशव रूप, प्रभु रूप है, जो सर्वव्यापी और अजर-अमर है। दाढ़ी-मूँछ सफाचट करने पर चिन्ता करने की क्या जरूरत है जी।" वह अन्त में ठहाके लगाने लगे।

जब उन्होंने देखा कि जीरादेवी, आनन्दी यहाँ तक कि शैलजा पर भी उनकी बातों का असर नहीं है, बल्कि नापसन्दी से मुँह दूसरी ओर फेर लिए गए हैं, तो वहाँ से खिसक कर अपने कमरे में चले गए। तीनों औरतें कुछ देर तक घुमा-फिराकर आलोचना और विरोध जैसी बातें करती रहीं। परन्तु उसके बाद किसी ने भी इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं की नीलेश से। और अन्त में यही सोचकर सन्तुष्ट हो गई कि चलो, कैंची में कोई बात नहीं।

नम्रता ने भी अपने बरामदे से नीलेश में आए बदलाव को देख लिया था। इन दिनों वह काफी परेशान रहती थी। अक्सर कमरे में देर तक चुपचाप बैठी रह जाती या खुली छत पर जाकर आकाश को निहारती रहती। हर पल उसका आशा का होता। कोई आवाज, कोई खट-पट उम्मीद की धड़कन प्रतीत होती। उसने रास्ते में काँटे-भरे झाड़ी-झंखाड़ स्वयं साफ कर दिए थे, फिर भी यदि किसी को समझ में नहीं आता या नहीं सूझता तो वह क्या करे? ज्वार में उठी लहरें पछाड़ खाकर नीचे गिरकर खंड-खंड

हो जातीं। उसके ख्यालों में और दिल में निरन्तर एक समर्पित ज्योति जल रही थी। साधना और प्रतीक्षा का कोई अन्त नहीं था। क्या इसका कोई असर नहीं था दूसरी ओर कोई हल्का तरंग भी नहीं ?

लेकिन वह अपने को रोक नहीं सकी। इस समय नजदीक से देखना और आवाज सुनना कैसा लगेगा ? उसकी उत्सुकता शर्म-संकोच और अभिमान पर हावी हो गई। उस दिन मन्दिर की उसकी चहचहाहट कहाँ चली गई है? क्या उसकी कोई साकार मूर्ति अपने अन्दर बनती देखकर वह अपने को सँभाल नहीं पा रही है ? और आज भी जब वह पाठ्य-पुस्तक लेकर जाएगी तो उसको ठीक से देख पाएगी या कुछ पूछ पाएगी? एसपीएसएसपीपी

सीतानाथ के कचहरी जाने के बाद वह गई। हाथ में पुस्तक थी। दक्षिण बरामदे में आनन्दी और सुरेश बैठे थे।

"आओ, आओ, बिटिया, अब तो तुम आती ही नहीं। हाँ, अब तुम बच्ची भी तो नहीं रही। गम्भीर तो रहना ही चाहिए। बहिनजी कैसी हैं? आओ, बैठो।"

आनन्दी के कहने पर वह चारपाई पर बैठ तो गई, किन्तु उसके चेहरे की मुस्कुराहट फौरन गायब हो गई, गोया बिजली का स्विच 'ऑफ' कर दिया गया हो। उसे यहाँ आने का बड़ा अफसोस होने लगा। लोगों की तेज, अप्रिय निगाहों के बीच कैसे जीवित रह सकेगी वह ?

कुछ क्षणों के बाद ही वह उठ खड़ी हुई, "चाचीजी, जा रही हूँ... बाद में आऊँगी।"

सुरेश कहाँ चुप बैठनेवाला था, "दीदी, आप भैया से कुछ पूछना चाहती हैं? वह क्या बाहर अपने कमरे में बैठे हैं। वह आजकल खूब पढ़ाई कर रहे हैं। रात में देर तक पढ़ते रहते हैं। जाइए न। वहाँ आप देखेंगी कि वह खद्दर में सुशोभित हैं और दाढ़ी-मूँछ सफाचट ।"

"क्या आयँ-बायँ बोलता रहता है ? अपनी औकात नहीं देखता।"

नम्रता जरूर कुछ शरमा गई, लेकिन शीघ्र ही अपने को सँभालकर उसने आनन्दी से कहा, "नहीं चाचीजी, सुरेश की बातें मुझे अच्छी लगती हैं।" फिर सुरेश की ओर मुखातिब होकर, "सुरेश, अचानक मुझे एक काम याद आ गया है, बाद में कभी आऊँगी।"

यह सिर झुकाकर प्रस्थान कर गई। जब वह गलियारे से गुजर रही थी, नीलेश कमरे में उठकर घर के भीतर जाने को बढ़ा था। वह दरवाजे पर खड़ा हो गया। उसका मुँह नम्रता को देखकर पीला पड़ गया। वह भी ठिठककर खड़ी हो गई। उसने सिर घुमाकर अजीब कुतूहल और जिज्ञासा-भाव

से नीलेश को देखा। उसके होंठों पर एक क्षण के लिए मुस्कुराहट की एक क्षीण-सी शरारती हरकत हुई, फिर मुड़कर वह जाने लगी।

"विनम्रता..."

नीलेश की क्षीण पुकार सुनकर उसके पाँव रुकने, सिर घूमने और होंठ हिलने को हुए, लेकिन उसके अन्दर उठी भावनाओं ने उसे इतना अशक्त कर दिया था कि यह कुछ भी न कर सकी। यह सही है कि अपने प्रिय को आहत करके स्वयं आहत होने से प्रिय से निकटता और बढ़ जाती है और उसकी मूर्ति हृदय में और गहरे इस तरह धँस जाती है कि निकाले नहीं निकलती। तब पीड़ा में छटपटाने से सुख भी मिलता है और वह पीड़ा एक क्षण के लिए बरदाश्त भी नहीं होती। क्या इसीलिए वह अपने कमरे के एकान्त में जाकर चुपचाप बैठकर अपने को धिक्कारती हुई, उसी के बारे में सोचती रही, उससे मन-ही-मन बोलती-बतियाती, हँसती-रोती, उपालम्भ देती, सिर धुनकर क्षमा माँगती और उसके चेहरे को सहलाती रही !

नीलेश की कठिनाइयाँ कम न थीं। उसने पहली बार नम्रता के किसी व्यवहार से अपने को इतना अपमानित महसूस किया। यह कमरे में ही

लौटकर अतिशय क्रोध और दुःख की बेचैनी में देर तक टहलता रहा। कभी कुछ देर के लिए बीच में बैठ भी जाता। जब इस तरह जलने-उबलने से कोई हल नहीं निकला तो अन्ततः इस संकल्प के साथ शान्त हुआ कि वह हर बात से ध्यान हटाकर देश और पार्टी के काम में ही सारी शक्ति लगा देगा, क्योंकि यही उसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है और अन्य बातें गौण।

11

एक दिन जब वह 'क्लास' में पहुँचा तो अपने एक सहपाठी गोपालराम को कुर्सी पर टेढ़े-तिरछे विद्रोही भाव से बैठे हुए देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। यूँ तो वह स्वभाव से चुप्पा और सबसे कटकर रहता था किन्तु पढ़ने में तेज और हाई स्कूल में प्रथम श्रेणी में पास हुआ था। कक्षा में हिन्दी भाषा और साहित्य का सर्वाधिक तेज विद्यार्थी और नीलेश के साथ स्कूल अन्ताक्षरी टीम का सदस्य भी। प्रतियोगिताओं में समुचित आरोह-अवरोह और नाटकीयता के साथ सवैया-कवित्त सुनाते समय समा बाँध देता। विशेष रूप से जब वह कुछ प्रसिद्ध कविताओं की अन्तिम पंक्तियों पर आता, जैसे 'आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिए' अथवा 'काम अबला-सी, कलाधर की कला-सी, चारु चम्पक लता-सी, चपला-सी चित चोरतीं'- तो हजारों श्रोताओं की करतल ध्वनि से ऐसा लगता, कोई छत पीटी जा रही हो।

सुरंजन शास्त्री उसे समझा रहे हैं, "बिना बताए आपको इस तरह क्लास नहीं छोड़ना चाहिए था। कोई बात थी तो रास्ता भी निकल सकता था। कम्युनिस्टों से तो हमारा संयुक्त मोर्चा था ही, मगर उन्होंने हमारे सदस्यों के बीच तोड़-फोड़ शुरू कर दी। मोर्चा टूट गया। समाजवाद तो हम भी चाहते हैं, क्रान्तिकारी हम भी हैं, मगर किसी दूसरे देश का पिछलग्गू बनना नहीं चाहते। अनैतिक हिंसात्मक राजनीति में भी हमारा विश्वास नहीं। आजादी की इस लड़ाई में हम गांधीजी के साथ हैं, इस समय हमें हर हालत में आजादी मिलनी ही चाहिए।"

"आजादी कौन नहीं चाहता, लेकिन आजादी की लड़ाई छेड़ने का यह समय नहीं। दुनिया की एकमात्र मजदूर सरकार को बचाना कर्त्तव्य नहीं?

इस समय हमें कोई भी काम ऐसा नहीं करना चाहिए, जो हिटलर विरोधी युद्ध प्रयत्नों को नुकसान पहुँचाए। मित्र देशों की हार से रूस की मजदूर-सरकार भी नष्ट हो जाएगी और जर्मनी की नस्लवादी व्यवस्था दुनिया में अन्धकार फैला

देगी।" गोपालराम की तैश-भरी आवाज में अत्यधिक कटुता भी थी।

"मित्र देशों की विजय का इन्तजार करेंगे तो ब्रिटिश हुकूमत और भी मजबूत होकर उभरेगी, फिर वह क्या आजादी देगी ?"

"विजय से मित्र देशों के साथ सोवियत रूस भी मजबूत होगा, जो निश्चित रूप से अंग्रेजों पर दबाव डालेगा कि भारत तथा अन्य उपनिवेशों को वह फौरन स्वतन्त्र कर दे।"

"देखिए, कम्युनिस्ट पार्टी की अन्य नीतियों से भी हमारी असहमति है। यह बात अच्छी तरह समझ लीजिए कि फिरंगी हुकूमत पर हमारा कतई विश्वास नहीं है। झूठे-झूठे वादे करके उसने देश में जो भयंकर दमनचक्र चलाया है, उसे हम भूल नहीं सकते। साथ ही यह देश के टुकड़े करने का षड्यन्त्र कर रही है। पृथक निर्वाचन प्रणाली द्वारा हिन्दू-मुसलमान को बाँटने का उसने पक्का इन्तजाम कर दिया है। अछूतों के बारे में उसकी यही योजना थी और देशी रियासतों का भी एक अलग टुकड़ा तराशना चाहती है वह। उसके लिए और कम्युनिस्टों के लिए भी वे विभाजन आत्म-निर्णय के जनतान्त्रिक अधिकारों के तहत होंगे, परन्तु हिन्दुस्तान के लिए तो विनाशकारी ही सिद्ध होंगे। इस देश के लोग एक-दूसरे से इस सीमा तक जुड़े हुए हैं कि इस तरह की कोई कोशिश शान्तिपूर्ण ढंग से नहीं सफल हो सकती और न ही शान्ति स्थापित कर सकती है-बल्कि बड़ा खून-खराबा होगा उससे। राष्ट्रीयता, अटूट राष्ट्रीय एकता और पूर्ण स्वतन्त्रता हमारे देश की जरूरत है, और हमें हर भुलावों को छोड़कर इसी के लिए काम करना चाहिए।"

"और अछूतों के लिए आपकी क्या योजना है ? इस आजादी से हम अछूतों को क्या मिलेगा ?" गोपालराम का मुँह गुस्से में विकृत हो गया।

सुरंजन शास्त्री ने शान्त स्वर में कहा, "देखिए गोपालरामजी, आपका इशारा हम समझते हैं, पर इस तरह की बहस से कोई फायदा नहीं। ऐसी ही समस्याओं के कारण हम समाजवाद की बात करते हैं। सदियों से हम गुलाम हैं और हजारों वर्ष से देश में गरीबी और अछूत समस्या है, इसीलिए ये दोनों आगे भी कायम रहेंगी, इसे हम नहीं मानते। हम अपने प्रखर विचार और निरन्तर परिश्रम द्वारा जातिवाद, सम्प्रदायवाद, अस्पृश्यता, गरीबी, अन्याय सबकुछ मिटा देंगे। हम देश में पोंगू, पेटू और अजगरी व्यवस्था नहीं चाहते। हमें निजी स्वतन्त्रता के ख्वाबों में रहनेवाले आरामतलब और चालाक लोग नहीं चाहिए। हम ऐसा जनतन्त्र चाहते हैं, जिसमें सभी परिश्रम करें और एक-दूसरे की स्वतन्त्रता, एक-दूसरे के विकास के लिए कार्य करें।"

वह उठ खड़े हुए, "मुझे एक जरूरी मीटिंग में जाना है। फिर बाद में बात करेंगे। मतभेद कोई बुरी चीज नहीं है। अलग मत रखकर हम एक-दूसरे के दुश्मन नहीं। आप आया कीजिए मतभेदों के साथ ही। आप लोग चाहें तो कुछ देर बैठकर बातचीत कीजिए, जब जाना हो, कमरे में ताला लगाकर चाभी होटल मालिक गुप्ताजी को दे दीजिएगा।"

सुरंजन शास्त्री को छोड़ने वे दोनों बाहर तक गए फिर वापस कमरे में आकर बैठ गए। कुछ देर पहले बारिश हुई थी लेकिन हवा में अब भी भीगी भीगी ठंडक थी। आकाश में बादल एक-दूसरे पर जमकर पर्वतीय चट्टानों की तरह नजर आ रहे थे।।

"कहाँ रहते हो? वहीं पर न?" नीलेश ने पूछा।

"अरे नहीं, वह जगह तो कभी छोड़ दी। मैं अब कचहरी के पास रामपुर में एक कमरे में रहता हूँ। एक कमरेवाला यह मकान कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यालय है। पार्टी ने दफ्तर का काम मेरे ही जिम्मे छोड़ रखा है। दस रुपए महीने पार्टी की ओर से मिलते भी हैं... खैर छोड़ो।" 510

"राजनीति में जाने का विचार है ?"

"अरे नहीं, मैं क्या राजनीति में जाऊँगा ? राजनीति तो तुम्हारे जैसे बड़ों के लिए है।" गोपालराम हँस पड़ा।

"ऐसा क्यों ?" नीलेश ने भोलेपन से पूछा।

"यार, मैं चमार जाति का हूँ, यह तुम जानते ही हो। हमारी तरह ही करोड़ों अछूत और गरीब जातियाँ हैं, जो एकदम निरक्षर, गँवार और नासमझ हैं। ये लोग राजनीति क्या करेंगे? खैर, इसे छोड़ो, मैं अपनी बात बताता हूँ। जब समाजवादी विचारों से मेरा परिचयं हुआ तो मुझे लगा कि देश से गरीबी और शोषण को मिटाने के लिए मेरा राजनीति में जाना बहुत जरूरी है। मेरे राजनीति में प्रवेश किए बगैर गरीबों का उद्धार नहीं होगा!" अचानक वह अपने मजाक से इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी ठहाकेनुमा हँसी के कई चिकने, हवाई टुकड़े एक-दूसरे के सहारे उछलते हुए देर तक उसके मुँह से बाहर आकर गूँजते रहे।

"पहले तुम कांग्रेस-समाजवादी थे ?"

गोपालराम कुछ क्षण सिर पर हाथ रखकर सोचता रहा। फिर उसने सवाल किया, "यार नीलेश, एक बात बताओ, हम लोग तो गँवार और निरक्षर हैं, विद्यालयों और राजनीतिक दलों में 'नहीं' के बराबर हैं, लेकिन सर्वव्यापी बड़ी जातियों के शिक्षित लोग हर जगह अपनी-अपनी जातियों के अपने कुएँ में ही क्यों रहते हैं? अपने लोगों के साथ ही खाते-पीते हैं, घूमते-फिरते, बोलते-बतियाते हैं, राजनीति करते हैं। अगर आजादी मिली तो निश्चित ही बड़े सम्पन्न लोगों का ही शासन जरूर चलेगा। फिर कैसी व्यवस्था बनेगी?" वह फिर हँसने लगा।

कुछ देर चुप रहकर उसने आगे कहा, "मैं तो हर पार्टी के लोगों के बीच में आता-जाता हूँ। बड़ी-बड़ी ऊँची बातें करनेवालों के मुँह लटक जाते हैं, जब मेरे हाथ से छुआ पानी पीने की कोई मजबूरी आ जाती है। साथ में खाने-

पीने के मामलों में तो और भी विकट स्थिति होती है। तब ज्ञात होता है कि बहानेबाजी के तर्क प्रस्तुत करने में हमारे देश के लोग सर्वोपरि हैं। यार, बचपन में और स्कूल में भी ये बातें नहीं आती थीं, लेकिन बढ़ती उम्र और बढ़ते ज्ञान के साथ यह भेदभाव क्यों बढ़ता जाता है। जितना ज्ञानी उतना ही ढोंगी, स्वार्थी और संकीर्ण। हर जगह है यह चीज, कम्युनिस्ट पार्टी में कुछ कम है। राहुलजी कहते हैं कि कम्युनिस्टों को सभी जातियों और सम्प्रदाय के गरीबों से मेलजोल बढ़ाना चाहिए, साथ में बैठकर खाना चाहिए, सबके त्योहारों में शामिल होना चाहिए, जातियों और सम्प्रदायों के लोगों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों को बढ़ावा देना चाहिए, धार्मिक और सामाजिक अछूतपन को दूर करने के लिए आन्दोलन करना चाहिए। कितने कम्युनिस्ट हैं ऐसे ?" "यह बड़ा और पुराना देश है, कई तरह की जकड़बन्दियाँ हैं यहाँ। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से

धीरे-धीरे टूटेंगी। कुछ टूट भी रही हैं।" नीलेश ने धीमे स्वर में कहा। "अपवाद की तरह। अक्सर शहर के अनेक समाजवादी या कम्युनिस्ट अपने गाँव में जाकर अपने गरीब या अछूत कामरेड के लिए मालिक और बाबू नहीं बन जाते ? क्या वे अपने गरीब कामरेड के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं? पूँजीपति और मजदूर का भेद तो अलग किस्म का है, लेकिन सामाजिक और धार्मिक अस्पृश्यता भयंकर है, मर्मान्तक है। पूँजीपति और सामन्त के खिलाफ तो किसान-मजदूर एक हो सकते हैं सामान्य समाज में। लेकिन अस्पृश्यता के समाज में जनता के बीच एकता कैसे स्थापित की जा सकती है ?"

नीलेश उसका कोई उतर नहीं दे सका, बस उसकी ओर अविश्वसनीयता के आश्चर्यपूर्ण भाव से देखता रहा।

"यह जानता हूँ कि मैं ये बातें बेकार ही कर रहा हूँ। मैं तो किसी सन्तोष के लिए पार्टी में आ गया था, पर मुझे अपने परिवार पर अन्याय ही लगता है। यहाँ इंटर की पढ़ाई नहीं है और बनारस-इलाहाबाद जाकर आगे पढ़ने की हैसियत मेरी नहीं है। कभी-कभी खयाल आता है कि अगर निरक्षर रहता तो अच्छा होता, यह सब समझने की बुद्धि तो नहीं आती! मेरे बाबू और माई सीधे-सादे हैं, वे डॉट-डपट, लात-जूता खाते रहते हैं, अभाव में

गिड़गिड़ाते रहते हैं, लेकिन उन्हें गुस्सा नहीं

आता। सीधे-सादे मेरे बाबू हर दुर्गति भुगतते हुए भी खेत-मजदूरी करते हैं। मेरी माई बड़े घरों में बच्चा जनाने तथा और काम करती है तो उसे रोज पके हुए बासी भोजन की मजदूरी और फसल होने पर कुछ पसेरी अनाज मिल जाता है। मुझे अचम्भा होता है कि कैसे ये मेरी पढ़ाई के लिए हर महीना दस रुपए भेज देते हैं और मैं बेहया की तरह लिए जाता हूँ। खैर, मैं इन सब बातों पर सोचता भी नहीं हूँ और न कभी उनकी दशा देखने गाँव ही जाता हूँ। तुम मेरा गुस्सा जानना चाहते हो ? मैं सबसे ईर्ष्या करता हूँ, सबसे घृणा करता हूँ, दुनिया के सारे 'राक्षस' और सारे 'देवता' भी मिलकर इतना गुस्सा नहीं कर सकते !"

वह बेतहाशा एक अस्वाभाविक और अतार्किक हँसी से दोहरा हो गया। नीलेश सन्न होकर उसे देखता रहा। चुप होने के बाद गोपालराम ने नीलेश को घूरते हुए सवाल दागा, "तुम क्या बता सकते हो कि इस देश में वास्तविक आजादी और वास्तविक जनतन्त्र क्या है ?"

नीलेश ने कुछ सोचकर कहा, "गोपाल भाई, तुम्हारी भावनाएँ मैं समझ रहा हूँ, लेकिन सिर्फ ईर्ष्या, घृणा और गुस्सा करना पलायन का दूसरा रूप नहीं है? जैसाकि सुरंजन शास्त्री कहते हैं, यह आत्मघात और आत्म-पराजय का रास्ता नहीं है? घृणा और क्रोध जायज हैं, लेकिन उनको कारगर, प्रभावशाली, शक्तिशाली और जनोपयोगी बनाने के लिए जरूरी है कि एक बड़े संघटन के रचनात्मक कार्यों द्वारा जनता तक पहुँचा जाए, उनको एकबद्ध किया जाए। उनको बदलाव के लिए शिक्षित और तैयार किया जाए। सुरंजन शास्त्री शायद ठीक ही कहते हैं कि हमारे देश में घृणा और गुस्सा के अनेक कारण हैं, लेकिन किसी जनकल्याणकारी, क्रान्तिकारी सिद्धान्त के द्वारा ही क्रोध की उपयोगिता सिद्ध और सार्थक हो सकती है, जिसका रास्ता है अपार धैर्य, निरन्तर परिश्रम, अगाध आशा और विश्वास और सिद्धान्त के लिए बेहिचक त्याग और कुर्वानी। विचारहीन, शक्तिहीन गुस्सा आत्मघाती और लक्ष्यघाती दोनों ही हैं।

आखिर कौन बदलेगा इस दुनिया को ? हमी लोगों में से ही तो अनेक आगे आकर चुनौतियाँ स्वीकार करेंगे? खैर, इस बात को यहीं छोड़ दें, काफी देर हो रही है। मैं तुमसे एक अनुरोध करूँगा।"

"बोलो..." गोपालराम हँसने लगा।

"तुम्हारा घर दूर है और मेरा घर नजदीक। चलो हमारे घर, वहाँ भोजन करेंगे..."

गोपालराम का चेहरा फक पड़ गया। फिर चेहरे पर क्रोध की लाली दौड़ गई, "क्या मुझ पर दया करके अपमानित करना चाहते हो ? जब तुम लोग मेरे यहाँ नहीं खा सकते तो मैं तुम्हारे यहाँ क्यों खाऊँ ?"

"ऐसी बात न करो, गोपाल। अन्ताक्षरी के दिनों में हम एक साथ खा-पी चुके हैं..." "स्कूल के दिनों की बात छोड़ो। मैं जानता हूँ कि तुम मेरे गाँव में, मेरी झोंपड़ी में चलकर मेरी माँ के हाथ का बनाया हुआ खाना नहीं खा सकते..."

"गोपाल !" नीलेश अपने स्वभाव के विरुद्ध उत्तेजित हो गया, "यह झूठ है, नासमझी है, लांछन है। मौका आने पर इसकी परीक्षा हो जाएगी। जिस दिन कहोगे, मैं तुम्हारे गाँव चला चलूँगा...।" "ठीक है, किसी दिन चलेंगे-बात पक्की !" गोपालराम हँसने लगा।

वे उठ खड़े हुए। कमरे में ताला लगाने के बाद चाभी होटल मालिक के सुपुर्द करके जब वे बाहर पहुँचे तो आसमान बरसने बरसने को हो रहा था और घर आते-आते हलकी झींसी भी पड़ने लगी।

निर गोपालराम को नीलेश ने अपने बाहरी कमरे में बिठाया। तत्पश्चात भीतर जाकर आनन्दी से दो थाली खाना भेजवाने को कहा और बाहर आते समय दो लोटे पानी लेता आया, जिनसे दोनों ने बाहर जाकर हाथ-मुँह धोए। अन्त में वे कमरे में एक मेज के दोनों ओर कुर्सियों पर बैठ गए। कुछ देर बाद सुरेश ने बारी-बारी से उनके सामने खाने की थालियाँ लाकर रख दीं। अलग

कटोरियों में आलू-परवल और चने की रसेदार सब्जी और दो छिछली तश्तरियों में खडेरा (बेसन की बर्फीनमा तली सब्जी), पापड़, तिलीडी, चटनी, हरी मिर्च और कटी प्याज तथा नींबू । गमकौआ चावल के दो कडे, लघु स्वपों पर दो-दो रोटियाँ भी रखी थीं। थाली की दाल में पड़े घी. सब्जी के शोरवे की प्याज-लहसुन-लौंग-तेजपत्ता की मिली तीखी गन्ध और फरहर श्वेत भात की मिश्रित खुशबू कमरे और बाहर के बरामदे में भर गई।

"सुरेश, दोनों लोटे खाली हैं, इनमें पानी लाओ। अलग से दो गिलास भी। और यहीं आस-पास खड़े रहना, घटने पर... अरे बीच-बीच में पूछ लिया करना..."

वे खाने लगे। देर हो गई थी और वे भूखे थे। भोजन करने की एक सर्वव्यापी, सुपरिचित-सी आवाज आने लगी। बुजुर्गों में तो यह बात नहीं है, परन्तु नीलेश और उसके भाई-बहनों के बीच एक अनोखा दृष्टिकोण विकसित हो गया है, जिसका श्रेय मुख्य रूप से वीरेश और कुछ हद तक शैलजा को दिया जाना चाहिए। शुरुआत वीरेश ने ही की थी। खाते समय यदि किसी के मुँह से आवाज निकलती-चप-चप, चापुड़-चापुड़ या सुड़-सुड़-तो वह क्रोध से देखकर दूसरी ओर मुँह कर लेता अथवा वहाँ से उठकर चला जाता। बाद में शैलजा भी उसके साथ शामिल हो गई। जब कोई रिश्तेदार या बाहरी व्यक्ति आता तो सबसे पहले वे यही देखते कि आगन्तुक के खाने का क्या ढंग है। आवाज क्या है। वैसा व्यक्ति उनके क्रोध, आलोचना और हँसी का विषय बन जाता। ऐसे रिश्तेदारों और परिचितों की एक पूरी सूची थी उनके पास। यदि किसी भाई या परिवारजन के मुँह से आवाज निकलती तो वे अपनी-अपनी थालियाँ उठाकर दूसरी जगह चले जाते। इस मामले में चाचा उमानाथ और सरोस्ता बुआ उनके बीच बहुत बदनाम थे। वीरेश तो उनके साथ भोजन कर ही नहीं सकता था।

"चाचा और बुआ खाना चबाते क्यों नहीं? कोई चीज दाँतों के नीचे ले ही नहीं जाते, जीभपर रखकर चप-चप करते हुए घोट जाते हैं। मुँह में कौर रहता है और बाऊ-बाऊ बोलने भी लगते

"इसीलिए पेट खराब रहता है इनका।"

पहले नीलेश और धीरेश भी जल्दी-जल्दी मौखिक शोरगुल के साथ अपना भोजन निबटाते थे, लेकिन भाई-बहन की क्रोध-भरी टिप्पणियों, व्यंग्य-बाणों तथा असहयोग से उनमें काफी सुधार हो गया था। आश्चर्य है कि नम्रता से निकटता के साथ ही नीलेश के अन्दर अजीब-सा एक मिथ्या खयाल उभरा कि असभ्यता से इस प्रकार भोजन करनेवाला व्यक्ति जननायक या किसी खूबसूरत स्त्री का प्रेमी कैसे बन सकता है!

इस समय भी नीलेश प्रशंसनीय स्टाइल से भोजन कर रहा था। वह भोजन का ग्रास बड़े कायदे से भीतर डालता और दोनों होंठों को जैसे सूई-तागे से सिल करके ऊपर-नीचे मुँह चलाने लगता। लेकिन गोपालराम ने चपचपाहट की हद कर दी थी, जिसकी सूचना सुरेश ने भीतर जाकर दे दी थी, तभी शैलजा गलियारे से दो बार झाँककर अपने कानों से ही सबकुछ सुन गई।

नीलेश अपनी दीदी की हरकत का अर्थ समझ गया। उसे पहले बड़ा गुस्सा आया, फिर हँसी आने लगी। तत्पश्चात आत्म-नियन्त्रण के लिए गोपालराम की तश्तरी में से दो-चार तिलौड़ी तथा उसकी थाली में से एक चिटुकी भात लेकर अपनी थाली में रखते हुए बोला, "यार, तुम तो चुप्पा मेहमान बन गए हो। कुछ तो बोलो।"

गोपालराम ने हँसने की कोशिश की, फिर खाते-खाते ही बताया कि वह डाक-तार विभाग की क्लर्की के इम्तहान में बैठना चाहता है, क्योंकि आजादी पता नहीं कब मिलेगी, तब तक वह स्वयं बूढ़ा हो जाएगा, उसके माँ-बाप मर-बिला जाएँगे और मिल भी गई तो उसके परिवार को क्या मिलेगा ? गनीमत तो यह है कि माँ-बाप की शादी की जिद उसने नहीं मानी, जबकि उसके समाज

में काफी छोटेपन में ही शादी कर दी जाती है।

नीलेश ने उसकी आँखों में ऐसी उदासी और व्यथा पहले कभी नहीं देखी थी। भोजन के बाद वह एक-दो दिन में मिलने का वादा करके वहाँ से जल्दी-जल्दी चला गया।

परन्तु अन्ताक्षरी की लोकप्रियता के कारण वीरेश और सुरेश, दोनों ही गोपालराम को जानते थे, इसलिए घर के अन्दर उसके पहुँचते ही आनन्दी ने गुस्साई आवाज में कहा :

"क्या ए नीलेश बाबू, तुम तो सबका जाति-धर्म चौपट कर दोगे...।"

नीलेश का चेहरा पहले फक पड़ गया फिर क्रोध से तमतमा गया। उसने सिर घुमाकर इधर-उधर देखा, लेकिन वीरेश तो पहले से ही नहीं था। सुरेश भी वहाँ से गायब ! उसने होंठ सिकोड़कर कहा:

"तुम तो व्यर्थ ही नाराज हो गई हो, अम्मा। किसने लहरा लगा दिया है। राधास्वामी सम्प्रदाय के लोगों को तो जाति-वाति से कोई मतलब नहीं रखना चाहिए।"

आनन्दी का मुँह फूल गया, "तुम लोग दातादयाल तक क्यों पहुँच जाते हो ? तुम्हारे बाबूजी और चाचा भी जो चाहे कह देते हैं। हम लोग तो सनातन धर्म पर कुछ नहीं कहतीं। उल्लू थोड़े ही हूँ कि कुछ नहीं समझती !"

"बनारस में जब गुरु महाराज आए थे तो भंडारा में मैंने देखा कि सभी जातियों के लोग एक साथ बैठकर खा-पी रहे हैं। सीमेंट के एक छोटे-से साफ-सुथरे सूखे हौज में लँगोटा पहनकर दो तगड़े व्यक्ति नंगे बदन उछल-उछलकर आटा माँड़ रहे हैं। उसी आटे की रोटी सभी खाते थे।"

"जहाँ दातादयाल जाते हैं, रहते हैं, वहीं तीर्थ बन जाता है। सबकुछ पवित्र हो जाता है। सदा प्रेम का निर्झर बहता रहता है। वह गाँव-गँवई, घर-

परिवार थोड़े ही है, जहाँ ऊँच-नीच, हमारा-तुम्हारा होता रहता है। तुम लोग चाहते क्या हो कि सबकुछ छोड़ दिया जाए, सब चौपट हो जाए ? फिर तुम्हीं लोग सँभालो, आनी-बानी क्यों मारते हो ?"

आनन्दी आँखों पर आँचल रखकर रोने लगी। नीलेश का चेहरा फक पड़ गया। यह सब सुनकर जीरादेवी दौड़ी-दौड़ी आईं। उन्होंने नीलेश को समझाया :

"ए बाबू, दातादयाल के बारे में कुछ नहीं कहना चाहिए। वह परम पिता हैं, परम गुरु हैं। तुम लोग लेंड़ी-बूची हो, तुम्हारे पास बुद्धि-अकिल तो है नहीं, जबान से अंड-बंड निकल भी जाता है तो वह क्षमा कर देते हैं। आगे से कुछ न कहना..." फिर आनन्दी से कहा, "ए दुल्हन, नीलेश मूरख-अनाड़ी हैं, समझ होती तो ऐसी बातें कहते ? लड़का-बच्चा की बात से दुखी नहीं होना चाहिए। हे दातादयाल, परम गुरु, लड़का नादान है, इसको क्षमा करें..." उन्होंने दोनों हाथों को आँचल के भीतर जोड़कर आकाश की ओर देखने के बाद सिर नवाया।

"दादी, मेरा मतलब वह नहीं था, जो अम्मा ने समझा," नीलेश शीघ्रता से बाहर चला गया,

ताकि बात आगे न बढ़े।

सीतानाथ के कचहरी से आने पर जब शैलजा नाश्ता लेकर उनके पास गई तो उन्होंने आनन्दी की तबीयत का हाल पूछा। तत्पश्चात शैलजा ने नैहर आई लड़की की सावधानी, कुशलता और गम्भीरता से किस्सा इस ढंग से सुना दिया कि वह गरज पड़े, "क्या नीलेश ने राधास्वामी के खिलाफ कुछ कहा ? बुलाओ तो उन्हें और यह सुरेश छँटकी-भर तो है, वह क्या इधर की बात उधर और उधर की बात इधर किए रहता है। उसे भी बुलाओ।"

यह कहना कठिन है कि सीतानाथ के कथन का उद्देश्य आनन्दी को खुश करना था या लड़कों की नसीहत करना। वे दोनों ही घर में नहीं थे। तभी जीरादेवी आकर बोलीं :

"ए बाबू, परम पिता के खिलाफ कहने से उनका क्या बिगड़ेगा ? आसमान पर थूकने से थूक लौटकर उसी पर तो गिरेगा। हम सभी उनके बच्चे हैं, मूरख हैं, और नीलेश बाबू तो बच्चों के

बच्चे हैं, इनको तो सबसे पहले माफ कर देंगे परम गुरु। बात यह है बाबू कि नीलेश बाबू ने दूसरी जाति के एक दोस्त को खाना खिला दिया। यह सब सोचने-समझने की उनकी उम्र, अक्ल कहाँ है! और यह भी उन्होंने ठीक ही कहा है कि दातादयाल के दरबार में कोई भेदभाव नहीं किया जाता।"

"अरे कैसा भेदभाव, चाची।" सीतानाथ ने उत्साह-भरी ऊँची आवाज में कहा, "प्रभु ने तो हर प्राणी को अपने हाथ से बनाया है, फिर कैसा भेदभाव। और दोस्ती में जात-पाँत कहाँ देखी जाती है, चाची ! और प्रभु रामचन्द्र ने शबरी के बेर खाए थे कि नहीं? और भगवान श्रीकृष्ण ने भी बिदुर के घर जाकर शाक खाया था। मन की शुद्धता, मन की ऊँचाई सबसे बड़ी चीज है। अगर तुम्हारा मन गन्दा है, दूसरे की औरत पर गन्दी नजर रखते हो, रोज रंडी के यहाँ जाते हो, शराब पीते हो, और पाप करते हो- फिर खूब साफ-सुथरे रेशमी कपड़े पहनकर और रामनामी ओढ़कर मन्दिर जाने पर तुम कहाँ के शुद्ध हुए। और एक गरीब आदमी, हरिजन, भिखमंगा शुद्ध मन से मन्दिर में जाकर प्रार्थना करेगा तो उसे पूरा पुण्य मिलेगा। हरिजन, अछूत, गरीब कोई भी हो, मैं उसका मन्दिर से स्वागत करूँगा। मैं रोज ही घर की नाली को साफ करता हूँ, शौचालय की घड़ा-पर-घड़ा पानी डालकर सफाई करता हूँ तो क्या मैं अछूत हो जाऊँगा? ये सभी लोग भी हमारी तरह ही हाड़-मांस और गुण-दोष वाले लोग हैं। ठीक है न चाची!"

"अरे हाँ, बाबू," जीरादेवी फौरन दूसरी ओर मुँह करके वहाँ से खिसकने लगीं, क्योंकि सीतानाथ ने समस्या को ऐसे दलदल में ले जाकर उनका समर्थन लेना चाहा था, जहाँ जाने की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। वह तो कुछ महान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वहाँ आई थीं, जैसे अपनी

बहू आनन्दी की आलोचना के अवसर का उपयोग करने, उससे अपने को अधिक समझदार और अनुभवी राधास्वामीवादी साबित करने और पारिवारिक मतभेद या संकट के समय सुलह-समझौता कराने की अपनी सुपरिचित भूमिका को निभाने।

सीतानाथ ने जो कुछ कहा था, उस पर उनका विश्वास भी था, इसीलिए नीलेश के व्यवहार में कुछ अनुचित भी नहीं लगा उन्हें। लेकिन अब उन्हें खयाल आया कि अपने कथन से उन्होंने आनन्दी को शायद नाराज भी कर दिया हो, इसलिए उन्होंने फौरन कहा:

"और चाची, शैलजा की अम्मा की तरह कोई दयावान होगा? अब देखो न, दरवाजे पर कोई भिखमंगा आ जाए, उनका दिल फौरन पसीज जाता है और उसे इतना दे देती हैं कि वह निहाल हो जाता है। तीज-त्योहार पर कामकाज करनेवालियों को रुपए-पैसे देकर खुश कर देती हैं। अब देखो न, जयदेव यादव को अपने लड़के की तरह रखती हैं, मजाल है कि वीरेश-सुरेश को उनसे पहले नाश्ता मिल जाए। और खाना क्या बनाती हैं चाची छप्पन प्रकार के व्यंजन बनवा ले कोई उनसे। और हर एक व्यंजन दूसरे से कम जायकेदार नहीं। अरे, लड़कों की नादानी पर कभी गुस्सा आ गया, नहीं तो सबसे जो खूबसूरत व्यवहार यह करती हैं कोई क्या करेगा? ठीक है, प्रभु सब कृपा करेंगे...।"

गोपालराम जब वादानुसार नहीं आया तो पाँचवें दिन नीलेश उसका हाल-चाल लेने के लिए रामपुर गया। मौसम खुला और धूप तेज। गाँव मुख्य रूप से सड़क के दोनों किनारे बसा है और मकानों के पीछे खेत फैले हैं। आस-पास छोटे-बड़े गड्ढे पानी से भरे थे। पूछताछ करने के बाद एक कमरा और खुली छत वाले एक मकान के पास पहुँचकर भीतर से बन्द दरवाजे को वह खटखटाने लगा।

"कौन रमाशंकर ?" भीतर से गोपालराम की कराहती-सी कमजोर आवाज उसे सुनाई पड़ी।

"मैं नीलेश हूँ, गोपाल। खोलो

1 नीलेश को प्रतीक्षा करनी पड़ी। पहले भीतर से कुछ खाँसने, खटपट, खसखस तथा धीमे-धीमे गुड़बुड़ाने की आवाजें आईं। दरवाजा खुलने पर भीतर पहुँची धूपीली रोशनी में दो वस्तुएँ एक ही साथ दिखाई पड़ीं गोपालराम का निस्तेज, पिचका चेहरा और भीतर की गन्दगी की एक झलक। उसके फौरन बाद ही तेज दुर्गन्ध का एक भभका बाहर आया

"अरे, तुम्हें क्या हो गया?

कालीग

"आओ नीलेश, भीतर आओ।" फ्रॉम

चार-पाँच दिन में ही उसके शरीर का रस किसने निचोड़ लिया? आँखें बुझी-बुझी, होंठ सूखे हुए। वह लौटकर एक पतले, झोलर बँसखट पर बैठ चुका था।

"उस कुर्सी पर बैठो, नीलेश ।"

त भीतर घुसकर नीलेश के सामने छोटा-सा पूरा कमरा बेहद अस्त-व्यस्त नजर आया। जो कुछ भी सामान थे, इधर-उधर फैले हुए, गोया किसी ने उठा-उठाकर फेंक दिए हों। एक कोने में मैले कपड़े की एक गठरी, जिसमें से निकली कागज की कुछ पुड़ियाँ, एक पुराना दाँत ब्रश, एक लेटी हुए खाली बाल्टी, एलिम्युनियम का एक-दो जगह पिचका लोटा औंधा हुआ, होम्योपैथी दवाओं की पुड़ियों के छोटे-छोटे कागज, पानी के अधसूखे धब्बे, धूल और गर्द। दूसरे कोने की तरफ आम लकड़ी की डगमगाती मेज और काठ की हचकती कुर्सी, जिस पर जाकर वह बैठ गया। मेज के नीचे एक छोटी-सी झाड़ भी पड़ी थी। पास ही दीवार के सहारे बाँस का पतला डंडा खड़ा था, जिस पर कम्युनिस्ट पार्टी का लाल झंडा लगा था।

गोपालराम ही धीरे-धीरे बोला, "तुम्हारे यहाँ से आया तो शाम से दस्त लग गए। इधर कोई कामरेड भी नहीं आया। दो मकान छोड़कर आगे की तरफ

एक मामूली-सा होटल है। होटल वाले का नाम रमाशंकर है। खेत में दौड़ते-दौड़ते दम निकल गया। वही पानी लाकर देता रहा। दवा भी दी। कल दिन में दस्त रुके तो उसने खिचड़ी बनाकर दी। पार्टी से सहानुभूति रखता है, कभी-कभी रुपए-पैसे से मदद भी करता है। बड़ा नेक है। इससे अधिक सेवा तो घर में भी नहीं हो सकती नीलेश। उससे कहा था, खिचड़ी बनाकर दे जाना। क्या जाकर तुम कह सकते हो उससे?"

"हाँ... अभी जाता हूँ...

रमाशंकर बड़ा अफसोस करने लगा। कुछ ऐसे फरमाइशी ग्राहक उसके पास आ गए थे, जिससे खिचड़ी और पानी भेजवाने की बात ही वह भूल गया था। उसने कहा, "बाबूजी, आप उनकी पार्टी के लगते हैं, बता दीजिएगा कि खिचड़ी जल्दी भेजवा रहा हूँ। एक बात है बाबूजी। हमारा नौकर खाली नहीं आज, आप अगर उनके कमरे में झाड़ लगा दें और सामने के कुएँ से एक बाल्टी पानी भरकर दे दें तो बेचारे की बड़ी मदद हो जाएगी। उसके बाद आकर खिचड़ी भी ले जाइएगा, एलिम्युनियम की उनकी छिपुली भी हमारे पास है। बस, इस समय की बात है, बहुत भीड़ हो गई है...।"

नीलेश ने आकर गोपालराम को सूचना दी। फिर उसने कमरे में पड़ा झाड़ उठा लिया।

"यह क्या करते हो, नीलेश?" गोपालराम चिड़चिड़ाई आवाज में बोला, "होटल वाले का आदमी आकर यह सब करेगा न।"

"तुम चुपचाप बैठो, गोपाल। होटल वालों को आज फुरसत नहीं। तुम कमजोर हो। खिचड़ी

लाने के पहले मैं सब साफ-सूफ कर दूँगा..."

नीलेश ने बिखरे सामान समेटकर गठरी के अन्दर रख दिए। फिर धीरे-धीरे झाड़ू से कमरा साफ करके कूड़ा बाहर गिराने के बाद, मकान के सामने का हिस्सा सड़क तक भी चमाचम कर दिया। यह सीतानाथ को रोज ही

घर में झाड़ू लगाते देख चुका था, इसलिए उसे कोई दिक्कत नहीं हुई।

जहाँ बैठना होता यहाँ बैठ जाता, झाड़ू लेटाकर सफाई करने में भी उसे परेशानी नहीं हुई। सारा कूड़ा सड़क के किनारे इस तरह समेटकर रख दिया, जिससे गन्दगी मालूम भी न पड़े और दूसरे दिन सबेरे सफाई कर्मचारी को उठाने में कोई कठिनाई भी न हो।

कुएँ में ढेकुल लगा था। उससे पानी खींच खींचकर उसने बाल्टी और लोटा मला और उसमें पानी भरकर जब वह कमरे में आया तो गोपालराम बँसखट पर लेटा था और उसकी नाक से हल्की खर्राहट आ रही थी। उसने बाल्टी इस तरह रखी कि कोई आवाज नहीं हुई। फिर जब वह होटल वाले के यहाँ से खिचड़ी से भरी छिपुली लेकर आया तो गोपालराम आँखें खोलकर छत को देख रहा था।

"गोपालराम उठो, खिचड़ी खा लो..."

गोपालराम कुछ नहीं बोला। वह कोशिश करके उठा और सिर झुकाकर बैठ गया। नीलेश ने एक हाथ से काठ की कुर्सी उठाकर गोपालराम के सामने रख दी, फिर उस पर दूसरे हाथ की छिपुली, तत्पश्चात लोटे में पानी भरकर कुर्सी पर ही छिपुली के बगल में रखा। उसने छिपुली में एक चम्मच और आधा काटा नींबू का टुकड़ा भी होटल वाले से उसकी अनिच्छा के बावजूद रखवाया था।

"गोपाल, तुम खाओ... मैं बाहर ही हूँ। खिचड़ी बची हुई है, और लेनी हो तो मुझे पुकारना, ला दूँगा...।"

गोपालराम ने सिर उठाकर नीलेश को देखा। उसकी ज्योतिहीन आँखों में भी पता नहीं कहाँ से चमक आ गई। फिर वह चुपचाप खाने में लीन हो गया। नीलेश जब बाहर निकलकर दरवाजे के पास ही धीरे-धीरे टहलने लगा तो वह काफी प्रसन्न था। गर्व का एक भाव उसके अन्दर उठने लगा।

गोपालराम ने थोड़ी-सी खिचड़ी और ली थी। उसके भोजन कर लेने के बाद नीलेश छिपुली, लोटा और बाल्टी बाहर ले गया। जब वह सभी सामान माँज-धोकर भरी बाल्टी के साथ भीतर आया तो डर गया। गोपालराम की आँखों से आँसू गिर रहे थे।

गडित उसने आँखें पोंछते हुए हँसकर कहा, "नीलेश, भूख खूब लगी थी। पेट में गुद्दी गई तो फुरगुद्दी उड़ने लगी। बड़ा आराम मिला और आँसू अपने से गिरने लगे। यह कोई खास बात नहीं है नीलेश भाई। यह हम लोगों के साथ अक्सर होता है। हमारी माँ तो इतना सब भी नहीं करती। कभी भात बनने का इन्तजाम नहीं हो पाता और मूंग की दाल तो होती ही नहीं। पथ्य के लिए बड़े घरों से मिला बासी भोजन मिलता है या कोई और चीज। और यहाँ देखो, मूंग की दाल की खिचड़ी मिल रही है। डॉक्टर की दवा ! वहाँ क्या रखा है! जिसके पास सुख है, रुपया-पैसा है, वह बीमारी हैरानी में अपने प्यार को कितने अच्छे ढंग से व्यक्त करता है। प्यार दिखाने के लिए साधन नहीं चाहिए क्या ? ये साधन ही चिन्ता, दुःख और प्यार के आलम्बन और उद्दीपन हैं। जिसके पास कुछ है ही नहीं, वह कैसे रोए, कैसे पुचकारे, कैसे दुःख प्रकट करे..."

वह हँसने लगा। नीलेश को लगा कि गोपालराम के अन्दर ऐसी आग जल रही है, जो अपनी दमक से उसे भी आहत कर रही है। झुलसा रही है! उसके चुप होने पर कैसा सन्नाटा छा गया था!

"तुम्हारे यहाँ खाकर मैंने गलती की थी," गोपालराम शान्त स्वर में बोला, "जिन्दगी-भर मैंने मोटा खाया है। गाँव में भी जो बासी भोजन मिलता है, वह भी मोटा होता है, जो नौकर-चाकर के लिए बनाया जाता है। मैंने तीन वर्ष से यहाँ पढ़ते हुए क्या भोजन किया था-अधिकतर सत्तू ! कभी-कभी बाबू पहुँचा जाते थे, अगर मैं गया तो लेता आया। नहीं तो कभी सबसे सस्ते होटल में ढाई आना में एक जून सेल्हा भात और अरहर की पतली दाल। मैंने क्यों नहीं सोचा कि बढ़िया अरवा चावल और चिकना-चुपड़ा खाऊँगा तो पेट झरने लगेगा ! मोटा खानेवाले इतना महीन खाएँगे

"मैं यह सब नहीं जानता था, अन्यथा तुम्हें निमन्त्रण न देता। अगर इसमें मेरी कोई गलती हो तो तुम मुझे माफ करो।" नीलेश ने दुखी स्वर में कहा।

"मैं व्यक्तिगत तौर पर तुम्हें कुछ नहीं कह रहा हूँ। तुम्हारा कुछ नहीं, तुम्हारे वर्ग का दोष है। तुम बुर्जुआ लोग मेहनतकशों द्वारा पैदा किया हुआ अन्न खाकर मस्ती से आकाश में बिस्तर लगाते हो और वहीं से अपने उच्च विचारों की गलाजत नीचे, उसी किसान पर थूकते हो। तुम क्यों इस धरती के इकलौते बेटे बनना चाहते हो ? इस धरती माता का सारा धन क्यों हथियाना चाहते हो ? स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता-कितनी स्वतन्त्रता चाहिए तुम्हें? करोड़ों लोगों की स्वतन्त्रता का हड़पाऊ दायित्वहीन आनन्द लेने के बाद अब क्या बचा है स्वतन्त्रता के नाम पर, जो लेना चाहते हो ? भोजन तथा शिक्षा की स्वतन्त्रता भी नहीं छोड़ी तुम लोगों ने जीवन की क्या स्वतन्त्रता है तुम्हारे समाज में ?"

"गोपालराम, तुम अधिक न बोलो, तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है।" उसकी बातों से नीलेश का चेहरा फक होकर छोटा पड़ गया था।

गोपालराम उत्तेजना में हाँफ रहा था। कुछ देर तक साँस बाँधने की कोशिश करता रहा, फिर बोला, "तुम जानते हो, गांधीजी के ग्राम स्वराज का क्या मतलब है," वह सनकी की तरह हँसा, "उसका अर्थ है अनन्त स्थिरता वैसी ही स्थिरता, जो सैकड़ों और हजारों वर्ष पहले थी। उसका यह भी अर्थ है कि धरती के कुछ लाड़ले, मनबिगड़े, आलसी, आरामतलब, अहंकारी और निर्मम पुत्र अनन्त में धुआँधार काल्पनिक फूलों की खेती करके, उन खेतों के बीच मोटे गद्दे बिछाकर, वहाँ से अपने स्वर्ग की फिल्में मामूली पृथ्वीवासियों पर चमकाएँ। उनको दर्शाएँ और कहें कि यह है हमारी स्वतन्त्रता, यही सत्य है, यहाँ हर व्यक्ति को पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है, यह करोड़ों लोगों की कुर्बानी से प्राप्त हुई है ! हिन्दुस्तान की दो तस्वीरें क्यों होनी चाहिए? हाँ, गांधीजी की स्वतन्त्रता का अर्थ यही है..."

"अब बन्द करो। मैं यहाँ तुम्हारे विचार सुनने नहीं आया था," नीलेश ने अपने गुस्से को नियन्त्रित करने की कोशिश करते हुए कहा, "गांधीजी के खिलाफ तुम्हारे विचार मंजूर नहीं हैं मुझे। गांधीजी वह कुछ भी नहीं चाहते, जो तुम कहते हो। साम्यवाद में बहुत-सी अच्छी बातें हो सकती हैं, लेकिन यदि हमारे देश में साम्यवाद या समाजवाद हुआ तो क्या उसका वही रूप होगा, जो रूस में है ? हिन्दुस्तान में अनेक भेद-विभेद, जाति, सम्प्रदाय आदि हैं। इस देश में वही विचार उपयोगी हो सकता है जो सबके दिलों को एकता के सूत्र में बाँधे। विभिन्नता में एकता की इसी चेतना से ही हिन्दुस्तान विद्यमान है, उसका अस्तित्व बना हुआ है। यहाँ गरीबी है, अस्पृश्यता है। अनेक स्वार्थी और अवसरवादी हैं, यह बहुत बुरी बात है। लेकिन यह सब सिर्फ भाषण, बहस और गुस्से से दूर हो जाएगा ? एकदम नहीं। गांधीजी के ग्राम स्वराज का अर्थ मैं केवल इतना ही समझ सका हूँ कि गुलामी, नकलचीपन, आरामतलबी, स्वार्थ, आलस्य, अस्पृश्यता, अहंकारपूर्ण शान-शौकत, दोमुँहे शहरीपन, अन्धविश्वास को छोड़कर, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सभी धर्मों एवं जातियों के लोग मजदूर, किसान, हरिजन, दलित, गरीब तथा अन्य सभी, परिश्रम, परस्पर प्यार और सहयोग, समानता, इन्सानियत, स्वावलम्बन के रास्ते पर चलकर उन्नति करें। गांधीजी हिन्दुस्तान की आजादी, एकता, स्वाभिमान और जनतान्त्रिकता की आवाज हैं।"

वह अचानक उठकर यह कहते हुए कि 'कल आऊँगा' कमरे से बाहर निकल गया। उसका दिल किसी घायल पक्षी की तरह छटपटा रहा था। अपने शिक्षक और सहपाठी के प्रति प्यार और सम्मान कभी समाप्त नहीं होता शायद। गोपालराम के प्रति भी उसमें सदा मित्र और स्नेह भाव रहा। फिर क्यों किया उसने ऐसा अपमान ? उसने ऐसी गद्देदार और मसनदी स्वतन्त्रता तो कभी नहीं

चाही। फिर क्यों किया प्रहार उसने ? क्या सचमुच वह इतना ओछा, स्वार्थी, संकीर्ण, विलासी है कि सच्चा हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता? इस देश, इसकी धरती, हवा, आकाश को प्यार करने योग्य नहीं वह ? इससे

बड़ा लांछन क्या हो सकता है ?

तेज धूप के नीचे चलते हुए वह यह सब सोच रहा था। अन्य कई विचार उसे सता रहे थे। वह तेज भागे जा रहा था। जब यह घर पहुँचा तो उसे पता ही नहीं लगा कि काफी देर से उसके सिर में दर्द है, आँखें जल रही हैं, उसका मुँह लाल है और यह पसीने से नहाया हुआ है। बाहर का कमरा खुला था। वह कुर्सी पर बैठ गया। कहीं कोई आवाज नहीं थी। बाहर और भीतर एकदम सन्नाटा !

बार-बार वे ही विचार उस पर तितैयों की तरह हमले कर रहे थे। कोशिश करने पर भी वह अपने को नियन्त्रित नहीं कर पा रहा था। जब बरदाश्त नहीं हुआ तो दोनों हाथों से माया पकड़कर आगे झुक गया। दर्द-भरे दिमाग और बन्द आँखों के आगे और कानों की सनसनाहट के बगल में शून्य का एक अँधेरा पर्दा काँप रहा था। पता नहीं कितनी देर वह बैठा रहा, जब कमरे में किसी के आने की आहट उसे महसूस हुई। उसने सिर उठाकर आँखें खोल दीं।

नम्रता थी वह। चेहरा उसका खुशी से दमक रहा था। उसे उम्मीद नहीं थी कि नीलेश कमरे में बैठा होगा, वह भी इस हालत में। उसे देखकर वह परेशान हो गई, फिर भी अपनी भावनाओं को हँसी की चमकती पन्नी में छिपाकर उसने पूछा, "क्या हो गया आपको? आँखें लाल क्यों हैं? क्या कुछ पड़ गया है ?"

इस हँसी-शोभित सवाल से नीलेश का दिमाग पलटकर चकराने लगा। किसी तरह उसने अपने को नियन्त्रित किया, फिर खड़ा हो गया। अन्त में धीरे-धीरे उसके पास पहुँचकर विचारहीन कटुता की धीमी, सर्द आवाज में कहा, "कितनी निष्ठुर हो तुम। उस स्त्री की तरह, जो बुखार से तपते, रोते शिशु को अफीम चटाकर सुला देती है! कभी अमृत देकर क्यों मुझे जिलाया था और आज क्यों इतना कड़वा विष दे रही हो !"

वह घूमकर, नम्रता को अपने हाल पर छोड़कर, कमरे से बाहर निकल गया।

कि अकस्मात समय और संसार नम्रता के लिए निस्पन्द हो गया। प्रस्तर प्रतिमा की तरह दिखाई देने लगा उसका चेहरा। कुछ देर के लिए वह कमरे के शून्य एकान्त में खड़ी रह गई। नीलेश की बात का शुरू-अन्त-बीच कुछ भी समझ नहीं पाई थी वह। आन्तरिक प्रसन्नता एवं मृदुता से भरी वह तो जल्दी-जल्दी नीलेश की छत पर जा रही थी जहाँ राधास्वामी धार्मिक विधि से पूजा-पाठ होनेवाला था। कितनी चहल-पहल होती थी और कितना अच्छा लगता था। अनेक सत्संगिनें भी बुलाई जाती थीं, जो साथ में अपने बच्चे-कच्चे भी तो ले आती थीं। लगता था, इस अवसर पर बच्चों की भीड़ को नियन्त्रित करना सख्त ब्रिटिश पुलिस के लिए भी मुमकिन नहीं हो सकता, जिनका मुख्य आकर्षण वह विशेष, दुर्लभ हलवा-प्रसाद था, जो दूध तथा अनेक तरह के मेवा-मसाला डालकर जीरादेवी स्वयं अपने हाथ से बनाती थीं। हाल ठीक थाली के, विपुल ताजी, हरी मटर के दानों का था, जिनको परे हटाकर एक जगह स्थिर करने का प्रयास बार-बार विफल हो जाता है।

हलवा-प्रसाद नम्रता को भी काफी पसन्द था। फिर सफाई, पूजा-पाठ का तरीका, बोलचाल के ढंग भी। सवेरे ही छत का कच्चा बरामदा गोबर से लीप-पोत दिया जाता। बाद में पानी में धुली और सूखी छोटी-सी चौकी पर गुरु महाराज की फोटो सजा दी जाती। जीरादेवी सबसे साफ कोने में बहुत ही हल्के हाथों से हलवा तैयार कर रही होतीं, जिसकी पवित्र खुशबू नीचे तक उड़ रही होती। फिर चौकी के आगे बिछी दरी-चादर पर जीरादेवी की अगुवाई में सत्संगिनें अगल-बगल और पीछे इस तरह सटकर बैठ जातीं, जिससे काठ के छोटे-से रखाल पर खोलकर रखी पवित्र पोथी की मुद्रित पंक्तियाँ पढ़ी जा सकें।দাম পাঁচ সারিকাটারিও। আরেকটি জী

अन्त में पाठ शुरू होता, 'राधास्वामी नाम जो गाए सो तरे।' उनका पक्का विश्वास था कि राधास्वामी धर्म के रास्ते पर चलकर ही यह भवसागर पार किया जा सकता है। विशिष्टता की विनम्र भावना से तथा उच्च स्वर के भजन-कीर्तन की परम्परा से हटकर, वे धीरे-धीरे पाठ करती थीं। स्त्री होने के नाते उनकी आवाज वैसे भी पतली और मीठी थी, परन्तु उसे और

गाढ़ी, शिष्ट, तथा मधुर कैसे बना लेती थीं, यह समझना कठिन है। और जब सत्संगिनें एक-दूसरे से विदा लेतीं, तो दोनों हाथ जोड़ और सिर झुकाकर अत्यधिक आदर और कोमलता से एक-दूसरे को कहीं, 'राज्धाऽ स्वामी।'

नम्रता को यह सब देखना बड़ा अच्छा लगता था। उसकी खुशी का एक और भी कारण था। यह सही है कि नीलेश जब भड़सर गया था, उसे बदनाम कर दिया गया था कि वह बहुत बातूनी और घुमक्कड़ है। घर में भी उसके आने-जाने पर प्रतिबन्ध था कुछ हद तक। लोगों की तिरछी निगाहों से उसे चिढ़ होती थी। कैसी दुनिया में वह जी रही है। नीलेश उसके दुःख को कुछ कम कर सकता था। वह उसके यहाँ आ सकता था कभी-कभी। वह उससे कुछ कहना चाहती और उससे कुछ सुनना चाहती थी। उसकी एक झलक और उसकी एक बात के लिए तरस जाती। वह कुछ और जानने और सीखने तथा कुछ करने के लिए सदा व्याकुल रहती और नीलेश ही ऐसा व्यक्ति था जो उसकी समस्त जिज्ञासा को शान्त कर सकता था। लेकिन उसकी हर कोशिश असफल हो जाती।

दो दिन पहले ही वह अपनी एक और कोशिश में नीलेश के यहाँ गई, लेकिन वह अपने कमरे में अपने किसी मित्र से बात कर रहा था। कुछ देर अन्दर आनन्दी और जीरादेवी से बात करने के बाद वह लौटी तो यह देखकर उसकी धड़कन बढ़ गई कि नीलेश अकेला चुपचाप बैठा है। वह एक क्षण हिचकिचाने के बाद गलियारे से मुड़कर कमरे में पहुँच गई और अस्वाभाविक स्वर में बोली, "पढ़ने लायक कोई अच्छी पुस्तक चाहिए।"

नीलेश तो पहले डर ही गया। वह कोई अजनबी तो नहीं, बात किस ढंग से कर रही है नम्रता, जैसे कोई छात्र किसी पुस्तक-विक्रेता से पूछ रहा है ! वह उठ खड़ा हुआ, "बैठो नम्रता, मैं ढूँढ़ता

"मैं तो भीतर देर से बैठी थी, कल दस बजे बाबूजी, अम्मा गाँव जा रहे हैं, शाम तक आएँगे... ऐसी किताब हो कि दिन का अकेला समय ठीक से बीत जाए..."

नम्रता इस तरह खड़ी होकर बाहर की ओर बार-बार देख रही थी, जैसे कोई गौरैया उड़ने वाली ही हो ! नीलेश गम्भीर हो गया। उसने पूछा, "क्रान्तिकारियों के जीवन पर एक मोटी पुस्तक है, लेखक हैं मन्मथनाथ गुप्त ! दूसरी पुस्तक है शरतचन्द्र का उपन्यास 'चरित्रहीन'। तीसरी मोटी पुस्तक है 'महाभारत'। क्या पढ़ोगी ?"

"यह सब मेरी पढ़ी हुई हैं। यहीं से ले जाकर पढ़ चुकी हूँ। मैं जाती हूँ।" प्रही "बैठ नहीं सकतीं ?"

देर हो रही है।"

"ठीक है जाओ। मुझे राजनीतिक पुस्तकें मिल रही हैं, आजकल। सोचा था कि तुम्हें दूँगा, फिर भूल ही गया। एक-दो दिन में जब नई पुस्तकें मिलेंगी तो दूँगा...।"

यह चली गई। नीलेश व्यथित होकर खड़ा रह गया। उसे समझ में नहीं आया कि नम्रता उससे अब क्यों उखड़ी-उखड़ी रहती है। वह उससे कितनी बातें करना चाहता है और वह उर की ओर ठीक से देखती भी नहीं। आखिर क्यों ?

दूसरे दिन नम्रता की हालत अजीब हो गई। वह हर पल सोचती रही कि नीलेश उसके लिए पुस्तकें लाता होगा। कभी वह छत पर जाकर उसके घर की ओर देखती, कभी बरामदे में। ऊपर-नीचे

करते वह बेहद थक गई। नीलेश पर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा था। कोई छोटी बात भी समझ में नहीं आती उसे ? नासमझ, बुद्ध हाँ, बुद्ध बुद्ध-बुद्ध । उसका कलेजा धक कर गया! वह क्या कह रही है, उस व्यक्ति को, जिसका वह इतना सम्मान करती है, जिसको जान से भी बढ़कर प्यार करती है ! प्यार ! अपनी भावनाओं को समझते हुए भी यह इस शब्द से बचती रही, उससे छिपती रही। आज वही शब्द उसके सामने खड़ा है, अपने पूरे रूप और सामर्थ्य के साथ। वह अपने दिल की आँखों से उसे

देख रही है !

अब प्यार से बचने का कोई उपाय नहीं। यह कोई किताबी प्यार नहीं है, यह उसका प्यार है, एकदम निजी, अपने ढंग का। उसकी पीड़ा और मिठास अपनी है। उसने इस शब्द को पा लिया है और शब्द को पाना प्रिय को पाना है। इस प्राप्ति की स्थिति में वह प्रिय से निवेदन कर सकती है, उसके चरणों में लोट सकती है, उससे लड़ सकती है, झगड़ सकती है, उसका मजाक उड़ा सकती है, उसका अपमान कर सकती है, उसके सामने रो सकती है और उससे गिड़गिड़ा सकती है ! प्यार की सर्वोच्चता तक पहुँचने के ये तरीके नहीं हैं? हाँ, बुद्ध, नासमझ, निर्मम, सुन्दर, प्यारा !

इस प्रथम दिमागी और दिली एहसास में मिलन का पीड़ा-भरा आनन्द था। सुख और दुःख उसमें घुल-मिल गए और वह हास्य-रुदन के धूप-छाँव से गुजरने लगी और उसे नींद आ गई। और दूसरे दिन जब राधास्वामी सत्संगिनों के पूजा-पाठ में शामिल होने के लिए रवाना हुई तो वह बेहद खुश थी। लेकिन, नीलेश ने अकारण ही अपने दो-चार वाक्यों से उसकी यह खुशी नष्ट कर दी और दिल उजाड़ दिया। वह उल्टे पाँव लौट गई और घर की सबसे पीछेवाली छोटी, अँधेरी कोठरी में पड़े तख्त पर बैठ गई- एकदम काठ !

नीलेश वहाँ से सदाशय व्रत के यहाँ चला गया, जो मेस्टन हाई स्कूल के पास दो सड़कों को जोड़नेवाले एक चौड़े-से गलियारे में निवास करते थे। परिवार तो था, लेकिन वह स्वयं अविवाहित और साधु-संन्यासी जैसा जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसे उदास देखकर उन्होंने कहा, "देश का काम करनेवाले को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, उसका जीवन तो देश के लिए होता है। आप तो, सुना है, अच्छा गाते हैं, खूब गाइए। किसी दूसरे दिन आपके गाने सुनेंगे। आज तो एक समस्या है...।"

"क्या ?" नीलेश ने पूछा। उनकी मीठी आवाज और स्पष्ट दृष्टिकोण से उसे कुछ ढाढ़स मिला। "आजादी की लड़ाई है, हमें एक-दूसरे का विरोध नहीं करना चाहिए। एकता की भावना से काम करने और कुर्बानी देने में जो

आनन्द है, वह किसी चीज में नहीं। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट आपस में लड़ते हैं, यह ठीक नहीं। हमें तो गांधीजी का रास्ता ठीक लगता है, सब साथ चलें, सब एक-दूसरे को प्यार करें। कल कम्युनिस्ट पार्टी की किसान सभा के कई नेता बनारस से चम्पारन जा रहे हैं। मुश्किल यह है कि ये लोग गांधीजी के आन्दोलन का विरोध करते हुए इस समय युद्ध में ब्रिटिश सरकार को सहयोग देने की बात कर रहे हैं। हम इसका विरोध करते हैं और इसीलिए चीटबड़ा गाँव से लेकर बकुलहा, माझी तक हर स्टेशन पर सोशलिस्ट पार्टी के किसान संघ द्वारा प्रदर्शन होगा। आप चलेंगे? हम सवेरे ही चीटबड़ा गाँव रवाना हो जाएँगे और वहाँ बनारस से आनेवाली गाड़ी पर सवार होकर हर स्टेशन पर प्रदर्शन में भाग लेंगे।"

"जरूर चलूँगा..." नीलेश को बड़ी राहत मिली। सुखपुरा के एक उत्साही और कर्मठ नेता शिववचन सिंह ने इस प्रदर्शन को संघटित किया था। सबसे खास बात यह थी कि इस योजना का पता कम्युनिस्टों को नहीं था, इसलिए यह पूरा कार्यक्रम प्रभावशाली ढंग से निर्विरोध सम्पन्न हो गया। हर स्टेशन पर पर्याप्त संख्या में गरीब किसान कार्यकर्ता लाल टोपी और सोशलिस्ट पार्टी के लाल झंडे लिए उपस्थित थे। स्टेशन पर शिववचन सिंह, सदाशय व्रत, सुरंजन शास्त्री और नीलेश नीचे

उतरकर वहाँ की भीड़ के साथ डिब्बा विशेष के सामने एकत्रित होकर नारे लगाते :

ब्रिटिश सरकार-मुर्दाबाद।

आजादी-लेकर रहेंगे, लेकर रहेंगे।

स्वतन्त्रता विरोधियो-वापस जाओ, वापस जाओ।

महात्मा गांधी का संघर्ष- जिन्दाबाद।

इसके दो दिन बाद ही नीलेश अखिल भारतीय किसान संघ के सम्मेलन में

शामिल होने के लिए सदाशय व्रत तथा राजनाथ के साथ प्रतिनिधि बनकर, जिला मुजफ्फरपुर (विहार) गया। गाड़ी में बनारस तथा गाजीपुर जिले के कई प्रतिनिधि भी मिल गए। चलती गाड़ी में खूब गाना-बजाना हुआ। राजनाथ यादव काफी अच्छा गाता था। उसने चंग पर झूम-झूमकर अनेक गाने सुनाए। प्रसिद्ध कवि स्व. रामसिंहासन सहाय 'मधुर' की 'डोम' शीर्षक कविता ऊँचे, मधुर स्वर में जब गाया तो लोग 'वाह वाह' कर उठे। यह कविता गांधीजी के 'हरिजन' पत्र में भी छपी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

डोमराज भयभीत न होना, निष्ठुरता हारेगी।

प्रभु की करुणा हृदय चीरकर यह बाजी मारेगी।

अन्तर भींग रहा है, कैसे दीपक राग जगाऊँ ?

बापू, अपनी चिनगारी दे, मैं भी आग लगाऊँ ॥

तीन दिनों तक अधिवेशन चला जिसका उद्घाटन बिहार के प्रसिद्ध कांग्रेस नेता श्री श्रीकृष्ण सिंह ने किया। बड़ा भावुक जोशीला भाषण था। एक बड़े मैदान में करीब एक लाख किसान थे-मैले-कुचैले, हाड़-हाड़, निश्चय-भरा चेहरा और चमकीली आँखें। निर्धनों एवं उपेक्षितों का ऐसा सामूहिक दृश्य उसने पहले कभी नहीं देखा था। उनके लिए कुछ करने का खयाल कितना पवित्र और महान था वह पहली बार महसूस कर रहा था। उत्साह से उसकी छाती ऊपर-नीचे होने लगी। आँखें नम हो गईं। उस सभा में कम्युनिस्ट पार्टी (तीसरा इन्टरनेशनल) तथा चौथे इंटरनेशनल (ट्राटस्की-समर्थकों) द्वारा पर्चे भी बाँटे गए।

प्रतिनिधियों की सभा में डॉक्टर लोहिया, युसूफ मेहर अली तथा अन्य नेताओं के भाषण उसने सुने। एक फरार नेता बसावन सिंह जो लम्बे, साँवले तथा अलीगढ़ी पैजामा व लम्बा कुर्ता पहने थे, छिपकर, पता नहीं किधर से आए और तूफानी भाषण करके गायब हो गए। नेता और कार्यकर्ता सभी आजादी के उतावले थे और उसके लिए अपना खून बहाने को तैयार थे। भोजन और नाश्ते में लीचियों और हाजीपुरी केलों की बहार

थी, जो भात के साथ भी परोसे जाते। सोते समय खूब हँसी-मजाक होता। कभी गर्मागर्म बहसें। आखिरी दिन रात में उसकी नींद उचट गई। उसने नम्रता के बारे में कोई बुरा सपना देखा था। अगल-बगल लाशों की तरह पसरे किन्तु नाकों से अनोखी आवाजें पैदा करनेवाले प्रतिनिधियों के बीच से उठकर वह बाहर मैदान में निकल गया। हवा अच्छी लगी। चारों ओर असंख्य झींगुर और मेढ़क बोल रहे थे। वहीं ईंट का एक लम्बा चबूतरा था, जिस पर वह चुपचाप बैठ गया। उसका मन नम्रता की यादों में जाकर बेहद दुःख पाने लगा।

घर पहुँचने के कुछ देर बाद वह दो पुस्तकें लेकर नम्रता के यहाँ पहुँच गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर का मशहूर उपन्यास 'गोरा' और उन्हीं की विशिष्ट कहानियों का एक संग्रह। अधिवेशन-स्थल पर पुस्तकों की ही दुकानें लगी थीं-वहीं ये पुस्तकें खरीदी गई थीं। नम्रता की माँ बरामदे में ही मिल गईं। "आओ, आओ, बहुत दिनों बाद दिखाई दे रहे हो। कहीं गए थे क्या ? चलो, भीतर बैठो।"

"मैं एक किसान सम्मेलन में भाग लेने बिहार चला गया था। अभी-अभी आया हूँ, बैठूंगा नहीं। नम्रता दिखाई नहीं दे रही है ?"

"वह सोई हुई है...।"

"तबीयत तो ठीक है ?" एक क्षण कुछ सोचकर नीलेश ने पूछा।

"हाँ, ठीक ही है। जगा दूँ ?"

"नहीं, नहीं, क्यों जगाएँगी? नम्रता ने किसी पुस्तक के लिए मुझसे कहा था। उस समय मेरे पास कोई नई पुस्तक नहीं थी। बिहार में दो पुस्तकें मिल गईं, प्रसिद्ध लेखक की किताबें हैं। नम्रता को दे दीजिएगा। मैं जा रहा हूँ, दो दिन बाद बनारस जाना है, कुछ तैयारी भी कर लूँ...।"

उसे उम्मीद थी कि वे पुस्तकें प्राप्त करके नम्रता खुश होगी और आकर

मिलेगी। लेकिन जाने का समय आ गया, पर नम्रता से मुलाकात नहीं हुई। ट्रेन आने के कुछ समय पहले वह नम्रता के यहाँ गया। वहाँ कोई मिला ही नहीं। नम्रता बाथरूम में थी और उसके माँ-बाप कोई गमी हो जाने पर एक रिश्तेदार के यहाँ गए थे।

यह सूचना देने के बाद बालक-नौकर कमरे के अन्दर गया और वे ही दोनों पुस्तकें लाकर बोला :

"दीदीजी ने लौटाई हैं...।"

अचम्भे से नीलेश की आँखें निकल आईं।

"क्यों ?" उसने पूछा।

"हमें पता नहीं। बस, यही कहा है कि लौटा देना।"

नीलेश के दिमाग में कुछ क्षणों के लिए अँधेरा-सा छा गया। उसने पुस्तकें बालक के हाथ से

ले लीं और चुपचाप वहाँ से चला आया।

कुछ देर बाद ही घर की औरतें उसे विदा देने दरवाजे तक आईं। सीतानाथ बाहर नहीं आए थे, वह अपना आशीर्वाद और अपनी दो हिदायतें देकर निश्चिन्त हो गए, "बेटा, शराब न पीना और जुआ न खेलना।" नीलेश मन-ही-मन झुंझला गया यह सोचकर कि आगे भी शायद हर लड़के को वह यही उपदेश दिया करेंगे। वीरेश तो उसी समय से घर से बाहर आकर दरवाजे के सामने टहलने लगा था, जब नीलेश भोजन करने जा रहा था। वह इस अवसर पर, और अपने बड़े भाई की परम्पराओं का उत्तराधिकारी होने के नाते भी, उसकी सम्मान-रक्षा करना चाहता था, क्योंकि उसे डर था, यदि भोजन करते समय भाई के मुँह से कोई आवाज निकली, तो वह अपनी नाराजगी छिपा नहीं सकेगा। सुरेश के विशेष उत्साह का कारण यह है कि ट्रेन-आगमन का ठीक टाइम जानने और बनारस का टिकट खरीदने की दो महान जिम्मेदारियाँ उसी के सुपुर्द कर दी गई थीं और वह अपने

पतले शरीर पर देशी दर्जी का सिला हुआ बेहद ढीला-ढाला पैजामा, उटुंग कमीज और 'दयालबाग जूता भंडार' के भारी-भारी काले जूते पहनकर कई बार स्टेशन का दौरा कर चुका था।

ऐसा नहीं है कि इसके पूर्व नीलेश अकेले बनारस या अन्य जगह न गया हो। परन्तु इसे प्रथम यात्रा, प्रथम विदाई और प्रथम अलगाव माना जा रहा था किसी लिखित वैध दस्तावेज की तरह। आनन्दी सचमुच रो रही थी तथा अन्य स्त्रियाँ सिर्फ नाक सुड़क रही थीं। इसी समय जब छकौड़ी-बो ने पास आकर पूछा कि 'नाती, कहीं जा रहे हैं क्या?" तो शैलजा ने उस पर ध्यान न देते हुए नीलेश से कहा, "बबुआ, गाड़ी में खिड़की और दरवाजे के पास न बैठना अम्मा कह रही हैं।"

सुरेश दौड़ता हुआ आया और झट सूचना दे दी कि टिकट खरीद लिया गया है और गाड़ी पाँच मिनट बाद आ जाएगी। नीलेश ने उम्मीद में अन्तिम बार सिर घुमाकर नम्नता के मकान की ओर देखा, फिर सबको यथायोग्य नमस्कार करके सिर झुकाए स्टेशन के लिए चल पड़ा। यह कण्व का आश्रम तो नहीं था और न ही शकुन्तला की विदाई का अवसर, किन्तु घरवालों को लगा कि छकौड़ी-बो की बकरी, दुकानदार लाला की गाय, शीशम वृक्ष की गिलहरी और नम्रता की छत पर बैठा कौआ, सभी उसी को देखकर अपनी उदासी प्रकट कर रहे हैं।

उसके बैठते ही ट्रेन छुः-छुः चल पड़ी। उसने हथेलियों में अपना मुँह छिपा लिया। उसका धैर्य छूटने लगा।

12

सीतानाथ बाहर कालीन बिछी चौकी की अपनी आसनी पर बैठे, आगे रखे काठ-वक्से पर अंगुलियों से हल्के-हल्के बजाते हुए सड़क को अनजान कुतूहल से निहार रहे हैं। माथे पर पूर्णमासी के चाँद की तरह चन्दन का गोल टीका, बड़ी अधपकी मूँछें, खूबसूरती से सँवरी हुई। धैर्य, सन्तोष से सन्तुलित खुशी से उनका चेहरा दमक रहा है। बाईं तरफ के बड़े तखत पर

टाट और जाजिम बिछी है, जिस पर एक बड़े बस्ते के साथ मुंशी मुनीश्वरलाल और उनसे कुछ हटकर दो मुवक्किल बैठे हैं। आज मुकदमा एक ही था और सीतानाथ ने जिरह के समय सम्भावित सवालों के जवाब रटाने का काम काफी पहले से समाप्त कर दिया था। वह इन्तजार में हैं कि कब कुछ और समय बीते।

"वकील साहब, अब तो प्रलय आ गया है न..."

सीतानाथ ने मुड़कर मुवक्किल की ओर देखा। फिर होंठों में ही मुस्कुराकर पूछा, "काहे बाबू जंगीलाल यादव ?"

जंगी एक बूढ़ा, गरीब गाड़ीवान है। इस सम्बोधन से उसके चेहरे पर चमक आ गई। उसने मुड़े पैरों के उठे घुटनों पर दोनों हाथ आगे फैलाकर कहा, "अरे, 'सुखसागर' में सब लिख दिया है

न, वकील साहब !" "क्या लिखा है, भाई ?"

"साफ-साफ लिखा है कि संवत दो हजार में पीले रंग की एक जाति माटा-चींटी की तरह दुनिया में फैल जाएगी। अब आप ही बताइए वकील साहब, दो हजार संवत आने वाला है कि नहीं ? जपनियाँ तो पीले ही रंग के हुए न वकील साहब ! उन्होंने फिरंगियों की तो दुर्गति ही बना दी है...दे पटखनियाँ, दे पटखनियाँ !"

"वाह जंगी बाबू ! किसने बताया यह सब ?"

"अरे, एक ही आदमी थोड़े है, वकील साहब ! सारा जग कह रहा है। गली-गली चर्चा है। आपने भी पढ़ा ही होगा। मैं बनारस गया था, वहाँ मेरे समधी कह रहे थे। वैरिया बाजार, रसड़ा बाजार, बलिया कचहरी, सभी जगह तो यही बात हो रही है।"

"अरे जंगी बाबू, इसी चक्कर में तुम अपनी गवाही की बातें न भूल जाना। लाख बात की एक बात है और इसको गाँठ में बाँधकर रख लो-प्रभु रामचन्द्र जब तक न चाहेंगे, हुकूमत का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

और जिस दिन वह चाह लेंगे, फिर कैसा अंग्रेज, कैसा फिरंगी, कैसा जापानी। सभी दस्तरखान की मक्खियों की तरह उड़ जाएँगे। तुम तो 'सुखसागर' या 'दुःख सागर' के फेर में न पड़कर अपनी गवाही और मेहनताना की फिक्र करो !" सीतानाथ ठहाका लगाकर हँस पड़े।

"अरे मेहनतनवा आपका कभी रुका भी है कि आज ही रुक जाएगा, वकील साहब ?" "अच्छा, ठीक है, अब कचहरी चलिए," सीतानाथ दो बार हल्की ताली बजाकर सिर हिलाते हुए उठ खड़े हुए।

सुखसागर वाली बात गलत नहीं है। 'पर्ल हार्बर' की बमबाजी के साथ ही जापान भी द्वितीय विश्वयुद्ध में कूद पड़ा था। प्रशान्त महासागर और भारतीय महासागर में अमेरिकी और ब्रिटिश हुकूमतों की शामत आ गई। आश्चर्य की बात यह है कि जापानी सेनाओं की विजयों से भारतीय जनता में, खास तरह से बलिया की जनता में अपूर्व आशा की लहर दौड़ गई। किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की, आखिर सुखसागर में, वास्तव में, लिखा क्या है। हर व्यक्ति सुनते ही उस पर पक्का विश्वास कर लेता था। आततायी व्यवस्था से लड़ने के लिए विद्रोही जनता अनेक तरीके अपनाती है, जिनमें धार्मिक और पौराणिक ग्रन्थों की मनमानी व्याख्या से निकाले जुज़ से झटपट तैयार अफवाहें भी होती हैं। फितूरी दिमाग की उपज ये असमर्थता की हालत में घृणा और क्रोध

को व्यक्त करती हैं, और युद्ध जीतने की इच्छा की विकृत कल्पनाओं द्वारा पूर्ति करती हैं। फिर भी, अफवाहें हर हालत में बुरी ही होती हैं, जो वास्तविकता की समझ तो नहीं ही देतीं... और लड़ाई की सही और मुख्य धारा को दूसरी दिशा में भी मोड़ देती हैं। इस सन्दर्भ में यह भी सोचना चाहिए कि अगर जापानियों की जीत हो जाती है तो हिन्दुस्तान की क्या हालत होगी ? जो भी हो, लिया की जनता इस समय 'सुखसागर' की 'भविष्यवाणी' में विश्वास करके ख्वाबों की दुनिया में उड़ रही

थी। चींटियों का हाल था। दो व्यक्ति विभिन्न दिशाओं में आ-जा रहे हों,

एक-दूसरे को देखते ही पास आ जाते और मूड़ी से मूड़ी मिलाकर खुसर-फुसर बात करने लगते। समूचे जनपद में यही नजारा !

वस्तुतः बलिया की समूची जनता आजादी के लिए व्याकुल थी। उसने आजादी के हर आन्दोलन में आगे बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था और आज वह इस आखिरी लड़ाई में निर्णायक भूमिका निमाने को तैयार थी। इस समय न कोई धर्म, न कोई जाति, न क्षेत्र। वस पूरा हिन्दुस्तान। एक विशाल, अटूट चट्टान। और यही कारण है कि बलिया शहर के दो अत्यधिक व्यस्त पुलिस गुप्तचर जितेन्द्र लाल और मनव्वर अली अब सिर्फ खास लोगों के विरुद्ध ही गुप्तचरी नहीं कर रहे थे, बल्कि वे प्रत्येक घर और प्रत्येक परिवार को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे। जहाँ कोई नौजवान पन्द्रह वर्ष की उम्र का हुआ नहीं और उसकी मसें भींगी नहीं, वे माथा झुकाकर, छुरी की तरह तेज नजरें करके उसे घूरने लगते।

"हरामी की औलाद ! ये साले माँ के पेट से ही फितरत, जरायम वगैरह सब सीख कर आते हैं। कोई सिर झुकाकर बात नहीं करता, छाती निकालकर चलता है और आनी-बानी छोड़ने से बाज नहीं आता।"

बात सही थी। एक तो नौजवान, खून वैसे ही गर्म। फिर बलिया की मिट्टी, गंगा-घाघरा की हवा, अलमस्ती और लड़ने-भिड़ने की आदत सबसे अधिक स्वातन्त्र्य आन्दोलनों में संघर्ष, त्याग एवं कुर्बानी की परम्पराएँ। उनकी गर्दनें तन गईं, छातियाँ आगे निकल आई। और वह देश के लिए कुछ करने को आगे निकल आए। सर्वप्रथम वे उन पार्टियों की ओर दौड़ पड़ते जो सशस्त्र क्रान्ति द्वारा आजादी प्राप्त करना चाहती थीं। ऐसी पार्टियों के सम्पर्क में आते ही वे बम-पिस्तौल के लिए व्याकुल हो जाते। एक ही तमन्ना थी उनकी देश के लिए सहर्ष करके सूली पर चढ़ना। इसी को वे देशसेवा समझते थे। और किसी चीज की न जानकारी थी और न ही जानने की इच्छा। अनेक राजनैतिक पार्टियाँ थीं-क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, कांग्रेस समाजवादी पार्टी, फारवर्ड ब्लाक, ट्राटस्की पार्टी (फोर्थ इन्टरनेशनल) तथा बारहसींगे की सींगों की तरह विभिन्न आकार-प्रकार के पुराने क्रान्तिकारी दलों के अवशिष्टों से सम्बद्ध स्वयंभू संघटन।

परन्तु, कम्युनिस्टों और समाजवादियों को छोड़कर और किसी क्रान्तिकारी पार्टी के पास न पर्याप्त सदस्य थे और न ही नए सदस्यों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से तैयार करने की कोई योजना। कांग्रेस ने अपने ठोस आन्दोलनों से इन पार्टियों को हाशिए पर डाल दिया था, फिर भी ये क्रान्तिकारी रहस्यमय ढंग से भूमिगत रहते, सबसे अलग-थलग होकर काम करने में क्रान्ति की सार्थकता समझते, हमेशा अर्थसंकट और शस्त्रसंकट से ग्रस्त रहते और उससे उबरने के लिए काकोरी ट्रेन डकैती के आदर्श का अनुसरण करते हुए उसी स्टाइल का कोई स्थायी कार्यक्रम अपना लेते।

इन्हीं नौजवानों में से एक मामूली चाय व्यापारी का पुत्र राममूरत भी था। कक्षा सात का विद्यार्थी, दुबला-पतला शरीर, ठुमकी नाक, सरल आँखें। कंठ इसका अच्छा था, लेकिन सर्वप्रथम उसे अक्सर पतंगबाजी में व्यस्त देखा गया। तब उसके बारे में मशहूर था कि भँगरैया, तूतिया, सीसा, लेई, गोंद को कूट-पीसकर वह बड़ा अच्छा माँझा बनाता है और पतंग को नीचे से नहीं बल्कि ऊपर

से ही लगातार ढीली देकर काट देता है। फिर यह विभिन्न मुहल्लों में जाकर लड़कों के बीच गाने सुनाने लगा, जिनमें से दो बड़े लोकप्रिय हुए। पहला तो 'अछूत कन्या' का ही मशहूर फिल्मी गीत था 'मैं वन की चिड़िया बनके वन-वन डोलूँ रे।' खास बात यह कि वह 'रे' ऐसे स्टाइल से कहता कि 'डें' सुनाई पड़ता और उस समय उसके होंठ खूसबूरती से फैल जाते और भावुक, चिकनी आँखें आसमान पर टँग जातीं। लड़के खुश होकर तालियाँ पीटने लगते।

दूसरा गाना था 'ऐ बुते हरजाई, तूने कैसी अदा पाई हो।' 'हो' शब्द मौज में आकर जोड़ा गया था, जहाँ पहुँचकर वह आँखें नचाते हुए दाएँ-बाएँ इस अदा से सिर हिलाता कि तारीफ का शोर उठने लगता। पता नहीं कहाँ से उसने यह गाना सीखा था, शायद सनातनियों का कोई जवाबी गाना था,

जिसका अर्थ कोई भी लड़का नहीं समझता था और कुछ तो 'हरजाई' शब्द सुनकर ही खिलखिलाकर हँस पड़ते। बहरहाल, यह तो कहना पड़ेगा संगीत ऐसी चीज है कि उसके शास्त्र, बोल आदि को न समझते हुए भी लोग सुर, लय और अदाकारी से मुग्ध होकर सिर धुनने लगते हैं।

बाद में उसके गाने दूसरी दिशा का संकेत करने लगे। वह लाल नेकर, दो बन्द जेबों वाली कमीज में, एक चंग के साथ आता, जिसे बजाकर अत्यधिक जोश से गाता : लहराएँगे, फहराएँगे

प्यारा झंडा ओम का, प्यारा झंडा ओम का।

अमेरिका, लन्दन फहराएँगे

प्यारा झंडा ओम का...

और उस दिन तो तहलका मच गया, जब राममूरत ने 'सलाम' मछलीशहरी की एक जोशीली कविता की कुछ पंक्तियाँ सुनाईं:

नौजवाँ बढ़े चलो,

तेजतर बढ़े चलो

लीडरों की यह पुकार-

इन्तजार, इन्तजार,

इनको गोली मार दो,

इनका सर उतार दो,

तेजतर बढ़े चलो, नौजवाँ बढ़े चलो।

राममूरत तेजी से बदलने लगा। वह शीघ्र ही आगे बढ़कर सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने लगा, जिसका एक उदाहरण शहर में

आयोजित कायस्थ सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर देखने में आया। जब अध्यक्ष का धाराप्रवाह भाषण हो रहा था, मूरत ने रामसजीवन लाल नामक एक नवयुवक कांग्रेसी के नेतृत्व में और कुछ अन्य नौजवानों के साथ ईंट-पत्थरों की लगातार वर्षा की थी और नारे लगाए थे :

महात्मा गांधी-जिंदाबाद,

भगतसिंह-जिन्दाबाद,

जातिवाद-मुर्दाबाद,

वि राष्ट्रीय एकता-जिन्दाबाद, दहेज-दानव-मुर्दाबाद...

अंग्रेज सरकार-मुर्दाबाद,

किसान-मजदूर एकता-जिन्दाबाद,

विधिउन प्रदर्शनकारी नौजवानों का आरोप था कि कायस्थ सम्मेलन तथा अन्य जाति सम्मेलनों के

महात्मा गांधी-जिंदाबाद।

इन्हीं हथियारों से / 99

पदाधिकारी वस्तुतः राष्ट्रीय आजादी और राष्ट्रीय एकता के विरोधी हैं। ये देश को जातियों में बाँटते हैं. सम्मेलन के चन्दे हड़प जाते हैं. अंग्रेजी सरकार का साथ देते हैं और अपने बेटों की शादियों में खूब दहेज लेते हैं। अधिवेशन में भगदड़ मच गई. फिर पुलिस दौडी हई आई थी और रामसजीवन लाल, राममूरत और कुछ अन्य नौजवानों को एक सप्ताह के लिए गिरफ्तार कर ले गई थी।

तत्पश्चात राममूरत कांग्रेस सेवा दल का एक स्वयंसेवक बन गया। लाल हाफपेंट, सफेद कमीज और तिकोनी गांधी टोपी में वह रोज उन प्रभातफेरियों के बड़े-बड़े जुलूसों में भाग लेने लगा, जो राजनैतिक

सरगर्मियों तेज होने पर, इधर रोज ही मेस्टन स्कूल के पास से शुरू होकर राष्ट्रीय गीत गाते और गलाफाड़ नारे लगाते, चीक तथा शहर की अन्य सड़कों से होते हुए कचहरी तक जाते थे। इन अवसरों पर, कोमल-कोमल रोएँ वाले अनेक नए-नए किशोर दिखाई देते. जैसे अपनी-अपनी माँ की गोद से उठकर देश की आजादी के लिए कुर्बानी देने चले आए हों। जब वे नारे लगाते तो उनके मुँह खूब लाल हो जाते, गोया खून निकल आएगा। बाए हुए मुँह में से उनकी श्वेत दंत पंक्तियों बिजली की तरह चमक उठतीं और उनकी मुलायम बाँहों की मुट्ठियाँ बज्र की तरह कठोर होकर हवा में लहराने लगतीं।

प्रभातफेरियों में काजीपुरा से नफीस, महबूब आलम और बहेड़ी से अब्दुल हई आते। नीलेश जब तक शहर में रहा, रोज ही शामिल हुआ। और गोबर्धन भी पहले काफी दिनों तक आता रहा। दयाशंकर का आगमन नियमित तो नहीं था, लेकिन कभी-कभी वह तड़के ही जब कुछ-कुछ अँधेरा ही रहता-पहुँच जाता। उसके हाथ में अनिवार्य रूप से एक गुलेल रहती, जिस पर ईंट-पत्थर के छोटे टुकड़े रखकर दूर-दूर तक फेंकता रहता। गुलेल के अचूक निशाने के मामले में उसकी बड़ी ख्याति थी। वह आते ही कूदकर किसी पेड़ की डाली पर पैर लटकाकर बैठ जाता और पास के लोगों और छात्रावास के छात्रों को जगाने के लिए जोर-जोर से 'सरफरोशी की तमन्ना...' वाला गीत गाने लगता। आवाज उसकी पतली थी, जो हवा में और पतली होकर चारों ओर तीरों की तरह फैल जाती।

उसकी आवाज से मेस्टन स्कूल के छात्रावास के कुछ लड़के हँसते हुए आ जाते। तब दयाशंकर नीचे कूदकर खड़ा हो जाता। कोई छात्र हँसकर कहता :

"भाईजी, क्या गुलेल से ही अंग्रजों को भगाएँगे ?"

"नाहीं हो, गुलेल से कहाँ भागेंगे अंग्रेज ? यह तो उनके पिट्ठुओं के लिए है। उनके समर्थकों, गुप्तचरों, दलालों और मुखबिरों को दंड देने के लिए। कल्पना करो, कोई पिट्ठू इत्मीनान से सड़क पर जा रहा हो कि अचानक उसके सिर या पीठ पर ढेला आ लगता है। इससे कितना मजा आएगा...।

वह दर्द से चीखकर चारों ओर देखेगा और किसी को न देखकर डर जाएगा कि कहीं भगवान तो उसकी काली करतूत का दंड नहीं दे रहे हैं..."

छात्र हँस पड़ते हैं। दूसरा छात्र पूछता है, "भाईजी, यह तो गांधी के सिद्धान्त के विरुद्ध हुआ..."

"अहिंसा से कुछ होनेवाला नहीं है। यह धोखा है। हम इसमें विश्वास नहीं करते। हम तो अलग से तैयारी कर रहे हैं। आनेवाले जंगे-आजादी में अनेक 'चटगाँवों' में मोर्चा जमेगा। हजारों 'सांडसौं' को जहन्नुम भेजा जाएगा। हमारी तैयारी देखनी है तो चलो आजमगढ़। वहाँ देखोगे कि किस तरह झारखंडे राय और मुक्तिनाथ वगैरह त्याग, तपस्या और कठोर परिश्रम द्वारा आत्मबलिदानी युवकों की सेना तैयार कर रहे हैं। वे शेर की तरह दहाड़-दहाड़कर ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दे रहे हैं। मैं तो यहाँ इसीलिए आता हूँ कि तुम जैसे होनहार बहादुर नौजवानों को अपनी क्रान्तिकारी पार्टी में खींच ले आऊँ। मेरी पार्टी कभी भी समझौते की मीठी-मीठी बातें अंग्रेजों से नहीं करेगी। हम अपने देश की इसी जमीन पर सशस्त्र क्रान्ति द्वारा उनकी हुकूमत, उनके षड्यन्त्रों तथा उनके नापाक मनसूबों को दफना देंगे। देखना ये कांग्रेसी लोग अपनी समझीतापरस्ती द्वारा देश का बड़ा नुकसान

करेंगे...।"

उन जुलूसों में गुदड़ी बाजार का महादेव ठठेरा लैंगड़ाते और बुरी तरह खाँसते हुए जरूर पहुँचता था। शहर के अन्य कोनों से जमुना हलवाई, राजाराम बरई, रघुआ डोम और गणेश पंडित होटल वाले का आना निश्चित था। ज्यों-ज्यों जुलूस आगे बढ़ता, उसकी लम्बाई और मोटाई बढ़ती जाती। उसके आगे-आगे जिला कांग्रेस सेवा दल के कमांडर सदाशय व्रत जोश से चेहरे को ताने और छाती को आगे निकाले और हाथों को फौजी जुम्बिश देते हुए चल रहे होते। राममूरत तथा अन्य दो-तीन नौजवान जुलूस में से बाहर निकलकर राष्ट्रीय गीत गाते और बीच-बीच में नारे लगाते :

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,

झंडा ऊँचा रहे हमारा....

पूर्वी मोर्चे पर लगातार हार से भारत में ब्रिटिश हुकूमत हदस गई। उस पर भय का एक जबरदस्त दौरा पड़ गया। समूचे देश में जापानियों को रोकने की जोरदार तैयारियाँ होने लगीं। बलिया जैसे छोटे जनपद में खाइयाँ खुदने लगीं। जल्दी-जल्दी नागरिक रक्षक दल (सिविक गार्ड्स) और हवाई हमला बचाव दल (ए.आर.पी.) नामक दो संघटन खड़े कर दिए गए, जिनमें एक-से-एक लम्बे, तगड़े, नाटे, सींकिया पहलवान और अनेक बेचल्लू वकील, मुख्तार, डॉक्टर, दुकानदार तथा कुख्यात फितरती, लफंगे, गुंडे-बदमाश खप गए। मिलिशिया की, लगभग एक ही नाप की वर्दियाँ दे दी गई, जो विभिन्न आकार-प्रकार के शरीर पर बुरी तरह पेश आतीं। सिविक गार्ड के हाथ में एक डंडा और ए.आर.पी. लोगों को एक-एक सीटी, जो कमीज की दोनों जेबों में से एक में बन्द रहती थी।

जब-तब हवाई हमलों से बचाव का अभ्यास होने लगा। साइरन बजते ही दोनों दलों के लोग, असाधारण रूप से गम्भीर होकर और छाती आगे निकालकर, सीटी से पी-पी करते और डंडे फटकारते, पुलिस के रंगरूटों से भी अधिक असम्बद्ध, अनियमित तरीके से अपने पैरों को विभिन्न दिशाओं में फेंकते हुए सड़क पर कवायद करने या दौड़ने लगते। चारों ओर से हँसी की आवाजें आने लगतीं। सभी तो परिचित थे ही, जिनको अनेक हास्यास्पद स्थितियों में लोग पहले देख चुके थे। अब ओढ़ी हुई असाधारण गम्भीरता से उनके चेहरे मुखौटे की तरह प्रतीत होते। कोई अपने घर या दरवाजे से ललकारती आवाज में कहता :

"वाह पहलवान, खदेड़े आओ जापानियों को टोकियो तक !"

कचहरी इलाके को छोड़कर खाइयाँ अभी पूरे शहर में खुदी भी न थीं। कई बार जनता को यहाँ आमन्त्रित करके अधिकारियों ने हवाई हमलों से बचने के विभिन्न उपाय बताए थे। विभिन्न मोहल्लों. में भी अभ्यास कराए जा रहे थे। साइरन बजते ही घरों से निकलकर सड़क के किनारे खुदी खाइयों

में जाकर छिप जाएँ। खाई तक पहुँच न पाएँ तो बीच में ही, जमीन पर लेट जाएँ। यह भी सम्भव न हो तो कान में रूई ठूसकर दरवाजे के पास दीवार से सटकर खड़े हो जाएँ। घर में पर्याप्त जल व रेत इकट्ठा करके रखें। रात में कोई भी रोशनी न जलाएँ। सिगरेट-बीड़ी न पीएँ।

परन्तु, बार-बार सिखाने पर भी लोग इन अभ्यासों को गम्भीरता से नहीं लेते। उनका विश्वास था कि बलिया पर बम वर्षा का तो मौका ही नहीं आएगा, क्योंकि उसके पहले ही ब्रिटिश सेना यहाँ ते भाग चुकी होगी। जो लोग अनुशासन को नहीं मानते और अपने दरवाजे या मैदान में खड़े होकर टुकुर-टुकुर कौतुक भाव से देखने लगते, उनकी तरफ सिविक गार्ड और ए.आर.पी. वाले दौड़ पड़ते। फिर भी वे टस से मस न होते और काफी इत्मीनान से उनकी ओर देखते रह जाते। कुछ क्षणों के लिए ही सही, वर्दीधारियों के चेहरे ढीले पड़ जाते, मुखौटा उतर जाता, और खीसें निकल आतीं। लेकिन फौरन ही वह मुखौटा पुनः धारण करके चिल्लाने लगते :

"अरे, बुड़बक हो क्या, भाई? बार-बार बताया गया है कि नहींऽ...?"

"क्या बताया गया है जी ? सूत न कपास... कहाँ है खाई, कहाँ है हवाई जहाज ? यार, बात समझो, मैं नहा-धोकर पूजा-पाठ कर चुका हूँ, अब क्यों गन्दी जमीन पर लोटवा रहे हो ? तुम्हारी एक-एक बात समझते हैं, जब बम गिरने लगेगा तो सारी हिदायतों का पालन कर लिया जाएगा...।"

"अरे, इतने समय में तो तुम्हारी बोटी-बोटी उड़ चुकी होगी...।" सिविक गार्ड चिल्लाता था। "अच्छा तो उड़ा दो बम से... लो, मैं छाती खोलकर खड़ा हूँ..."

इस तरह की अर्थहीन हुज्जत होती रहती थी। पुलिस को बुलाकर गिरफ्तारी का डर दिखाने से कुछ लोग हिदायतों का पालन करते थे और अनेक अपने घरों के अन्दर भागकर गायब हो जाते। तब जाकर चारों ओर सन्नाटा छा जाता ।

सन् बयालीस के मार्च में, बादल वाले एक दिन दोपहर के बाद छकौड़ी-वो साड़ी से बदन को पूरी तरह छिपाए, सीतानाथ के मकान में घुसी। उसने आँचल को थोड़ा आगे खींच कर सिर को झुका लिया था, जिससे बिल्ली की तरह चमकती उसकी आँखें भी दिखाई नहीं दे रही थीं। परन्तु घूँघट के फाँफर से झलकते उसके होंठों पर एक सकपकाई हुई, शिष्ट मुस्कुराहट ठिठकी हुई थी, जैसे वह एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से भीतर जा रही हो।

यह बात सही भी थी। वह आनन्दी की चचेरी बहन कमला के यहाँ किसी काम से गई थी, जिसके देवर गुप्तचर जितेन्द्र लाल धीमे-धीमे स्वर में कुछ बता रहे थे। उसको देखकर लोगों ने बातचीत का विषय बदल दिया था, लेकिन छकौड़ी-यो ने उसके पहले ही बरामदे में कुछ देर ठिठककर सारा किस्सा सुन लिया था।

आनन्दी दक्षिणी बरामदे में ही अकेली बैठी मिल गई। छकौड़ी-वो ने उसके पास बैठकर स्नेह से पूछा, "का हो बबुनी, समाचार है न ?"

"सवेरे उठी तो कमर में बड़ा दर्द था, अभी तो तेल गर्म करके अपने हाथ से लगाया है... पोस्टकार्ड भी तो आजकल नहीं मिलता, नीलेश बाबू..."

छकौड़ी-बो ने बीच में ही काटते हुए कहा, "बड़ा खराब समय आ गया है..." इसके बाद उसने सिर घुमाकर आँगन की ओर देखा, फिर अपना सिर और नजदीक लाते हुए कहा, "मैं आज कमला बबुनी के यहाँ गई थी..."

"क्या हाल है कमला का... उसकी तबीयत खराब थी..."

"ठीक है... वहाँ उनके देवर जितेन्द्र लाल भी थे... बाबा रे, बड़ा खूंखार चेहरा है... चौड़ा जबड़ा, बड़ी-बड़ी लाल आँखें। वह कुछ बता रहे थे..."

तत्पश्चात वह आनन्दी के पास मुँह ले जाकर खुसुर-फुसुर करने लगी, जिसमें से 'बकुलहा' और 'माझी का पुल' ही कई बार सुनाई पड़ा। उसकी बातें पूरी होने पर आनन्दी की आँखें आश्चर्य से फैल गई।

शाम को आनन्दी ने यह किस्सा सीतानाथ को सुनाया। सीतानाथ कुछ सोचते रहे, पर बोले नहीं। लेकिन दूसरे दिन कचहरी में उन्होंने वह बात सुद्दीलाल पेशकार को बता दी। फिर क्या था, दो-तीन दिनों में ही समूचा शहर गुस्सा-भरी एक फुसफुसाहट में बदल गया।

यह सच है कि पूर्वी मोर्चे पर युद्ध की सरगर्मियाँ थीं। जापानी वर्मा में जीत गए थे। उन्होंने हरे जंगलों में हरे रंग की वर्दियाँ पहनकर ऐसा युद्ध-कौशल दिखाया, जिनके सामने भागती हुई ब्रिटिश सेना अनाड़ी सिद्ध हो रही थी। आए दिन कुमुक बंगाल, आसाम और वर्मा के मोर्चों पर पहुँचाई

जा रही थी। दिन-रात लम्बी-लम्बी फौजी ट्रेनें चल रही थीं।

गोरी फौजों की ट्रेन जब आनेवाली होती, स्टेशन मास्टरों को पहले ही चेतावनी-भरी हिदायतें दे दी जाती थीं। तब स्टेशनों पर एक अजीब दहशत फैल जाती। उस समय मुसाफिरों को भगा दिया जाता और स्टेशनों के बाहर भी, खास तरह से कोई भी औरत, चाहे वह बूढ़ी ही क्यों न हो, आस-पास नजर तक न आवे। रेलवे क्वार्टरों को बन्द रखने, किसी के भी बाहर न निकलने और काम करनेवालियों तथा अन्य मजदूरनियों को घर में न बुलाने की सख्त हिदायत दे दी जाती थी। घास काटनेवालियों तथा गाय-भैंस-बकरी चरानेवालियों को दूर भगा दिया जाता। और आस-पास के क्वार्टर और घरों की खिड़कियाँ खुली न रह जाएँ और उनमें से कोई झाँक-झाँककर तमाशा न देखने पाए।

गोरे सैनिकों की ट्रेनें तेजी से भगाई जाती थीं, जहाँ तक भाग सकें और कोयला-पानी के लिए भरसक किसी वीरान स्टेशन पर ही रोकी जाती थीं। फौजियों पर कई तरह के प्रतिवन्ध थे और उनको नीचे उतरना भी मना था। अंग्रेज गार्ड उन्हें हमेशा फटकारता रहता था। परन्तु ट्रेन के किसी स्टेशन पर रुकते ही वे अजीब उन्माद की हालत में आ जाते थे। किसी भूली-भटकी औरत को अथवा बन्द दरवाजों-खिड़कियों वाली बस्तियों को देखकर ही शोर-हुल्लड़ मचाने लगते। उनके मुँह से लगातार 'चट-चट' और

'च्व-च्व' की आवाजें और अंग्रेजी में अश्लील गाने निकलने लगते और कई अपनी पैंटें खोलकर नंगी हैवानियत उछालने लगते।

अजीब दृश्य उपस्थित होता था उस समय। डर-आशंका से हिन्दुस्तानी रेलवे कर्मचारियों और उनके परिवारजनों की धड़कनें बन्द हो जाती थीं। आवाजों से आसमान काँप जाता था और धरती दलक जाती थी। पेड़-पौधों के पत्ते काँपना भी बन्द कर देते थे। पशु-पक्षी पता नहीं कहाँ चले जाते। ट्रेन का गार्ड नीचे उतरकर इधर-उधर दौड़ता हुआ चिल्लाने लगता 'गो इन साइड, गो इन साइड।' कोई औरत यदि भूल से बाहर निकल आती तो अश्लील, वहशी आवाजें तेज हो जातीं, तब वह फँसी हुई मुर्गी की तरह फटी हुई आवाज में चिल्लाती हुई भागती, "अरे, बचाओ हो दादा !"

और उस दिन गोरे फौजियों की एक स्पेशल ट्रेन बलिया स्टेशन से खुलकर बेतहाशा भागती हुई, अत्यन्त छोटे बकुलहा स्टेशन पर ठीक छः बजे सुबह कुछ देर के लिए रुकी। उसी समय पास गाँव की किसी झोंपड़ी की एक किशोरी, शौच के बाद हल्की, ताजी, उत्फुल्ल और निश्चिन्त होकर स्टेशन के निकटस्थ गढ़या तक पहुँची ही थी कि उसे डरावनी, अश्लील आवाजों ने घेर लिया। घंटों बाद वह गंगा के माझी पुल से कुछ दूर पहले, रेल पटरी के किनारे पड़ी मिल गई। चित, दोनों बाँहें छितरी हुई, चेहरा बाई ओर मुड़कर पूरा ढरक गया-सा, मुख पर भय-आतंक और क्रन्दन से ठीक पहले ठहरी हुई ठंडी लकीरें-हर पंखुरी मसली, क्षत-विक्षत और नुची हुई।

जब जनता राष्ट्रीय अपमान के कारण क्रोध और नफरत से खौल रही होती है, कुछ लोग अलग लीक पर चलने का आभास देकर सत्ता तक पहुँचने और लाभ उठाने का अच्छा मौका देखते हैं। बलिया में भी ऐसे अनेक लोग थे। वे कहने लगे, "अरे, वह कोई फाहशा औरत थी, जानबूझकर ही यहाँ गई होगी.... नहीं तो, अंग्रेजों के अनुशासन को कोई पा सकता है ?"

कुछ लोगों की तो बन आती है। वे अदबदाकर कोई ऐसी हरकत कर जाते हैं, जैसे उनको विशेष रूप से इसका अधिकार मिला हुआ हो। जनता का

कष्ट और उस पर दमन बढ़ते ही छुद्र कीड़ों-मकोड़ों और पतंगों की तरह उड़ने लगते हैं। अइगा पांडे ऐसा ही एक जीव है। लहीम-शहीम, बड़े-बड़े दाँत, लम्बा रेशमी कुर्ता और महीन धोती पहनकर वह अक्सर एक साथी शिवदत्त सिंह के साथ शहर का चक्कर लगाते हुए दृष्टिगोचर होता है। शिवदत्त उतना लम्बा नहीं है, कुछ थुलथुल,

जी.आर.पी. का एक सिपाही-वह सदा किसी बबुए की तरह हँसता रहता है और उसका मुँह खुला तथा निचला होंठ लटका रहता है, जिससे लगातार लार बहता रहता है।

ये दोनों ही उन लोगों में से थे, जो विवाह के बाद पत्नी को घर में राशन के बोरे की तरह पटककर निश्चिन्त हो जाते हैं और अपने कोटे से अधिक बच्चे पैदा करते हुए बाहर ऐश करते और गुलछरें उड़ाते हैं। बटुक प्रेम, उससे सम्बन्धित मामलों और झगड़ों के तो ये बावनवीर हैं। वे स्वयं किसी से नहीं डरते, दूसरों को सदा डराते रहते हैं और दूसरों की मजबूरी का फायदा उठाने को झटपट तैयार हो जाते हैं। आज तक उनकी हार नहीं हुई और सदा ये जीतते ही रहे हैं और शहर का हर व्यक्ति उनके नाम से काँपता है। पुलिस और सत्ता की शह पाकर वे किसी खूबसूरत लड़के या गरीव लड़की के पीछे पड़ जाते हैं। लौंडों का गाना सुनने का भी उन्हें काफी शौक है और गर्मी के दिनों में शादी-ब्याह के लिए लौंडों का मुजरा तय कराते हुए उन्हें अक्सर देखा जा सकता है।

वे बड़े प्रेम से लौंडों को अपने आगे बिठाकर उनका गाना सुनते हैं। लौंडा-नाच की छोटी-छोटी पार्टियाँ शहर में आकर चारों ओर फैल जाती हैं। रसड़ा जानेवाली पुरानी, जाकड़ी ट्रेन का पुराना इंजिन जिस तरह एकदम पतली-तीखी आवाज में सीटी देता है, उसी की तरह छोटी उम्र के ये गवैये बच्चे आलाप करते हुए चीखते हैं, जिसको शहर के कई नौजवान 'रसड़या-गाड़ी-सीटी-राग' कहते हैं। आऽए... आलाप सुनते ही अइगा पांडे और शिवदत्त सिंह सिपाही के होंठ प्रसन्नता से सिकुड़कर छछुन्दर की तरह आगे निकल आते हैं और फरकती हुई मूँछें नाचने लगती हैं।

पुलिस ऐसे अनेक दुष्टों को पालती-पोसती है। जब राष्ट्र पर संकट आता है और सत्ता निरन्तर क्रूर और आततायी होती जाती है, इन लोगों के पर निकल आते हैं। लोगों के दु:ख-कष्ट से ये खूब खुश होते हैं और उन्हें अन्य तरीकों से भी सताने लगते हैं। जब बकुलहा-कांड की खबर शहर और जनपद में दावानल की तरह फैल गई और लोग प्रतिशोध के लिए व्याकुल होने लगे, उन्हीं दिनों अइगा पांडे की खुशी का अन्त नहीं था। वह रोज ही, जब चाहे तब, अपने सिपाही संगी के साथ शहर के चक्कर लगाने लगता। वह देह भाँजते हुए, अपने पैरों को सड़क पर स्वतन्त्र छोड़ देता और टखनों तक लटकती उसकी महीन धोती घुटनों से टकराकर दाएँ-बाएँ होने लगती। वह कहीं भी सड़क पर रुककर किसी से बातें करने लगता, किसी भी शरीफ व्यक्ति के सामने कोई अश्लील जुमला फेंककर अपनी हेंकड़ी जताने से बाज नहीं आता। वह जोर-जोर से हँसकर चारों ओर घमंड से देखता और उसके बड़े-बड़े दाँत और लाल-लाल मसूड़े भय और आतंक की सृष्टि करने लगते।

रतनसिंह मुख्तार साढ़े नौ बजे ही कचहरी चल देते हैं। उस दिन नम्रता को गाड़ी का इन्तजार करते हुए स्कूल जाने में देरी हो गई और कुछ देर बाद वह अकेली ही चल पड़ी। आगे पान की दुकान पर अइगा पांडे और शिवदत्त सिंह खड़े पान का इन्तजार करते हुए सड़क की ओर ताक-तूक कर रहे थे। जब नम्रता सड़क के किनारे-किनारे पान की दुकान के पास से होकर गुजरी, अइगा पांडे ने एक अश्लील हँसी के साथ कहा :

"अरे झरेला कहाँ जात बाडू, चलऽ बकुलहा ले चलीं...।"

'झरेला' खूबसूरत लड़कों के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला एक अश्लील सम्बोधन था, जिससे नम्रता भी अच्छी तरह परिचित थी। वह उस अश्लील लोकगीत का मतलब खूब समझती थी, जिसकी प्रथम पंक्ति थी 'देखलीं झरेला लोग के मथवा पर बवड़ी।' और वह ललनजी पर बने लोकगीत 'कवन पापी मरलसि हमार लल्लनजी कऽ जनवा हो' का किस्सा भी एक सहेली से सुन चुकी थी। लल्लन सिंह जमींदार, उस खूबसूरत लड़के के प्रेमी थे, जो उनके प्रतिद्वन्द्वियों से मिलकर उनके अन्त का

कारण बना और जिसने अन्तिम समय में एक गिलास पानी माँगने पर भी मना कर दिया। लफंगे लोग यदा-कदा सड़कों पर इस तरह के लोकगीत चिल्ला-चिल्लाकर गाते रहते थे और कभी-कभी नम्रता को उन पर बड़ा गुस्सा आता था। लेकिन इस शहर में किसी पढ़ी-लिखी लड़की या स्त्री से

इस तरह की छेड़खानी की गई हो, ऐसी घटना देखने-सुनने में आज तक नहीं आई थी।

नम्रता फौरन समझ गई कि जिस तरह बात कही गई थी, वह उसी को सम्बोधित थी। वह अइगा पांडे की ओर घूमकर शमशीर की तरह तन गई। क्रोध से उसका चेहरा तमतमा गया और उसने चीखकर कहा :

"अरे, हरामजादा, सूअर, अंग्रेजों का कुत्ता, तेरी यह मजाल! तुझे अपनी माँ, बहन, बेटी दिखाई नहीं देती ? तेरी बेटी की इज्जत अंग्रेजों ने बकुलहा में लूट ली और तू यहाँ चहक रहा है? तू कैसा हिन्दुस्तानी है रे कुत्ता ! तू ठहर जा, जल्दी ही तेरा थुथुर थूर-धूर कर रंग दिया जाएगा। वकुलहा तो क्या तुझे जल्दी ही जहन्नुम न भेजवा दिया तो रतनसिंह मुख्तार की लड़की नहीं...।"

नम्रता का हृदय अपने पिता की तरह ही कोमल था, लेकिन वह उन्हीं के समान अन्याय से नफरत भी करती थी। तब उसमें पिता की तरह ही तनकर खड़े होने की शक्ति थी। उसने अड़गा पांडे को इस तरह फटकारा था कि उसकी शेखी कुछ देर के लिए हिरन हो गई और मुँह छोटा पड़ गया। जब वह घूमकर कुछ दूर चली गई तो अइगा के मुँह से बकार निकली, "अरे जा जा, अब आगे पता लागी...।"

लेकिन पान की दुकान से सटे मकान के ओसारे में किसुनी चाट वाले की औरत धनेसरी गुस्सा से आँखें निकाल अपने पति से बोली, "कैसे मरद हो जी तुम तुम तो जनखों, मउगों से भी गए-गुजरे हो। इस तरह तो कोई तुम्हारी लड़की, मेहरारू को भी कुछ कहकर निकल जाएगा और तुम सियार की तरह बैठे रहोगे। कैसी अच्छी बिटिया है यह, रोज संझा को

मुझे और बनवारी की मेहरारू को अपने घर बुलाकर पढ़ाती है। रोज चरखा कातती है, महात्मा गांधी के विचार को मानती है। तुम लो, मेरी चूड़ियाँ पहन लो, मैं बाहर निकलकर इस मरकिलीने का चूतड़ काटती हूँ...।"

इस फटकार से किसुनी की कूबड़ की तरह झुकी हुई पीठ सीधी हो गई और गर्दन तन गई। इस समय तो वह नंग-धड़ंग, सिर्फ लँगोटा पहन, खूब मग्न होकर, प्रेम से चाट के आलू काट रहा था। सचमुच वह अइगा पांडे से डरता भी था और साथ में पुलिस सिपाही ! लेकिन धनेसरी ने उसके अन्दर ऐसी हवा भर दी थी कि कब वह खड़ा हुआ और कब सिर्फ लँगोट में ही लंगूर की तरह कूदकर अइगा पांडे के सामने पहुँचकर दाहिनी जाँघ को दाहिने हाथ से पट-पट पीटकर पक्कड़ के लिए ललकारने लगा, यह पता ही नहीं चला।

"अरे अइगवा, हरामी का पिल्ला, मोहल्ले की बिटिया से बोलने की तेरी हिम्मत कैसे हुई रे ! आओ सरऊ, एक पक्कड़ हो जाए ! जयदरथ साले, गीदड़-सियार, आज मैं अर्जुन बनकर तेरी हड्डी-पसली एक कर दूँगा...।"

अइगा पांडे और शिवदत्त सिंह उसकी ओर गुस्से से लाल होकर लपके। किसुनी लम्बा तो था, पर तगड़ा नहीं। उम्र भी उसकी अधिक थी और चाट बनाने और बेचने की बैठकी से उसकी देह खराब हो चुकी थी। लेकिन, इस समय उसमें अजीब फुर्ती आ गई थी और वह बन्दर की तरह कूदकर इस तरह कभी बाएँ और कभी दाएँ चला जाता कि उनकी गिरफ्त में आना आसान नहीं था। परन्तु, अन्त में अइगा ने उसकी लँगोटी जकड़ ली और वह मछली की तरह छटपटाकर नीचे पट गिर पड़ा। और जब तक ओसारे से ही चुन-चुनकर गालियाँ देनेवाली धनेसरी नीचे उतरकर ईंट का एक बड़ा टुकड़ा उठाकर उनको मारने दौड़ती वे किसुनी को लात-मूक, डंडे से पीट-पाटकर भयंकर परिणाम की चेतावनी देने के बाद तूफानी गति से रफूचक्कर हो गए।

धनेसरी अपने पति को उठाकर सहारा देकर अपने मकान के अन्दर ले गई। आश्चर्य है कि अइगा पांडे और शिवदत्त सिंह का ऐसा आतंक था कि इतना सब होने पर भी आस-पास का कोई भी साथ देने नहीं आया।

किसुनी कराह रहा था। धनेसरी ने उसके जख्मों को साफ किया और उन पर पीसी हुई गर्म हल्दी लगाने के बाद उसे दूध में हल्दी-गुड़ घोलकर पिला दिया। अन्त में वह बाहर

आ गई और करीब दस गज के दायरे के भीतर लुत्ती की तरह उछलकर कभी पूरब और कभी पश्चिम चली जाती और दोनों हाथ फेंक फेंककर नृत्य करती हुई लानत भेजने लगी :

"अरे, इस मोहल्ले के मरद जनखे हैं। बधिया बैल हैं, धवलजंघे हैं, गांडू हैं। ये अपनी माँ, बेटी को अइगवा हरामी के पास भेजने को तैयार रहते हैं। अरे, हमारी फूल-सी बिटिया को उन मरकिलीनों ने आँख दिखाई, और तुम लोग घर में बैठकर पादते रहे। तुम्हारे मानुष जीवन पर थुड़ी है...यूः, धूः...।"

उसने चारों दिशाओं में घूम-घूमकर चार बार धूः कहा। इस समय छकीड़ी-यो करीब अस्सी गज की दूरी पर अपने मकान के अन्दर कोई काम कर रही थी। यह वर्ष का वह सुहावना समय था, जब उनके बीच युद्धविराम चल रहा था और मोहल्ले में शान्ति थी। परन्तु जब हवा पर तैरकर धनेसरी की चायें-चार्यं आवाज, जिसे पहचानने में कभी भी उससे भूल नहीं होती, आँगन में आने लगी तो उसके कान किसी शिकारी कुत्ते की तरह खड़े हो गए। दुनिया में उसको छोड़कर और कौन है जिसे वह गाली सुना सकती है ?

पता नहीं कब से उनके बीच एक अघोषित युद्ध जारी था, शायद उस समय से, जब बमपुलिस का जगपतिया कुँजड़ा शहर छोड़कर अभी गया नहीं था। सबसे पहले छकीड़ी-बो, जिसका नाम किनरी था, उसके प्रेम-जाल में फँसी। वे दो साल तक एक साथ रहे, लेकिन झगड़ा होने पर उसने किनरी को छोड़कर घनेसरी को रख लिया। यह रिश्ता भी अधिक नहीं चला और वह तीसरी औरत फूलनी को लेकर किसी दूसरे शहर चला गया। उसके पश्चात किनरी ने अधेड़ छकौड़ी से शादी कर ली और धनेसरी

ने किसुनी से। किन्तु उनके बीच जगपतिया के कारण आरम्भ हुई प्रतिद्वन्द्विता, सौतियाडाह और लड़ाई-झगड़ा आज तक कायम है।

अन्धा कूकुर हवा-बतास चलने पर जैसे भूकने लगता है, उसी तरह कोई भी बहाना उनके लिए पर्याप्त होता था। एक बार जब 'युद्ध' शुरू होता तो थमने का नाम न लेता। चौबीसों घंटे यह जारी रहता। बीच-बीच में काम-धाम भी होता था, लेकिन फुरसत मिलने पर चालू हो जाता। छकौड़ी-यो अपने दरवाजे पर खड़ी हो जाती और धनेसरी अपने मकान की खुली छत पर। पुरानी गालियों से वे कम ही काम लेतीं, बल्कि युद्ध के दौरान अश्लील रिश्तों की ऐसी मौलिक गालियाँ ईजाद कर लेतीं, जिसकी बड़ा-से-बड़ा भाषा विज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सकता।

शाम होते ही युद्धविराम की स्थिति आ जाती और वे अपने-अपने दरवाजे पर छुरी गाड़कर खाने-सोने के लिए चली जातीं, लेकिन दूसरे दिन तड़के ही गड़ी हुई छुरियाँ निकाल ली जातीं और दिशा-मैदान तथा दातौन-कुल्ला के पहले ही धाराप्रवाह चाय-चायँ सारे मोहल्ले की शान्ति और नींद भगा देती। एक-दो बार तो वे पागल होकर दौड़ते हुए एक-दूसरे के निकट आई होंगी, फिर भी उन्होंने एक-दूसरे के शरीर पर हाथ कभी न लगाया। वे आँचल, कमर के चारों ओर लपेट लेतीं। और अपने बाएँ हाथ के पंजे पर दाहिने हाथ की अपनी किहुनी टिका लेतीं और पाँचों अंगुलियों को चोंच की तरह बनाकर उससे जैसे एक-दूसरे को खोदने के लिए उसे हिलाने लगतीं, साथ ही ऐसी चुनौतियाँ देती रहतीं जिससे मर्द और औरत सभी, शर्म से घर के अन्दर चले जाते।

छकौड़ी-बो अभी आँगन से अपने दरवाजे पर आई ही थी कि एक लड़के ने उसे सारा किस्सा बता दिया। वह गुस्से से तिलमिला गई और तेजी से आगे सड़क की तरफ बढ़ती हुई चिल्लाने लगी : "अरे, कौन है रे ? अरे, किसने किसुनी राउत को मारा है रे? उसकी आँख में कच्चा बैठे, उसका अंग-अंग गले...।"

हाड यह सर्वथा एक नया दृश्य था, जब पहली बार धनेसरी के पक्ष में छकौड़ी-बो बोल रही थी। उन्होंने मिलकर मोहल्लों के सभी मर्दों को

ललकारना शुरू कर दिया, परन्तु मुश्किल यह थी कि उस समय अधिकतर मर्द कोर्ट-कचहरी और अन्य काम-धाम पर तथा लड़के-बच्चे स्कूल पढ़ने चले गए

थे। छकौड़ी-यो ने आगे बढ़कर पहले धनेसरी के घर के पास पहुँचकर यलेसर पान वाले को इतना गरियाया कि वह दुकान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। फिर उसने मकान के अन्दर जाकर राउत-राउत कहकर किसुनी का हालचाल पूछा और अन्त में धनेसरी के साथ रतनसिंह मुख्तार के घर जाकर नम्रता की माँ को ढाढ़स दिया :

"अरे बहूजी, आप जरा भी चिन्ता न कीजिए, आगे किसी ने आँख दिखाई तो आँख निकाल लूँगी, कलेजा फाड़ दूँगी। यह मरकिलीना दिखाई तो दे...।"

राममूरत को जब पता लगा तो वह दौड़ा-दौड़ा सदाशय व्रत के यहाँ जा पहुँचा, जो एक खाट पर बैठे हथेली पर मुँह टिकाए ऊँप रहे थे। राममूरत उनको देखकर चिल्लाने लगा :

है...।" "अरे गजब हो गया बाबूजी, अइगा पांडे ने रतनसिंह मुख्तार की लड़की से बड़ी बदतमीजी की

सदाशय व्रत की आँखें खुल गई। उन्होंने खोए स्वर में पूछा, "स्थिर होकर बताइए बबुआ कि क्या हुआ ?"

राममूरत जल्दी-जल्दी सबकुछ बयान कर गया। सदाशय व्रत की आँखें फैल गई। फिर वह उठ खड़े हुए, "क्या मुख्तार साहब के घर पर समाचार लेने गए थे ?"

"अभी तो नहीं...।"

"अच्छा तो चलिए मेरे साथ...।"

रास्ते में नफीस मिल गया। जब तीनों पहुँचे तो रतनसिंह मुख्तार कचहरी से अभी-अभी आए थे और बिना कपड़े बदले बाहर चिन्तित बैठे थे। सदाशय व्रत ने अपना और दोनों लड़कों का परिचय देते हुए विनम्र स्वर में कहा :

"इसका हमें बड़ा अफसोस है मुख्तार साहब, कि इस शहर में हमारे रहते यह सब हो गया। हम गांधीजी के सिद्धान्त को मानते हैं, पर अइगा पांडे ने उसका गलत अर्थ लगाया है। नम्रता बिटिया, मेरी बिटिया है, आप कोई भी चिन्ता न करें, दो दिन के भीतर अइगा को मालूम हो जाएगा कि अहिंसा का क्या अर्थ है। उसे इसी बीच कड़ा-से-कड़ा दंड दे दिया जाएगा...।"

13

होली में पन्द्रह दिन शेष हैं और जगह-जगह जोगीड़ा शुरू हो गया है- 'जोगीजी सारा रा रा..., सा रा रा रा..., वाह यार वाह, फिर वाह यार वाह!' मौसम ओलार पर है और कमरे में अब कम्बल भी नहीं सहा जाता। मच्छर अचानक इतने बढ़ गए हैं कि यत्न करने पर भी मसहरी के अन्दर घुस-घुस जाते हैं। कम्बल को अपने पैरों के बल से पैंताने ठेलकर कभी बाएँ, कभी दाएँ और कभी चित लेटने के कई चक्र पूरे कर चुकी है नम्रता। दुःख और चिन्ता से भरे तरह-तरह के विचार उसके अन्दर गड्ड-मड्ड हो गए हैं, जिनमें से कोई-न-कोई उतराकर निरन्तर सता रहा है उसे।

क्या नारी का जीवन अनजान और अनिश्चित अभिशापों से भरा होता है? यदि ऐसा न होता तो बकुलहा की उस निर्दोष किशोरी के साथ वैसा क्यों घटित हुआ? यह तो ठीक है कि इस देश में बहुत से अन्याय उस विदेशी गुलामी की वजह से होते हैं, जिससे यहाँ की जनता और वह स्वयं भी नफरत करती है। परन्तु देश के लोग ही स्त्रियों पर जो जुल्म करते हैं, उसका कारण क्या है ? अपने को अबला समझने की हीन ग्रन्थि ? अथवा पुरुष सर्वोच्चता का सामन्ती दम्भ ? यदि वह स्वयं राजनीतिक रूप से जागरूक न रहती तो उसके दुर्व्यवहार की घृणित अश्लीलता और निकृष्टता को कितना समझ पाती, फिर उसे मुँहतोड़ जवाब दे पाती या नहीं ?

वह अपने पिता की अकेली सन्तान है, इसलिए उसके पिता ने उसे बहुत स्नेह दिया और अपनी अतिव्यस्तता से भी समय निकालकर उसे अपने पास बिठाकर पढ़ाया-लिखाया और आज भी यह उसे आधा घंटा, एक घंटा अंग्रेजी जरूर पढ़ाते हैं। इसी वजह से यह पढ़ाई में तेज, मजबूत और स्वावलम्बी हो गई। फिर नीलेश से प्रेरित होकर उसकी अनेक पुस्तकें पढ़कर तथा उसके विचार सुनकर वह देशप्रेम तथा राजनैतिक स्वातन्त्र्य आन्दोलन से जुड़ी थी। और जो कमी थी, वह दुलारी गुरुजी ने पूरी कर दी, जिनकी प्रेरणा से वह घर में नियमित रूप से चरखा कातने लगी और अपने चौदह वर्षीय नौकर तथा धनेसरी और बनवारी की पत्नी को साक्षर करने में लग गई। उसने महसूस किया कि साधारण, गरीब स्त्रियों निश्छल होती हैं। उनमें साहस भी होता है। कोई ग्रन्थि ये नहीं पालतीं, जो मन में आता है, साफ-साफ कह देती हैं। यदि भिड़ भी जाती हैं तो मौका आने पर सहयोग भी करती हैं। यदि ये स्त्रियाँ पढ़-लिखकर संघटित हो जाएँ तो देश को कितनी बड़ी शक्ति मिलेगी ?

परन्तु मध्यवर्गीय और उच्च मध्यवर्गीय स्त्रियाँ ? वे परदे में रहती हैं, अन्धविश्वासों के सहारे जीती हैं, अपने पुरुषों के अनेक तरह के अन्याय सहती हैं, फिर भी दूसरी स्त्रियों, खास तरह से निम्नवर्ग की स्त्रियों से अपने को उच्च समझती हैं और किसी भी नई बात को बरदाश्त नहीं कर पातीं। दूसरों की बहू-बेटियों की आलोचना और शिकायत में ही वह अपना खाली समय बिताती हैं। यहाँ भी शिक्षा और राजनैतिक-सामाजिक जागरूकता की ही जरूरत है, तभी एक स्त्री दूसरी स्त्री को सहयोग दे सकती है और नई-नई बातों को स्वीकार भी। अइगा पांडे के दुर्व्यवहार के बाद सहानुभूति के लिए आई निम्नवर्गीय एवं मध्य-उच्चवर्गीय स्त्रियों के दृष्टिकोणों में कितना अन्तर था ?

"जवान लड़कियों को छुट्टा छोड़ देना ठीक नहीं है, मर्दों के सामने अपने शरीर को ढककर निकलना चाहिए। आखिर अकेली स्कूल जाने की जरूरत क्या थी? अपनी इज्जत तो अपने ही हाथ में होती है।"

वह साल-भर नीलेश को लेकर बहुत दुःखी और चिन्तित रही, परन्तु इस समय तो वह अपने पिताजी के बारे में परेशान है। वही उनकी लड़की है और वही उनका लड़का, वह उनके लिए परेशान न होगी तो कौन होगा ? वह अपनी तकलीफ और भावनाएँ व्यक्त नहीं करते तो क्या वह नहीं समझती ? वह तो उसकी मामूली तकलीफ देखकर ही परेशान हो जाते हैं और उसकी एक-एक इच्छा हर हालत में पूरी करते हैं। जब बीमार पड़ती है तो वह सो नहीं पाते, बचपन में ऐसी हालत में वह उसे कन्धे पर लेकर घंटों घुमाते थे। बाहर के लोगों के प्रति भी वह अत्यधिक उदार एवं विनम्र रहते हैं। घर में और बाहर वह सबसे धीमे-धीमे मिठास से बोलते हैं। वह कोई भी बात उसकी वास्तविकता में समझने की कोशिश करते हैं और उसी के अनुसार अपना निर्णय लेते हैं; जो ठोस होता है, खोखला नहीं। यह किसी की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करते, गुस्सा भी वह शायद ही किसी पर करते हों। मुश्किल उस समय होती है, जब किसी की गलत बात पर उन्हें गुस्सा आता है, जो क्रियात्मक बिन्दु पर पहुँचकर ही शान्त होता है।

उसे उन दिनों की याद आई, जब सुरेश के स्कूल टीचर ने उसे काफी मार-पीट कर उसके सिर को डेस्क पर कई बार जोर-जोर से पटक दिया था। घर आने पर सुरेश को बुखार आ गया। सब किस्सा सुनकर औरतों में रोना-पीटना मच गया। डॉक्टर बुलाया गया, जिसने दवा का पुर्जा लिखकर काफी गम्भीरतापूर्वक कहा-

"सिर की चोट बहुत खराब होती है... खैर, दवा दीजिए, आराम हो जाना चाहिए।"

किसी के सुख-दुःख में रतनसिंह और उनके परिवारजन जरूर पहुँचते थे। सीतानाथ की तो यह बड़े भाई की तरह इज्जत करते। सुनते ही वह फौरन गए। सीतानाथ ने चहकती हुई आवाज में, जैसे कोई चिन्ता न हो, रतनसिंह से कहा:

"होनी को कौन टाल सकता है? प्रभु की तो यह इच्छा थी कि ये स्कूल का काम पूरा करके जाएँ जिससे इनके टीचर इन पर हमेशा खुश रहा करें। मगर ये प्रभु की इच्छा के खिलाफ चले गए और नतीजा भुगतना पड़ा। अब लोग कहते हैं कि मैं हेडमास्टर के पास जाकर मास्टर की शिकायत करूँ। अरे, तौबा कीजिए । मास्टर तो गुरु होता है, शाम और अक्ल देता है। यह तो साक्षात् ईश्वर होता है, फिर मैं तो सिर्फ दो ही चीजों से मतलय रखता हूँ-एक तो कचहरी जो घर-गृहस्थी, तालीम वगैरह सबके लिए रुपए देती है और दूसरा मन्दिर। इनके अलावा न मैं किसी के यहाँ जाता हूँ और न किसी से कुछ कहता-सुनता हूँ, चाहे तुम पढ़ो या आवारा बनकर घूमो।"

रतनसिंह अच्छी तरह जानते थे कि सीतानाथ तैश या क्रोध-भरी नाटकीयता से अपनी अकर्मण्यता को न्यायोचित सिद्ध करते हुए अपने आन्तरिक शान्ति भाव में कोई खलल नहीं चाहते थे। इसका वह बुरा भी नहीं मानते और उनके मान की रक्षा करते हुए उनकी बातें चुपचाप सुन लेते। यह कुछ क्षण सिर झुकाकर चुपचाप सोचते रहे, फिर विनम्रतापूर्वक बोले :

"भाई साहब, पढ़ाई के लिए कभी डॉट-फटकार या हल्की पिटाई की जरूरत हो सकती है लेकिन जब लड़का ही नहीं रहेगा तो पढ़ेगा कौन?"

यह ऐसा तर्कपूर्ण मानवीय संकेत था, जिसकी सम्भावना पर सीतानाथ ने ध्यान ही नहीं दिया था। उनके गुब्बारे की हवा निकाल गई और निष्क्रिय आश्चर्य एवं कुतूहल भरे अन्दाज में वह अत्यन्त धीमी और खरखर आवाज में बोले, "अच्छा...?"

"भाई साहब, आप चिन्ता न कीजिए। सुरेश मेरे लड़के की तरह है, मैं कल उसके स्कूल जाकर हेडमास्टर से मिल लूँगा..."

"अच्छा !" सीतानाथ के अन्दर अपनी आन्तरिक शान्ति रक्षा के आश्वासन से उत्पन्न नाटकीय खुशी एवं उत्साह का एक ज्वार उठा।

"अच्छा ! हाँ, देखिए, जब लड़कवा ही मर जाएगा तो पढ़ेगा कौन ?"

दूसरे दिन स्कूल जाकर रतनसिंह ने जो फटकार लगाई और आइन्दे ऐसी किसी हरकत पर सख्त कानूनी कार्रवाई की चेतावनी दी, उससे हेडमास्टर और मास्टर सभी सन्नाटे में आ गए।

दूसरी घटना हरिद्वार की है, जहाँ वह तीर्थयात्रा के उद्देश्य से एक धर्मशाला में रुके थे। नम्रता उस समय सात या आठ वर्ष की रही होगी। और उसकी माँ अधिक जवान और खूबसूरत थी, जिसके पीछे, एक ऐसा भक्त पड़ गया, जिसके सम्पूर्ण ललाट पर चन्दन की पड़ी हुई रेखाएँ बनी हुई थीं। जहाँ वे लोग जाते, वह भी पीछे-पीछे पहुँच जाता, उनसे बात करने की कोशिश करता और उनको कई दुर्लभ जगहों पर ले जाने का वादा करता। उम्र उसकी चालीस से अधिक नहीं थी और किसी छोटे-मोटे पहलवान की तरह लम्बा तगड़ा भी था। वह जब बोलता, भुल्ल-से मुस्कुराकर अपनी बड़ी-बड़ी लम्पट आँखों से नम्रता की माँ को देखने लगता। एक बार उसने भीड़ का लाभ उठाकर अपना हाथ नम्रता की माँ के हाथ पर रख दिया, जिसपर तेजी से हाथ झटककर उसने अपने पति से कहा :

"देखिए जी, यह बदमाश पीछे पड़ा है..."

रतनसिंह को उसकी हरकतें सन्देहजनक पहले ही लगी थीं। वह लपककर उसके पास गए, गले के नीचे उसका कुर्ता पकड़कर उसे बाहर खींच ले आए और अपना जूता हाथ में लेकर उसके सिर पर लगे बरसाने। यह हमला अप्रत्याशित था, जिसके लिए वह तैयार नहीं था। और एक लम्बे-तगड़े शरीर की हिम्मत चूहे की तरह भागने लगी और सिर झुक गया, सिर्फ मुँह से बार-बार यही आवाज निकलती थी, "अरे, अरे, मैं ईश्वरभक्त हूँ।"

और अइगा पांडे वाली घटना मोहल्ले के किसी व्यक्ति ने कचहरी में जाकर बताई तो यह समय से पहले ही घर आ गए थे। उनका चेहरा गम्भीर था। उन्होंने कपड़े भी नहीं बदले और भीतर के

बरामदे में कर्सी पर चुपचाप बैठकर आँखें मलकाने लगे। पत्नी के यह

कहने पर कि बार-बार मना करने पर भी नम्रता अकेली स्कूल चली गई. उन्होंने प्रतिवाद-सा किया, "इसमें उसका दोष क्या है ?" सदाशय व्रत के आने पर वह उनकी बातें चुपचाप सुनते रहे. लेकिन स्वयं एक शब्द भी नहीं बोले। बार-बार उनके दिमाग में एक ही बात आ रही थी कि उनके जिन्दा रहते यह कैसे हो गया और चुपचाप वह अब तक कैसे बैठे हैं। और जब वे लोग चले गए तो वह घर के अन्दर जाकर अपनी छड़ी ले आए और उसे घुमाते हुए बाहर निकल गए।

"अरे कहाँ जा रहे हैं, बताते तो जाइए," मगर उन्होंने न मुड़कर देखा और न ही अपनी रुआँसी पत्नी की बात का कोई उत्तर ही दिया।

नम्रता ने अपनी माँ के आँखों पर आँचल रखकर रोने पर ढाढ़स बँधाने की कोशिश की। लेकिन वह स्वयं बेहद घबरा गई। वह समझ नहीं पाई कि उसके पिताजी बिना कुछ बताए क्यों और कहाँ गए हैं। ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ, इसके पहले जब कभी यह गए भी हैं, तो अपने गन्तव्य, उसके उद्देश्य तथा अपने लौटने की छोटी जानकारियाँ देकर ही। उसे लगा, यह अपराध उसी का है, अगर वह अपनी माँ का कहना मानकर अकेली न गई होती तो उसके पिता को इस हद तक परेशान होने का कोई कारण भी नहीं मिलता।

"बेटी, जब वह गुस्सा होते हैं तो ऐसी ही शक्ल हो जाती है उनकी। कुछ बोलेंगे नहीं, कर गुजरेंगे। मेरा मन कहता है, वह उस बदमाश को ढूँढ़ने ही गए हैं। वह मिल गया तो उस पर जरूर गुस्सा उतारेंगे। ये उसे जानते भी नहीं। देखा भी न होगा कभी। वे सब बड़े दुष्ट हैं, ये किसी संकट में न फँस जाएँ। मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। वह सामने वीरेश अपने दरवाजे पर टहल रहा है, बेटी जाकर उससे कहो... ठहरो, मैं श्यामू को भेजकर बुलवाती हूँ।"

सन्देश सुनते ही वीरेश अत्यधिक उत्साह के साथ छाती आगे निकाले आया। यह भी नम्रता की तरह कक्षा नौ में ही पढ़ता था, लेकिन दो महीने छोटा होने के कारण उसे 'दीदी' कहता है। वह लम्बा हो रहा था और नीलेश की अनुपस्थिति में अपने को सर्वाधिक जिम्मेदार और इस योग्य

समझने लगा था कि तेजी से बूढ़े होते माँ-बाप, दादी के आराम का निरन्तर ख्याल करे, छोटे भाइयों को पढ़ाई में मदद दे और अपने को आदर्श क्रान्तिकारी बनाने की जोरदार तैयारी करे। वह अपने बड़े भाई नीलेश को ही अपना सर्वोत्तम आदर्श मानता था और उसके बनारस चले जाने के बाद नियमित रूप से दंड-बैठक करके धारोष्ण दूध पी रहा था और पढ़ाई-लिखाई में खूब मेहनत भी। वह उस दिन की व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था जब वह अपनी दाढ़ी-मूँछ सफाचट करके, खद्दर के कपड़े पहनकर तथा हाई स्कूल की परीक्षा में उत्तरप्रदेश में प्रथम आकर अपने बड़े भाई को भी आश्चर्यचकित कर देगा।

शाम को स्कूल से आने के बाद ही उसे नम्रता के अपमान की बात मालूम हुई थी। उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने फौरन संकल्प कर लिया कि अपनी कसरत और बढ़ाकर तथा अधिक दूध पीकर वह खूब शक्तिशाली बन जाएगा और इसी शहर में एक दिन अइगा पांडे को सड़क पर पटक-पटककर मारेगा। इस समय वह देर से बाहर अपने दरवाजे के सामने मात्र इसी उद्देश्य से टहल रहा था कि अब कोई भी खतरा नम्रता और उसके परिवारजनों पर आता है तो वह फौरन उनकी रक्षा में वहाँ पहुँच जाएगा और जरूरत पड़ने पर अपनी जान भी कुर्बान कर देगा। और जब नम्रता की माँ ने अपनी व्यथा कही तो उसे अत्यधिक हर्ष और गर्व हुआ कि ऐसे भारी संकट के समय उसे योग्य और महत्त्वपूर्ण समझा गया।

"चाचीजी, आप किसी बात की चिन्ता न कीजिए। उसकी तो इसी शहर में ऐसी चटनी बनेगी कि नानी याद आ जाएगी। भैया नहीं हैं तो हम सब हैं। भैया की पार्टी के लोग हैं। देखिए, यह खबर सुनकर सदाशयव्रतजी, नफीस भाई, राममूरत फौरन आए। वे देख ही नहीं सकते कि शहर

में किसी पर अन्याय हो जाए। कांग्रेस तो बड़ी पार्टी है। क्रान्तिकारी लोग भी हैं। वे सभी देश की आजादी के लिए लड़ रहे हैं तो किसी जुल्म को कैसे बरदाश्त कर लेंगे? ये तो देश के लिए जेल जाते हैं, लाठी-डंडा खाते हैं, मौत को गले लगाते हैं। आपके घर की चौबीसों घंटे देखभाल की जा

रही है। किसी बात की जरूरत हो, कोई भी यात हो, जरूर बताइएगा। मैं अभी जाता हूँ और चाचाजी को ले आता हूँ। हाँ, तब तक के लिए सुरेश को यहाँ भेज देता हूँ।"

"भैया, मैं बड़ा एहसान मानूँगी..."

नम्रता ने तीक्ष्ण दृष्टि से माँ को देखा। अपने पिताजी के लिए परेशान तो वह भी थी, फिर भी उसने सोचा कि पिताजी ठीक-ठीक लौट आते हैं तो वह अपनी माँ से साफ-साफ कह देगी कि वीरेश, सुरेश या किसी से भी यह इस तरह गिड़गिड़ाकर न बोले, उसे ऐसी बोली पसन्द नहीं।

वीरेश हवा-वाताश की तरह निकल गया। रतनसिंह उन खुशहाल व्यक्तियों में थे, जिनके भाग्य में तीन या चार ही साफ-सुथरी आसान रेखाएँ होती हैं। आराम की रोजी-रोटी, आराम के सामाजिक रिश्ते, आराम के पारिवारिक रिश्ते और कभी-कभी, किसी दुर्लभ परिस्थिति में साफ-सुथरा क्रियात्मक क्रोध। महत्वाकांक्षाओं, कुटिलताओं और वर्चस्व के षड्यन्त्रों का कट्टम, उलझाव और विकृति नहीं। यदि इस समय अइगा पांडे आकर उनसे दस जूते खा जाता तो उनका क्रोध शान्त हो जाता। मुश्किल यह थी कि गुंडा जगत से वह सर्वथा अपरिचित थे, अइगा पांडे का नाम तो कभी सुना भी न होगा, परन्तु क्रोध से इतने उतावले हो गए कि उसके ठीर-ठिकाना और हुलिया का पता लगाए विना ही उसको दंड देने चल पड़े। उन्होंने यह अवश्य सोचा कि गुंडा तो शक्ल से ही तथा चाल-ढाल और बात-बोली से भी पहचान में आ जाएगा और पूछताछ से नाम की पुष्टि हो जाएगी तो उसकी आज खैर नहीं।

आकाश साफ-सुथरा था। हवा में नरमाई थी। शाम का धुँधलका इतना गहरा नहीं था कि लोगों की शक्लें ठीक से दिखाई न दे सकें। उनकी छड़ी उठ रही थी और गिर रही थी। वह जल्दी-जल्दी अपना मुँह दाएँ और बाएँ करके एक-एक व्यक्ति को घूरने की कोशिश कर रहे थे। शहर में अनेक लोग उनको और उनकी शराफत को जानते थे, जिन्होंने बड़े ही अचम्भे से देखा लेकिन सनकी-सी दृष्टि के कारण आगे बढ़कर पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

सबसे पहले वह चौक गए, जहाँ उन्होंने हर दुकान पर इकट्ठी ग्राहकों की भीड़ में से एक-एक को गौर से देखा। फिर वहाँ से सीधे गुदड़ी बाजार। खूब भीड़ थी वहाँ। हर मंडी में पेट्रोमैक्स जले हुए थे। विक्रय वस्तुओं एवं पसीने की एक अजीब-सी मिश्रित गन्ध चारों ओर फैली थी। फिर भी प्रत्येक मंडी की अपनी विशेषता भी थी। अनाज मंडी में गेहूँ, चावल, दाल आदि की एक खास सूखी महक अन्दर सरककर खाँसी उत्पन्न करने लगी। सब्जी और फल मंडी की गीली, गाढ़ी और किरवाइन-सी महक देर तक बरदाश्त नहीं हुई। बाहर बर्तन और बजाज मंडियों से लगी सड़क की धूल-फकियाँ भी लेनी पड़ गई। वहाँ सभी व्यस्त, जल्दबाज और गर्मी-पसीने से लाल मुँह वाले ग्राहक थे, जो अपने तरह से दूसरों को चोट पहुँचाते हुए पैरों को भी कुचल रहे थे, लेकिन उनमें कोई भी गुंडा-बदमाश नहीं लगा।

वहाँ से रतनसिंह इशरतगंज की सड़क की ओर सरक गए, जो वास्तव में गुंडे-बदमाशों की आदर्श जगह थी। परन्तु वहाँ कई शरीफ व्यक्तियों की शक्लें भी दिखाई पड़ गई, जो मुँह नीचे किए हुए जल्दी कोठों की ओर जा रहे थे। उनमें से एक-दो ने छिपी-तिरछी दृष्टि से उनकी ओर घुन्नी कायरता से देखा-शायद सोच रहे हों, इनको यह नया-नया शीकं कब से निराश होकर रतनसिंह, सदर अस्पताल से होते हुए सरयू किनारे तक गए और वहाँ से लौटते हुए जब टाउन-हॉल की बगलवाली सड़क से गुजरे कि वीरेश 'चाचाजी, चाचाजी' कहते हुए पीछे से उनके पास दौड़ता हुआ आया।

"चाचाजी, आप कहाँ जा रहे हैं. चलिए घर। जब आपने उसे देखा नहीं है तो कैसे खोज पाएँगे? भैया के सभी क्रान्तिकारी दोस्त उसके पीछे पड़ गए हैं। छोडेंगे नहीं उसे दीदी का अपमान हम सबका अपमान है. समचे देश का अपमान है. उससे बदला लेने का काम क्रान्तिकारियों पर छोड दीजिए। आप मेरे साथ चलिए चाचीजी बहुत घबराई हुई हैं. उन्हीं के भेजने से मैं आपको खोजने निकला हूँ..."

सहसा रतनसिंह होश में आ गए. जैसे आसमान से जमीन पर आ गिरे हों। तब उन्हें महसूस हुआ कि उनकी हरकत कितनी हास्यास्पद है. जो एक पागल व्यक्ति भी नहीं करेगा। वह झेंप गए और उनके होंठों पर एक बेचारी-सी शर्मीली मुस्कुराहट आ गई।

" चलिए, चलते हैं..." वह बेजान स्वर में बोले और चल पड़े।

रात हो गई थी। अन्धकार में डूब गए थे मकान, पेड़ सबकुछ। किसी-किसी मकान के अन्दर से लालटेन की पीली, मटमैली रोशनी की टिमटिमाहट बाहर आकर ढाढ़स बँधा रही थी, अन्यया हवा गुम थी और चारों ओर एक मनहूसियत-भरा सन्नाटा छाया था।

पता नहीं उस समय किसने दो छायाओं को लपककर आगे बढ़ते हुए देख लिया और शोर मच गया, "आ गए, आ गए।" अपने घरों के अन्दर से लोग-स्त्री, पुरुष, बच्चे बाहर आकर कुतूहल से देखने लगे। शायद इन हरकतों से हवा भी धीरे-धीरे चलने लगी। बाहर बरामदे में बैठा सुरेश पिनपिनाकर भीतर भागा। छकौड़ी-बो अपने दरवाजे पर खड़ी बेमतलब चिल्लाई :

"अरे जतिया, रेड।"

"चाचीजी।" वीरेश ने शिष्ट हास्य के साथ घर के भीतरी बरामदे में रतनसिंह के साथ प्रवेश किया। नम्रता ने पहले ही तीन-चार कुर्सियाँ घर के अन्दर से बरामदे में लाकर रख दी थीं। उसने इस समय श्यामू को एक भी काम करने नहीं दिया था। सीमेन्ट से पक्के बरामदे को तो पहले ही पानी से धोकर साफ कर चुकी थी। सचमुच अपने पिता के आने की खबर से यह अत्यधिक खुश थी, लेकिन एक जिम्मेदार लड़की की तरह यह खुशी बाहर नहीं आने देना चाहती थी। वह सिर झुकाकर गम्भीर बनी हुई थी, परन्तु यह नहीं जान पाई कि उसका समूचा हँसता चेहरा उसके आत्मानुशासन के विपरीत इस शुभ अवसर का खुला स्वागत कर रहा था।

सिर झुकाए ही उसने आगे बढ़कर रतनसिंह के हाथ से छड़ी ले ली और

घर के अन्दर चली गई। फिर एक गिलास ठंडा पानी लाकर उनको थमा दिया। अन्त में रसोई में घुसकर ताजा नाश्ता तैयार करने लगी-खस्ता कचौड़ियाँ, धनिया की चटनी, आलू दम और हलवा।

उसकी माँ को तो खुशी के मारे थथमा मार गया था। वह कुछ दूर अपने शरीर को तिरछा साधकर और आँचल को माथे पर आगे खींच करके अपनी रुलाई को रोकने की कोशिश करने लगी। फिर गुसलखाने के अन्दर जाकर खूब रोई। जब सुस्थिर हुई तो अपने घर के अन्दर जाकर शादी के समय की अपनी एक रेशमी साड़ी पहन ली, मंगलसूत्र निकालकर धारण किया, माँग में फिर चटक सिन्दूर लगाया और बरामदे में आकर अपने पति को चमकती हुई आँखों से दखने के बाद वीरेश और सुरेश से कहा :

"बेटे, तुम दोनों जाना नहीं। तुम्हारा एहसान भूल नहीं सकती। चाचाजी के साथ नाश्ता करना..."

सुरेश ने अपनी आदत के अनुसार कहा, "चाचीजी, आज शाम को गोझा (फला) और खूब चटक शोरवादार सब्जी बनी थी। गाँव से एक मुवक्किल दही ले आया था। शाम के नाश्ते पर ये ही चीजें खूब खाई गईं। मैंने और मझले भैया (वीरेश) ने अधिक ही खा लिया। हममें से तो कोई कुछ भी नहीं ले सकता। जब बड़े भैया बनारस से आएँगे तो हम उन्हीं के साथ यहाँ आकर नाश्ता करेंगे।"

"हाँ चाचीजी, सुरेश ठीक कहते हैं...।"

अचानक दोनों उठकर और नमस्कार करके वहाँ से जाने लगे तो किसी ने रोका नहीं। रतनसिंह ने जमकर नाश्ता किया, पर उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा। उन्हें अब थकान मालूम होने लगी और तभी उनका अपनी ओर ध्यान भी गया। अचम्भा हुआ कि अभी तक वह कचहरी के ही कपड़े पहने हुए थे। शेरवानी उन्हें भारी-भारी लगने लगी और पाजामा भी ढीला-ढाला और बेतुका। वह चैतन्य होकर उठे। उनका पहला काम होता था कचहरी

से आने के बाद कपड़े बदलना। यह पहला अवसर था कि वह इस तरह बैठे रह गए और उनकी पत्नी ने भी नहीं टोका, शायद सभी उनसे डरे हुए थे। उन्होंने जल्दी-जल्दी कपड़े उतारकर नई धुली धोती और कुर्ता पहन लिया और विश्राम के लिए अपने कमरे की तरफ बढ़नेवाले ही थे कि बाहर बरामदे से सीतानाथ की आवाज आई:

"बाबू रतनसिंह !"

सहसा चौंक गए रतनसिंह। बहुत दिनों, करीब एक वर्ष बाद सीतानाथ उनके यहाँ आए थे। उन्होंने श्यामू को भेजकर बाहर का कमरा खोलकर उन्हें बिठाने के लिए कहा। आने का कारण सोचकर उन्हें शर्म आई। फिर जल्दी-जल्दी अपने बालों तथा मूँछों पर कंघी फेरकर बाहर चले गए। "भाई साहब, बुलवा लिया होता।" रतनसिंह ने उनके सामने कुर्सी पर बैठकर मुस्कुराते हुए

कहा।

"बजा फरमाते हैं, मगर आ ही गया तो कौन आफत आ गई? अपना भी तो कुछ फर्ज बनता है।" सीतानाथ ने जोकर की तरह मुँह बनाया, फिर ठहाका लगाकर हँस पड़े।

"यह तो मेरा सौभाग्य है भाई साहब..." रतनसिंह ने अपनी झेंप-भरी मुस्कुराहट मूँछों के भीतर

ही छिपाने की कोशिश की।

सीतानाथ की गर्दन तन गई, छाती हल्की-सी आगे निकल आई और उन्होंने दाहिने हाथ के संचालन से सदाबहार नाटकीय तड़प-भरी आवाज में कहा:

"मैं शाम को कचहरी से आया तो घर में सभी बड़े उदास थे। शैलजा की अम्मा दौड़ी हुई आई और कहा, 'जल्दी चले जाइए नम्रता बेटी के यहाँ।' सारा किस्सा सुनकर मैंने कहा, 'रुक जाओ भाई, पहले मैं प्रभु रामचन्द्रजी

से अपील कर लूँ। पहले वह, उसके बाद ही कोई और।' खैर, मैं चुपचाप नहाने चला गया और आकर पूजा पर बैठ गया। घर वाले जरूर कुढ़ रहे थे।

"भैया, पिछले एक वर्ष से मैं शाम को रामचरितमानस का पाठ करने के बाद प्रभु से अपील करता हूँ कि वे हमारे प्रियजनों को रोग, शोक, हैरानी, परेशानी से दूर रखें। मैं हर आदमी का नाम लेकर उनके लिए अपील करता हूँ। हमारी चाची, हमारी पत्नी, हर पुत्र, पुत्री, हर बहन, हर बहनोई, अपनी सास, ससुर, साले, उनके बच्चे, अपने भाई उमानाथ, उनकी पत्नी, उनके दोनों बच्चे, अपने दामाद और अन्त में परिवार के साथ रहनेवाला बेटा जयदेव यादव के लिए अलग-अलग प्रार्थना करता हूँ। आज तो मैंने आपके लिए, आपकी पत्नी के लिए और बिटिया नम्रता के लिए विशेष रूप से अपील की। आज से हमारे आत्मीय लोगों की सूची में आप सबका नाम जुड़ गया और जुड़ा रहेगा। उसके बाद ही मैं प्रभु से अनुमति लेकर आपके पास आ रहा हूँ..."

"भाई साहब...।" रतनसिंह कुछ कहना चाहते थे, पर गला अवरुद्ध हो गया और वह कमरे

के बाहर देखने लगे।

"अब आप निश्चिन्त रहिए, भैया। प्रभु आप सबकी रक्षा करेंगे। एक बाल तो कोई टेढ़ा कर नहीं पाएगा। अभी मन्दिर जाऊँगा तो आप सबके लिए शंकरजी के सामने माथा टेककर प्रार्थना करूँगा। अरे नम्रता बेटी ? आज लाखों-करोड़ों में भी ऐसी सुशील, जहीन और बहादुर लड़की कहाँ मिलेगी ? बड़ी भोली है नम्रता। हर आदमी को इज्जत और प्यार। आते ही 'चाचाजी नमस्कार,' 'चाचीजी नमस्कार,' 'नानी नमस्कार,' 'लाइए यह काम कर दूँ,' बाप रे, कहाँ तक गिनाऊँ, उसकी शराफत और

खाकसारी का तो कोई अन्त ही नहीं। ठीक है नए ढंग से रहती है, कपड़े पहनती है, परदा नहीं रखती... अरे कैसा परदा भैया, गोली मारिए परदा

को, परदे में दीन-हीन, बीमार रहने से क्या फायदा?" वह कुछ क्षणों के लिए चुप होकर परम सन्तोष के भाव से बाहर देखने लगे, जिससे मुँह ऐसा बन गया गोया कोई लेमनड्राप चूस रहे हों। फिर अपनी नाटकीय भावुकता को एक अनोखा

अकल्पनीय रूप देते हुए अपने स्वर को किंचित नीचे गिराते हुए बोले :

"भाई जान, कुछ महीने पहले की बात है, मैं चुपचाप बैठा था कि मेरे अन्दर एक आवाज आई, जैसे प्रभु श्रीरामचन्द्र मुझसे कह रहे हों, सीतानाथ इसी समय जाओ और रतनसिंह मुख्तार से, हाय जोड़कर, उनकी निहायत काबिल और सुशील लड़की नम्रता का हाथ अपने बेटे नीलेश के लिए माँग लो, मगर हमारी स्त्री कुछ पुराने ख्याल. की हैं। वही मेहरारुई बातें। आपकी स्त्री ने भी कभी कुछ कह-बह दिया था। अरे, कैसी जाति भाई ! इन्सान क्यों नहीं? खैर, प्रभु की इच्छा नहीं हुई। नम्रता बेटी को तो ऐसा घर-वर मिलेगा कि दुनिया वाह-वाह कर उठेगी और नीलेशजी के लिए तो मैंने रिश्ता तय ही कर लिया है। सही समय पर ही शादी-ब्याह भी अच्छा लगता है। लड़की बड़ी सुशील है, जहीन है, कलकत्ता में पढ़ी है, बंगला, अंग्रेजी जानती है। बहुत होशियार है, बाप द्वाबा इलाके के पटवारी हैं, अरे पटवारी!" उन्होंने हाथ आकाश की ओर उठा दिया, गोया कोई भाट किसी राजा का यश-गान कर रहा हो।

सीतानाथ के जाने के बाद रतनसिंह कमरे में ही बैठे रह गए। वह जानते थे सीतानाथ का दिल बड़ा साफ है, किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखते और कोई बात गलत लगती है तो साफ-साफ उस व्यक्ति के मुँह पर ही कह देते हैं। कुछ भी नहीं छिपाते। निश्चय ही, इस संकट के समय वह अपने ढंग से अपनी सद्भावना ही व्यक्त करने आए थे, लेकिन आइने की तरह स्पष्ट और चमकदार उनके दिल के लिए क्या कहें, जिसने उस गड़बड़झाला की तस्वीर भी पेश कर दी थी जो दो परिवारों के आपसी रिश्तों में बहुधा पैदा हो जाती है। खैर, औरतों के बीच कुछ-न-कुछ होता रहता है और वह इस पर ध्यान नहीं देते। परन्तु नम्रता से शादी का विचार क्यों ? ऐसी हिम्मत कैसे ? शायद उनका दिल संकीर्ण सीमाओं में बँध नहीं पाता और वह एक बच्चे की तरह किसी आकर्षक वस्तु के लिए

ललक उठते हैं। वह समूची दुनिया को प्यार के बन्धन में बाँध देना चाहते हैं। कैसे यह सम्भव है ? उनकी चले तो जबान से ही जाति-वाति सब तोड़ दें और इसे प्रभु की इच्छा समझें और यह सम्भव नहीं तो इसे भी प्रभु की ही मर्जी। लेकिन स्वयं एक पत्ता भी न खिसकाएँ।

इतना सोचकर रतनसिंह अकेले कमरे में अचानक हँसने लगे। उन्होंने उसे रोकने की कोशिश की मगर वह और बढ़ने लगी। एक लहर से दूसरी लहर निकलने लगी। लहर-पर-लहर। अनियन्त्रित कभी ही-ही-ही-ही, कभी हा-हा-हा-हा और कभी हे-हे-हे-हे।

"देखो नम्रता, क्या बात है, शैलजा के पिताजी तो कभी चले गए, अब कोई और आ गया है क्या ?"

नम्रता का भी ध्यान उधर गया था। सीतानाथ की पूरी बात उसने छिपकर सुन ली थी। उनके जाने के बाद वह छत पर जाकर अँधेरे में फूट-फूटकर रोई थी। जैसे कलेजा बाहर निकल आएगा। सीतानाथ ने उसके बारे में और नीलेश के बारे में यह सब क्यों कहा था? नीलेश उसके इतने निकट आकर कैसे दूर हो गया ? सफलता की पुष्प वर्षा कैसे विफलता की उपल वृष्टि बन गई ? सीतानाथ की बातों से उसके अन्दर भूकम्प आ गया था। अभी तक वह नीलेश के प्यार को ही अपनी सर्वोत्तम उपलब्धि मानती थी, शादी के बारे में तो उसने सोचा भी न था। आज सम्भावना और असम्भावना की विपरीतमुखी वास्तविकता ने उसके वजूद को जैसे टुकड़े-टुकड़े करके उसके सामने डाल दिया था।

दिल-भर रो चुकने के बाद वह नीचे आकर गुसलखाने में गई और खूब मुँह धोकर आँखों पर

छपाक-छपाक पानी डाला। बाहर आकर वह काफी सुस्थिर हो चुकी थी। तभी उसकी माँ ने पिताजी को देखने की बात कही।

उसे अचानक सामने देखकर रतनसिंह की हँसी एकदम रुक गई। वह शरंमा भी गए। फिर

शंकित दृष्टि से उसे देखने लगे। "आओ बैठो," अन्त में उन्होंने मृदु स्वर में कहा।

"पिताजी, मैं पढ़ने जा रही हूँ। आप हँस रहे थे तो लगा कोई और आया है..."

"नहीं, एक बात सोचकर हँसी आ गई। तुम्हारी आँखें लाल क्यों हैं?"

"कुछ नहीं, कोई छोटा-सा कीड़ा पड़ गया था, दोनों आँखें मल दीं। छपाक-छपाक पानी डाला तो निकला," नम्रता ने हँसने की असफल कोशिश की।

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक है?

"जी पिताजी।"

"किसी किस्म की परेशानी ?"

"परेशानी क्या होगी पिताजी ?"

"तुम डर तो नहीं गई हो ?" रतनसिंह ने आँखें झुकाकर धीरे से पूछा।

"नहीं डरती पिताजी मैं। सच्चाई के मार्ग पर हूँ तो किसी से मैं क्यों डरूँगी, मैं आपकी बेटी हूँ। फिर गांधीजी, सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह, प्रीतिलता, सरोजिनी नायडू, प्रेमचन्द मेरे आदर्श हैं। मैंने तो स्वयं उस बदमाश को काफी फटकारा था, फिर पूरा शहर हमारे साथ है, स्त्रियाँ, मर्द, बच्चा-बच्चा। मैं क्यों डरूंगी। मेरी तो हिम्मत और बढ़ गई है। मैं यही चाहती हूँ पिताजी कि मुझे लेकर आप कोई चिन्ता न पालें। मेरी हार्दिक इच्छा है...।"

वह रुक गई, इसलिए कि जो कुछ वह भावनाओं के वशीभूत होकर कहना चाहती थी, बाहर ही नहीं आ सका।

कहो।" "क्या हार्दिक इच्छा है तुम्हारी ?" रतनसिंह ने हैरान होकर पूछा, "बिना किसी संकोच के

"मैं पढ़ना चाहती हूँ, अधिक-से-अधिक।"

"ठीक है पढ़ो। और कुछ ?"

"बस, इतना ही।"

"और किसने तुम्हारा अपमान किया है?" रतनसिंह गम्भीर हो गए।

"अपमान ? और तो किसी ने नहीं किया।" नम्रता का चेहरा फक पड़ गया।

"सीतानाथजी के यहाँ तो कभी किसी ने कुछ नहीं कहा.?"

अच्छी तरह से मोड़ा हुआ

"नहीं तो। सभी बहुत अच्छे हैं," नम्रता मन-ही-मन काँप गई। क्या कहना चाहते हैं उसके पिताजी ?

"तुम कोई चिन्ता न करो। अगर तुम्हारा किसी ने अपमान किया हो तो बताओ, कोई भी हो, मैं बरदाश्त नहीं करूँगा।" उनका चेहरा सख्त हो गया, "मैं क्षत्रिय हूँ, प्यार में तो सब ठीक है, लेकिन अगर कोई प्यार के बहाने अपमान करना चाहे तो ईंट का जवाब पत्थर से मिलेगा। गाँव में इतनी खेत-जमीन है कि कितनों को खरीद लूँ। क्या समझ रखा है लोगों ने ? जहाँ तक अइगा पांडे का सवाल है, सब जबानी जमा खर्च करने आते हैं, कुछ करने की किसी के पास हिम्मत नहीं। मैं कल ही कलेक्टर से मिलता हूँ, यह कुछ नहीं करते तो लखनऊ जाकर गवर्नर से मिलूँगा। यहाँ से कुछ नहीं होगा तो गाँव से लठैतों को बुलवाऊँगा। उसकी में ऐसी दुर्गति करवाऊँगा कि दूसरे बदमाशों को भी सबक मिले। तुम निश्चिन्त होकर पढ़ी-लिखो। मैं कतई नहीं चाहता कि और लोगों की तरह बच्चों को बिना पढ़ाए-लिखाए जो मिले उससे शादी करके पालतू जानवर बना दिया

जाए। तुम

दाँत

मेहनत से पढ़ो जहाँ तक चाहती हो. फिर मैं तुम्हारी शादी एक खूब पढ़े-लिखे समझदार और स्वावलम्बी क्षत्रिय नवयुवक से करूँगा। जाओ निर्भय होकर पढ़ो-लिखो।"

नम्रता का मुँह स्याह हो गया था। अपने पिता का ऐसा रूप तो उसने देखा ही नहीं था। क्षत्रिय होने की कोई गर्वोक्ति भी उनके मुँह से कभी सुनी नहीं गई थी। यह आखिर कैसे समझती कि सीतानाथ ने अपनी बातों से उनको काफी आहत कर दिया था, जिसका दंश शुरू में महसूस नहीं हुआ, लेकिन बाद में क्रोध और अपमान से व्याकुल करने लगा था ? वह उनका यह भी सवाल नहीं जान सकती कि अधिक बच्चे पैदा करने और जैसे-तैसे अपनी सन्तान की जिम्मेदारियों से मुक्त होने के आकांक्षी तथा अपनी विपन्नता में परम सन्तुष्ट एक निम्नतर जाति के कायस्थ ने साफ दिल और सत्यवादी प्रभु भक्त होने का ढोंग करते हुए उनकी लड़की का हाथ माँगने की कल्पना करने का साहस कैसे किया ? उसकी इतनी तारीफ क्यों की, जैसे वह कोई लावारिस लड़की हो और उसके बारे में कोई भी जो चाहे कह सकता है ?

14

रतनसिंह मुख्तार के यहाँ से लौटने पर सदाशयव्रत ने आग्रह किया, "आप लोग कुछ खाइए। चिउड़ा का ढूँढा है (भुने हुए चिउड़े में गुड़ की चाशनी मिलाकर तैयार बड़े-बड़े लड्डू)। कुएँ का ठंडा-ठंडा पानी।"

"नहीं सेनापतिजी, इसकी कोई खास जरूरत नहीं," नफीस ने हँसते हुए कहा। कांग्रेस सेवा दल का अध्यक्ष होने के नाते बहुत कम लोग सदाशयव्रत को उनके नाम से सम्बोधित करते थे। "आप देश के सिपाही हैं, खाएँगे-पीएँगे नहीं तो अंग्रेजों से लड़ेंगे कैसे ?" इतना कहकर वह उठ

खड़े हुए और नीचे उतरकर बाएँ दरवाजे पर खड़े होकर किसी को पुकारकर कुछ कहा।

यह मकान कुछ समय पहले होटल और विश्रामालय, दोनों ही था, जिसमें कोई राजनैतिक कार्यकर्ता, अथवा नेता, चाहे भूमिगत ही क्यों न हो, ठहर सकता था। नीचे एक हॉलनुमा लम्बा कमरा था, जिसके एक छोर पर एक मंचनुमा पक्का चबूतरा है। यहीं से एक जीना उधर चला जाता है, जहाँ दो अच्छे कमरे, एक लम्बा बरामदा तथा खुली छत है।

अब यह बैठक, कांग्रेस समाजवादियों की छोटी-छोटी सभाओं तथा किसी जरूरतमन्द कार्यकर्ता के आश्रय-स्थल के रूप में इस्तेमाल होती है। उसके ठीक सामने गलियारेनुमा सड़क के पार सदाशयव्रत के पिता रामनिवास ओझा सपरिवार रहते हैं। वह प्राथमिक विद्यालय-तहसीली स्कूल-के सर्वाधिक योग्य एवं सख्त अध्यापकों में से एक थे। दुर्भाग्य यह है कि उन्होंने अपने बड़े लड़के सदाशयव्रत को पढ़ाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन उनकी हर कोशिश बेकार गई। सदाशयव्रत की खोपड़ी में कोई चीज घुसती ही न थी। चौबीसों घंटे शैतानी और हुड़दंग। माँ हमेशा चिल्लाती रहती 'अरे, वाण, पापी।' मोहल्ले वाले परेशान रहते, परन्तु उस पर हूबहू यह कहावत चरितार्थ होती थी-'वाण, वाण गए, नौ हाथ का पगहा ले गए।' पिता क्रोध से पागल हो जाते। नीम, बबूल, बेंत, खजूर-सभी तरह की छड़ियों की आजमाइश करने के बाद उन्होंने दो बार अपने तेल-पिलाए डंडे को उठा लिया, लेकिन दोनों ही डंडे सदाशयव्रत की पीठ पर अन्ततः दो खंड होकर नीचे गिर गए। आखिर उन्होंने लड़के को मोटी गाली देते हुए कक्षा से निकाल दिया :

"आज से कक्षा में कभी न आना। गला काटकर रख दूँगा। मैंने नहीं सोचा था कि ब्राह्मण कुल में ऐसा कलंकी पैदा होगा। तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई बन्द।"

फिर वह पढ़ न सके। पिता ने तो उनसे बोलना ही बन्द कर दिया। पढ़ाई के लिए न उनसे

कहा और न कहलवाया। यह तो एक लम्बा किस्सा है कि बड़ा होने पर पहले कैसे उनका डाकुओं फिर क्रान्तिकारियों का साथ हुआ और एक राजनैतिक डकैती के सिलसिले में कैसे पकड़े गए और छुटे। तब तक यह मकान बन गया था. शायद पिता ने उन्हीं के लिए बनवाया हो। जब सदाशयन्नत जेल से आए तो पिता ने कहा :

"अपनी वाली तो तुम कर चुके, अब मैं जो कहता हूँ, वह ध्यान से सुनो। अब जोरू-जाँता की सोचो, इसी में कल्याण है। मैं तो बाप हूँ, तुम भले ही न करो, मैं तुम्हारे लिए कुछ करूँगा ही। यह मकान है, इसमें होटल खोल लो। ब्राहाण के बेटे हो, सफाई से खाना बनाओगे तो लोग प्रसन्नचित्त होकर तुम्हारे भोजनालय में खाने के लिए आएँगे। पास में स्कूल का छात्रावास है, कांग्रेसिया हैं, और राजनैतिक कार्यकर्ता हैं. सभी आएँगे। दो पैसा कमाओगे तो जी-मन लगेगा। फिर ब्राह्मण की एक सशील लडकी देखकर तुम्हारा विवाह कर दूँगा, मेरी सभी चिन्ताएँ दूर हो जाएँगी...।"

शादी तो उन्होंने बार-बार जोर देने पर भी नहीं ही की, लेकिन इसी मकान में होटल खूब धूमधाम से चला। अनेक कारणों से वह जनता में खूब मशहूर एवं लोकप्रिय हुआ और पुलिस गुप्तचर जितेन्द्रलाल और मनव्वर अली की दृष्टि में राजनैतिक गतिविधियों और षड्यन्त्रों के अड्डे के रूप में अत्यधिक कुख्यात । और जनवरी, 1941 में सुभाषचन्द्र बोस के नजरबन्दी से भागकर जर्मनी चले जाने के बाद पुलिस ने बौखला कर होटल बन्द करा दिया, बहाना यह था कि उसी होटल में ही टिका, बंगाल का फारवर्ड ब्लॉक का एक फरार कार्यकर्ता अमिय बनर्जी उन्हीं दिनों गिरफ्तार कर लिया गया।

सदाशयव्रत का सोलह वर्षीय भतीजा अनिरुद्ध दो बार सर झुकाए आया और बड़ी डलिया में चिउड़े का ढूँढा, ताँबे के एक बड़े गडुए में कुएँ का शीतल जल और कई खाली गिलास रख गया।

"खाईं न," सदाशयव्रत ने कहा।

"आप भी तो लीजिए सेनापतिजी ।"

"हाँ-हाँ, लेता हूँ न... शुरू कीजिए..."

नफीस और राममूरत उस समय तक रुके रहे, जब तक कि सदाशयव्रत ने डलिया में से एक टुकड़ा लेकर मुँह में न डाल लिया। उसके बाद मनपसन्द गम्भीर एवं मौन चर्वण का ऐसा दृश्य नजर आया, जिसमें तीनों के मुख, जबड़ों और कनपटियों की आकर्षक, लयपूर्ण हरकतें उनकी मानसिक एवं वैचारिक एकता को भी प्रकट करने लगीं।

कुछ देर बाद सदाशयव्रत ने कहा, "अब एक काम है। आप दोनों चारों ओर दौड़ जाइए, अपने साथियों को दौड़ा दीजिए, और जैसे ही अइगा पांडे मिले, मुझे आकर बता दीजिए। पहले मैं उससे बात करना चाहता हूँ।"

"उससे क्या बात होगी सेनापतिजी," नफीस ने हँसते हुए कहा, "उसका इलाज तो कुछ दूसरा ही है। आप हुक्म करें तो..."

"अरे नहीं, नहीं, नफीसजी। हमारा सिद्धान्त अहिंसात्मक असहयोग और सत्याग्रह का है। दूसरे क्षेत्रों में इसी नीति पर चलना चाहते हैं। पहले हम उसे समझाएँगे, जोर-जबरदस्ती का समय तो मजबूरी की हालत में आता है।"

है...।" "समझाने-बुझाने से तो वह और शेर हो जाएगा। सोचेगा कि सारा शहर उससे डर गया

"हाँ, सेनापतिजी, नफीस भाई ठीक कहते हैं...।" राममूरत ने समर्थन किया।

"एक तरह से बात तो ठीक ही है। लेकिन गांधीजी कहते हैं कि व्यक्ति से घृणा न करो,

उसके अवगुण से करो। व्यक्ति की नैतिक शक्ति को मीका मिलना चाहिए कि यह अपनी गलतियों पर सोचे. पश्चाताप करे और अपने में सुधार करे। अपने अन्दर के देवता को जगाए। इससे हमे भी नैतिक शक्ति मिलेगी हमारी एकता मजबूत होगी. और हमें अपने कार्य में व्यापक जन-समर्थन मिलेगा. अभी हमें अपनी स्वतन्त्रता की बड़ी लड़ाई लडनी है, उसके लिए अपनी शक्ति बचाकर रखनी है। कोई ऐसी-वैसी बात हो गई तो पुलिस हमको पहले पकड़ लेगी और हमारे आन्दोलन का नुकसान होगा...।"

"ठीक है, सेनापतिजी...।"

ढूँढा समाप्त हो चुका था। दोनों नौजवान हकर-हकर पानी पीने के बाद 'नमस्कार' करके तेजी

से वहाँ से प्रस्थान कर गए।

सदाशयव्रत कुछ देर सुन्न बैठे रह गए। फिर अचानक उठकर सीढ़ी के रास्ते ऊपर छत पर चले गए। चारों ओर बस्ती के मकानों, वृक्षों और खास तरह पूर्वी क्षितिज पर अँधेरा झुक आया था, बस पश्चिमी क्षितिज सूरज डूबने के बाद भी बहुत फीके उजाले में अब भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। वह एक जगह खड़े होकर धुँधले आकाश को खोई-खोई निगाह से देखने लगे, परन्तु दिमाग में अनेक चित्र उभरते गए।

विगत को वह कभी पास फटकने नहीं देते हैं। उसको भूलने के लिए अपने को सदा राजनैतिक कार्यों में व्यस्त रखते हैं। मौका मिलने पर राजनैतिक कार्यकर्ताओं से राष्ट्रीय गाने सुनते हैं या दूसरों के निजी कार्यों के लिए दौड़ते-घूमते रहते हैं।

इन्हें आज आश्चर्य तो यह सोचकर हो रहा है कि पढ़ाई छूटने के बाद पिता की मौन नाराजी और माँ के अत्यधिक लाड़-प्यार के बीच वह कैसे बड़े हो गए। वह क्रोधी थे, जिद्दी थे, उनमें उच्चता का ऐसा भाव था कि किसी से कुछ माँग नहीं सकते थे, परन्तु यदि कोई भी उनसे कुछ माँग बैठे तो सहर्ष देने को तैयार हो जाते। घर में और मुहल्ले में भी वह किसी के प्रति

अन्याय होने नहीं देते। और जब वह अपने हुड़दंगी साथियों की देखा-देखी कसरत करने तथा कुश्ती के लिए अखाड़े जाने लगे तो वहाँ भी वह शारीरिक रूप से अपने से हल्के व्यक्ति से नहीं बल्कि अधिक तगड़े से ही लड़ते। उत्साही और संकल्पी होने की वजह से वह जूझ जाते तो जूझे रहते। पटखनी खाने पर भी दूसरे दिन भी उसी पहलवान को चुनौती देते। इस तरह लगातार जोर करने से उनके गट्टे और पुढे खूब मजबूत हो गए और लगातार घरें खाने से गर्दन भी। जब वह सैकड़ों दंड-बैठक करके कुश्ती के लिए अखाड़े में आते तो निकली छाती, बाँहों की गुल्लियों, शक्तिशाली चिकनी जाँघों तथा मजबूत, खूबसूरत पिंडलियों वाला, एक साँचे में ढला उनका शरीर शीशे की तरह चमचम चमकता रहता और उसे लोग मुग्ध होकर देखते रह जाते।

मास्टर रामनिवास ओझा भी अब मन-ही-मन प्रसन्न थे। उन्हें सपने में भी उम्मीद नहीं थी कि लड़के का ऐसा शरीर निकल आएगा। शहर क्या, जिले-भर में कोई ढूँढ़ न पावे ऐसा नौजवान। बाम्हन-बम्हुली के लड़के, संस्कृत-रटन्त की बैठकी और बचपन से लुचुई और मीठा खाकर अपनी देह बेडील बना लेते हैं। सदाशयव्रत तो पकवान, सोहारी से दूर ही भागता है। सन्तुलित भोजन, हाँ, दूध चाहे कोई जितना भी पिला दे। अरे तो पीओ न भाई दूध, कितना पिओगे। दरवाजे पर कजरी और बुधिया दो गाएँ बँधी हैं, दोनों जून बाल्टी-वाल्टी-भर दूध देती हैं। ठीक है, ब्राह्मण के लड़के की किस्मत में पढ़ाई नहीं लिखी है तो क्या करें भाई ? कोई अपने ही लड़के को घर से तो नहीं निकाल देगा ? बाद में तबीयत हुई तो यजमनिका सँभाल लेगा। यह भी न हुआ तो घर पर बैठा रहेगा, उसे देखकर चोर-चाई, लुच्चा-बदमाश, बेईमान-पट्टीदार, कोई भी पास आने की

हिम्मत नहीं करेगा।

इसी समय लड़के को शादी-ब्याह की पगहिया से भी बाँधने का खयाल आया, मगर सदाशयव्रत ने बार-बार इन्कार कर दिया। ब्राह्मण का लड़का होकर भी अपढ़-गँवार होने की हीनता हमेशा उन्हें डंक मारती रहती है। वह किसी के सामने गर्व से कहाँ खड़े हो सकते हैं? यह जानते हैं कि पीछे

हर जगह उनकी आलोचना-शिकायत होती है। "अरे, रामनिवास जैसे योग्य अध्यापक का लड़का आवारा निकल गया।" पंडिताई और पुरोहिती तो उन्हें हमेशा ही बड़ा बेकार काम लगा। कौन काम करेंगे वह ? तब हर चिन्ता छोड़कर पहलवानी के अभ्यास में ही जमे रहे। किन्तु पहलवानी में औरत का क्या काम ? औरत तो हर काम बिगाड़ देगी, ऊपर से बच्चे पैदा करके दूसरी झंझटें खड़ी कर देगी। इसीलिए वह परिवार में और बाहर भी हर जवान स्त्री और लड़की से दूर रहते। उन्हें पास आता देखकर दूसरी ओर मुँह कर लेते। भरसक यही कोशिश करते कि उनसे बातचीत का मौका ही न आए।

कुश्ती में वह पक्के होते गए। फिर तो दूसरे गाँवों में आयोजित कुश्तियों में भी बुलाए जाने लगे। एक-दो जगह जीतने पर पाँच रुपए और फल-मिठाई का पुरस्कार भी मिला। कुछ समय बाद पंचैया के दिन वह पास ही के गाँव नगवाँ में एक ऐसी बड़ी कुश्ती प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए बुलाए गए, जिसमें अन्य जिलों के पहलवान भी आए थे। यहाँ उन्होंने जवँही के रघुनाथ यादव नामक एक मशहूर पहलवान को पटखनी दे दी, जिसके बाद झगड़े की नौबत आ गई। दोनों ओर से लाठियाँ तन गई। उसी समय दुबहर गाँव के नामी लठैत अनग्राहित ठाकुर ने, जो कुश्ती देखने आया था, सदाशयव्रत का पक्ष लेते हुए बीच-बिचाव कर दिया। उसके बाद तो उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया गया और फल-मिठाई के साथ 21 रुपए पुरस्कार भी मिला।

दरअसल अनग्राहित ठाकुर सदाशयव्रत को देखकर ललचा गया था। अहा, दुनिया में ऐसे-ऐसे हीरा नौजवान हैं और उसे पता नहीं। यदि यह नहीं आया होता तो ऐसी जबरदस्त कुश्ती से वंचित रह जाता। आस-पास के जिलों में रघुनाथ यादव की तूती बोलती थी और यह भी कहा जाता था कि वह जल्दी ही मंगलाराय, इमामबख्श और गामा को चुनौती देनेवाला है। रघुनाथ यादव ने एक-से-एक अकाट्य दाँव लगाए, मगर सदाशयव्रत इसके चंगुल से इस तरह निकल गया, जैसे मुट्ठी में से पानी। और एक उपयुक्त मौके पर, जब रघुनाथ यादव थका-थका नजर आया, सदाशयव्रत ने लंगी लगाने वाले एक मामूली दाँव से से उसे चित कर दिया।

सदाशयव्रत जब चलने लगे अनग्राहित ठाकुर ने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा :

"हाँ भाई, पहलवानी तो आज ही देखने को मिली तो ऐ ओझाजी, बलिया में कहाँ रहते हैं ?

बाप का क्या नाम है ?"

बाप का नाम पूछते ही सदाशयव्रत तन गए। शरीर कुछ तिरछा हो गया। आँखें सुर्ख हो गईं, जैसे खून निकल आएगा। उनके मन में अपने पिता के लिए बड़ा सम्मान था किन्तु पुत्र के रूप में आत्महीनता की ग्रन्थि से वह सदा पीड़ित रहते थे। जब एक योग्य ब्राह्मण शिक्षक का लड़का विद्या अर्जित नहीं कर पाया तो पहलवानी जैसे घटिया कार्य से उसे कौन-सी प्रतिष्ठा मिल पाएगी ? इसीलिए वह नहीं चाहते थे कि उनके साथ उनके तेजस्वी, उदार और परोपकारी पिता का नाम घसीटा जाए।

"ऐ अनग्राहित ठाकुर," सदाशयव्रत ने शेर की तरह गुर्राकर कहा, "बाप का नाम पूछने का आपका ही मुँह है ! चले जाइए यहाँ से चुपचाप, नहीं तो, ठीक नहीं होगा। क्या चोर की तरह देख रहे हैं?"

अनग्राहित ठाकुर का मुँह फक पड़कर छोटा हो गया। फिर गुस्से से तमतमा गया। अन्त में मुश्किल से अपने को सँभालकर उसने कहा :

"अरे ओझाजी, इस तरह बिगड़ना ठीक नहीं है, मैं तो यह कहना चाहता था कि कुश्ती का शरीर तो ठीक है, पर यह बस कुश्ती के ही काम का रह जाता है। और जब कुश्ती-कसरत छूट जाती है तो बड़ी तेजी से देह बिगड़ती है। इसके साथ दूसरी कसरतें, लम्बी दौड़ और लाठी का अभ्यास किया जाए तो देह रबड़ की तरह लचीली हो जाए। फिर तो यड़ा-से-बड़ा पहलवान आपके सामने पानी भरे। जिला-जवार में लाठी में मेरा कोई मुकाबला नहीं कर सकता, आप चाहें तो मैं आपको मुफ्त लाठी सिखा सकता हूँ...।"

"अरे जाइए, जाइए... आपके जैसा बहुत देखा...।"

अनग्राहित ठाकुर की आँखें चढ़ गई, "ओझाजी, आप मुझे नहीं जानते। किसी दूसरे ने आज ऐसी बात कही होती तो वह घर नहीं लौट सकता था। आप नौजवान हैं, इतने अच्छे पहलवान हैं, आपकी मैं इज्जत करता हूँ, इसीलिए कुछ नहीं बोलता। गंगा मैया की कसम खाकर फिर कहता हूँ, आप तैयार हो जाएँ तो मैं आपको मुफ्त लाठी सिखा सकता हूँ...।"

"कहाँ पर ?" सदाशयव्रत का गुस्सा कुछ कम हो गया था।

"तो किसी दिन फजीरे दुबहर में मेरे घर पर आकर मिलिए। किरण फूटने के पहले। मेरा घर कोई भी बता देगा। वहाँ से गंगा के कछार में किसी निर्जन स्थान पर चलेंगे। उसके बाद तो सीधे कछार में ही पहुँचना पड़ेगा, गाँव में नहीं।"

सदाशयव्रत का गुस्सा खत्म हो गया तो यह काम भी उनको आकर्षक लगा। यह तो तय है कि कई जन्म मिल जाए तब भी वह पढ़ नहीं सकेंगे। कुश्ती-युश्ती भी उनके मन का काम तो नहीं ही था। भारी-भरकम पहलवान बनकर वह कब तक दाहा की तरह हिलते रहेंगे? यह कुछ करना चाहते थे, दौड़ना-धूपना चाहते थे, जिम्मेदारियाँ लेना चाहते थे, मगर कैसे, यह समझ में नहीं आता। बार-बार उनका दिमाग पढ़ाई की ओर जाता, पर ख्याल आते ही उनकी हिम्मत छूट जाती। तब उन्हें लगता कि जीवन में तो वह कुछ भी नहीं कर सकते। घर से भी उनकी तबीयत कभी-कभी बुरी तरह उचट जाती। उनके कई साथी पढ़-लिखकर आगे निकल गए थे। फिर लाठी? हाँ, लाठी वगैरह से उनको एक नया काम मिलेगा, घर से काफी समय के लिए दूर रहेंगे, उनका शरीर लचीला और फुर्तीला बनेगा। और इसी समय उनके दिमाग में एक और विचार कौंध गया और वह खुश हो गए।

"मैं कल से आ जाया करूँगा...।"

"वाह ओझाजी, हुई न यह बात !" अनग्राहित ठाकुर ने चहकती आवाज में

कहा।

सदाशयव्रत उत्साह से घर लौट चले। रास्ता-भर वह सपना देखते गए। लाठी वगैरह सीखकर वह कलकत्ता चले जाते हैं और किसी धनी मारवाड़ी सेठ के यहाँ दरबानी करने लगते हैं। वह तब अपने पैरों पर खड़े हो जाएँगे, घर से दूर रहेंगे और एक योग्य पिता का नालायक पुत्र होने का कष्ट भी उन्हें कम ही सताएगा। जिला-जवार के दूसरे बहुत से लोग भी तो रोजी-रोटी के लिए पटना, कलकत्ता, और आसाम जाते हैं।

दूसरे दिन से ही प्रशिक्षण शुरू हो गया। अनग्राहित जैसा योग्य गुरु था उतना ही योग्य शिष्य सदाशयव्रत भी। दोनों ही एक-एक लाठी के साथ गंगा कछार के एक निर्जन स्थान में चले गए। पहले अनग्राहित ने उनसे दूसरे किस्म की कसरतें कराई जो योगाभ्यास और सूर्य नमस्कार से मिलती-जुलती थीं। दंड-बैठक से शरीर बँध जाता था, लेकिन इन कसरतों से शरीर के जोड़ ठीले होकर रबड़ की तरह लचीले हो जाते थे। अन्त में वे तेल-पिलाई टीकासन-भर की लाठी उठा लेते।

अनग्राहित ठाकुर पहले समझाता था, फिर उसी के अनुसार अभ्यास। उसके अनुसार, कुश्ती और लठैती में फर्क है। कुश्ती में दाँव लगाने के लिए प्रतिद्वन्द्वी के शरीर से भिड़ना पड़ता है, परन्तु लठैती में उससे दूर-दूर रहने में ही भलाई है। लठैती, तलवारबाजी के निकट पड़ती है लेकिन उसमें ढाल की जरूरत नहीं होती बल्कि लाठी स्वयं ढाल होती है। लठैत का शरीर, गुल्ली या नट की तरह

होना चाहिए, जो छटककर उस दिशा में चला जाए, जिधर उम्मीद ही न हो। और फिर उचित मीका देखकर तथा कत्थक नर्तक की तरह तेजी से घूमकर प्रहार करना चाहिए। प्रतिद्वन्द्वी के प्रहार की रोक या काट में अथवा उसको निष्फल करने में दक्ष होना बड़ा महत्त्वपूर्ण है, जिससे उसका लय बिगड़ जाए, पैर लड़खड़ा जाए और साँस उखड़ने लगे। खाली वार से लाठी धरती पर गिर करके हाथ और पूरे शरीर को झनझना दे।

लड़ाई में बेवकूफ, भोंदा और पोंगा होना बड़ा खतरनाक है। मूर्ख साहस की अधिक-से-अधिक निन्दा होनी चाहिए। यह सब कमियाँ प्रशिक्षण न लेने से उत्पन्न होती हैं। यह सोचना कि दुश्मन जब प्रहार करेगा, तभी हम बहादुरी से जवाब देंगे, यह भी गलत है-बल्कि स्वयं उचित मौका देखकर प्रहार करने से चूकना नहीं चाहिए। जहाँ-तहाँ बेमौके भनभन लाठी भाँजना भी एक कमजोरी है, जैसे फुटबाल या हॉकी का खिलाड़ी मौका-बेमौका जलेबी छानने का कमाल दिखाने के चक्कर में खेल बिगाड़ देता है। बहुत मजबूर होने पर, जैसे घिर जाने पर बाहर निकलने के लिए इस कला का उपयोग होना चाहिए। नंगी खोपड़ी कभी नहीं लड़ना चाहिए, पगड़ी, मुरैठा या दुपट्टा बाँध लें। फिर भी अपनी खोपड़ी भरसक बचाए रखें। यदि प्रतिद्वन्द्वी की खोपड़ी पर मार नहीं पा रहे हों तो ऐसी नाजुक जगह प्रहार करें, जिससे वह सुन्न हो जाए।

सदाशयव्रत ने अपना काम बहुत ही मेहनत से सीखा। शीघ्र ही वह निपुण भी हो गए। इस कड़े अभ्यास के बाद वे विश्राम करके गंगा-स्नान करते और कछार के दबंग किसान तथा अनग्राहित ठाकुर ने साथी नत्थू सिंह की झोंपड़ी में जाकर मीठा खाकर भर पेट दूध पीते थे। सदाशयव्रत के साहस, मेहनत और निपुणता पर अनग्राहित ठाकुर मुग्ध था। और वह भी अनग्राहित जैसा गुरु पाकर खुश थे। उनके शरीर में अद्भुत लोच, फुर्ती और मजबूती आ गई थी और वह कहरवा नचनिया, कत्थक नर्तक, नट और लंगूर को मात देने लगे। वह किसी को एक मुक्का मार दें तो वह धराशायी हो जाए और पंजे तथा गट्टे इतने शक्तिशाली कि बाएँ हाथ से भी किसी को पकड़ लें तो वह छुड़ा न पाए।

एक दिन सदाशयव्रत दूध पीकर नत्थूसिंह की झोंपड़ी के बाहर निकले तो अनग्राहित ठाकुर किसी मित्र की तरह प्रेम और विनम्रता से बोला :

"ऐ ओझाजी, हमारे जिला-जवार में ऐसे-ऐसे लोग हैं कि क्या बताऊँ। गरीब जोतते-बोते हैं, जी-जान लगाते हैं और जब फसल तैयार होती है तो वे जबरदस्ती काट लेते हैं। इसी तरह औरतें भगानेवाले लोग हैं, उनको खरीदते और बेचते हैं। ऐसे-ऐसे दबंग ठाकुर, ब्राह्मण और बनिए हैं, जो गरीबों को जबरदस्ती गुलाम बनाकर उनका निरन्तर शोषण करते हैं। ये

लोग दूध-घी में नहाते हैं, गलीचे पर सोते हैं, ये खूबसूरत गाय, भैंस, घोड़े और हाथी अपने दरवाजे पर बाँधकर अपनी शान दिखाते हैं। और इनसे धर्म के नाम पर, इन्सानियत के नाम पर कुछ माँगिए तो ये एक धेला भी न दें। मैं साफ-साफ बताता हूँ, मेरे पास खेत-बारी नहीं है, गरीबी में पढ़-लिख नहीं पाया, लूर-शऊर कुछ सीख नहीं पाया। जब इन लोगों को देखता हूँ तो मेरा खून खौल उठता है। मैं इन्हीं लोगों से अपने लिए और गरीबों के लिए वसूलता हूँ। उनका धन छीन लेता हूँ। उससे मेरे परिवार का काम चलता है और जो बचता है, उसको गरीबों में बाँट देता हूँ। अब बताइए, ओझाजी, मैं कौन गलत काम करता हूँ?"

सदाशयव्रत ने पहले उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह उसे सूखी नासमझी से घूरते रहे। फिर बोले, "तो आप लूट-मार करते हैं ?"

अनग्राहित ठाकुर पहले सकपका गया। उसकी आँखें झुक गई। उसने सोचा था कि सदाशयव्रत उसकी इन बातों से भी प्रभावित होंगे। किन्तु जल्दी ही उसने अपने को सँभाल लिया और दृष्टि उठाकर मुस्कुराते हुए बोला

"ओझाजी, मैं लुटेरा नहीं हैं, गरीब हैं और गरीयों पर जो अन्याय हो रहा है, उसका वदता लेता हैं। यह सब न करूँ तो भखों मरूँ और दूसरे गरीयों को भी कोई पुछनेवाला न हो। मैं बदमाश धनिकों को ही छूता हैं, किसी भी शरीफ पर हाथ नहीं उठाता। कोई गलत काम नहीं करता तो अपने को डाकू-लुटेरा क्यों समझें? गलती तो यही करते हैं, जो गरीयों को लूटते हैं।"

सदाशयवत ने अब उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। यह चुपचाप घर के लिए प्रस्थान कर गए। परन्तु घर में उनकी तबीयत लगती नहीं थी। उनके दोनों छोटे भाई और बहन पढ़ने में बहुत तेज थे और वे हर कक्षा अच्छे नम्बरों से पास करके आगे बढ़ते जा रहे थे। पिता से उनकी बातचीत बन्द थी। दसरों से भी उनकी कम ही बात होती। दोस्त इधर-उधर बिखर गए थे। यह सदा हीन और अपराधभाव से ग्रस्त रहते। मानवता, प्रेम और

परोपकार के मार्ग को यह अत्यधिक उच्च्य कार्य समझते, जिसमें शिक्षण-अध्यापन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। और जब यह ऊँचाई पर नहीं जा सके तो एक जगह स्थिर भी रहना कठिन हो गया और ढलान पर लुढ़कना आसान। और कुछ ही समय बाद अनग्राहित ठाकुर की बातें उन्हें तर्कसंगत एवं आकर्षक लगने लगीं। और एक दिन वह सबकी नजरों से दूर रहने के लिए घर छोड़कर चले गए।

जब मुनष्य लुढ़कता है तो लुढ़कता ही जाता है। बीच में रुकना मुश्किल हो जाता है। पहले सदाशयव्रत को जरूर बुरा लगा था। मन हिचकिचाया था। पर अब जाएँगे कहाँ ? कलकत्ता ? कौन जानता है कलकत्ता में क्या होगा, कहाँ-कहाँ भटकना पड़ेगा। चुपचाप दरबानी उनसे हो पाएगी ? किसी की गुलामी वह कर पाएँगे? और अपने घर फिर लीटना तो सर्वथा असम्भव होगा! तव जहाँ उन्होंने ऊँचा उठने की कोशिश की तो इतनी तेजी से लुढ़केंगे कि हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाएगी। इसलिए किस्मत जो करा रही है, उसे होने दें। यही उचित है, यही सही है। और उन्होंने सोचना और चिन्ता करना एकदम छोड़ दिया और अनग्राहित ठाकुर को उसके कार्य में हार्दिक सहयोग करने लगे। और उनको कुछ दिनों में महसूस हुआ कि लुढ़कने में, पतन के रास्ते पर चलने में भी मजा है। उसका भी एक तर्क है। आदर्श पर चलकर कौन सुख मिलता है? आत्मा बार-बार कष्ट देती है। यहाँ न तो आत्मा का सवाल और न किसी आदर्श का।

दीयर-कछार में रात-भर दौड़ना। दूर-दूर तक। नंगे पैर। ईंट-पत्थर के ठोकरों और खेतों की खूटियों से पैर लहूलुहान हो जाते। बड़े डील-डौल वाली खूबसूरत गाय, भैंस, बैल और घोड़े को गंगा पार से खोलकर इस पार ले आना और ठिकाने लगाना कोई आसान काम नहीं था। कभी-कभी घाघरा पार करके जिला देवरिया या सीवान पहुँचाना पड़ जाता। कभी धनी बनिया, ब्राह्मण, ठाकुर अथवा कलकत्ता, आसाम से खूब पैसा कमाकर लौटे व्यक्ति के घर पर डाका डाला जाता, जिसे 'डंका' कहा जाता था। बीरान इलाके के गाँव में तो नोटिस चिपका दी जाती कि 'आज गाँव में फलाना के यहाँ डंका पड़ेगा।' जब दिन बीत जाता, उसके कई दिनों बाद गाँव में निश्चिन्तता फैलने पर डंका पड़ता था। सुल्ताना डाकू की बहादुरी की परम्परा का अनुसरण करने की कोशिश की जाती, लेकिन वह

बात पैदा नहीं हो पाती। इस कार्य में सबसे अधिक मदद मिलती थी पुलिस की अनुपस्थिति से। दूर-दूर तक किसी थाने का पता नहीं था। यदि सूचना किसी ने दे भी दी तो पुलिस नहीं पहुँच पाती थी। मुश्किल उसी समय उपस्थित होती, जब कई गाँव आस-पास होते और उनमें 'जगहट' फैल जाती। वे लाठी-भाला लेकर शोर करते हुए दौड़ पड़ते। तब दौड़ का पूर्व अभ्यास काम आता। सरपट दूर। लाठी, भाला भी चलाना पड़ता।

सदाशयव्रत भरसक कोशिश करते कि किसी की हत्या न करनी पड़े। दूसरों से भी वह यही कहते थे। किसी स्त्री पर तो कोई अत्याचार कर ही नहीं सकता था। लेकिन उन्हें दो लतें पड़ गई। एक तो वह हर प्रकार का नशा करने लगे। और जब नशे में नहीं रहते तो लोक कलाकारों के गाने सुनना पसन्द करते। यदि शादी-ब्याह में भाँड का नाच-तमाशा या धोबियों की बारात देखने को मिल

जाए तो उनकी खुशी देखते ही बनती। आँखें हार्दिक आनन्द से चमकने लगतीं। बारात ले जाते समय धोबी लोग दोपूँछटवा धोती पहनकर और कमर पर दुपट्टा बाँधकर पी-पी बाँसुरी बजाते हुए एक सीमित दायरे में इस तरह थिरकने लगते, जैसे मोर नाच रहे हों। कभी-कभी उनकी दो बारातें आमने-सामने टकरा जातीं। फिर तो उनके बीच देर तक जबरदस्त प्रतियोगिता होने लगती। सदाशयव्रत की सारी थकान मिट जाती। जैसे कोई गुदगुदाकर उन्हें हँसाने लगता। अहा, यह जीवन

भी खूब है ! उनकी आँखें भर आतीं। "ए ओझाजी, कोई कष्ट-तकलीफ ?"

"ए अनग्राहित ठाकुर, एक बात कहूँगा।"

"खुशी-खुशी कहिए। जो भी आप कहेंगे, जान देकर पूरा करूँगा।"

"जान देने की बात नहीं है। मैं चाहता हूँ, आप मुझे 'ओझाजी' न कहें !"

"ओझाजी को 'ओझाजी' न कहूँ तो क्या कहूँ?" अनजान ठाकुर की आँखें हैरानी से बाहर निकल आईं।

"बस मेरा नाम पुकारिए सदाशयव्रत। ओझा-वोझा नहीं। आगे ओझाजी कहा तो आपसे मेरी नहीं निभेगी।"

अनग्राहित ठाकुर कुछ देर तक उन्हें घूरता रह गया। फिर हँसकर बोला, "आगे से ऐसा ही होगा।"

बदली की एक रात उन्हें भागना पड़ा था। दो गाँव पास-पास थे। एक गाँव था हिन्दुओं का और दूसरा मुसलमानों का। दोनों ही गाँवों के लोग आपस में बहुत प्यार से रहते। दशहरा में गाँव के प्रतिष्ठित हिन्दू लोग पड़ोसी गाँव में जाकर मुसलमान भाइयों को रामलीला और विजयादशमी का मेला देखने के लिए आदरपूर्वक बुला लाते। होली में दोनों गाँवों के लोग आपस में होली खेलते, गले मिलने के लिए चले आते। होली की गवनई महफिल में शामिल होते और कई होली और चैता गाते।

उसी तरह मुहर्रम के दिन गाँव के मुस्लिम बुजुर्ग पड़ोसी हिन्दू गाँव में हर दरवाजे घूम-घूमकर कह आते :

"अरे दुल्हनों, अरे लंगूरों, आज कत्ल की रात है। कंबल बिछा है, केवड़ा छिड़का है। चलो सब चलें, बैठने का बहुत अच्छा इंतज़ाम है।"

काफी लोग, औरत और लड़के-लड़कियाँ वहाँ पहुँचकर दरी पर बैठ जाते और देर रात तक बैठे रहते। ईद और बकरीद को भी झुंड-के-झुंड हिन्दू अपने मुसलमान भाइयों से ईद मिलने पड़ोसी गाँव में जाते। दोनों गाँवों के लोगों के बीच कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ। खेत-बारी को लेकर अगर कभी कोई मतभेद भी हुआ तो मिल-जुलकर सुलझा लिया जाता।

डाका गौरी कानू के घर पर पड़ा। बदली के साथ अँधेरिया रात भी थी। सभी ने अपने मुँह पर अँगोछे बाँध रखे थे, सिर्फ आँखों के लिए जगहें छोड़ दी गई थीं। सारा गाँव सोया हुआ था। बड़ी होशियारी से दबे पाँव वे लोग पहुँचे थे। लेकिन गौरी कानू के घर के पास अदावत नामक डाकू के पैर में एक अत्यन्त विपैले काले बिच्छू ने डंक मार दिया। थोड़ी ही देर में वह असह्य पीड़ा के मारे जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "अरे दादा हो, दौड़ो

बिच्छी ने डंक मार दिया। अरे जान निकल जाएगी हो दादा।"

इस आवाज से कानू के घर का कोई जाग गया। वह जोर-जोर से गाँववालों को पुकारने लगा। पूरे गाँव में जगहट पड़ गई और लोग लाठी-बल्लम लेकर हल्ला करते हुए बाहर निकल आए। यह

शोर मुसलमानों के पडोस के गाँव में पहुँचा। वहाँ से भी लोग लाठी लेकर ललकारते हुए दौड़े। अनग्राहित. सदाशयन्नत और अन्य डाकू घबरा गए। अनग्राहित ने पहले ही अदावत को उठाकर दौडाने की कोशिश की, पर यह दो कदम चलने में भी असमर्थ था। वह इस तरह चिल्ला रहा था, जैसे उसने यमराज के ही दर्शन कर लिए हों। अन्त में निराश होकर अनग्राहित ने ही एक प्रिय साथी को बल्लम से मारकर धराशायी कर दिया और उल्टी दिशा में अपने साथियों के साथ भागना शुरू किया।

दौडने में सभी तेज थे। इसका खूब अभ्यास था उन्हें। लाठी-बल्लम साथ रहने से जरूर दिक्कत होती थी। पर गाँव के लोगों ने सिर्फ कुछ ही दूर तक पीछा किया।

वे लोग भागते गए, भागते गए। वन से, पाँतर से, खेत-खलिहानों से, गड्ढा-गुड्ढी से, बलुई इलाके के झौवा-झाड़ियों से होकर बीच-बीच में लोग, एक के बाद एक अपने-अपने गाँव या अड्डे में छिपते गए। अन्त में सदाशयव्रत के साथ अनग्राहित ठाकुर एक ऐसे गाँव में पहुँचा, जिसके पास एक छोटा-सा स्टेशन भी था।

अभी किरण नहीं फूटी थी। वे दोनों खपरैल के एक छोटे-से मकान के सामने खड़े हो गए।

पुकारने पर एक दुबला-पतला अधेड़ आदमी बाहर आया।

"कहो भोलाराम, सब ठीक-ठाक है?" अनग्राहित ठाकुर ने पूछा।

"हाँ ठाकुर, अब ठीक ही है।" भोला की खीस निकल आई।

"कोई और बात तो नहीं.?"

"अरे, गरीब आदमी की बात कहाँ खत्म होती है, ठाकुर तुम तो सब जानते ही हो।"

"कोई चिन्ता न करो। तुम्हारी सभी तकलीफें मैं दूर करूँगा।" इसके बाद अपने टेंट में हाथ

डालकर कुछ रुपए निकालकर भोला की मुठ्ठी में देते हुए बोला, "ये हमारे साथी हैं दलन। ये'कुछ दिन यहीं रहेंगे। जब ये जाने को कहें तो जाने देना।"

"अरे कोई तकलीफ न होगी। बाहर की कोठरिया खाली ही रहती हैं, रहें न जब तक चाहें। दोनों जून रोटी-दाल मिल जाएगी। कोई इनसे बोलेगा नहीं।"

"ये अपने भोजन का पैसा तुम्हें अलग से दे दिया करेंगे। कोई संकोच न करना।" "अरे तो ठीक ही है, यह सब फिकिर काहे करते हैं। आराम से जाओ।"

बाहर की कोठरी बहुत ही छोटी थी जिसमें एक ऐसा पुराना तखत पड़ा था, जिसका अंजर-पंजर ढीला था। बैठते ही वह हचकने लगता और चर्र-चर्र आवाज कर उठता। कोई खिड़की नहीं थी। कमरे में सिर्फ ऊपर मिट्टी की दीवार में एक मुक्की (छोटा-सा गोल रोशनदान) थी। चूहों, मकड़ियों, झींगुरों और छिपकलियों का अच्छा-खासा अड्डा। उसमें मिट्टी, गोबर और सूखे भूसे की ऐसी मिश्रित गन्ध फैली थी जिससे साँस लेने में किंचित परेशानी महसूस होने लगती थी।

सदाशयव्रत दो दिन तक कोठरी में सोते रहे। जरूरत महसूस होने पर सुबह और शाम अँधेरे में निकलते। नाश्ता और खाना कमरे में ही आ जाता। छुआछूत और ब्राह्मण-पुत्र के अन्य संस्कार समाप्त हो चुके थे। कभी-

कभी विकट परिस्थितियों में उन्हें रहना और खाना-पीना पड़ता था। इसीलिए उन्होंने अपने नाम से ओझा शब्द निकलवा दिया था। कौन-सा कर्म था उनका ब्राह्मणों जैसा ? अनग्राहित ठाकुर को भी वह अब अच्छी तरह समझ चुके थे। वह शुद्ध लुटेरा था। कहीं-कहीं गरीबों को मदद करना उसकी नीति थी। वह अपने काम को और फैलाना चाहता था अन्य रूपों में, रुपए-पैसे के बँटवारे में भी बेईमानी करता था। कई साथी आपत्ति करते थे, झगड़ा होता था, पर सदाशयव्रत इस अर्थ में महत्त्वाकांक्षी नहीं थे। किसी से माँगना होता नहीं था उनसे। जो दे देता उसे ले लेते, यद्यपि वह उनसे डरता था और किसी भी हालत में उनका साथ खोना नहीं चाहता था। इसलिए उनके साथ बहुत बेईमानी उससे हो नहीं पाती थी।क।

तीसरे दिन निश्चिन्त होकर वह सवेरे सवेरे जलखावा के बाद स्टेशन की ओर घूमने निकले। पहले-पहल स्टेशन कर्मचारियों के चार क्यार्टर थे। दो कुछ बड़े और बाकी दोनों छोटे-एक कमरे वाले। नजदीकी रास्ता उन क्वार्टरों से होकर जाता था।

जब वह क्वार्टरों के पास आए तो सामान्य-सा सन्नाटा होने पर भी एक दृश्य देखकर ठिठक-से गए। एक कमरे वाले अन्तिम क्वार्टर के बाहर दरवाजे पर अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की एक युवती थी और वहाँ से पचास-साठ गज की तिरछी दूरी पर एक सीधा, लम्बा, स्वस्थ गठीला और काला नौजवान खड़ा था। युवती भी लम्बी और बेहद गोरी थी। सुती नाक, बड़ी-बड़ी आँखें, पतली कमर, भारी नितम्ब, खूबसूरत लम्बी गर्दन। वहाँ क्या कर रही थी वह, इसका सहसा पता लगाना आसान नहीं था। उसकी छाती पर से आँचल बार-बार सरक-ढरक जाता, जिसे वह बार-बार अनजान लापरवाही से सँभाल लेती। कभी वह नीचे झुककर कुछ देखने लगती और कभी अंगड़ाई लेकर आकाश को निहारने लगती। कभी गम्भीरता का मूड धारण करके घर के भीतर चली जाती लेकिन फौरन बाहर आकर नौजवान की ओर देखकर मुस्कुराने लगती। उसकी ये समस्त चंचल, मृदुल क्रियाएँ नृत्य की तरह थीं, जैसे कोई अप्सरा किसी तपस्वी ऋषि को रिझा रही हो।

सदाशयव्रत शिष्टाचारवश वहाँ अधिक समय तक रुक नहीं सकते थे। कोई ऐसा कारण भी नहीं था और स्त्रियों से तो वह कोसों दूर रहते थे। लेकिन जब वह स्टेशन पर पहुँचे और खड़े होकर आनेवाली गाड़ी का इन्तजार करने लगे, उस समय उनके दिल के अन्दर एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। हृदय तेजी से धड़क रहा था। स्त्रियाँ तो उन्होंने बहुत-सी देखी थीं। कई उनकी तरफ आकर्षित भी हुई थीं। लेकिन किसी का भी इन पर असर नहीं हुआ। फिर इस स्त्री में क्या था ? उसे तो वह एक क्षण के लिए भी भूल नहीं पा रहे थे। ऐसे मामूली, गरीब घर में बेला-चमेली की तरह पवित्र खुशबूदार औरत कहाँ से आई, जो एक मामूली-सी साड़ी में सुन्दर-से-सुन्दर रानी-महारानी को मात दे रही है ?

लौटते समय वह दिखाई नहीं पड़ी। वह नौजवान भी नहीं। सामने दरवाजे पर एक बूढ़ा-सा दुबला-पतला व्यक्ति एक बँसखट पर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। कोठरी में आकर सदाशयव्रत चुपचाप बैठ गए। फिर तखत पर लेट गए। अन्त में कमरे में तेजी से टहलने लगे। पर किसी तरह उन्हें चैन नहीं आया।

वह दिन में कई बार क्वार्टर के पास से गुजरे। दो-तीन बार वह दिखाई पड़ी। कभी बाहर बँधी बकरी को कुछ खिलाती हुई, कभी बाहर के कुएँ से पानी लाती हुई। वह हर बार पहले से अधिक सुन्दर मालूम पड़ती। उन्हें उस दिन की याद आई जब आर्ट और ड्राइंग पढ़नेवाला उनका छोटा भाई सत्यव्रत चित्रों की एक पुस्तक ले आया था। राजपूत पेंटिंग के कुछ चित्र देखकर उनकी आँखें आश्चर्य से फैल गई थीं। स्त्रियों के कुछ चित्र देखकर उन्हें लगा था कि वे बोल देंगी-बेहद सुन्दर एवं सजीव। और यह युवती जब आज अपने दरवाजे पर सक्रिय थी तो उन्हें लगा था जैसे राजपूत पेंटिंग के उन चित्रों में से कोई चित्र हो। क्या अर्थ है इसका ? कागज पर बनाया चित्र सजीव मनुष्य लगता है और एक सजीव सक्रिय मामूली गरीब युवती किसी कलाकार के चित्र की तरह ! सौन्दर्य कहाँ है ? उस युवती में या चित्र में? अथवा कलाकार में चाहे वह मनुष्य हो या ईश्वर ? या वह स्वयं उनके अन्दर है ? यदि ऐसी ही बात है तो इतना ताप क्यों? कब से यह आग है उनके अन्दर ?

क्या कामनाओं की यह सुप्त आग ही सौन्दर्य है, जो किसी खास अवसर पर जलने लगती है ? उन्होंने अपने को धिक्कारा। एक पापी, लुटेरा, क्यों किसी सुन्दर स्त्री का जीवन बिगाड़ना चाहता है ? स्त्री से उनका क्या वास्ता ? इससे तो वह पहले से ही दूर-दूर हैं। नहीं, कभी भी वह उस क्वार्टर की ओर नहीं जाएँगे। उसके बारे में वह सोचेंगे भी नहीं। इस संकल्प के साथ उन्होंने अपने को उस कोठरी में फिर बन्द कर लिया। पर वह उसे भूल नहीं पाए लाख कोशिश करने पर

भी। निर्धन वर्ग की औरत में ऐसी प्रबुद्ध चंचलता कहाँ से आई ? उसके मुख की कल्पना ही शरीर और उसके अंगों के अतुलनीय सौन्दर्य का गहरा एहसास करा देते। यह उसको हासिल करने के लिए व्याकुल हो जाते। वह व्याकुलता बरदाश्त के बाहर हो जाती। वह उठकर बैठ जाते और अपने बालों को नोचने लगते। उन्होंने एक ऊँचे पर्वत की तरह अचल एवं कठोर बनने की कोशिश की थी, लेकिन अब उनकी स्थिति एक ज्वालामुखी पर्वत जैसी हो रही थी। उनके अंग-अंग से जैसे लावा फूटकर निकल रहा हो।

सूखा-सूखा क्यों है ? जी ठीक है न?" तीसरे दिन सवेरे भोलाराम ने उनकी ओर देखकर अचम्भे से पूछा, "काहे हो दलन, चेहरा

नाम बदलकर रहने का यह पहला मौका नहीं था, परन्तु इस समय उन्हें एक उलझन का अनुभव हुआ। इस समय यह कुछ दूसरी बात सोच रहे थे।

"अरे कोई बात हो तो चलो वैद्यजी को दिखा देता हूँ।" जवाब न मिलने पर भोलाराम ने पूछा। "ए भोलाराम, दाहिने हाथ पर जो आखिरी रेलवे क्वार्टर है, उसमें कौन रहता है? दरवाजे पर एक नौजवान औरत को देखा था मैंने। गोरी और खूबसूरत है।"

सदाशयव्रत के मन में ऐसी कोई बात थी भी नहीं और उन्होंने अपने स्वभावगत स्वाभिमान का त्याग करके यह प्रश्न पूछा था। भोलाराम पहले

कुछ क्षण नासमझ की तरह उनको घूरता रहा, फिर मूँछों में ही मुस्कुराकर बोला :

"अरे उस कनेरी के बारे में कह रहे हैं। घरभरना की औरत है। साला बूढ़ा हो गया है पर

हिरिस बनी हुई है। पहली औरत दमा से मर गई, कोई बच्चा नहीं हुआ उससे। चार-पाँच साल पहले एक गरीब बाप से पाँच सौ रुपए में यह दूसरी औरत खरीद ली। तब यह नासमझ छोकरी थी, लेकिन अब तो पक्की हरजाई निकल गई है। क्या मुँह में पानी आ गया है ? कहो तो बात करूँ?" सदाशयव्रत ने दूसरी ओर मुँह घुमा लिया। ऐसा महसूस हुआ कि अपनी दयनीय मजबूरी की स्थिति में वह फौरन रो पड़ेंगे।

"अरे, बोलते क्यों नहीं भाई? औरत तो चिड़िया होती है, उसे पुचकारना पड़ता है, फुसलाना पड़ता है, बझाना पड़ता है। यह तो हरजाई ही है। घरभरना से चोरी-छिपे एक आसिक को बुलाती है। कालाकलूटा चनरा एक रेलवे मजदूर है। घरभरना पैटमैन (प्वाइंट्स मैन) है, जब वह दिन या रात में ड्यूटी पर चला जाता है तो चनरा क्वार्टर की दीवार फाँदकर चला आता है। ऐसी मन बिगड़ी है यह औरत। कहो तो मैं बात करता हूँ, कुछ पैसा-कौड़ी खर्चा होगा।"

कनेरी की चर्चा और उसकी प्राप्ति की सम्भावना से सदाशयव्रत की हालत और बुरी हो गई। भोलाराम की मजाकिया मुस्कुराहट का भी उन पर प्रतिकूल असर नहीं हुआ बल्कि एक अनजान उत्साह में उनके मुख से आश्वासन की आवाज निकली :

"रुपए-पैसे की दिक्कत नहीं होगी। कहो कितना दे दूँ ?"

भोलाराम की खीसें निकल आई, "अरे, सोच-समझकर कुछ दे दो, बातचीत हो जाने के बाद देखा जाएगा..."

रुपए पाकर भोलाराम प्रसन्न हो गया। कनेरी से बात करने का मौका उसे दो दिन बाद मिला, जिसके पश्चात बेचैन-बेहाल सदाशयव्रत के पास आकर

उसने कहा:

"ए दलन, बड़ी हरामजादी औरत है, पुट्टे पर हाथ ही नहीं रखने देती। सती-सावित्री बनने लगी। बुलका चुआने लगी। कहा है न-'सीता को छिनार कहो तो खिल-खिल हँसे, छिनार को छिनार कहो तो गिल-गिल रोए।"

इस निराशा के लिए सदाशयव्रत तैयार नहीं थे। गुस्से से उनकी आँखें लाल हो गई। उनके मुख से किसी खूंखार जानवर की तरह आवाज निकलीक भिग्ना निज निलः

"धोखेबाज ! तुम मुझे जानते नहीं। लेदा-गोदा सब निकाल दूँगा। समझ क्या रखा है तुमने। झूठा, लालची, जब तुमसे होना-हवाना कुछ नहीं तो पैसे के लिए डींग क्यों मारते हो?"

"भोलाराम भी पहले का बड़ा बदमाश डाकू था, लेकिन अचानक स्वास्थ्य खराब हो जाने से गरीबी का जीवन बिता रहा था। क्रोध से आँखें निकालकर बोला:

"तुम्हें पैसे का बड़ा जोम है ? कुछ साल पहले तुम्हारे जैसे लोगों को खरीदकर बेच देता था। मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ इसलिए कि तुम अनग्राहित के आदमी हो। तुम्हें दो दिन के भीतर दिखा दूँगा कि मैं क्या चीज हूँ। गाँव के बाहर एक छोटी-सी बगिया है मेरी, जिसमें आम-अमरूद के कुछ पेड़, एक कुआँ और एक कोठरी है। बाप-दादा का बनवाया है। कभी-कभी मैं ही रहता हूँ वहाँ। मैं कनेरी को वहाँ ले आऊँगा और तुम उसे पटा लेना। यह मान जाए तो ठीक ही है और न माने तव भी उसे अपने साथ जबरदस्ती ले जाना। और फिर कभी भी इधर न आना। इस काम के लिए एक हजार रुपए मुझे देने पड़ेंगे; अभी नहीं, बाद में।"

दूसरे दिन करीब दस बजे रात को भोलाराम ने आकर कहा, "चलो।" कोठरी को बन्द करके वे दोनों चल पड़े। आसमान में काले काले बादल छाए थे। कुछ तेज हवा चल रही थी। सदाशयव्रत का दिल तेजी से धड़क रहा था। देह गनगना रही थी। गाँव में सुत्ता पड़ गया था। स्टेशन पर खड़ी

कोई ट्रेन सीटी दे रही थी। वे चुपचाप लपकते हुए बढ़ रहे थे।

गाँव से एक फर्लांग की दूरी पर वह बगिया थी चहारदीवारी से घिरी हुई। भोलाराम ने फुसफुसाई आवाज में कहा :

"मैं बाहर से बगिया का ताला बन्द कर लूँगा। आस-पास बाहर ही रहूँगा, तुम भीतर जाकर बाहर से कोठरी का ताला खोल लेना। उसी के अन्दर वह मिलेगी। बगिया के फाटक पर खड़े होकर जब तुम बुलाओगे तो मैं आ जाऊँगा।"

भोलाराम ने बगिया का फाटक खोलकर सदाशयव्रत के हाथ में कोठरी की चाभी पकड़ाई और जब वे भीतर चले गए तो बाहर से फाटक फिर बन्द कर दिया।

कोठरी का ताला खोलते समय सदाशयव्रत का हाथ काँप रहा था। जब वह भीतर गए तो अचम्भे से स्तम्भित रह गए। एक चारपाई पर कनेरी पड़ी थी। उसके मुँह में कपड़ा बँधा था, उसकी दोनों बाँहें भी पीछे रस्सी से बँधी थी। वह चारपाई में मुँह गाड़कर और हिलाकर बँधा कपड़ा खोलने की कोशिश कर रही थी। पीछे बँधे हाथों को भी वह हिला रही थी।

सदाशयव्रत ने पहले कोठरी का किवाड़ भीतर से बन्द कर लिया, फिर आगे बढ़कर उसकी बँधी बाँह खोल दी। अन्त में उसे चित करके मुँह का बन्धन खोलकर उसमें हुँसा कपड़ा निकाला। उसकी देह थरथर काँप रही थी। उसके चेहरे पर माथे के लम्बे-लम्बे बाल फैले थे। आँखों से नीचे पूरा मुँह और गर्दन आँसुओं और पसीने से भीगे थे। उसकी चोली एक ओर फट गई थी, जिससे बर्फ की तरह सफेद उसका बायाँ स्तन बाहर निकल आया था।

मुँह में पड़ा कपड़ा हटते ही वह जोर से चीखी और उछाल मार किवाड़ की ओर भागी। सदाशयव्रत ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़कर उसे चारपाई पर बिठा दिया। फिर नरमी से बोले-"भागना मत। चुपचाप बैठकर बताओ कि क्या हुआ।"

वह बुरी तरह रो रही थी। बिलखती आवाज में बोली, "अरे मुझे घर पहुँचा दो, ए दादा।" "क्या हुआ तुम्हारे साथ ?" सदाशयव्रत को भोलाराम पर गुस्सा आ रहा था।

"अरे दादा, जब हमारे आदमी पैटमैन ड्यूटी पर चले गए तो मेरे घर पर एक आदमी आया, उसे मैं नहीं जानती। वह अपने को चनरा का संगी बता रहा था। उसने कहा, चनरा मुझे अपने घर बुला रहा है। वह बीमार है। मैं उसकी बातों में आ गई और क्वार्टर में ताला लगा उसके साथ चल पड़ी। जब कुछ सन्नाटा आया तो एक और आदमी मिला। उन दोनों ने अचानक मुझे पकड़कर मेरे

मुँह में कपड़ा ठूंस दिया। मैं चिल्ला नहीं पाई। हाथ-पैर खूब फेंके। आखिर में मुझे होश नहीं रहा। जब आँख खुली तो अपने को इस कोठरी में पाया। पता नहीं कौन-सी जगह है। ए बाबू साहब, मुझे स्टेशन पहुँचा दीजिए...।"

"यह चनरा कौन है ?" सदाशयव्रत ने रूखाई से पूछा।

"अब यह न पूछिए, ए दादा। मेरे करमजले दरिददर बाप ने मुझे बूढे पेटमैन के हाथों बेच दिया। पर इस आदमी में कुछ है नहीं। ऊपर से हमेशा खरखर किए रहता है। चनरा रेलवई में मजूर है ए बाबू साहब, बड़ा नेक है। हिम्मती है, पक्का मर्द है, मौका-बात पर जान देनेवाला मनई है। वही मेरा सबकुछ है।"

"तुम मुझे जानती हो, कहीं देखा है मुझे ?" सदाशयव्रत ने गुर्राहट-भरी आवाज में पूछा। "नहीं जानती हूँ ए बाबू साहब, कहीं देखा भी नहीं। आप कौन हैं? क्या आपने ही मुझे पकड़

मँगाया है ?" वह सदाशयव्रत को डर और आतंक से देखने लगी। "क्या भोलाराम ने तुमसे कुछ नहीं कहा ?"

कनेरी कुछ क्षण सोचती रही। फिर अचानक जोर-जोर से रोने लगी, "अरे

माई, मैं जानवरों के किस इलाके में फँस गई ? तुमने मुझे सौरी में ही मारकर क्यों नहीं फेंक दिया ? बाबू साहब, मैं छिनार-हरजाई नहीं हूँ, मर्द-आशिका नहीं हूँ। मुझे मेरे घर पहुँचवा दीजिए, आपका एहसान मानूँगी।"

"देखो, रोना-धोना बन्द कर दो, और जो मैं कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो। मैं दिल से बुरा आदमी नहीं हूँ। किस्मत ने मुझे डाकू-लुटेरा बना दिया। स्त्री से मैं सदा दूर रहा लेकिन जब से तुम्हें देखा है, मैं पागल हो गया हूँ। मैं तुम्हें अपनी जनानी बनाना चाहता हूँ। तुम्हारी जैसी स्त्री मैंने आज तक देखी नहीं। कोई भी नवयुवती मेरे अन्दर कामनाओं की आग धधका नहीं सकी। मेरा दिल जल रहा है, मेरे शरीर से पिघल-पिघल कर लावा निकल रहा है। तुम्हें छाती से लगाने के लिए में बेचैन हूँ, तड़प रहा हूँ, गरई मछली की तरह छटपटा रहा हूँ। बता नहीं सकता कि तुमको मैं कितना चाहता हूँ। तुम घरभरन और चनरा का ख्याल छोड़ दो। मैं जो कुछ तुम्हें दे सकता हूँ, ये लाख जन्म में नहीं दे पाएँगे। तुम आओ मेरे कलेजे के पास..." सदाशयव्रत का स्वर एक विचित्र और दयनीय गिड़गिड़ाहट में बदल गया था, जो उनके स्वभाव के सर्वथा विपरीत था।

"अरे, ममता बड़ी बुरी चीज होती है बाबू साहब। मैं वैसी औरत नहीं हूँ, जो आप मुझे समझते हैं। मुझे आप पहुँचवा दीजिए...।" वह आँचल में मुँह ढककर फूट-फूट कर रोने लगी।

"देखो, तुम मेरे साथ रहोगी, तो मैं यह डकैती-सकैती सब छोड़ दूँगा। तुमको फूल की तरह रखूँगा। हर सुख दूँगा। गहनों से लाद दूँगा। अच्छी-से-अच्छी फैशन वाली साड़ियाँ पहनाऊँगा। चारों ओर घुमाऊँगा। तुम अपने सभी पुराने कष्ट भूल जाओगी। मेरा कहना मान जाओ...।"

सदाशयव्रत का स्वर प्यार से लबालब था। लेकिन कनेरी उसी तरह बिलखती हुई बोली, "अरे दादा, ममता बड़ी बुरी चीज होती है।"

सदाशयव्रत कुछ देर तक रुदन की लकीरों से भरे उसके चेहरे को देखते रहे। धीरे-धीरे गुस्से से उनका चेहरा उग्र हो गया और आँखें लाल। वह उसके निकट जाकर अत्यधिक कठोरता से बोले :

"तुम मुझे नहीं जानती। मैं बहुत निर्दयी भी हूँ। तुम्हें क्या मैंने इसलिए मँगवाया है कि घरभरन और चनरा के पास तुम्हें फिर भेज दूँ? ऐसा सपने में भी न सोचना। तुम मान जाओगी तो ठीक है, नहीं तो तुम्हारे साथ जबरदस्ती करूँगा। तुम्हें यहाँ से जबरदस्ती ले चलूँगा। औरत को क्या चाहिए-मर्द। मैं मर्द हूँ। नेक हूँ, उदार हूँ, औरत को वह सबकुछ दे सकता हूँ, जो वह चाहती है। तुम्हें ले जाने के पहले घनभरन और चनरा दोनों को इस दुनिया से विदा कर दूँगा...।"

कनेरी ने उसकी ओर सहमकर देखा। फिर चिल्लाकर फटी हुई आवाज में बोली :

"तुम जबरदस्ती करोगे ? कर लो, मैं तुम्हारे सामने हूँ। यह तो शरीर मिट्टी का है पर समझ लेना आत्मा नहीं मिलेगी। बिना आत्मा के शरीर को जितना चाहे ले लो। मेरी आत्मा तो चनरा में बसती है। उसके बिना मुझे तो यह शरीर भी नहीं चाहिए। इसी से बार-बार कहती हूँ ममता बड़ी बुरी चीज होती है। उसकी ममता मुझसे छूटती नहीं, न छूट सकती है बाबू साहब...।"

वह फिर जोर-जोर से बिलखने लगी। सदाशयव्रत सन्न रह गए। वह कनेरी से नजरें हटाकर दीवार के शून्य को देखने लगे। धीरे-धीरे वह काठ की तरह निर्जीव और जर्द हो गए। अन्त में बहुत धीमे और सूखे स्वर में बोले :

"तुम अब आजाद हो। तुम्हें कुछ देर में घर पहुँचा दिया जाएगा। मगर किसी से कुछ न कहना। भोलाराम का नाम न लेना। कोई कहानी गढ़कर बता देना। हाँ, मेरे पास कुछ रुपए हैं, तुम उसे ले लोगी तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

कनेरी ने उनकी ओर किंचित अचम्भे से देखा। फिर घबराकर रोती हुई बोली : "अरे ना हो दादा, मुझे रुपया-कौड़ी नहीं चाहिए। मुझे पहुँचवा दो....।"

सदाशयव्रत उसकी ओर कुछ देर तक देखते रहे। फिर मुड़कर किवाड़ की

सिटकनी खोलने के

लिए आगे बढ़ गए।

भोलाराम से विदा लेते हुए उन्होंने उदास स्वर में कहा-

"मेरे पास जो कुछ रुपए-पैसे हैं, तुम्हें देता जा रहा हूँ। एक हजार तो तुम्हारे हैं ही, बाकी का जैसे चाहे इस्तेमाल कर लेना। यह सब किसी से न कहना, अनग्राहित से भी नहीं। हाँ, अनग्राहित को यह बता देना कि मुझे खोजने की कोशिश न करे। मैं जब तक जिन्दा रहूँगा, उसका कोई भी राज किसी को भी न बताऊँगा।"

15

सदाशयव्रत रातभर चलते रहे। अब उनके साथी-संगी थे धरती, अन्धकार में डूबा आकाश, तारे, हवा, पेड़-पौधे, झाड़ी-झंखाड़, नदी-नाले, पोखरा-तालाब और लगातार बोलते झींगुर, मेढ़क आदि। उनका हृदय सुन्न था। गम्भीर गुम चोट खाए शरीर के किसी अंश की तरह। जब अँधेरा फटने लगा तो वह एक अनजानी जगह गंगा नदी के तट पर बैठ गए।

बैठते ही उनका हृदय हाहाकार कर उठा। गुम चोट अब दर्द करने लगी और उसकी पीड़ा बढ़ने लगी। ऐसा तिरस्कार उनको कभी भी नहीं मिला था। एक तो वह शुरू से ही स्त्री से स्वयं दूर-दूर रहे, और जब उन्होंने एक के लिए कोशिश की तो उसने अपने प्यार, आदर्श तथा नैतिकता से उन पर ऐसा प्रहार किया कि जीवन में पहली बार उनको पराजय का अनुभव हुआ। अचानक सबकुछ उनके लिए असह्य हो गया, यह अपना जीवन भी। उन्होंने आस-पास टेंट में और जेबों में ढूँढ़ा, लेकिन वह तो सभी छोटे-बड़े हथियार भोलाराम के पास छोड़कर चले आए थे। तब उनकी इच्छा हुई कि नदी में कूद कर जल समाधि ले लें। यह कैसे? वह तो एक कुशल तैराक भी हैं! वह देर तक नदी के पानी को देखते रहे जो बढ़ते उजालों में चाँदी की तरह चमक-चमक जाता। निराश होकर उन्होंने अपने पीछे देखा। कुछ दूरी पर पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा था बहुत बड़ा नहीं, ईंट के बराबर।

वह उठकर पत्थर का टुकड़ा ले आए और फिर उसी जगह बैठ गए। कुछ देर उन्होंने सोचा, तत्पश्चात दाँत किटकिटाकर उस पत्थर का टुकड़ा उठा लिया और उससे दो बार लगातार अपने सिर पर प्रहार किया। खून का फव्वारा फूट पड़ा और वह उससे नहा गए। तीसरा प्रहार करने जा रहे

ही रहे थे कि पीछे से किसी ने मोटे स्वर में कहा :

"अरे. यह क्या कर रहे हो ? कौन हो तुम ? इतना हट्टा-कट्टा शरीर, कायर हो क्या ? बहुत

भाग्य से मुनष्य का जीवन मिलता है, उससे क्यों भागना चाहते हो ?" सदाशयव्रत का हाथ रुक गया। उन्होंने पीछे बिना देखे ही क्रोध में कहा :

"चुपचाप चले जाओ यहाँ से। नहीं तो पहले मैं तुम्हारा काम तमाम करूँगा, फिर कुछ और "

"नहीं, तुम ऐसा कुछ न करोगे। कुछ दूरी पर यहाँ दीयर के साधुबाबा का आश्रम है। मैं उनका रसोइया हूँ। साधुबाबा ब्राह्ममुहूर्त में यहाँ से नहाकर चले गए हैं। मुझे फुरसत नहीं मिलती, मैं तो कभी-कभी ही आता हूँ। यह अच्छा हुआ कि इस समय में यहाँ आ गया। तुम पर कोई बड़ा दुःख पड़ा है, यह मैं समझ सकता हूँ, परन्तु इस दुनिया में तुमसे भी अधिक दुःखी लोग हैं, इनकी सेवा

करके तुम अपना दुःख भुला सकते हो।" "साधु-सन्त से चोर-डाकू तक, सब यही कहते हैं। यह ढोंग..."

सदाशयव्रत आगे नहीं बोल सके। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। उन्होंने अपने काँपते हाथों को आगे बढ़ाकर शून्य में कुछ टटोलने की कोशिश की, फिर धीरे-धीरे जमीन पर लुढ़ककर अचेत हो गए।

साधुबाबा के आश्रम का रसोइया घबराकर उनकी ओर दौड़ा। उसने

समझा कि सदाशयव्रत मर गए हैं, मगर नाड़ी टटोलने पर जब सबकुछ ठीक निकला तो वह कगार से नीचे उतरकर, ताँबे के अपने छोटे-से गगरे में नदी का पानी भरकर ले आया और उनके घाव तथा चेहरा धोने लगा। चारों ओर अब उजाला फैल गया था जिसमें स्पष्ट था कि उनके घाव गहरे थे और खून बराबर निकल रहा था। उसने जल्दी-जल्दी गंगा तट की काली मिट्टी का एक बड़ा टुकड़ा लेकर और उसमें पानी डाल-डालकर उसका मलहम बनाया और घावों पर लगा दिया।

जब खून बन्द हो गया और कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद सदाशयव्रत को होश आया तो उसने बहुत प्यार से, मृदु स्वर में कहा :

"देखो, तुम मुझे बड़ा भाई समझो। मैं दीयर के बाबा के आश्रम का रसोई प्रमुख रामलाल हूँ। तुम्हें मैं अपने साथ ले चलूँगा आश्रम में। साधुबाबा से कहकर मैं तुम्हें रसोई में ही अपने सहायक के रूप में रख लूँगा। तुम खाना बनाना और साधु-सन्तों की सेवा करना। अभी तुम्हारी उम्र क्या है ? पता नहीं ईश्वर तुम्हारे हाथों कौन-सा बड़ा काम कराना चाहता है। तुम इसी तरह लेटे रहो, मैं नहा लेता हूँ, फिर मैं तुम्हें आश्रम ले चलूँगा।"

सत्तर वर्षीय दीयर के बाबा की दूर-दूर तक शोहरत थी और सैकड़ों साधारण भक्तजन नित्य उनके दर्शन को आते थे। उनका यह आश्रम बरसात में बाढ़ आने पर पीछे चला जाता था। जब बाढ़ चली जाती तो वह अनुमानित पूर्व स्थान पर चला आता। नदी के कटान तथा दिशा-परिवर्तन के कारण आश्रम-स्थल में परिवर्तन अवश्यम्भावी था।

सदाशयव्रत लगभग दो वर्ष तक आश्रम में रहे। रामलाल एक कुशल पाकशास्त्री था और उसने हर तरह के व्यंजनों की कला उन्हें सिखा दी थी। साथ ही उनके प्रति रामलाल का व्यवहार भी काफी अच्छा था। आश्रम में तो वह लोकप्रिय था ही, उनके भक्तगण और दूसरे लोग भी उससे मिलने आते थे। वह सदा उनको हँसाता रहता और उत्साहित करता। परन्तु सदाशयव्रत खूब मेहनत करते हुए भी गम्भीरता के खोल में अपने को छिपाए रहते।

आश्रम में उपयोग के लिए सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ मँगाए जाते। सर्वोत्तम गेहूँ, चावल, दाल, चना, घी, दूध, दही, शक्कर, बेसन, सूजी, गुड़, मसाले वगैरह। चावल की अच्छी-से-अच्छी किस्म ही आती-कभी देहरादूनी, कभी काला नमक, कभी आलू चीनी। कई सामान तो बाबा के शिष्य और भक्त ले आते, पर इससे कहाँ काम चलता ? इसलिए सारे सामान हर दो महीने पर रामलाल ही

बलिया के गुदड़ी बाजार से बैलगाड़ी पर लदवा कर ले आता। दूध, दही के लिए आश्रम की गाएँ और मैसें थीं।

भंडारगृह की प्रभारी सुलोचना नामक एक सुन्दर बीस वर्षीय लड़की थी जो बड़ी कुशलता और सख्ती से अपना कर्त्तव्य पालन करती थी। बाबा की गद्दी का उत्तराधिकारी बनने का स्वप्न देखनेवाले, बाबा के सबसे प्रिय आश्रमवासी आदित्य स्वामी की यह कुँवारी पुत्री थी जो स्वयं ईश्वरभक्त और उनकी प्रिय शिष्याओं में से एक थी। उसकी मदद के लिए दो सहायिकाएँ दी गई थीं। और कई काम-टहल करने वाले। आदित्य स्वामी और उनकी पत्नी गृहस्थ जीवन त्यागकर आश्रम में अपनी पुत्री के साथ स्थायी रूप से निवास कर रहे थे।

प्रातः, दोपहर और सायंकाल पूजा-अर्चना, आरती होती और ठाकुरजी को भोग। दोनों जून भंडारा लगता जिससे आश्रमवासी तथा बाहर के अनेक भक्तगण भोजन ग्रहण करते। प्रत्येक खाद्यपदार्थ में घी का ही इस्तेमाल होता। हलवा, मिष्ठान्न से लेकर साग-सब्जी तक में। उत्तेजक मसाले, जैसे मिर्च, गर्म मसाले, लहसुन-प्याज सब वर्जित थे। घी के अतिशय इस्तेमाल से शायद आश्रमवासियों के शरीर पर चर्बी चढ़ी हुई थी और उनको देखकर लगता, उनके शरीर से घी चू रहा हो।

प्रातःकाल जलपान तथा दोनों जून भोजन के समय खाद्य सामग्रियों से थाल सजाकर सुलोचना अत्यन्त भक्तिभाव से साधु महाराज के पास ले जाती। जलपान में ठाकुरजी को भोग लगाया तर-तर हलवा तथा अनेक तरह के मिष्ठान्न होते। बाबा उसमें से कुछ ग्रहण कर लेते और शेष लौटा

देते, जिसको सुलोचना, उसके पिता तथा अन्य सन्त ग्रहण करके अपने सौभाग्य एवं आध्यात्मिक आनन्द में वृद्धि करते। लेकिन उसमें से भी कुछ बच जाता था जो लालायित सहायिकाओं और टहलुओं में बाँट दिया जाता। भोजन में कच्चा, पक्का दोनों बनता था। कच्चे में चावल, कई किस्म की दाल, रोटी, कढ़ी-बरी, दहीबड़े, सूखी, रसेदार सब्जी, बजका, रिकवँछ, रायता, दही, पापड़, तिलौड़ी आदि। पक्के में पूड़ी, कचौड़ी, मालपूआ, कई तरह की खीर, सब्जियाँ, भरता, एक-दो विशेष मिष्ठान्न आदि। वर्ष में एक बार अन्नकूट के दिन तो छप्पन प्रकार के व्यंजन तैयार होते जिसके लिए रामलाल और उसके सहायक दल तथा सुलोचना की साधुबाबा भी सराहना करके आशीर्वाद देते।

सुलोचना सदा भक्ति में डूबी गर्दन को खूबसूरत संन्यासिनी लोच देकर चलती थी। उस समय उसकी आँखें आधी बन्द रहती थीं, गोया वह आध्यात्मिक सागर में गोते लगा रही हो। आरती के समय उसकी तन्मयता देखने लायक होती। वह हाथ जोड़ और आँखें मूंदकर सिर को धीरे-धीरे हिलाती हुई पैरों पर थिरकने लगती जैसे किसी दीन, दुखिया और निरीह भक्त ने अपने सम्पूर्ण जीवन को भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया हो।

एक दिन तीसरे प्रहर सदाशयव्रत जब अपनी कोठरी में चुपचाप बैठे थे, सुलोचना पता नहीं किघर से आई और मन्द-मन्द मुस्कुराते हुई बोली, "भोजन तो इतना अच्छा बनाते हैं, पर हमेशा गम्भीर क्यों रहते हैं। कुछ बोलिए, बतियाइए, हँसिए। हमारे बाबा हर व्यक्ति को खुश देखना चाहते हैं। ईश्वर की भी यही इच्छा है। कोई बात हो तो मुझे बताइए, मैं आपकी मदद करूँगी।"

सदाशयव्रत ने आँखें उठाकर उसकी आँखों में गौर से देखा। वह फौरन गम्भीर हो गई और उसकी आँखें स्वतः ही नीचे झुक गईं। खूबसूरती में वह किसी से कम न थी। एक ऐसी कली जो चटककर पूरी तरह खिल गई हो। भक्ति आवरण में, सुखद तीखेपन से भरी एक रूप-गर्विता, जिसके मन में असंख्य आकांक्षाओं का समुद्र लहरा रहा ही। परन्तु सदाशयव्रत पर उसका प्रभाव कभी नहीं पड़ा, जबकि यह जानते हैं कि काफी समय से

मौका मिलने पर वह उनको घूरने लगती है। स्त्री उनके लिए त्याज्य हो गई है उसी दिन से, जब पैटमैन की उस लुगाई ने उन्हें जीवन और प्रेम का अर्थ समझा दिया था। हाँ, प्रेम सिर्फ शारीरिक भूख नहीं है, वह ममता भी है, वात्सल्य भी है। एक

आध्यात्मिक बुलन्दी है और अपने प्रिय से अभिन्न रहने की तमन्ना और उसके लिए कुर्यानी का संकल्प। पहली बार उसका चेहरा कैसा सरल, स्वाभाविक, ताजा और प्यारा लगा था। अब नहीं देख पाएँगे यह उसे कभी भी ?

उनके अन्दर सहसा ऐसी पीड़ा उठी जिससे उनका मुख फक् होकर पीला पड़ गया। उन्होंने सूखी आवाज में सुलोचना से कहा:

"देवीजी. मैं आपका आदर करता हूँ। मेरे प्रति आपके मन में जो सहानुभूति है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। मुझे कोई दुःख नहीं, यदि कोई बात हुई तो जरूर बताऊँगा।"

"आप काफी परिश्रम करते हैं, हमेशा रसोई में जुटे रहते हैं। रहिए, मैं रसोई में दो सहायक और बढ़वा देती हूँ, आपको आराम हो जाएगा।" उसने मृदु स्वर में अपनी चिन्ता का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया।

"नहीं देवीजी, इसकी जरूरत नहीं है। यह सब तो साधारण काम है। मुझे कोई परेशानी नहीं है। और अधिक काम होता तो प्रसन्नता होती।"

"देखिए, सभी काम तो आप करते हैं। आपकी सहायता के लिए कुछ लोग हैं, किन्तु आप स्वयं जुटे रहते हैं और उनको आराम देते हैं। कितना रच-रचकर आप भोजन बनाते हैं ? यह सब देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। मैं घंटों आपके बारे में सोचती रह जाती हूँ। क्या आप इसलिए दुःखी रहते हैं कि इतना काम आपसे लिया जाता है और उसका पुरस्कार, सराहना सबकुछ कोई दूसरा ले जाता है ? सर्वोच्च स्थान तो आपको मिलना चाहिए।"

उसके कथन का अर्थ समझने में सदाशयव्रत को कोई दिक्कत नहीं हुई। कुछ देर तक वह उसे घूरते रहे गुस्से से। फिर गुरति हुए वह बोले :

"क्या समझ रखा है मुझे आपने? रामलाल मेरे जीवनदाता हैं, गुरु हैं। उन्होंने मुझे सबकुछ सिखाया है। मेरे जैसे पतित को उन्होंने उठाया है। पर मैं कृतघ्न नहीं हूँ...।"

"पतित ?" सुलोचना की आँखें आश्चर्य से आगे निकल आईं, "कैसा पतित ? साफ-साफ क्यों नहीं बताते ? रामलाल को इसका खुलासा करना चाहिए। आश्रम में एक-से-एक पतित आते हैं, वे बाबा के सामने अपना पाप स्वीकार करते हैं और बाबा उनको भक्ति भजन के रास्ते पर डालकर उन्हें आध्यात्मिक ऊँचाई की ओर ले जाते हैं। पर आश्रम में यह गुपचुप क्या रहना ? क्या उद्देश्य है आपका यहाँ आने का? मैं जानती हूँ, अजीब-अजीब लोगों से रामलाल की जान-पहचान है। वह बहुत-सी चीजें छिपाकर रखते हैं...।"

"देवीजी, यह सब मुझसे न कहिए। मेरी जबान से एक शब्द क्या निकला कि आपने उसे पकड़ लिया। भगवान से हर व्यक्ति यह विनती नहीं करता 'हे प्रभु, हे पतितपावन, मैं नीच हूँ, पतित हूँ, मुझे सही मार्ग दिखाओ।' आप भी शायद ईश्वर से ऐसी ही प्रार्थना करती होंगी ? मैं एक बहुत मामूली आदमी हूँ। निरक्षर हूँ। मेरा दुनिया में कोई नहीं है, आश्रम में आकर मुझे भगवान और भक्तजनों की सेवा करने का मौका मिला है, इससे मैं खुश हूँ। मेरे कहने का कोई दूसरा अर्थ न लें...।"

सदाशयव्रत ने अपने बारे में रामलाल से कुछ नहीं बताया था, लेकिन सुलोचना की बातों से लगा कि कोई बवाल न खड़ा हो जाए, इसीलिए उन्होंने एक चालाकी-भरा तर्क उसकी ओर फेंका था जो उनके स्वभाव के अनुकूल भी है। यह सही है कि रामलाल से अनेक लोग अलग से मिलने आते हैं, अनेक पढ़े-लिखे और प्रबुद्ध लोग। वह स्वयं ईश्वरभक्त, परोपकारी, आदर्शवादी, देशप्रेमी और आश्रम में अत्यधिक लोकप्रिय है। बाबा का उस पर अगाध विश्वास है और उन तक उसकी सीधी पहुँच है।

यह भी सच है कि आश्रम में एक ऐसा गुट है जो रामलाल की लोकप्रियता और प्रभाव को तिरछी दृष्टि से देखता है और जिसका नेतृत्व, संचालन सुलोचना के पिताश्री, आदित्य

स्वामी करते हैं। सम्भव है कि इसकी गन्ध कभी मिली हो, पर सदाशयव्रत इसके बावजूद ऐसी बातों में रुचि नहीं लेते। उन्होंने रामलाल से न कभी कुछ कहा, न पूछा और न ही कुछ चाहा, बस सिर झुकाकर काम में ही अपने को भूलने की निरन्तर कोशिश की।

सुलोचना अचानक धीमी, अशक्त और व्याकुल गिड़गिड़ाती हुई-सी आवाज में बोली : "तुम जो भी हो, यहाँ जो रूप तुम्हारा मैं देखती हूँ, वही मुझे बहुत प्रिय है। समुद्र की तरह

गम्भीर, वज्र की तरह निर्मम और कठोर, चींटी की तरह व्यस्त और परिश्रमी, पाखंड और प्रदर्शन से दूर। फिर भी, मेरे दिमाग में बार-बार ये सवाल उठते हैं कि तुम कौन हो, किस देश से आए हो, बिना किसी परिचय के ही क्यों तुमने मेरा सुख-चैन सदा के लिए छीन लिया है। क्या तुम्हारा पौरुष इस रसोईघर में आटा-दाल, हींग-जीरा के बीच नष्ट होने लिए है? मुझसे यह सब बरदाश्त नहीं होता।

"तुम्हारा शोषण किया जा रहा है, तुम्हारी शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। तुम्हारी सहमति हो, तुम्हारा हल्का-सा इशारा हो, मैं इस धूर्त रामलाल को उखाड़कर बाहर निकलवा दूँ और तुमको उस पद पर आसीन करवा दूँ। तुम पुरुष हो, शक्तिपुंज, तुम्हारा कार्य शासन करना है, व्यवस्था, सन्तुलन, सन्तोष और तृप्ति देना है। तुम प्रेम और सुख लेने और देने के अधिकारी हो। मैं तुमको सबकुछ देना और वही तुमसे प्राप्त करना चाहती हूँ। मैं दोहरी जिन्दगी जी रही हूँ, अभिशप्त हूँ, मेरी कोई परिभाषा नहीं है, मैं निरन्तर तुम्हारी याद में जल रही हूँ, मेरे पास आओ, तुम्हीं मुझे शीतलता और मेरे जीवन को नई परिभाषा और नया अर्थ दे सकते हो...।"

वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखें खोलकर सदाशयव्रत को एकटक देख रही थी

जो उसके अन्दर प्रवाहित, प्यार की प्रचंड, पागल आँधी का प्रतिविम्ब बन गई थी। वह अपने सामने एक कृशगात, निःशब्द बहनेवाली नदी को अचानक बढ़कर ऊँची विनाशकारी तरंगों के साथ, फेन और फिचकुर छोड़ते हुए तट के चरणों में बार-बार पछाड़ खाते और सिर धुनते देख रहे थे। उसके चेहरे की रेखाओं तथा होंठों की सिकुड़न और दाँतों के प्रदर्शन में प्रेम याचना की समस्त बेचारगी, निसहायता एवं तुच्छताएँ सिमट आई थीं। स्त्री की याचना पुरुष का सम्मान और गर्व है और इसे ठुकरानेवाले बिरले ही होते हैं-शायद ही कोई। सदाशयव्रत एक स्वाभिमानी पुरुष थे, वह सदा देने को तत्पर रहे, किसी से कुछ माँगना नहीं चाहा। सुलोचना के निवेदन ने उन्हें विचलित कर दिया। उनका मन डावाँडोल हो गया और उन्होंने अपने अन्दर झाँका। वह उस रूप-गर्विता को सुखी करने के लिए क्या कर सकते हैं ? परन्तु वहाँ सुलोचना के लिए कुछ नहीं था। वहाँ उनकी भावनाएँ शून्य अंश से बहुत नीचे बेहद सर्द और बर्फीला रूप ग्रहण कर चुकी थीं। सबकुछ देने की तमन्ना रखते हुए भी उन्हें एक दिन किसी के सामने हाथ फैलाना पड़ा था, किन्तु उन्हें भिक्षा भी नहीं मिली, उनकी याचना ठुकरा दी गई क्यों ? क्यों? अपना हृदय वहीं लुटाकर चले आए तो उनके पास देने को क्या बचा है अब ? वह अपनी पीड़ा की कराह को दबाते हुए अत्यन्त कठिनाई से बोले :

"देवीजी, मैं आपको अपमानित नहीं करना चाहता। सच्चाई यह है कि मेरे पास आपको देने के लिए कुछ भी नहीं है। मेरे अन्दर रेत-ही-रेत है। मैं आपको अपनी कहानी बता देता पर उससे कोई लाभ नहीं। बस यही समझ लीजिए कि मेरा सबकुछ लुट गया है। मैं यहाँ बाबा के आश्रम में अपने को भूल रहा था। बाबा के अमृत वचन मेरे हृदय को मलहम की तरह ठंडक पहुँचा रहे थे। यह बाबा की करामात है कि मैं इच्छाओं से दूर जा रहा था, मगर शान्ति की इस जगह पर देख रहा हूँ कि यहाँ भी इच्छाएँ पीछा कर रही हैं। इसमें किसी का दोष नहीं है देवीजी ! बहुत कम लोग हैं जिन्हें अपना चाहा हुआ मिल जाता है। मैंने जो चाहा वह नहीं मिला। सौभाग्य की बात है कि बाबाजी जैसे महात्मा मौजूद हैं, वही सब कष्ट हरेंगे। आशा है आप मुझे समझेंगी, मुझे माफ..."

"बन्द कीजिए...।" सुलोचना भर्राई हुई आवाज में बोली। फिर उसकी आँखों से मोटे-मोटे आँसू गिरने लगे जैसे अचानक पट-पट बारिश होने लगी हो। तत्पश्चात यह मुँह को हथेलियों से ढककर सिसकने लगी और अन्त में हाथ हटाकर और आँखें पोंछकर उनकी ओर देखे बिना कमरे से निकलकर तेजी से प्रस्थान कर गई।

सदाशयव्रत दहशत और आतंक से प्रस्थान दिशा की ओर बाहर देखते ही रह गए। अप्रैल मास समाप्त हो रहा था और बाहर ले चल रही थी। चारों ओर सन्नाटा छाया था। जो कुछ अभी घटित हो गया है. उसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी उन्होंने सुलोचना के लिए तो उन्हें अफसोम था ही, किन्तु इसी समय उसने राख में दबी उनकी आग को खोदकर धधका दिया था। उनका मन घायल पक्षी की तरह छटपटाने लगा। यदि वह उस रात को उसे अपने साथ जबरदस्ती उठाकर ले आए होते तो उनकी आग तो शायद शान्त हो जाती, पर उसका क्या होता? इस समय तो वह सुखी होगी, अपने प्रेमी की आँखों में झाँक रही होगी। उसके मुँह और बालों को सहला रही होगी। उसके सुख का यही ख्याल असंख्य छुरियों से गोदते हुए भी क्या उन्हें सन्तोष नहीं देता रहेगा ? हाँ, प्रिय के सुखी होने की कल्पना का सुख ? 'आह' शब्द के साथ उनके मुँह से एक गहरा उच्छ्वास निकल पड़ा और वह उठ खड़े हुए।

कनात और टट्टरों और चतुर्भुज आकार में स्थित आश्रम के रिहायशी तथा अन्य उपयोगी कक्ष तम्बू-कनात की मदद से ही तैयार किए गए थे। रामलाल विश्राम के बाद उठकर खाट पर ही पैर लटकाकर बैठा था। उसकी उम्र साठ तक नहीं पहुँची है, सम्भवतः दो-तीन वर्ष कम ही होगी। उसके चेहरे की ढीली-ढाली लकीरों में उस समय आश्चर्य का तनाव आ गया, जब उसने अपने सामने सदाशयव्रत को गम्भीर मुद्रा में खड़ा देखा।

"आइए, आइए, बैठिए, क्या बात है ?"

मैं "मुझ पर आपने जो उपकार किया है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अब मुझे छुट्टी दे दीजिए, यहाँ से जाना चाहता हूँ।" सदाशयव्रत ने खड़े-खड़े ही धीमे

स्वर में कहा।

"बैठिए तो, क्या हो गया ? किसी ने कुछ कहा ? कहाँ जाना चाहते हैं? बाबा आपकी सेवा से बहुत प्रसन्न हैं। आपके बनाए भोजन में जो स्वाद है, यह दुर्लभ है..."

"यह सब तो आपने ही सिखाया है...।"

"जरूर सिखाया है, परन्तु कई वर्ष पहले जब मैं बनाता था, उस समय भी भोजन में यह स्वाद नहीं था। भोजन बनाने की कला जरूर होती है, पर उस कला में निखार तभी आता है, जब सफाई से, परिश्रम से, प्रेम से, हल्के, नरम हाथ से, सेवा भाव से बनाया जाए और उसके नए-नए जायके के लिए नया सीख-सीखकर नए प्रयोग भी किए जाएँ। जो स्त्रियाँ अपने पति या प्रेमी के लिए इसी भाव से बनाती हैं, उनके बनाए भोजन में बड़ा स्वाद होता है। आपमें यह दृष्टि, यह तन्मयता, यह भावना कैसे आई, मैं नहीं जानता। परन्तु अपने बारे में यह कह सकता हूँ कि जब मैं बनाता था तो पुरुषोचित जल्दीबाजी से, भारी हाथ से, बेमन से। मेरे लिए रसोई अन्य आकांक्षाओं का एक माध्यम-भर था..."

आप भी आकांक्षाओं के चक्कर में हैं?" सदाशयव्रत ने निर्ममता से पूछा।

" रामलाल डगमगा गया, किन्तु जल्दी ही अपने को सँभाल भी लिया, "सांसारिक आकांक्षाओं की बात मैं नहीं कहता, बल्कि उनसे दूर, आध्यात्मिक आकांक्षाओं की बात कह रहा हूँ। बिना आकांक्षा के हम मृत हो जाते हैं। ईश्वर और मोक्ष को प्राप्त करना भी एक आकांक्षा है। नरक के बजाए स्वर्ग में जाने का प्रयास भी आकांक्षा है। जब तक मनुष्य है, आकांक्षा उसमें किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहती है, परन्तु आध्यात्मिक आकांक्षा सर्वश्रेष्ठ है।"

"मेरा दुर्भाग्य है कि मैं पढ़-लिख नहीं पाया। इस दुनिया में घर-परिवार, बाहर और यहाँ मुझे

जो अनुभव हुए हैं और दूसरों का जो साथ-संग और सत्संग प्राप्त हुए हैं, वहीं से मुझे भाषा और वृद्धि मिली है। आपका मैं बहुत आदर करता हूँ. आपसे कोई बहस नहीं करता। मुझे बेवकूफ और गँवार समझकर माफ कीजिएगा। बाबा पूछते हैं कि शीतल जल की जो बूँद कंठ की प्यास बुझाती है. उसमें कौन-सी आकांक्षा है? ठंडी छाया और मीठे फल देनेवाला वृक्ष किस आकांक्षा से यह करता है? यह उसका स्वभाव है कि वह दूसरों को सुख देता है और बदले में कुछ नहीं माँगता । इन्हीं की तरह संत पुरुष होते हैं, यह बाबा बताते हैं। जहाँ ऐसे वचन अमृत की तरह निरन्तर झर रहे हाँ, वहाँ पद, गद्दी, शक्ति, सुख के लिए निरन्तर जोड़-तोड़ कैसी? सांसारिक पुरुषों की तरह ईर्ष्या कैसी ? द्वेष कैसा ? धन और सफलता की भूख कैसी ? इन सब बातों में मेरी रुचि नहीं थी, लेकिन आज किसी ने आँखें खोलकर यह सब दिखा दिया है। पर, यहाँ से मेरे जाने का यह सब कारण नहीं है। मैं निजी कारणों से यहाँ से जाना चाहता हूँ। अपनी गलतियों के लिए फिर क्षमा चाहते हुए प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जाने दीजिए, एक दिन के लिए भी न रोकिए...।"

रामलाल का मुँह बाई ओर घूम गया था और वह नीचे धरती को क्षोभ से देख रहा था। उसी मुद्रा में यह धीमे से बोला, "ठीक है, दो दिन रुक जाइए। आज रात या कल प्रातः मैं बाबा से बात करूँगा। इससे उन्हें दुःख होगा, पर बताना भी जरूरी है। अब जाइए...।"

दूसरे दिन वैसी ही दोपहर में, करीब उसी समय सुलोचना अचानक उनके कक्ष में आई। उसका मुँह सूखा हुआ था। उसने धीरे से पूछा:

"क्या तुम यहाँ से जा रहे हो ?"

"देवीजी, मेरा समय पूरा हो गया है। मेरा जाना आवश्यक हो गया है...।"

"अगर मेरी वजह से जाना चाहते हो तो न जाओ। मैं तुमसे नहीं बोलूँगी। तुम्हारी ओर देखूँगी भी नहीं। यदि तुम जाओगे तो मैं अपनी मर्मान्तक पीड़ा बरदाश्त नहीं कर पाऊँगी।"

"देवीजी, मुझे क्षमा करें। आपकी वजह से मैं नहीं जा रहा हूँ। उसका कारण व्यक्तिगत है।

मेरा जाना जरूरी है...।"

अचानक सुलोचना के चेहरे पर एक गहरी कालिमा पुत गई। वह कुछ क्षणों तक सदाशयव्रत को एकटक देखती रह गई। फिर घूमकर धीरे-धीरे कमरे से निकल गई।

सदाशयव्रत को छुट्टी मिल गई बाबा की ओर से। अगले दिन भोर में ही यह निकल गए। एक क्षण के लिए उन्हें ख्याल आया कि चलकर सुलोचना से विदा तो लें, परन्तु यह निरर्थक ही सिद्ध होता, क्योंकि ठीक उसी समय सुलोचना गंगा की लहरों में चित बही जा रही थी, अध्यात्म, महत्त्वाकांक्षा और प्यार से दूर, बहुत दूर।

सुलोचना के सम्बन्ध में सदाशयव्रत को तो बहुत बाद में मालूम हुआ, लेकिन उस दिन आश्रम से निकलते समय यह अत्यधिक भयग्रस्त और कुंठाग्रस्त थे। आश्रम में भी जब उनकी शान्ति का हरण कर लिया गया, तो अब कहाँ जाएँ ? उनको बाबा की बात याद आई। हाँ, वह एक शीतल जल बूँद बनना चाहते थे, किसी पुरस्कार की इच्छा के बगैर सबको शीतलता पहुँचाना चाहते थे। परन्तु कैसे ? यह इच्छा होते हुए भी वह सुलोचना के दुःख को कम क्यों नहीं कर पाएं ? बाबा के अमृत वचन से झरती असंख्य शीतल बूँदें तवे की तरह तप्त सुलोचना के कामनातुर हृदय को ठंडक न पहुंचाकर स्वयं जल-झुलसकर सूख क्यों गई? और प्रिय के सुख से सुखी होने की कल्पना एवं हकीकत के बावजूद आज स्वयं उनका हृदय क्यों शोले की तरह दहक रहा है ? अपनी हीनता,

तुच्छता और कुंठा से क्यों व्याकुल है वह आज ? वह गंगा के किनारे-किनारे जा रहे थे पश्चिम दिशा की ओर यह जाने बगैर कि कहाँ जा रहे

हैं। उनके दिमाग में स्वतः ही क्या-क्या ख्याल आ रहे थे. यह भी उनको

नहीं मालूम। और न ही के सामने अपना दुःख बयान करना, अपनी असहायता जाहिर करना और आँसू बहाना उनके लिए ज्ञात हो सका उन्हें कि कब से आँस गिर रहे हैं, उनकी आँखों से। यह बेहद स्वाभिमानी थे, किसी सम्भव नहीं था। मन्थर गति से उल्टी बहने लेकिन साथ-साथ चलनेवाली गंगा, तेज हवा और आग उगलते सूरज का भी उन्हें भान नहीं था। रास्ते के मिटटी ढेलों, पत्थर के टुकडों तथा कोटा औ खैटियों की चोटें खाकर और धूल-धक्कड़ से लापरवाह वह तेजी से बढ़े जा रहे थे और कई घं की निरन्तर यात्रा के बाद जहाँ रुके, वह उन्हीं के घर का बरामदा था जहाँ उनके पिता रामनिवास ओझा एक खाट पर बैठे बीड़ी पी रहे थे।

"कौन हो भाई, तुम ?" रामनिवास ओझा अचानक पहचान नहीं पाए और बन्दर की तह घुड़ककर पूछा उन्होंने।

"मैं हूँ सदाशयव्रत।"

इतना सुनते ही रामनिवास ओझा इस बढ़ौती में भी उछलकर खड़े हो गए और चिल्लाते हुए घर के अन्दर दलान में प्रवेश कर गए, "अरे दौड़ो रे, महतारी नाम जपते-जपते मर गई और अब आए हैं, दुनिया में नाम कमाकर।"

रामनिवास ओझा उनके लौटने की आशा खो चुके थे। उनके जाने के बाद बहुत खोजवाया था, बाद में यह सोचकर अपने हृदय को पत्थर कर लिया कि किसी ने मार-मूर कर फेंक दिया होगा। वह भीतर जाकर अपनी कोठरी में अहक-अहककर रोने लगे। भीतर से भाई-बहन, भौजाई, बच्चे, सभी दौड़े बाहर गए। रोना-पीटना मच गया जो उनके आने की वजह से था अथवा दिवंगत माँ की याद में, यह बताना मुश्किल है। माँ की मृत्यु की खबर से वह काठ हो गए थे और सिर झुकाका किसी हत्यारे की तरह चुपचाप बैठे थे।

अचानक रामनिवास ओझा ने बाहर आकर सबको डाँटा, "अरे यह अब क्या कर रहे हो ? तुम लोगों की बुद्धि घास चरने चली गई है? एक आदमी लू-धूप में आ रहा है भूखा-प्यासा और तुम लोग उसे रुलाने बैठे हो।

जिसको जाना है, वह तो जाएगा ही, कोई रहे या न रहे, विधि का विधान तो कोई मेट नहीं सकता। बड़का बबुआ को पहले हाथ-पैर धुलाओ, फिर भीतर ले जाकर मीठा खिलाकर दही-शरबत पिलाओ..."

सदाशयव्रत के आने से रामनिवास ओझा बहुत खुश हुए, जैसे सूखे धान में पानी पड़ गया हो। उनके चहरे पर और आँखों में चमक आ गई। अपने बड़े लड़के के प्रति उनका व्यवहार एकदम बदत गया और कुछ दिनों बाद उन्होंने कहा :

"चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। घर में किसी चीज की कोई कमी नहीं है। जो हो गया, सो हो गया, अब आगे की सुध लेनी चाहिए। पुरुष का भाग्य कोई नहीं जानता, धैर्य और हिम्मत से रहने और बुद्धि का इस्तेमाल करने से कब चमक जाए, यह कोई नहीं जानता। इस समय तो निश्चिन्त होकर आराम करो, शिवजी स्वयं रास्ता सुझाएँगे...।"

महीनों खाने और सोने के अलावा उनके पास कोई काम नहीं था। वह बहुत कम बाहर निकलते और लोगों से बात करते। मोहल्ले और बाहर के जान-पहचानियों से भी मिलने पर वह मुँह फेर लेते। धीरे-धीरे वह इस स्थिति से ऊबने लगे। अपने से डरकर ही वह अपने परिवार में आए थे। अवश्य उन्हें यहाँ कुछ सुरक्षा मिली, ढाढ़स मिला। पिता का भी अब निरन्तर मौन स्नेह प्राप्त हो रहा था। लेकिन इसके आगे क्या? यहाँ कौन काम करें, लोगों से क्या बात करें ? सिर्फ पश्चाताप, आग, दुःख एवं व्याकुलता के अलावा उनके पास कुछ भी नहीं था जिसको लेकर वह दूसरों से संवाद स्थापित कर सकें।

उनके बचपन के कई मित्र पढ़-लिखकर नौकरियाँ कर रहे थे और शेष अन्य काम-धाम में

लगे थे। एक शाम उनका मित्र लक्ष्मण गुप्त किसी से सूचना पाकर उनसे मिलने आया। यह बहुत ही उत्साह से मिला। अपनी कई बातें उसने बताईं पर सदाशयव्रत उसके पछने पर कुछ भी न बता सके। बस उसको खोई-

खोई दृष्टि से देखते रहे। अन्त में लक्ष्मण गुप्त ने किंचित क्षोभ से कहा:

"तुम घर से अचानक गायब हो गए थे, यह मुझे मालूम है, मगर इतने दिन कहाँ रहे, क्या-क्या करते रहे, यह नहीं बताना चाहते तो इसकी चिन्ता मुझे नहीं, लेकिन एक बात कहूँगा कि अपने यौवन का बेहद मूल्यवान समय निरुद्देश्य ही बरबाद करना ठीक नहीं। मैंने एम.ए. किया, लेकिन इतना पढ़-लिखकर मैं इस अंग्रेज सरकार की कोई नौकरी नहीं करता। मैं नौकरी उसी समय करूँगा, जब यह देश, विदेशी गुलामी से मुक्त हो जाएगा। मेरी ही तरह हजारों-लाखों नवयुवक देश की आजादी की लड़ाई में शामिल हैं। हमारे देश का उज्ज्वल इतिहास रहा है, उसकी उच्च सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं, हमारे यहाँ उच्च कोटि के वैज्ञानिक, कलाकार, दस्तकार, व्यापारी, प्रशासक और आध्यात्मिक गुरु हुए हैं। विदेशी हुकूमत ने हमारा बहुत कुछ नष्ट कर दिया, हमने इस हुकूमत को हटाकर अपने देश को पुराना गौरव दिलाकर उसे और भी आगे ले जाने की प्रतिज्ञा की है। मेरी इच्छा है कि तुम हर बात से ध्यान हटाकर देश स्वातन्त्र्य की लड़ाई में अपनी शक्तियों का उपयोग करो..."

सदाशयव्रत की दिलचस्पी देखकर लक्ष्मण गुप्त नित्य आने लगा उनके पास। यह एक क्रान्तिकारी दल का महत्त्वपूर्ण सदस्य था। वह रोज उन्हें देश के क्रान्तिकारी सदस्यों के बारे में बताता और उनसे आगे पढ़ने-लिखने का आग्रह करता। थोड़ा बहुत अक्षर ज्ञान तो उन्हें था ही। लक्ष्मण गुप्त कुछ सरल पुस्तकें उन्हें देता और पढ़ने के लिए उनसे आग्रह करता। अवश्य वह कुछ कोशिश करते, पर शीघ्र ही ऊब जाते। फिर कोशिश करते। इस तरह कुछ प्रगति तो जरूर हुई, पर बहुत कम। लक्ष्मण गुप्त उन्हें बाहर ले जाता और कई व्यक्तियों से मिलाता जिनमें रामेश्वर पांडे, बरमेश्वर तिवारी, बटुकेश्वर चौवे प्रमुख हैं। ये सभी उस क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे जिसका नेता लक्ष्मण गुप्त था। सदाशयव्रत की दिलचस्पी बढ़ रही थी और अन्ततः वह उस दल में शामिल भी हो गए।

सदाशयव्रत का पुराना उत्साह लौट आया था, पर एक भिन्न सन्दर्भ में। वह इस परिस्थिति की व्याख्या अपने ही अनुभवों की रोशनी में अपने ही तकों से करते और इससे उनके तप्त हृदय को अजीब ठंडक और शान्ति

मिलती। वह तर्क देते कि अगर यह गुलामी और गरीबी न होती तो गरीब की वह लड़की उस बूढ़े, अशक्त पैटमैन को बेची न जाती। वह स्वयं भी डाकू-उठाईगीर न बनते और वह उन्हें ही अवश्य प्राप्त होती क्योंकि पहली ही नजर में उन्हें ऐसा लगा था कि उससे जन्म-जन्मांतर का साथ है उनका। यह सब सोचकर वह गुलामी और गरीबी को समाप्त करने के लिए व्याकुल हो उठते और उसके लिए अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार।

लेकिन हर क्रान्तिकारी दल की तरह लक्ष्मण गुप्त के दल को भी धन की आवश्यकता पड़ी जिसके लिए योजना बनाकर शहर के ही एक मारवाड़ी सेठ के यहाँ करीब तीन बजे रात को डाका डाला गया। प्रारम्भिक सफलता तो उन्हें जरूर ही मिली परन्तु भागते समय उनका एक साथी हरिहर पकड़ा गया और अन्ततः मुखबिर बन गया। फिर तो सभी गिरफ्तार कर लिए गए।

हवालात में बहुत मार पड़ी। दूसरे प्रकार के भीषण उत्पीड़न भी हुए। बहुत ही शान्त मन से सदाशयव्रत ने उसको सहा। उन्हें लगा कि इससे उनकी आत्महीनता, कुंठा दूर हो रही है और आत्मा पर जमी कलुष की कड़ी परतें कोई खुरच-खुरचकर साफ कर रहा है।

-हवालात और जेल के अन्य कष्ट कोई कम न थे। खटमल, मच्छर, अंठई, घास-पात की तरह रोटी और बेस्वाद पनिआई दाल, गर्मी में भयंकर गर्मी और सर्दी में भीषण शीत से बचने का कोई

उपाय नहीं था। कभी-कभी किसी अवसर पर, जैसे बड़े दिन पर गेहूँ का दलिया मिल जाता जो अमृत के समान लगता, भले ही उसमें चीनी और दूध न होकर सिर्फ गड ही रहता। कभी-कभी अन्याय का सामूहिक विरोध करने पर पगली घंटी बजने लगती और कुछ ही देर में पुलिस के सिपाही आते का सामूहिक पीटकर रख देते। कभी-कभी भूख हड़ताल होती। जबरदस्ती मुँह के रास्ते कुछ खिलाने-पिलाने की कोशिश होती। इसका

भी विरोध होता। पुलिस को सताने में आनन्द आता और राजनैतिक कैदियों को सहने में। यहीं सदाशयव्रत ने गांधीजी के बारे में विस्तार से सुना। व्यक्ति से घृणा न करो, बल्कि सिर्फ का तरीका है सत्याग्रह असहयोग सविनय अवज्ञा जिसमें हिंसा वर्जित है. केवल अहिंसा का रास्ता अपनाकर विपक्षी का हृदय बदलना और उसे सत्य के सामने झुकने को बाध्य करना है। ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की लड़ाई गांधीजी इन्हीं तरीकों से चला रहे हैं।

गांधीजी हर व्यक्ति से सन्तुलित, नेक और नैतिक जीवन व्यतीत करने का आग्रह करते थे। हम स्वयं निम्न जीवन जीएँगे तो दूसरे के हृदय को बदल कैसे सकेंगे ? व्यापक जनसमूह का विश्वास कैसे प्राप्त करेंगे ? निज कल्याण का रास्ता छोड़कर सामाजिक कल्याण का रास्ता अपनाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि अपने राजनैतिक कार्यक्रम में स्वदेशी, स्वावलम्बन, सत्याग्रह, एकता, अस्पृश्यता निवारण, गरीबी उन्मूलन के सिद्धान्त और व्यवहार को अपनाएँ। हर राजनैतिक कार्यकर्ता को हिंसा-प्रतिहिंसा, स्वार्थ, शक्ति को छोड़कर एक किसान की तरह सरल होकर अपने अन्दर परोपकार और सेवाभाव उत्पन्न करना चाहिए। परस्पर भ्रातृत्व एवं एकता से युक्त ऐसे निडर और नैतिक समाज का निरन्तर विकास ही हमारी स्वतन्त्रता को अर्थ और गरिमा की बुलन्दी पर पहुँचाएगा।

जेल में निरन्तर बहसें होती रहतीं। कई तरह की विचारधाराओं के लोग वहाँ थे जो आपस में टकराते रहते, परन्तु राजनैतिक स्वतन्त्रता और देश की एकता के मामले में वे सब एक थे। सदाश्रयव्रत चुपचाप ये सब बहसें सुनते रहते। गांधीजी की बातें सुनकर उनका हृदय फूल की तरह खिल उठता। जैसे उनके मन पर किसी ने शीतल मलहम रख दिया हो। उनकी आँखों से आँसू गिरने लगते, ठीक उसी तरह जैसे दीयर के बाबा का प्रवचन सुनकर वह रोने लगते थे। दूसरे के लिए वृक्ष या शीतल बूँद की तरह जीना।

शायद गांधीजी तो इससे भी आगे जाते हैं। वह तो समस्त मानव जाति को, हर व्यक्ति को वृक्ष और बूँद बनाने के लिए कर्म का सिद्धान्त और

व्यवहार प्रस्तुत करते हैं। अपने प्रिय से अलग होने और उसके दर्शन से सदा के लिए वंचित हो जाने की पीड़ा कैसी प्राणान्तक थी सदाशयव्रत के लिए। लेकिन आज वह अनुभव कर रहे हैं कि उस पीड़ा ने ही उनको उर्वर बनाया है। उस खेत की तरह जिसकी गहरी जुताई की गई हो। यदि वह प्यार-उस प्रिय का, दीए की लौ की तरह निरन्तर जलता प्यारा-प्यारा ख्याल उनके जीवन से निकाल दिया जाए तो क्या बचेगा उनके पास ? उस प्रिया का सौन्दर्य महान है, उससे अलग होने की पीड़ा महान है, और उसी वजह से दीयर के बाबा और महात्मा गांधी के विचार उनको कँपाने, हिलाने और उठाने में सक्षम हैं, इसकी स्पष्ट अनुभूति उन्हें आज हो रही है।

बाद में कुछ नए राजनैतिक कैदी जेल में आए जिन्होंने नई बहसें छेड़ दीं। विशेष रूप से देवी प्रसाद पांडे बहुत ही पढ़े-लिखे, गम्भीर, मृदुभाषी और तर्कशील थे। वे नव-स्थापित कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नए नौजवान नेता थे। उन्होंने अपने तर्कों से अनेक नौजवानों को कांग्रेस समाजवादी पार्टी का सदस्य बना लिया जिनमें लक्ष्मण गुप्त तथा उनके अन्य साथी भी थे। सदाशयव्रत भी उन्हीं के साथ समाजवादी बन गए, यद्यपि समाजवाद का सिद्धान्त ठीक से समझ में नहीं आया। उन्हें अच्छी बात यही लगी कि समाजवाद होने से देश में किसान-मजदूरों का राज हो जाएगा।

अंग्रेजों द्वार किए गए नए वैधानिक सुधारों की वजह से धारा सभा के लिए हुए चुनावों के बाद सन् 1936 में संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस मन्त्रिमंडल बना जिसके फलस्वरूप सभी राजनैतिक कैदी छोड दिए गए और सदाशयव्रत भी घर आ गए।

सदाशयव्रत बदल गए और बदलते गए। अन्तर्मखी से बहिर्मुखी। सामने एक ऐसा मन-बुद्धिपसन्द रास्ता मिल गया जिस पर चलकर वह अपनी कुंठा, निराशा, आत्मपराजय और पीड़ा को रचनात्मक सामाजिक रूप दे सकते थे। वह चर्खा कातने लगे, खद्दर पहनने लगे, आजादी के लिए

अपनी पार्टी के कार्य में जुट गए। वह अपने क्रोध, घृणा, अलगाव की प्रवृत्तियों और हर प्रकार की आकांक्षा को छोड़कर विनम्र होते गए। वह सबको 'आप-आप' कहते। यहाँ तक कि छोटे बच्चे को भी। मिलने पर हर व्यक्ति का समाचार पूछते और विद्वानों के मिलने पर उनसे अधिक से अधिक जानने की कोशिश करते। किसी का दु:ख-दर्द, बीमारी-परेशानी, गमी को सुनते ही वह उसके पास पहुँच जाते और उसकी यथाशक्ति मदद करते।

सबसे आश्चर्य की बात यह हुई कि वह रोज सोते समय अपने पिता के पास पहुँच जाते और बार-बार मना करने पर भी उनके माथे पर तेल लगाते और हाथ-पैर, पीठ हल्के-हल्के दबाते। इसके पूर्व तो पिता से उनका बोलचाल का भी सम्बन्ध नहीं था। अपने पिता के हृदय को बहुत ठेस पहुँचाई थी। अब जैसे उस सबका प्रायश्चित कर रहे हैं। अब उनके बीच दुनिया भर की बातें होतीं। एक दिन सदाशयव्रत ने रामनिवास ओझा से कहा- "बाबू, आप मेरी चिन्ता न कीजिए। मैं घर-गृहस्थी के चक्कर में न पड़कर पूरा जीवन देश के काम में बिताना चाहता हूँ। मैं पढ़-लिख नहीं पाया और पढ़ने में अब तबीयत भी नहीं लगती। फिर मैं कोई बड़ा नेता नहीं बनना चाहता। देशसेवा का एक अदना सिपाही बनने में ही मुझे सन्तोष है। मैं ब्राह्मण-पंडित और विद्वान होने का कोई घमंड नहीं पालना चाहता। मैं गरीब किसान, गरीब मजदूर की तरह रहकर मेहनत करके अपना पेट पालना चाहता हूँ। मैं किसी के सहारे नहीं रहना चाहता। कांग्रेस के हजारों कार्यकर्ता इसी तरह रहते हैं।"

"ए बबुआ, तुम ऐसी बात क्यों कर रहे हो ? ठीक है, तुम इसी में खुश हो तो यही सही। अरे शादी-ब्याह तो इसलिए किया जाता है कि उससे वंश चलता है, सन्तान से सद्गति मिलती है। इस सृष्टि का नियम है। खैर, यह काम तो बाद में भी हो सकता है जब तुम चाहोगे। मैं पहले ही तुमसे कह चुका हूँ कि सामने का बैठका तुम्हारे लिए ही बनवाया है, तुम इसमें होटल खोल लो। दो पैसा आमदनी भी होगी और समय भी कटेगा। देशसेवा के लिए मैं मना नहीं करता, तुम्हारी इसी में खुशी है तो यह जरूर करो। मुझे अब विश्वास हो गया है कि तुम जो करोगे उससे मेरा और मेरे खानदान का नाम ऊँचा ही होगा..."

अपने पिता की इस बात से उनका काफी उत्साहवर्द्धन हुआ। कुछ ही दिनों में उस बैठक में काफी चहल-पहल होने लगी। होटल खोलने से पार्टी के लोग बहुत खुश हुए। यह उन्हें नहीं मालूम था कि सदाशयव्रत बहुत अच्छा खाना बनाते हैं। जब पहले दिन खाना बनाकर घरवालों और पार्टी क़ार्यकर्ताओं को भी खिलाया तो सभी उनको आश्चर्य से देखते रह गए। कच्चा ही भोजन बना था दाल, भात, रसेदार सब्जी, दहीबड़ा, कढ़ी-बरी, पालक का रायता और तिलौड़ी। उनके पिता रामनविास ओझा तो आनन्द से विह्वल होकर आँसू-भरी आँखों से उन्हें देखते ही रह गए।

"ए सदाशयव्रत, यह सब कहाँ सीखा बबुआ ! ऐसा जायकेदार व्यंजन तो मैंने आज तक नहीं खाया। अरे, जो शरीर पहलवानी और कुश्ती लड़ता था उसे यह गुर कहाँ से आया ?"

"बाबू, यह जानकर तुम क्या करोगे? आपको खाना पसन्द आ गया है, यही मेरे लिए बहुत है। यह मेरा सौभाग्य है।" सदाशयव्रत ने गम्भीर होकर कहा। फिप्रो

होटल की शोहरत जल्दी ही शहर भर में फैल गई। जायकेदार और सस्ता उस होटल के व्यंजन की विशेषता थी। धीरे-धीरे राजनैतिक सरगर्मियों के लिए भी वह मशहूर होता गया। अनेक छात्र प्रभावित होकर समाजवादी पार्टी के सदस्य बन गए। दूसरी राजनैतिक पार्टियों के लोगों का भी यहाँ वहाँ भोजन करने लगे और सदाशयव्रत के विनम्र और परिश्रमी व्यक्तित्व तथा राष्ट्रवादी विचार से स्वागत होता। फुरसत मिलने पर वहाँ बहस-मुबाहिसा होता और राष्ट्रीय गीत भी होते जो सदाशयव्रत को बहुत पसन्द थे।

बहुत-से कांग्रेसी, समाजवादी और अन्य क्रान्तिकारी शहर में आते और वहीं भोजन करते और दो-चार दिन ठहरना होता तो वहीं विश्वाम भी करते। अनेक फरार क्रान्तिकारी भी यहाँ आकर पनाह पाते और भोजन करते। जो पैसे देने के लायक न रहते उनसे कुछ भी नहीं लिया जाता,

बल्कि जरूरत पड़ने पर उनके लिए चन्दा वसूल किया जाता। सदाशयव्रत हर व्यक्ति के आराम का ख्याल रखते। अनेक बूढ़े-बुजुर्ग जो मधुमेह या उदर-विकार से पीडित होते, इनके लिए जौ-बेसन की रोटियाँ बनवाई जातीं अथवा मूँग की खिचडी। सिरदर्द या पेटदर्द के लिए सदाशयव्रत डॉक्टर या वैद्य की गोलियाँ रखते। कोई रात में कराहने लगता तो सदाशयव्रत उसके यहाँ पहुँच जाते। उसको वह दवाई देते. उसके पैर की एड़ियों को सहलाते अथवा गर्म कड़वा तेल लगाते। जब वे ठीक हो जाते तो बहस के अलावा हँसी-मजाक भी चलता। वहाँ सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, पंडित परमानन्द, दामोदर स्वरूप सेठ, गोकुल भाई तथा अनेक क्रान्तिकारी और कांग्रेसी नेताओं ने तो आकर सभा-गोष्ठी में भाषण दिया था या खाना खाया था अथवा वहाँ एक-दो दिन विश्राम किया था।

पंडित परमानन्द से सदाशयव्रत की खूब पटी और उनके पास बैठकर उन्होंने उनके क्रान्तिकारी जीवन तथा अन्य क्रान्तिकारियों के अनेक किस्से सुने। वह देश के एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे और कालापानी जेल की लम्बी सजा से छूटने के बाद कांग्रेस समाजवादी पार्टी के सदस्य बन गए थे। एक दिन सदाशयव्रत ने उनसे हँसते हुए पूछा :

"पंडितजी, क्रान्तिकारी आन्दोलन में दो परमानन्द कैसे ?"

पंडित परमानन्द खूब हँसे। फिर गम्भीर होकर बोले, "इसलिए कि एक भाई थे और दूसरे पंडित। भाई डॉ. मुंजे के साथ हो गए और पंडित, जयप्रकाश, लोहिया के साथ।" "पंडित जवाहर लाल नेहरू के साथ क्यों नहीं ?"

"वह पंडित कहाँ हैं? उनके कपड़े तो पेरिस से धुलकर आते हैं।" पंडित परमानन्द ने ठहाके लगाते हुए कहा। किञ्ञ

कभी-कभी कांग्रेसी नेताओं के निजी जीवन के किस्से भी बड़ी रुचि या क्षोभ-क्रोध अथवा निन्दाभाव से कहे और सुने जाते थे। उस समय यह चर्चा गर्म थी कि आचार्य कृपालानीजी सिनेमा देखने के बहुत ही शौकीन हैं

और वह सुचेताजी के साथ बॉक्स-ऑफिस में बैठते हैं। उसी समय यह भी कहा गया कि गांधीजी ने ऐसे आचरण की आलोचना करते हुए आचार्यजी को लिखा है कि 'यह सब बन्द करो अथवा शादी कर लो।' बाद में उन दोनों ने शादी भी कर ली, फिर भी समाजवादियों में शायद गांधीवादी होने के नाते उनके प्रति व्यंग्यात्मक भाव बना ही रहा। इस तरह के किस्से कितने सच थे अथवा सच होने पर भी उनमें अतिरंजना का कितना अंश था, यह तो किसी को नहीं मालूम पर उनको सुनकर अनेक कार्यकर्ता और नेता प्रचंड नैतिक क्रोध से उबलने लगते थे। लोग अपने नेताओं को देवता की तरह पूजते थे और किसी में साधारण मानवीय दुर्बलता भी उनकी दृष्टि में अक्षम्य थी। इसी तरह महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, डॉ. लोहिया, पूर्णिमा बनर्जी, पद्मजा नायडू आदि हस्तियों के बारे में अनेक किस्से तैरते रहते या विरोधियों द्वारा तैराए जाते जो कभी-कभी गर्म-गर्म बहस-मुबाहिसों का रूप ग्रहण कर लेते।

सदाशयव्रत इन किस्सों को चुपचाप सुनते या वहाँ से उठकर चले जाते। सदाशयव्रत का व्यक्तित्व निखरता गया। भोजन वह जिस सफाई. प्रेममाय, सेवाभाव से बनाते.

यह दर्लभ था। लोग उनका बनाया भोजन ग्रहण करते समय अंगलियाँ चाटते रह जाते। उनके व्यवहार का बड़ा असर पड़ा था और जवाब में दसरे भी उन्हें प्यार और सम्मान देते। उनकी पार्टी का प्रभाव बढ़ता गया और उसमें नए-नए नौजवान शामिल हो गए। उनके ज्ञान में भी इजाफा होता गया, दूसरे क्रान्तिकारियों की बातें सुन-सुनकर । इसी तरह वह अंग्रेजी के अनेक शब्द सीखकर उनका इस्तेमाल भी करने लगे। कांग्रेस संघटन में भी उनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी और उनकी कार्यक्षमता, अनुशासन, सद्व्यवहार और उत्कट राष्ट्रप्रेम के कारण उनको बड़े दायित्व सौंपे जाने लगे।

उनके प्यार में अब जलन और दाहकता नहीं थी। अपनी प्रियतमा के ख्याल में यह आत्म-विनाशक पीडा भी नहीं जो अब सुख, आनन्द,

राष्ट्रप्रेम, मानवप्रेम और कर्बानी के संकल्प में बदल गई थी। इसमें निश्चय ही गांधीजी और दीयर के बाबा के विचारों, प्रवचनों तथा जयप्रकाश-लोहिया के समाजवादी सिद्धान्तों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, पर उसमें कुछ अपना भी था, एक निजीपन जो कभी इनसान को छूछा नहीं होने देता और प्राप्य तथा प्राप्त के अन्तर की अनुभूति से सदा टीस-भरा उत्साह पैदा करता रहता है।

शारीरिक रूप से विकलांग

करीब दस बजे रात को नफीस और राममूरत दौड़ते हुए सदाशयव्रत के पास आ गए थे। नफीस ने हाँफते हुए कहा, "सेनापतिजी, अइगा पांडे तो विशुनीपुर में जोगीड़ा देख रहा है। उसका सिपाही साथी तो नहीं है, अकेले ही...।"

"अच्छा तो चलिए मैं कुर्ता डाल लूँ...।"

वे तीनों बाहर निकलकर लपकते हुए विशुनीपुर की ओर रवाना हुए जहाँ जोगीड़ा पार्टी एक घर से दूसरे घर की ओर जाती हुए बीच सड़क पर अपना प्रदर्शन कर रही थी। लोग गोला बनाकर चारों ओर खड़े थे और बीच में कम उम्र के दो लौंडे उटुंग-से घाघरे पहनकर तथा ओढ़नियों से माथे को घूँघट की तरह ढँककर ढोलक के ढम-ढम पर लट्टू की तरह चारों ओर नाच रहे थे। एक व्यक्ति ढोलक बजा रहा था, दूसरा मँजीरा, तीसरा मजाकिया बानी, दोहा अथवा कवित्त-दोहा बोलता जिसके अन्त में बाजा तेजी से बजने लगता और नचनिए एक हाथ कमर पर और दूसरा सिर पर रखकर चरखी की तरह तेजी से वृत्त की भीतरी सीमा में घूमने लगते।

जब नाच और ढोलक की गति कुछ थमी तो भीड़ के बीच में खड़ा अइगा पांडे हाथ उठाकर बोला :

"रामनगर, रामनगर कोना-कोनी..."

यहाँ अइगा पांडे कुछ रुका तो ढोलकवाले ने ढोलक पर जोर-जोर से दो-तीन थाप देते हुए कहा, सिसअप ते

"भला जी भला।" इसके बाद अइगा पांडे ने आवेश में आकर तेजी से अपनी पंक्तियाँ पूरी कीं: फिक्टेस्टर "रामनगर, रामनगर कोना-कोनी, एकताको

कयधिन के गाल पर सोना कनी।"

ढोलक तेजी से बजने लगा और दोनों लौंडे फुर्र होकर चारों ओर घूमने लगे। इसी के साथ अइगा पांडे जमाऊ बानी बोलने लगा :

"वाह यार वाह, फिर वाह यार वाह, सारा रा रा, जोगी जी सारा रारा। चली जा दौड़ी-दौड़ी, खाले गुलाबी रेवड़ी, बताशा घोर के पी जा, गुलजामुन सीधे गपको...।"

दो-तीन और बानियाँ बोली गईं, फिर पार्टी उखड़कर जब आगे के घर की तरफ चली गई तो नफीस ने अइगा पांडे की बाँह पकड़कर खींचा

"ए पांडे, जरा सुनो तो। तुम्हें सेनापतिजी बुला रहे हैं।"

"तू कौन हे रे, सियार की औलाद ? और यह ससुरा सेनापति कौन पैदा हो गया ?"

"चुपचाप सुन लो, नहीं तो खैरियत नहीं...।"

नफीस ने अपनी आदत के मताबिक यह सब हँसकर ही कहा था। जोगीड़ा पार्टी आगे चली गई थी और अहगा पांडे रुककर नफीस को घर ही रहा था कि सदाशयव्रत और राममूरत वहाँ पहुँच गए।

"अच्छा तो तुम हो ?" अइगा पांडे ने सदाशयग्रत को देखकर व्यंग्यपूर्वक कहा, "बोलो, ओझा महराज, खूब सोच-समझकर बोलना...।"

"पांडेजी. आज आपने रतनसिंह मुख्तार की लड़की के साथ जो दुर्व्यवहार

किया है. वह ठीक नहीं है। हम एक शहर में ही रहते हैं, हमें अपनी बहू-बेटियों की इज्जत करनी चाहिए..."

सदाशयव्रत ने बहुत ही विभ्रमता से यह बात कही थी, लेकिन उससे भड़ककर अइगा पांडे क्रोध से लाल हो गया। उसने चुनौती देते हुए कहा, "तुमने यहाँ की बहू-बेटियों का ठेका ले रखा है? आँखें और सिर झुकाकर यहाँ से चुपचाप चले जाओ, नहीं तो तुम्हारी सारी नेतागिरी..."

यहाँ उसने एक गन्दे मुहावरे का इस्तेमाल किया तो नफीस आगे बढ़कर बोला, "ए जवान सँभालकर बोल, नहीं तो तेरी जबान यहाँ काटकर तेरे माथे पर चिपका दूँगा..."

"नहीं नफीसजी, आप चुप रहिए... मुझे बात करने दीजिए।" सदाशयव्रत ने फिर अइगा पांडे को उसी नरमाई से कहा, "पांडेजी, बात समझने की कोशिश कीजिए। हम गांधीजी के सिद्धान्तों को मानते हैं, इसलिए हर चीज शान्ति से सुलझाना चाहते हैं। हम इस शहर में रहते हुए ऐसा अन्याय बरदाश्त नहीं कर सकते। आप इस पर खूब सोचिए और कल शाम तक, छह बजे तक, उस बिटिया के पिताजी रतनसिंह मुख्तार से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँग लीजिए और उन्हीं को यह वचन दीजिए कि भविष्य में आप कभी भी ऐसा नहीं करेंगे। कल शाम तक का समय, याद रखिए..."

"अच्छा तो मेढ़की को भी जुकाम हो रहा है? अच्छा तो सुन लो ओझा के बेटे, कल सबेरे ही मैं तुम्हारी ओझइती झाड़कर रख दूँगा। कल शाम तक तुमको इन्तजार करने नहीं दूँगा, सबेरे ही तुमको यमराज के यहाँ भेजकर चैन की साँस लूँगा। अगर ऐसा नहीं किया तो ब्राह्मण का बच्चा नहीं...।"

इतना कहकर उसने सदाशयव्रत को क्रोध से देखते हुए जमीन पर तीन बार थूका और घूमकर विजयादशमी के विशाल रावण पुतले की तरह दोनों ओर हिलते हुए वहाँ से चला गया।

"सेनापतिजी, आप हुक्म क्यों नहीं करते, मैं अभी इसे खींचकर लाता हूँ और इसको धूल चटाता हूँ। देखने को यह लम्बा और मोटा-भर ही है, कुछ

है नहीं इसमें..." नफीस ने उत्तेजित होकर कहा।

"नहीं, नफीसजी, इन्हें सोचने का मौका देना चाहिए। इस समय क्रोध में है। मेरा ख्याल है, कल शाम तक इन्हें अपने व्यवहार के लिए अफसोस होगा..."

हूँ..." "सेनापतिजी, आपको सतर्क रहना चाहिए। कहिए, साथियों और कार्यकर्ताओं को सूचना दे

"अरे नहीं, राममूरतजी, घबराइए नहीं। ये कुछ करेंगे नहीं... आप लोग जाइए, आराम से सोइए, कल किसी टाइम आ जाइएगा..."

परन्तु दूसरे दिन सुबह छः बजे ही अइगा पांडे ने दल-बल के साथ सदाशयव्रत के निवास स्थान को घेर लिया। गनीमत की बात यही थी कि सुबह पाँच बजे ही रात में राय-बात करके नफीस और राममूरत पहुँच गए थे। इसके अलावा, एक कांग्रेसी कार्यकर्ता साधोसिंह अपने मुकदमे के सिलसिले में देर रात में पहुँचे थे, जो लम्बे, छरहरे और अच्छे लठैत थे। वह पहले से ही जब आते तो यहीं

ठहरते और होटल में खाना खाते और होटल बन्द होने पर भी उनका यही सिलसिला जारी था। "अरे सेनापतिया, असल बाप का बेटा है तो निकल आ...।" अड़गा पांडे ने ललकारा।

सदाशयव्रत का मुँह गम्भीर हो गया। साधोसिंह ने पूछा, "यह क्या तमाशा है ए सदाशय...।"

"हम तो अहिंसा के पुजारी हैं ए साधोजी, अब आप ही बताइए कि इस अनीति का क्या जवाब है....।" सदाशयव्रत ने सिर पर एक तवा रखकर दुपट्टा से बाँधते हुए पूछा।

"ए सदाशय, दाई ओर सड़क पर मैं चला जाता हूँ और बाई और नफीस मियाँ को भेजो। और बीच में तुम अपना हुनर दिखाओ। सारे काफी आए

हैं..."

"राममूरतजी, जहाँ मार शुरू हो जाए, आप निकलकर मेस्टन स्कूल के छात्रावास में चले जाइए... वहाँ से लड़कों को बुला लाइए...।"

वे बीस लोग थे जिनमें शहर के ही बदमाश थे। सबसे लम्बा अइगा पांडे ही था जिसके हाथ में लाठी थी। तीन-चार और बदमाशों के हाथ में भी लाठियाँ ही थीं। एक नाटा और कमउम्र छोकरा लोहे की छड़ ऊपर-नीचे कर रहा था। शेष के हाथों में छोटे डंडे, हॉकी स्टिक, लकड़ी के चैले और गुप्तियाँ भी थीं।

सदाशयव्रत सिर्फ लँगोटे और बनियान में सिर पर तवा बाँधे और हाथ में लाठी लिए बाहर निकल आए और छटककर दूर खड़े हो गए। बदमाश गालियाँ देते और 'मारो-मारो' कहते हुए जब सदाशयव्रत की ओर लपके, साधोसिंह उछलकर दाहिनी ओर सड़क पर चला गया जो नजदीक ही थी। और नफीस बाईं ओर जाकर लाठी के साथ तैनात हो गया। इसी हल्ले में राममूरत निकलकर छात्रावास की ओर भागा।

सदाशयव्रत को अनुभव तो था ही, उनकी फुर्ती भी कम नहीं हुई थी। उन्होंने कुछ क्षणों में सारी परिस्थिति का जायजा ले लिया और समझ गए कि उनमें अधिक छिछोरे और सड़क छाप बदमाश ही थे। सबसे पहले उन्होंने अप्रत्याशित ढंग से उछलकर उस नाटे छोकरे की मुट्ठी पर जोर से प्रहार किया जो लोहे की छड़ ऊपर-नीचे कर रहा था। वह जोर से 'बाप रे' चिल्लाया। उसके हाथ से छड़ गिर गई और वह नफीस की तरफ भागा। तब नफीस ने उसकी टाँग में जोर का डंडा मारते हुए कहा, "इधर कहाँ हुजूर ? जाइए लड़िए...।"

वह दूसरे मोहल्ले में घुसे कुत्ते की तरह बचता हुआ सड़क की ओर भागा, वहाँ साधोसिंह ने एक हल्का हाथ जमाते हुए कहा, "यहाँ कहाँ ? जाओ लड़ो...।" वह हाथ-पैर जोड़ने लगा तो साधोसिंह ने आदेश दिया, "अभी नहीं, यहीं चुपचाप खड़े रहो, भागोगे तो दौड़कर मारूँगा..."

अइगा पांडे बार-बार सदाशयव्रत की ओर लपक रहा था, लेकिन लम्बा

होने और अकड़े आरामदेह शरीर के कारण इसमें लचक नहीं थी। वह न उछल सकता था और न छटक सकता था और वार बचाने का भी हुनर उसमें नहीं था। वह सदाशयव्रत पर एक-दो बार प्रहार करने में सफल जरूर हुआ, पर माथे पर तवा और असाधारण फुर्तीबाजी के कारण उन्हें कोई गम्भीर चोट नहीं आई। पर अइगा पांडे लाठी के कई प्रहार पा चुका था। सदाशयव्रत अभी उसके कमजोर साथियों पर विशेष ध्यान दे रहे थे, जो सिर्फ हॉकी स्टिक और चैले लेकर आए थे। सदाशयव्रत का वह प्रशिक्षण और अनुभव काम आ रहा था जो उन्हें अनग्राहित ठाकुर से मिला। अनग्राहित की सीख के अनुसार वह इस समय गुल्ली, नट और नर्तक बन गए थे। वह लाठीधारियों के वार को बचाते हुए छटककर किसी अनुभवहीन हॉकी स्टिक या चैलेवाले पर प्रहार करते। वह चिल्लाता हुआ बाएँ या दाएँ भागता जहाँ नफीस या साधोसिंह उस पर दो-चार हाथ जमा देते। इस तरह जितने हॉकी स्टिक, चैले और गुप्तीवाले वहाँ थे, सभी मैदान छोड़कर भाग चुके थे।

अब अइगा पांडे और तीन-चार लाठीधारी बच रहे थे। उनमें अब वह जोश भी नहीं रह गया था। अइगा पांडे दाहा की तरह हिल रहा था। वह पसीने से लथपथ था और हाँफ रहा था। प्रशिक्षित

और अप्रशिक्षित तथा अनुभवी और अनुभवहीन में जो फर्क होता है, यह इस छोटी-सी लड़ाई में साफ दृष्टिगोचर हो रहा था। परन्तु इस स्थिति में भी अहगा पांडे ने जान लगा दी थी। यह यार-यार सदाशयव्रत के सिर को मूर्खतापूर्वक निशाना बना रहा था। मुश्किल की बात यह थी कि सदाशयव्रत भी उसकी असाधारण लम्बाई की वजह से उसके सर पर प्रहार नहीं कर पा रहे थे।

अन्त में सदाशयव्रत के दिमाग में एक विचार आया। उन्होंने उसका एक प्रहार जमीन पर गिराते हुए तेजी से घूमकर एक जोरदार प्रहार उसकी किहुनी की हड्डी पर किया जिसके फलस्वरूप उसके मुँह से जोर की 'आह' निकली, उसकी लाठी गिर गई और वह स्वयं लड़खड़ाकर धराशायी हो

गया। इसी समय उसके दूसरे लाठीधारी साथी जो काफी प्रहार खा चुके थे, अपनी लाठी-वाठी फेंककर तेजी से भागे जहाँ साधोसिंह ने पीट-पीटकर उनका कचूमर निकाल दिया।

अड़गा पांडे जब गिरा तो नफीस ने दौड़कर उसकी पीठ पर दो-तीन डंडे जमा दिए। सदाशयव्रत ने अपनी साँस को बाँधते हुए कहा :

"नहीं नफीसजी, यह न कीजिए। यह ठीक नहीं... जाइए, अन्दर से एक कुर्सी ले आइए...।" इस समय तक छात्रावास के लड़कों का एक झुंड लाठी-डंडों और हॉकी स्टिकों के साथ यहाँ हल्ला करते हुए आ पहुँचा था। सदाशयव्रत के घरवाले तथा मुहल्ले के कई लोग लाठी-बल्लम के साथ बाहर आ गए। सदाशयव्रत भीतर जाकर, तवा खोलकर और लुंगी पहनकर पुनः आ गए। भगोड़ों को एक-एक हाथ फिर जमाकर साधोसिंह भी खड़े दिखाई दे रहे थे।

सदाशयव्रत ने इकट्ठी भीड़ को वहाँ से जाने का अनुरोध करके अइगा पांडे से कहा:

"पांडेजी, आप उठिए, इस कुर्सी पर बैठ जाइए..."

अइगा पांडे ने कराहते हुए गुस्से में कहा, "अपनी महानता दिखाकर मुझे अपमानित क्यों कर रहे हो, ओझा...।" চন্ডী কালীর ভ

सदाशयव्रत स्वयं घायल थे। उनके पैरों में लाठी की चोट लगी थी जिससे वह लँगड़ा रहे थे। उनकी दाहिनी बाँह में गुप्ती की गहरी चोट थी। अइगा पांडे तो कन्धों से लेकर नीचे टखनों तक अनेक जख्मों से भरा था और उसकी दाहिनी बाँह की किहुनी में ऐसी चोट लगी थी कि थोड़ा भी हिलने पर वह कराह उठता था। वह उठकर जमीन पर मुँह लटकाए बैठा था।

"अपमानित नहीं कर रहा हूँ, जब लड़ाई थी तो लड़ाई थी। अब लड़ाई बन्द हो गई है और आप हमारे मेहमान हैं। आपको चोट लगी है, घर में टिंक्चर है, अभी आपको लगवाता हूँ। फिर कहता हूँ कि आप हमारे दुश्मन नहीं, मेहमान हैं। उठिए, कुर्सी पर बैठ जाइए, आपसे मैं अनुरोध करता हूँ..."

सदाशयव्रत की आवाज विनम्रता और मिठास से भरी थी। नफीस ने क्रोध से मुँह फेर लिया

था। सदाशयव्रत ने राममूरत से अलग ले जाकर कहा कि वह घर से गर्म पानी, टिंक्चर और रूई

ले आए। फिर नफीस के पास जाकर उसके कान में फुसफुसाकर कहा, "सड़क पर से पाव-भर जलेबी लेते आइए। घर में से पैसा माँग लीजिए।"सीं इस पे नफीस ने फुसफुसाई ही आवाज में क्रोधपूर्वक कहा, "आपने तो हद कर दी, सेनापतिजी !

मैं इसकी चटनी बनाना चाहता था, आप इसे जलेबी खिलाने जा रहे हैं..."

"नफीसजी, गांधीजी ने कहा है बुराई से घृणा करो, व्यक्ति से नहीं..."

जब राममूरत गर्म पानी, टिंक्चर, हल्दी और रूई ले आया तो सदाशयव्रत ने उससे कहा:

"आप कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं, आप ही पहले इनके घावों को रूई और गर्म पानी से साफ कीजिए। फिर टिंक्चर और जहाँ जरूरत हो हल्दी लगा दीजिए। मेरे पैरों में दर्द है, नीचे बैठ नहीं पाऊँगा। बाद में मेरे घावों को भी ऐसा ही कीजिएगा...।"

सवेरे से ही बादल थे, इसलिए धूप नहीं थी। हवा भी शीतल थी और धीरे-धीरे बह रही थी।

भीड़ छँटी नहीं थी। उनमें से अधिकतर अइगा पांडे की करतूत से परिचित थे और उसको क्रोध ते घूर रहे थे। उनकी यदि चलती तो उसे यहीं सख्त-से-सख्त सजा दे देते, पर सदाशयव्रत के सामने किसी को कुछ करने की हिम्मत नहीं हुई।

जब राममूरत ने घावों पर सफाई करके दवा लगा दी, तो सदाशयव्रत ने उससे लोटे में पानी लाकर अइगा पांडे के हाथ, पैर और मुँह धुलाने के लिए कहा। अन्त में वह स्वयं घर के अन्दर जाकर एक तश्तरी में जलेबी ले आए और अइगा पांडे के सामने बढ़ाते हुए विनम्रता से कहा :

"पांडेजी, लीजिए, सवेरे का समय है, जलपान कर लीजिए...।"

अड़गा पांडे ने पराजय की हीनता और क्रोध से गर्दन टेढ़ी कर ली थी। अब उससे अधिक बरदाश्त नहीं हुआ और उसने चिल्लाकर रोते हुए कहा :

"तुम मुझे ज़लील क्यों कर रहे हो ओझा। तुम मेरी इस समय गर्दन काट लो, मुझे खुशी होगी, पर मुझे इस तरह न सताओ। तुम्हारी यह वीरता है? तुम महात्मा गांधी के कैसे चेले हो ?"

उसको रोते हुए देखकर सबकी आँखें निकल आई अचम्भे से। ऐसा बदमाश, पुलिस का आदमी रो भी सकता है ? कुछ तो द्रवित भी हो गए और आँखें पोंछने लगे।

सदाशयव्रत ने वैसी ही आवाज में कहा, "आप गलत समझ रहे हैं पांडेजी! मैं आपको ज़लील नहीं कर रहा हूँ। मैं आपको अपना मेहमान मानता हूँ, दोस्त समझता हूँ। मेहमान की खातिर करना मेरा फर्ज है। आप दुःखी न होइए, मेरे मन में कोई घमंड नहीं है कि लड़ाई में आपकी हार हुई। यह हार मेरी भी हो सकती थी। इस दुनिया में कोई भी हमेशा नहीं जीतता है। यदि आपको इस समय अपने किसी कार्य से तकलीफ हो रही है, पश्चाताप हो रहा है, तो सचमुच यह आपकी जीत है। आपकी ऐसी जीत मेरी भी जीत होगी, यहाँ इकट्ठी लोगों की भीड़ की जीत होगी, इस शहर की जनता की जीत होगी। आप मुझे दोस्त मानिए और मेरे अनुरोध को ठुकराइए नहीं...।"

उन्होंने अइगा पांडे की ओर तश्तरी फिर बढ़ाई जो इस बार उसने हाथ बढ़ाकर ले ली। "ओझाजी, मैं शर्मिन्दा हूँ..." अइगा पांडे की आँखों से और तेजी से आँसू गिरने लगे।

16

दशाश्वमेध घाट की सीढ़ी के किसी एकान्त कोने में बैठकर गंगा की लहरों को निरन्तर देखना कितना सुकून देता है नीलेश को। उसे बनारस, खासतौर से गंगा घाटों पर घूमते हुए बार-बार 'खैर बहोरवी' की नज़्म 'सुबहे बनारस' याद हो आती है, जिसे उसने बलिया के एक मुशायरे में उन्हीं के मुँह से सुना था। उसे आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि मऊ के पहले इन्दारा स्टेशन के पास ही एक वीरान बाँगर इलाके में बहोरवा नामक जो गाँव बसा है, उससे उस स्टेशन पर सक्रिय चाइयों और उठाईगिरों का घनिष्ठ सम्बन्ध बताया जाता था, लेकिन वहीं ऐसे उम्दा शायर पैदा हुए हैं, उसे मालूम क्यों नहीं था ? एक ऐसा शायर, जिसने इस गुलजार शहर में घूमते हुए अनेक सामाजिक और इन्सानी समस्याओं पर विचार किया है।

सचमुच बनारस के पास बहुत कुछ ऐसा है, जो दूसरे शहरों के पास नहीं है-रॉड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी के अलावा उसके पास टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों की तरह पतली गलियाँ और गहरे कुंड हैं। दालमंडी गली के कोठों पर निवास करतीं और ब्राह्म मुहूर्त में शास्त्रीय संगीत का रियाज करनेवाली गुरु रामदास की अनेक सुन्दर, गुणी वेश्या शिष्याएँ हैं। वहाँ हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, भारतमाता का मन्दिर और विश्वनाथ का मन्दिर है। शहनाई, पान, गहरेबाजी, साड़ियों के जुलाहे, तारकशी और जरी मजदूर, भाँग, गाँजा, रबड़ी-मलाई, टोपी, कसरत, अँगोछे और लँगोट का शीक,

ये सभी विशिष्ट और अद्वितीय हैं। और सम्भवतः बनारस की सबसे बड़ी पहचान तो 'गुरुपन' है जो यहाँ निवास करनेवाले सभी व्यक्तियों में किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है चाहे वे इसके प्रति सजग हों या नहीं चाहे वे इस जिले और शहर अथवा परबी और पश्चिमी जिलों के विभिन्न गाँवों-शहरों के ही क्यों न रहनेवाले हों। हाँ बनारस अपने रंग में सबको रंग

देता है। पान दरीबा के कुछ आगे, दाहिनी फुटती, पतली गली में

औरंगाबाद में, नीलेश के चाचाजी निवास करते हैं जहाँ बलिया की एक पंडिताइन भी रहती हैं जो अब बनारस में ही बस गई हैं। विमला नामक उस गरीब औरत का पति लखन पंडित बड़ा नकारा था, जो सघुआई मेष-याना में घूम-घूमकर भिक्षार्जन किया करता. जो कछ काम-धाम न करने का बहाना मात्र था। विमला घर-या घूमकर काम-धाम करती हई अपने परिवार और बच्चों का पालन-पोषण करती। बड़ा लड़का बलेसम जब जयान होने लगा तो हिजडे उसे अपनी बिरादरी का समझकर अपने साथ भगा ले गए। दूसरा लड़का प्रभु जब बारह वर्ष का हुआ तो बनारस में साडी का व्यापार करनेवाला बलिया का एक कारोबारी उसे अपने साथ ले गया, जहाँ वह तारकशी और जरी का काम सीखकर अच्छा कमाने लगा। बाद में विमला अपने छोटे बेटे मालबाबू के साथ तथा अपने पति को उसकी किस्मत के सहारे छोड़कर बनारस आ बसी, जहाँ लखनू भी बाद में ढूँढ़ता हुआ उसके पास पहुँच गया।

प्रभु बचपन से ही बेहद दुबला-पतला था, बाद में भी उसकी कोई खास बाढ़ नहीं हुई और उस पर 'मूस मोटइहें लोढ़ा होइहें' कहावत चरितार्थ होती थी। वह इस समय सत्रह वर्ष का हुआ होगा। बेहद दुबला-पतला और ऊँचाई करीब साढ़े चार फीट। लेकिन अभी से वह अपनी मूँछों पर उत्तरे चला-चलाकर उन्हें काली, गझिन और बर्डीली बनाने की कोशिश कर रहा था। निश्चय ही वह एक हुनरमन्द कारीगर था और जब वह आता तो उसकी योग्यता से ईर्ष्या करनेवाले कारीगरों से हुई लड़ाइयों का शेखी-भरे विस्तार से वर्णन करता, जिनमें उसकी तथा उसके गुट की जरूर ही जीत होती। उसकी बातों में 'सरऊ', 'फैट' और 'गुरु' शब्द जरूर ही आते थे। वह 'पूरा बनारसी गुरु' बन गया था।

नीलेश को फुरसत तो कम ही मिलती। वह बनारस की इन्हीं विशेषताओं को देखते और सुनते हुए नम्रता को भूलने की कोशिश कर रहा था, जिसमें वह सफल नहीं हुआ। नम्रता ने उसके साथ ऐसा कठोर व्यवहार क्यों किया और उसने उसकी दी हुई पुस्तकें क्यों लौटा दीं ? और जब वह बनारस आ रहा था, तो उसकी कोशिशों और इच्छा को ठुकराकर उससे

मिलने से इन्कार क्यों कर दिया उसने ? यह काफी आहत होकर ट्रेन में बैठा था और यहाँ पहुँचकर भी उसे बहुत दिनों तक कुछ अच्छा नहीं लगा।

बीच-बीच में छुट्टियाँ आईं और वह नम्रता को देखने के लिए व्याकुल हो उठता। बनारस से बलिया दूर ही कितना है, सिर्फ पाँच घंटे की ट्रेनयात्रा लेकिन इस बार भी यदि नम्रता ने उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया तो ? यह सोचकर उसका शरीर और मन अकड़ जाता। इस तरह अनेक छुट्टियाँ बीत गईं।

अनेक रिश्तेदारों, मित्रों और मेहमानों तथा परिवारजनों को वह स्नान के लिए दशाश्वमेध घाट ले गया है। जब अँधेरा रहता, उसी समय वे पैदल निकल पड़ते और दालमंडी, कोतवाली, चित्रा सिनेमा और कुछ सीढ़ियाँ नीचे उतरकर विश्वनाथ गली से होते हुए गोदौलिया की सड़क पर आकर घाट की ओर मुड़ जाते। यह सड़क अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी है, जिस पर श्रद्धालुओं, भक्तों, स्नान प्रेमियों की भीड़ का आवागमन जारी रहता है। गुलजार, निरन्तर चलती, हँसती, आस्था, भक्ति से

उमड़ती और सबके लिए बेहद आत्मीय ऐसी सड़क दुनिया में कहीं भी नहीं मिलेगी शायद। दशहरे की छुट्टियों में घर न जाकर वह बड़ा दुखी हुआ। मन की शान्ति के लिए वह रोज दशाश्वमेध घाट जाकर किसी सीढ़ी पर बैठ जाता और अपनी व्याकुलता को गंगा की लहरों में बहाने

की कोशिश करता। अनेक स्मृतियों उसको सहलातीं अथवा कुछ आघात करके उसके धैर्य को तोड़ने-फोड़ने लगतीं। सुबह हो या शाम, उच्च अट्टालिकाओं के समान, किनारे निर्मित किसी मकान की खुली छत या खिड़की पर बैठकर कोई कलाकार शहनाई बजाने लगता जिसके विभिन्न रागों की धुनों-आलापों और आरोह-अवरोह के साथ उसका मन मीठी पीड़ा, उदासी एवं आनन्द की लहरों पर तैरने लगता। कभी-कभी उसे लगता, प्रिय का मधुर पीड़ा-भरा प्यार उसके दिल से शहनाई-धुनों के रूप में पिघलकर स्वयं उसके दिल तक पहुँच रहा है, इस सन्देश के साथ

'आओ, दूर क्यों हो, पास आओ और मेरा हाथ पकड़कर ले चलो उन सफेद रूई की तरह प्यारे-प्यारे बादलों में... आओ चलें साथ-साथ इस धरती पर एक छोर से दूसरे छोर तक, लोगों से पूछें, बोलें, बतियाएँ, दर्द की लेन-देन करें, परस्पर प्यार करते हुए उनके लिए जिएँ और मरें....।'

एक दिन रात के अँधेरे में, जब भीड़ काफी कम हो गई, कुछ तेज हवा में गंगा पर कुछ दीए जगमग-जगमग हिलते हुए बढ़ने लगे, अचानक बचपन की कुछ ऐसी स्मृतियाँ चुपके से जाग उठीं, जिससे यह चौंक उठा।

वह स्मृतियों की अतल गहराइयों में झाँकने लगा। मोहल्ले के लड़के 'चोर-साह' खेल रहे थे। नम्रता तब करीब आठ वर्ष की रही होगी, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें काजल से पुती होतीं और अक्सर वह कोई खाने की चीज हाथ में लेकर खाती हुई घर से बाहर निकलती। और स्वयं वह दस वर्ष से कुछ अधिक। एक लड़का चोर बना था और अन्य लड़के भागकर छिप रहे थे। 'चोर' छिपे हुए लड़कों को खोजता और यदि कोई पकड़ा जाता तो अब उसे चोर बनना पड़ता। नीलेश भागकर बाहर के कमरे के कोने में रखी एक बड़ी आल्मारी के पीछे छिप गया। कुछ देर बाद नम्रता भी वहीं छिपने आ गई। नीलेश ने होंठों पर अंगुली रखकर उसे चुप रहने के लिए कहा। जगह कम थी लेकिन नम्रता उसके निकट आ गई जिसको उसने बाँहों में खींच लिया। वे कुछ देर तक इसी तरह एक-दूसरे के पास खड़े रहे।

कई बार इसी तरह वे छिपने के लिए एक ही जगह इकट्ठे हुए थे। एक दिन नीलेश को क्या शरारत सूझी कि जब नम्रता बाहर अपने दरवाजे पर खेल रही थी, वह अपने घर के अन्दर से अंगुलियों में कड़वा तेल चुपड़कर आया और पीछे से अनचित्ते में नम्रता की नाक मजे से मल दी। तेल की झार अन्दर सरकने से नम्रता खाँसने लगी और उसकी नाक से पानी गिरने लगा। वह पहले जमीन पर बार-बार पैर पटककर रोई, फिर काफी गुस्से में आकर नीचे से एक नुकीले खपड़े के टुकड़े को उठाकर उसकी ओर फेंका और देखते-ही-देखते नीलेश लहूलुहान हो गया। फिर नम्रता पिनपिनाकर घर के अन्दर भाग गई।

नीलेश के सिर पर पट्टी बँध गई। दोनों घरों में कहा-सुनी भी हुई। दोनों ने

एक-दूसरे के साथ खेलना बन्द कर दिया। बहुत दिनों बाद जब नीलेश दोपहर में अपने कमरे में खड़ा था, नम्रता न मालूम किधर से उसके पास आई। वह अमरूद खा रही थी, और दूसरे हाथ में एक और अमरूद भी था, जिसे नीलेश की ओर बढ़ाकर उसने कहा-"लो, खाओ...।"

नीलेश ने दूसरी ओर मुँह करके गुस्से में कहा, "भागो यहाँ से, नहीं तो ऐसा मारूँगा कि नानी याद आ जाएगी।"

"तुमने तेलवाली अंगुलियों से मेरी नाक क्यों मली ?" नम्रता ने कहा।ारी

नीलेश के पास इसका कोई जवाब नहीं था।

"अच्छा, लो खाओ। अब मेरी नाक न मलना..."

यह कहकर नम्रता ने दूसरे हाथ का अमरूद उसके मुँह और नाक से सटा दिया। नीलेश ने अमरूद लेकर कहा, "तुम बेवकूफ हो...।"

"तुम भी पाजी हो..." नम्रता हँसने लगी। लेकिन एक-आध वर्ष बाद उनका एक साथ खेलना बन्द हो गया। उसका नाम अंग्रेजी स्कूल

** में लिख गया था और उसके नए-नए दोस्त बन गए थे। वह अब नए साथियों के साथ मौसम के अनुसार फुटबाल अथवा हॉकी खेलने चला जाता। कभी ये तेल-टंकी के मैदान में चले जाते जो रेलवे लाइन के नीचे. बर्मा शेल के टंकी मैदान में था और जिसमें इमों-पीपों के कटे छोटे नुकीले टुकड़े और कंकड़-पत्थर छितरे हुए थे। नए सर्वोत्तम अंग्रेजी स्कूल, नए साथियों और नए खेलकूद की वजह से यह अपने को नम्रता आदि मोहल्ले के अन्य साथियों से ऊँचा समझने लगा था और जब कभी नम्रता उसके पास आने की कोशिश करती तो वह उसे झिड़क देता, "जाओ, जाओ, लड़कियों में खेलो।" लेकिन इसका बदला नम्रता ने भी दूसरे अवसर पर निकाल लिया। नम्रता की मौसी की लड़कियाँ जब दिल्ली से कभी आतीं तो नम्रता उनके साथ व्यस्त हो जाती और दूसरों को पहचानने से इनकार

कर देती। वे लड़कियाँ खूब फैशनेबुल फ्रॉक पहनतीं, इधर से उधर फर-फर चलतीं या उछलती रहतीं, पश्चिमी उच्चारणवाली अच्छी खड़ी बोली बोलतीं। और एक-दो बार नीलेश उनकी ओर आकर्षित होकर खेलने के उद्देश्य से उनके पास पहुँचा तो नम्रता ने ताली पीटकर उसे चिढ़ा दिया :

"ए राम, लड़की में लड़का गुलेल खेले..."

वह उलटे मुँह वहाँ से चला आया था। फिर वह बड़ा होता गया, पता नहीं, उसमें कहाँ की शर्म भरती गई। उसे दूसरों से बोलने में काफी हिचक होती। रिश्तेदारी और ननिहाल जाने में भी उसे बड़ा संकोच होता। उसने पढ़ाई में ध्यान लगाया और अन्य गम्भीर बातों के बारे में भी वह सोचने लगा। खेल-कूद, फुटबाल, हॉकी और बालीवाल भी कम हो गया। नम्रता भी उससे दूर होती गई। वह भी बड़ी हो रही थी। कभी-कभी वह उसके घर जरूर आती। वह सबको धड़-धड़ नमस्ते करती और छोटे-से-छोटा भी काम करने को तैयार हो जाती। जब वह आती तो नीलेश यहाँ से चला जाता। या दूसरी ओर मुँह कर लेता। उसे स्वयं अपनी आवाज भद्दी लगती और नम्रता की बातें भी बड़ी बनावटी। नम्रता अपने बड़े होने की अप्रत्याशित, अस्वाभाविक लगनेवाली स्थिति के प्रति सजग और सचेत थी, इसलिए वह अपनी आवाज खींच खींचकर अस्वाभाविक ढंग से ही बोल पाती थी। नीलेश इस आवाज से चिढ़ जाता। वह उसे हर दृष्टि से रूप, चाल, ढाल, आवाज की दृष्टि से बड़ी मामूली और तुच्छ लगती। वह तो उसकी ओर देखता भी नहीं था। बचपन की खेल-कूद आदि सभी बातें एक अजीब शर्म, गम्भीरता, आदर्शवाद, श्रेष्ठता और बड़प्पन के नीचे दबकर अतत परतों में अस्तित्वहीन-चेतनाशून्य होकर निश्चेष्ट पड़ी रहीं।

और आज वे बातें सजीव होकर उसे बेहद व्याकुल करने लगीं। उसके अन्दर एक हुड़क-सी उठी, नम्रता के बारे में सोचकर, जैसी कभी-कभी अपने गाँव के बारे में सोचकर उसकी हालत होती थी-वहाँ गुजरे समय के बारे में। वहाँ की घास और दूब, ताजी हवा, मीठे बीजू आम और सोंधे खजूर, कड़ाह से निकालकर लाया गया गन्ने का गर्म-गर्म गाढ़ा रस-महिया तथा जी की रोटी, कदम्ब में सींक-सी पतली लकड़ी गाड़कर बनाया और नचाया गया लट्टू, प्राथमिक पाठशाला के मरकहे और बातूनी मौलवी

साहब, सफेद बालों और अनगिनत बारीक झुर्रियों वाली प्यारी-सी बड़ी बूढ़ी दादी...। नम्रता अब उसे अपने गाँव-सी अपनी और प्रिय लगी, उसके अन्दर सदा के लिए रची-बसी, जिसे वह कभी भी अपने से अलग नहीं कर सकेगा, जिसकी स्मृति को वह काटकर कभी भी फेंक नहीं सकता।

एक दिन उसे भाई-बहनों की याद आने लगी। गंगा की लहरों पर उनके हँसते हुए चेहरे तैरते हुए नजर आए। शैलजा उससे करीब चार वर्ष बड़ी है। ज्येष्ठ लडकी तथा पहली सन्तान होने की वजह से और सबकी शिकायत करके वह माँ-बाप की बेहद प्रिय बनी हुई थी। दूसरे भाई तो छोटे

थे, लेकिन उसको जब चाहे वह तड़ी जमा देती। तब उसने चिढ़कर उसका नामकरण कर दिया था-मन्थरा। पूरा नाम-उच्चारण की जरूरत भी नहीं थी, बस सिर्फ 'मन्थ' कहता और शैलजा बेहद बिढ़ जाती, जिससे खुश होकर वह 'मन्थ, मन्ध' कहकर वहाँ से भाग चलता। अन्त में, इस पराजय को टालने के लिए शैलजा ने भी जवाबी नामकरण के शस्त्र का इस्तेमाल करते हुए उसको सम्बोधित करना शुरू कर दिया 'डुकी।' क्या सोचकर शैलजा ने उसका यह नाम रखा था, यह शायद यह भी नहीं जानती थी। स्वयं वह तथा घर का अन्य कोई भी व्यक्ति 'डुकी' का अर्थ नहीं जानता था, परन्तु वह नाम नीलेश पर खूब चस्पा हुआ, जिसे सुनते ही वह काफी चिढ़ जाता। फिर दोनों और ते देर तक 'मन्थ-मन्ध' और 'डुकी-डुकी' होने लगता, जिसका अन्त होता शैलजा द्वारा 'शिकायत' बह्मास्त्र के प्रयोग और नीलेश की डॉट-फटकार और पिटाई में।

वीरेश सीधा और चुप्पा था, इसके अलावा वह सिनेमा-इश्तेहार लूटते समय इक्के-पहिए के नीचे टबने तथा भूचाल के समय गिरती दीवार में दबकर गम्भीर रूप से घायल होने के बाद जीवित और स्वस्थ होने की ख्याति अर्जित कर चुका था, इसलिए वह सबसे अधिक ख्याल-तवज्जोह तथा प्यार पाने का अधिकारी समझा जाता था। लेकिन उसकी कुछ खास बातों से चिढ़कर नीलेश ने उसका नाम 'भोंभा' (भोंपा) रख दिया था।

उसकी एक अजीब आदत थी यानी उसके मन का अच्छा-से-अच्छा खाना जब भी उसके सामने लाया जाता, उसका मुँह सिकुड़ जाता, आँखें निकल आतीं और नाक फूल जाती। वह कोई भी मीन-मेख निकालकर झनकती हुई आवाज में कहता था, "ए राम, कैसा बनाया है, जाओ, ले जाओ...।" माँ या दादी उसे मनाने लगती, हर व्यंजन का जिक्र करके उसकी तारीफ के पुल बाँध देती, लेकिन वह न मानता बल्कि अन्त में लेटकर भों-भों रोने लगता। तब माँ गुस्से में यह कहकर वहाँ से चली जाती, "जाओ, मत खाओ, मैं जाती हूँ...।" जब वह देखता कि आस-पास कोई नहीं है और न निकट भविष्य में आनेवाला है तो चुपके से उठता और सर झुकाकर चुपचाप भोजन चुगने लगता।

उसकी आवाज मोटी थी और नाक कुछ फूली और पसरी हुई। वह पढ़ने में तेज था और सबसे अधिक समझदार भी। किसी से लड़ता-झगड़ता भी नहीं था। लेकिन कई अनोखी आदतें थीं उसकी । उसे कोई भी गीली चीज पसन्द नहीं थी, सिवाय पनिऔआ अधपकी, अरहर की दाल, बहुत कम मात्रा में फटे हुए विरल दानों के साथ। अपने इस खाने को वह जूस-भात कहता। खाते समय वह अधिक भात और बहुत कम दाल लेकर कौर सानता बेहद सूखा-साखा, जिसे वह बहुत पसन्द से खाता। कोई औरत कभी उसे आश्चर्य से देखकर कहती, "क्या स्वाद आता है, ए पूता, इस तरह खाने से ?" जिसके उत्तर में उसके मुँह पर एक मौन मुस्कुराहट उभर आती। यदि उसकी थाली में भूल से गली हुई दाल या शोरवादार सब्जी परोस दी जाती तो भों-भों की आवाज शुरू। इसी तरह उसे सूखी चीजें बेहद पसन्द आतीं। रसगुल्ला, जलेबी, इमरती तथा अन्य गीली-गीली मिठाइयों से उसे चिढ़ थी, लेकिन मगद का लड्डू, ढूँढा, ढूँढी, तीसी का लड्डू, तीखुर का लड्डू, सूखी पापड़ी, मेथी का लड्डू, भूजा, मकई का परमल आदि दुनिया की जितनी भी सूखी खाद्य पदार्थ वस्तुएँ थीं, उसे बेहद प्रिय थीं। जितने शौक से वह रूखा-सूखा ठेकुआ खाता, उतनी ही चिढ़ होती उसे मालपूआ से। सत्तू वह गीला करके नहीं खा सकता था, लेकिन वही जब थोड़ा घी और चीनी मिलाकर पेश किया जाता तो उसका मुखड़ा खिल उठता। सेवड़ा (नमकपारे), सूखा सेव बेसन का और सादी, सूखी मूंगदाल मोंठ भी उसकी प्रिय खुराक थी।

उसकी इन आदतों से काफी चिढ़कर कभी नीलेश उसकी नाक जोर से मल देता 'भोंभा कहीं का।' इसी तरह अपने से छोटे भाई सुरेश का नामकरण उसने 'चिरई' किया था, इसलिए कि वह बहुत वाचाल और शरारती था और उसकी नाक चोंच की तरह नुकीली थी। नाक मलने की वजह से छोटे भाई कभी-कभी, गुस्से में चीखते थे, 'ए अम्मा देख, 'डुकिया' मार रहा है।'

दशहरे की छुटिटयों बीत जाने पर संगीत के प्रति उसकी दिलचस्पी एक विचित्र परिस्थिति में शुरू हुई। उसके चाचा के एक परिचित सुजानदास, जो उसके गाँव के निकट एक कोस की दूरी पर स्थित ताडी बडागाँव के निवासी थे. अचानक नामालूम कहाँ से आकर वहीं रहने लगे। उसके चाचा को वह 'भैया-भैया' कहते थे, परन्तु उनको इससे पहले उसने कभी देखा नहीं था। वह बेहद दबले-पतले थे और उनका शरीर आगे की तरफ काँवर की तरह झुका हुआ था। हडडीदार चेहरा, काफी बडा मुँह का चीरा और खूब पतली, नकीली नाक। यह सदा गैरुप रंग की लंगी और कर्ता या कमीज पहनते थे और उलटे झाडे गए. पीछे लटकते बालों और संगीतकार होने की वजह से ऐसे कलाकार की छवि प्रस्तुत करते. जिसने संगीत कला साधना के लिए सांसारिक जीवन का त्याग कर दिया हो।

सुजानदास अंग्रेजी स्कूल में कक्षा आठ या नौ तक ही पढ़ सके थे। स्कूल में और बलिया जैमे उस छोटे-से शहर में संगीत शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी और अन्य विषयों की पढ़ाई में उनकी तबीयत लगी नहीं. परिणामस्वरूप छात्र-लंठई में यह प्रवीण होते गए, जिसके दौरान दो बार उन्हें मारकर फेंक भी दिया गया था। वह जीवित बच तो गए, लेकिन अन्त में उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया, जिसके पश्चात संगीत सीखने के लिए वह घर से भाग गए।

निश्चित ही उनका कंठ मीठा और कुछ मोटा था। यह कई गुरुओं के पास गए, पर कहीं जम नहीं पाए। पहले गुरु उनसे कंठ साधना के लिए कहते, "हाँ, शास्त्रीय संगीत के लिए जरूरी है यह साधना। सतही, बनावटी

प्रयास से उत्पन्न सतही और सिनेमाई कोमलता और मिठास से संगीत की गहराई में नहीं उतरा जा सकता। इसके लिए निरन्तर अभ्यास की जरूरत है। स्वर को कंठ की गहराइयों से निकालिए उसकी हर स्वाभाविक स्थिति में, बिना किसी संकोच एवं अस्वाभाविकता के जिससे उसमें दाने पड़ सकते हैं और बहुविधि, चहुँदिशि नियन्त्रण, अभ्यास एवं विशेषज्ञता प्राप्त की जा सकती है। रियाज के अलावा बड़े गुलाम अली, ओंकारनाथ ठाकुर, फैयाज खाँ आदि के संगीत रेकॉर्ड बजाकर सुनिए और विभिन्न संगीत सभाओं में जाकर संगीत का आनन्द लेना न भूलिए...।"

परन्तु बचपन में पड़ी चंचल आदतों और झगड़ालूपन के कारण वह कोई काम जमकर नहीं कर सकते थे। परिश्रम का कोई काम उनसे होता नहीं था और अधूरेपन की स्थिति में वह गुरु से कोई बहस या झगड़ा करके वहाँ से चल देते। अन्ततः नतीजा यह हुआ कि शास्त्रीय संगीत के पाले में बैठकर वह सुगम सिनेमाई संगीत की पतंग उड़ाने लगे। उखड़ी-उखड़ी कंठ साधना करते-करते वह सिनेमा के परदों में से आनेवाले सहगल, के.सी.डे., अशोक कुमार, पंकज मलिक आदि के मोटे-मोटे मीठे स्वरों का अनुकरण करने लगे। वह कंठ साधना के शास्त्रीय अनुशासन की अवेहलना करके आगे छाती पर ठुड्डी गाड़कर मोटी-से-मोटी कृत्रिम आवाज निकालते। लेकिन इससे भी उनको सन्तोष नहीं होता, तब वह किसी चीज का भोंपू बनाकर उसे मुँह में लगाकर गाने लगते, जैसे सिनेमा के परदे पर सहगल ही गा रहे हों। ज

नीलेश ने पहली बार जब उनका गाना सुना तो मुग्ध भाव से उनकी ओर देखता ही रह गया था। उन्होंने कमरे में पड़े हिन्दी के दैनिक पत्र 'आज' की एक प्रति उठाकर उसका भोंपू बनाया और उसके पतले सिरे को मुँह से लगाकर गाना शुरू किया, "मेरा बंगला बना न्यारा...।" कमरे की धरन ऊँची थी इसलिए उनकी मोटी अद्भुत आवाज गूंजने लगी। सहगल के अनुकरण में दूसरा गाना गाया गया 'झुलना झुलाओ'। कभी-कभी ऐसा लगा कि सहगल से भी अच्छी आवाज है उनकी।

छा "वाह सुजान चाचा, आप तो बहुत अच्छा गाते हैं..." नीलेश ने उनसे कहा। "अगर मैं यहाँ रह गया तो तुम्हें भी सिखा दूँगा। लेकिन इसमें

रियाज के लिए काफी समय देने की जरूरत है...।"

लेकिन यह स्थिर होकर नहीं बैठ सकते थे। शायद यही कारण था कि इतना अच्छा गला और शास्त्रीय संगीत प्रेमी होने के बावजूद वह कुछ विशेष नहीं कर सके। यदि वह सुगम संगीत के क्षेत्र में ही डटे रहते तो भी यथेष्ट प्रगति हो सकती थी। लेकिन पहले के कुछ सिनेमा गानों और सुरदास के 'भजनों' के अलावा कुछ नया जोड़ सके हों. ऐसा नहीं लगता था। वादा करने के बावजूद नीलेश को कुछ भी सिखाने के लिए उनके पास कोई समय नहीं था। एक-दो साधारण विद्यालयों में संगीत शिक्षा का भी उन्हें कार्य मिला पर वहाँ भी जम नहीं सके। पता नहीं कब उठकर वह चल देंगे. इसका कोई ठिकाना नहीं था। संगीत के प्रति इतना उत्साह रखनेवाले तथा ऊँची सम्भावनाओं वाले व्यक्ति की उपलब्धियाँ इतनी कम होंगी, यह ऐसा विरोधाभास था, जिस पर विश्वास नहीं होता था। सिद्धान्त की उन्हें काफी जानकारी थी, दूसरों पर बातों का अद्भुत प्रभाव छोड़ते थे वह लेकिन गला अच्छा होने पर भी उनका व्यावहारिक शास्त्रीय गायन पक्ष बहुत कच्चा और शुरुआती किस्म का ही था।

लेकिन नीलेश के लिए यही बहुत था। सुजानदास के पास समय नहीं था तो उसे कहाँ छुट्टी थी ? फिर भी अवकाश के समय मिले उनके साथ-संग ने शास्त्रीय संगीत के प्रति उसकी दिलचस्पी काफी बढ़ा दी। यह किसी संगीत सम्मेलन और सभा को छोड़ते नहीं थें। कई बार जब नीलेश को फुरसत होती, उसे भी वह अपने साथ ले जाते। ध्रुपद, धम्मार संगीत प्रतियोगिता सभाओं में यह उनके साथ गया जिनमें लड़के और लड़कियाँ भाग लेते थे। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का सरोद वादन वह उन्हीं की वजह से सुन सका। खाँ साहब स्वयं जैसे सहज थे, उनके वादन में भी वैसी ही सहजता थी-कला निपुणता के प्रदर्शन का कोई अतिरिक्त प्रयास या दुराग्रह नहीं। और अन्त में तो उन्होंने उन नौजवानों का मन रखने के लिए सरोद पर ही दो-तीन सिनेमा के गीत बजाए जैसे 'वन की चिड़िया बन के वन-वन डोलूँ रे' या 'दुनिया रंग-रँगीली बाबा।' इन अवसरों पर देर तक ताली बजती रही।

ओंकारनाथ ठाकुर तथा फैयाज खाँ का संगीत सुनने वह उन्हीं के साथ इलाहाबाद गया। निश्चय ही ये दोनों ही हिन्दुस्तानी संगीत के अप्रतिम कलाकार एवं विद्वान थे, फिर भी उनमें शायद वह सहजता नहीं थी जो उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की कला में थी। वे गायन में अपने पांडित्य का भी खूब प्रदर्शन करते थे जो कुछ लोगों के लिए रुचिकर नहीं भी होता था। ओंकारनाथ की प्रसिद्धि अन्य कारणों से भी थी। वह कई बार कांग्रेस अधिवेशनों में राष्ट्रीय गान प्रस्तुत कर चुके थे और शान्ति आन्दोलनों से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण कलाकार थे। आगरा घराने के विख्यात संगीत कलाकार फैयाज खाँ की विद्वता, अनुशासन, नियन्त्रण, मन की अतल गहराइयों को छूता ख्याल... बहुआयामी आलाप सभी कुछ अकल्पनीय था। और ठुमरी गायन में तो उनकी मौलिकता ऐसी अनूठी थी जिसका अनुकरण नहीं किया जा सकता।

लेकिन परेशान हो गया वह यह सोचकर कि उनके गायन के बोल (पद या पंक्तियाँ) क्यों नहीं समझ में आते जो गायन में ही घुल-मिलकर बहने लगते थे। क्या स्वर, आलाप आदि ही महत्त्वपूर्ण हैं और बोल नहीं हैं? यह अन्त तक उनके जै-जैवन्ती गायन के बोल नहीं समझ पाया और बाद पूछने पर सुजानदास उसकी उम्र के कारण बहुत संकोच से बता सके 'पैयाँ पहूँगी पलगा न चढ़ूँगी।' विडम्बना यह है कि दूसरा भी अर्थ वह नहीं समझ सका। उस समय बाद में जब उसे मालूम हुआ उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और कुछ कोफ्त भी। इतने सुन्दर कलात्मक गायन के बोल और रुचिकर में तो एवं कलात्मक नहीं हो सकते थे ?

निश्चय ही उसमें इस समय व्याप्त बालिका विवाह की एक मजबूर सामाजिक स्थिति का ही चित्रण है। लेकिन उद्देश्य, सम्पन्न पुरुष रसिक मंडली दरबार को प्रसन्न करना ही है। संगीत पदों में सहज भावनाएँ हों, शुष्कता न हो, यह जरूरी है। श्रृंगार तो उसका मुख्य भाव है और कई अवसरों पर जैसे होली या बसन्त पर, कुछ ढिलाई भी बरती जाती है, फिर भी गायन के लिए बेहतर और

सहज श्रृंगारिक बोल घने जाने चाहिए। खैर इसमें कोई फॉर्मला क्या बनेगा. इनको बनाने में सहर सामाजिक जीवन एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति की आकांक्षा होती है। बाद में बनारस में ही उमरे जै-जैवन्ती में ही सुना था 'इनमें कौन राधिका रानी, इनमें कौन राधिका रानी...' गोपियाँ आई है. रुक्मिणी पूछ रही हैं। ये पंक्तियाँ क्यों इतनी अच्छी लगी थीं उसे कि वह हफ्तों उन्हें गुनगुनाता रहा था। एकान्त में यह गुनगुनाहट उसकी आँखों को अव-यूँदों में इवा देती. जिनके बीच राधा के आगमन की तरह उदास, मुस्कुराती नम्रता की काँपती छवि झिलमिल करने लगती।

अचानक एक दिन जब सुजानदास अपना बोरिया-बिस्तर लेकर वहाँ से चले गए तो उसके संगीत प्रेम को भी भारी झटका लगा। इस बीच देश में तेजी से घटनाएँ घटी थीं। राजनैतिक माहौल गरमा रहा था। सुभाषचन्द्र बोस और आजाद हिन्द फौज की गतिविधियाँ तेज हो गई थीं। अंग्रेजों की लगातार हार हो रही थी. जिनसे हिन्दुस्तान की स्वातन्त्र्य प्रेमी जनता की आशाएँ पेंग बढ़ा रही थीं। महात्मा गांधी लगातार 'हरिजन' में लिखकर आजादी की माँग कर रहे थे। उसी बीच हारती ब्रिटिश हुकूमत के विशेष प्रतिनिधि सर स्टैफोर्ड क्रिप्स आए। कुछ लोगों की उम्मीदें बढ़ीं, नरम दलीय नेता सक्रिय हुए, मुस्लिम लीग नेताओं ने पाकिस्तान की अपनी माँग पर बल दिया और हिन्दू महासमा तथा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अखंड हिन्दुस्तान पर।

पाकिस्तान की समस्या पर भी कांग्रेस जैसे सशक्त आन्दोलन में कई आवाजें उठने लगीं। मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना मदनी, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, शेख अब्दुल्ला, रफी अहमद किदवई आदि अनेक मुस्लिम नेता पाकिस्तान के विरोधी थे, वहीं राजगोपालाचारी, कम्युनिस्ट आदि आत्मनिर्णय के अधिकार के नाम पर पाकिस्तान का समर्थन कर रहे थे। इसी वजह से अखित्त भारतीय कांग्रेस समिति के इलाहाबाद अधिवेशन के अवसर पर जब राजगोपालाचारी आए तो स्टेशन पर हिन्दू महासभा के सदस्यों ने काले झंडों के साथ उनके विरुद्ध प्रदर्शन किया और पंडित नेहरू ने गुस्से में आकर एक-दो झंडे छीनकर फेंक दिए और उन पर दो-चार हाथ भी चलाए।

उन्हीं दिनों उसे समाजवादी नेता अशोक मेहता की अंग्रेजी पुस्तक 'कम्युनल ट्रायंगिल आव इंडिया' (हिन्दुस्तान का साम्प्रदायिक त्रिकोण) पढ़ने को मिली। इस रचना में एक त्रिकोण के जरिए देश की साम्प्रदायिक स्थिति का विश्लेषण किया गया था। उनका कहना था कि एक त्रिकोण की आधार भुजा की वजह से ही शेष दोनों भुजाएँ अलग-अलग हो जाती हैं, यह आधार भुजा हटा दी जाए तो त्रिकोण का अस्तित्व स्वतः ही खत्म हो जाएगा और दोनों भुजाएँ एक-दूसरे से मिल जाएँगी। इस देश में ब्रिटिश हुकूमत आधार भुजा के समान है और उसके टूटते और आजादी मिलते ही यहाँ का साम्प्रदायिक त्रिकोण समाप्त हो जाएगा और परिणामस्वरूप हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदाय रूपी दोनों भुजाओं के पृथक वजूद भी।

महात्मा गांधी भी यही कहते थे कि 'ब्रिटिश हुकूमत यहाँ से चली जाए और हमको अपने हात पर छोड़ दे। हम अपने मतभेदों का समाधान स्वयं कर लेंगे। ब्रिटिश हुकूमत तो हिन्दुस्तान के कन्धों पर एक लाश के समान है, जिसे उसे लगातार ढोना पड़ रहा है। जब वह लाश हटेगी, तभी यहाँ के लोग स्वाधीन होकर चैतन्य, स्फूर्तिवान और शक्तिशाली होंगे।' परन्तु स्टैफोर्ड क्रिप्स के प्रस्ताव में अनेक पेंच और चालाकियाँ थीं और समस्या को टालने की मंशा। ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानी जनता के आपसी मतभेदों की अनदेखी नहीं कर सकती क्योंकि अल्पसंख्यक समुदायों तथा देशी रियासतों के हितों के प्रति भी उसका कोई कत्त्तव्य है! इस समय युद्ध-प्रयत्नों में मदद देने के लिए सभी एक कामचलाऊ राष्ट्रीय सरकार में शामिल हों और युद्ध समाप्ति के बाद हिन्दुस्तानी स्वतन्त्रता के सभी पहलुओं पर समुचित विचार करते हुए इस दिशा में निश्चित कदम उठाए जाएँगे !

गांधी-क्रिप्स वार्ता टूट गई थी और ब्रिटिश प्रस्ताव को ठुकराकर गांधीजी बाहर निकल आए। फिर तो आजादी की अन्तिम लडाई के लिए गांधीजी की 'करो या मरो' की आवाज देश के कोने-कोने

में गूंज उठी।

वह उत्साह में उड़ने लगा। देश की आजादी के लिए स्वयं कुछ करने के लिए व्याकुल हो उठा। अनेक कांग्रेसी और समाजवादी नेताओं से वह मिलता रहा था। सुरंजन शास्त्री भी अक्सर बनारस आते और उससे भी मिलते। उन्होंने ही उसे आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द, दामोदर स्वरूप सेठ, अलगू राय शास्त्री, विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, मोहन लाल गौतम, चन्द्रशेखर अस्थाना आदि से मिलाया था। एक बार सम्पूर्णानन्द ने गम्भीर स्वर में उनसे कहा था :

"आप लोग तैयार रहिए हर कुर्बानी के लिए। यह आजादी की आखिरी लड़ाई है। हर स्तर पर ब्रिटिश सरकार से असहयोग करना होगा। अहिंसात्मक तरीकों से ऐसा आन्दोलन करना होगा, जो ब्रिटिश हुकूमत के तन्त्र को एकदम नाकाम कर दे। रेल, परिवहन एवं संचार सम्बन्ध पूरी तरह भंग और निरर्थक हो जाएँ, थाने, कचहरी, कार्यालय और स्कूल सब निष्क्रिय हो जाएँ। हाँ, इस विदेशी तन्त्र को नष्ट करके उसकी जगह पर पूर्ण आजाद पंचायती प्रजातन्त्र की स्थापना करनी होगी। इस समय यदि हम चूके तो सदा के लिए चूक जाएँगे...।"

मार्च के अन्त में जब उसकी वार्षिक परीक्षा खत्म होने को हुई, उसे वीरेश की एक लम्बी चिट्ठी मिली जिसमें अइगा पांडे प्रकरण का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया था। वीरेश ने अन्त में लिखा था, "बलिया की जनता के लिए क्या यह खुशी की बात नहीं है, भैया, कि वहीं के एक महान व्यक्ति सदाशयव्रतजी ने नारी के अपमान का बदला लेकर अइगा पांडे को नम्रता दीदी के आदरणीय पिताजी से क्षमा माँगने के लिए बाध्य कर दिया? उसके बाद तो शहर में अइगा पांडे की काफी छीछालेदर हो गई है। एक दिन तो गजब हो गया। दयाशंकर भैया बहुत दिनों के बाद अपने ननिहाल से शहर आए थे, जब उन्होंने यह सब सुना तो काफी गुस्सा गए और उन्होंने एक शाम को अँधेरे में अइगा पांडे पर, जब वह ताड़ीखाने की एक दुकान पर बैठकर ताड़ी पी रहा था, एक बम फेंक दिया। यह बम नारियल के खोल में दयाशंकर भैया ने स्वयं बनाया था। उसमें बारूद, लोहे की काटियाँ, और नुकीले टुकड़े तथा छोटे-छोटे शीशे भरे हुए थे।

गनीमत यही हुई कि बम में विस्फोट नहीं हुआ और जोड़े गए खोल के दोनों टुकड़े अलग होकर और उसके अन्दर रखे घातक सामान बिखर गए। अइगा पांडे को मामूली चोटें आईं जरूर, लेकिन उसके बाद वह आज तक शहर में दिखाई नहीं दिया। बलिया के नौजवान देश और नारी का अपमान तथा अंग्रेज हुकूमत का कोई भी जुल्म अब एक क्षण के लिए भी बरदाश्त नहीं करेंगे भैया !"

नीलेश बेहद परेशान हो गया। तब उसे लगा कि नम्रता को पीड़ित करने के लिए ही वह छुट्टियों में जानबूझकर बलिया नहीं गया था। कितना भारी अन्याय किया था उसने नम्रता पर? और उसी बीच वह दूसरों का भी अन्याय सहती रही। यह कैसी विडम्बना है।চর ঢিঢ়ু ক্ষত হয়

चार के लिए imove stils देखने के लिए या आप एक flexy Ange

- अप्रैल मास में परीक्षा परिणाम निकलने के बाद नीलेश ट्रेन से उतरकर जब घर पहुँचा तो नम्रता संयोगवश अपने बरामदे में ही खड़ी थी। नीलेश सिर घुमाकर एक क्षण उसकी ओर देखकर घर के अन्दर घुस गया। नम्रता को तो मूर्छा-सी आ गई। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और सिर चकराने लगा। उसने दीवार पकड़कर अपने को किसी तरह सँभाला, फिर डगमग चाल से घर के अन्दर उस छोटी-सी कोठरी में जाकर चुपचाप बैठ गई, जो सदा उसकी पीड़ा-भरी भावनाओं की गवाह

बाहर तेज धूप निकली थी। गर्मी धीरे-धीरे बढ़ गई थी, नम्रता चरखे पर स्वयं काते हुए सूत से खरीदी गई साड़ियों में से एक साड़ी और ब्लाउज पहने हुए थी। गर्मी से परेशान होकर वह बरामदे में हवा के लिए गई थी। कोठरी में बैठते ही उसकी आँखों से विपरीत कोशिशों के बावजूद टप-टप

आँसू गिरने लगे।

अनेक बातें उसके दिल को हौड़ने लगीं। यह कई बार अपने को धिक्कार चुकी है कि जय नीलेश बनारस जा रहा था, वह उससे मिलने, उसे विदा

नमस्कार करने क्यों नहीं गई? उसकी पुस्तकें क्यों लौटा दीं ? ऐसी मक्कारी तो उसमें कभी नहीं थी। और जब वह चला गया तो पश्चाताप-भरे दुःख से उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। फिक्र की कालिमा उसके चेहरे पर पुत गई। घर हो या स्कूल, यह सदा उसके ख्यालों की पीड़ा में खोई रहती।

एक दिन दुलारी गुरुजी ने उसे अध्यापिका कक्ष में उस समय बुलाया, जब यहाँ कोई टीचर

नहीं थी।

"क्या बात है, नम्रता, आजकल गुमसुम क्यों रहती हो ?" दुलारी गुरुजी ने पूछा।

"कोई खास बात नहीं है, गुरुजी।" नम्रता ने सिर झुकाए हुए कहा।

"कोई बात तो जरूर होगी।"

"नहीं गुरुजी।"

"फिर क्या बात है? घर में किसी ने कुछ कहा है?"

"नहीं।"

"हो सकता है, मुहल्ले में किसी ने कुछ कह दिया हो ?"

"किसी ने कुछ नहीं कहा।"

"फिर स्कूल में किसी ने दुर्व्यवहार कया हो ?"

नाद "नहीं तो...."

"अरे ! फिर तुम्हें कोई शारीरिक कष्ट होगा। लड़कियाँ शर्म-संकोच में अपनी माँ को भी अपना कष्ट नहीं बतातीं। यह गलत दृष्टिकोण है। यह विज्ञान का जमाना है। पहले का समय दूसरा था। अशिक्षा थी, अन्धविश्वास था, खास तरह से झाड़-फूंक पर अधिक। तुम तो पढ़ी-लिखी लड़की हो। यह जान लो कि रोग को कभी नहीं छिपाना चाहिए। अच्छे-अच्छे डॉक्टर हैं, हर रोग का निदान है। चिकित्सा है। मैं तुम्हारी टीचर हूँ, तुम्हारी सहेली भी हूँ, मुझसे तुम्हें कुछ नहीं छिपाना चाहिए। मैं तुम्हारी मदद करूँगी।"

निकली : इतना लम्बा उपदेश सुनकर नम्रता रुआँसी-सी हो गई। मुश्किल से उसके मुँह से आवाज

"नहीं गुरुजी, मुझे कोई रोग नहीं है।"

तव क्या बात है भाई? जब कुछ भी नहीं है तो तुम्हारी जैसी तेज और खुशदिल लड़की हर वक्त दुःखी क्यों रहे ? अब तो यही कारण बच रहता है कि तुम अपना दिल किसी को दे बैठी हो...!"

दुलारी गुरुजी ने यह बात धीमे स्वर में किंचित रूखाई से कही थी और उनके मुख पर शर्म की एक टेढ़ी व्यर्थ मुस्कुराहट फूट पड़ी थी। बात तो सच थी, परन्तु नम्रता को अपनी आदरणीय गुरुजी से ऐसे व्यवहार की उम्मीद नहीं थी। परिणामस्वरूप उसके चेहरे की कालिमा और भी गाढ़ी हो गई और कुछ ही क्षणों बाद शर्म, अपमान तथा दुःख से अवश होकर वह हथेलियों में अपना मुँह छिपाकर सुबकने लगी।

"अरे, अरे," दुलारी ने धीमे स्वर में कहा, "रो क्यों रही हो? मैंने तो यूँ ही पूछ लिया है, पर जवान लड़की का जीवन काँटों से भरा होता है। इस उम्र में प्रत्येक युवती किसी पुरुष के प्रति आकर्षण का अनुभव कर सकती है। उसके जाल में फंस सकती है। यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। नासमझी व अनुभवहीनता की उम्र है यह लेकिन ऐसी स्थिति में अपने को अपराधी न मानकर इस समस्या के प्रति बहुत ही सोच-समझकर एक सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। सच

बताओ. वह चाहे कोई भी हो. वह कोई युढ़ा-याढ़ा या विवाहित तो नहीं है और उससे सम्बन्ध सीमोल्लंघन की स्थिति में तो नहीं है।"

नम्रता ने तेजी से अपने मुँह पर से हाथ हटाकर आँसू-भरी अपनी गुस्साई आँखों से दुलारी गुरुजी को देखा, फिर झनझनाती-सी आवाज में तेज स्वर में बोली, "झूठ है यह सव।"

दुलारी गुरुजी ने अवाक होकर कुछ देर उसे देखकर प्यार से कहा, "देखो नम्रता, तुम मेरे स्कूल की एक तेज छात्रा हो, मैं नहीं चाहती कि तुम किसी ऐसे बवाल में फँसो कि तुम्हारी पढ़ाई छूट जाए या चौपट हो जाए। जमाना बहुत खराब है और हम एक पिछड़े समय में रह रहे हैं। यह शहर तो और भी पिछड़ा है। पुरुष तो बच निकलता है, पर स्त्री पर सारा कलंक आ जाता है। बुजुर्ग कह गए हैं कि पुरुष और स्त्री खर और आग की तरह हैं, दोनों को शादी के पहले एक-दूसरे से दूर रहना चाहिए अन्यथा पास आने से ज्वाला निश्चय ही पैदा होगी। लपटें जरूर उठेंगी। यह प्रकृति का नियम है। इसीलिए समाज में शादी की व्यवस्था है, माँ-बाप भी देखभालकर अपने बच्चों की शादी अपनी जाति में करते हैं। माँ-बाप की सलाह के बिना इस दिशा में कोई कदम उठाना उचित नहीं है, जो स्त्री के लिए इसलिए खतरनाक है कि मिलन ज्वाला में पुरुष तो सिर्फ जलता है पर स्त्री को मिलता है मातृत्व। इस समस्या से हर कुँवारी लड़की को सचेत रहना चाहिए। अनजान लड़कियाँ नहीं जानतीं, कोई बताता भी नहीं। इसमें किसका दोष है, यह तो नहीं कहा जा सकता, यह प्राकृतिक है, फिर भी पुरुष सबूत और जिम्मेदारियों से बच सकता है और अक्सर बच निकलता

है। इसीलिए वह अधिक निर्मम, चालाक और कुटिल हो सकता है और हो भी जाता है...।" नम्रता ने अपना झुका हुआ सिर उठाया और नाराजी से अपनी बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर बोली, "गुरुजी मैं जा रही हूँ...।"

इतना कहकर वह घूमकर बेहद नाराज होकर कक्षा की ओर चल पड़ी।

दुलारी गुरुजी ने हतप्रभहोकर कहा, "मैंने जो कहा, उस पर गौर करना...।"

नम्रता अब तक उनकी बातें सुनती रही थी, उस व्यक्ति की तरह, जिसकी किसी भरी महफिल में निन्दा की जा रही हो। लेकिन अब उसके क्रोध का अन्त नहीं था, जिसने उसकी निष्क्रिय पीड़ा-भरी चिन्ताओं को विस्थापित कर सकारात्मक स्वरूप प्रदान कर दिया। घर पहुँचने पर भी उसका क्रोध कम नहीं हुआ, बल्कि और भी बढ़ गया और वह सारी शक्ति से दुलारी गुरुजी की कुदृष्टि एवं लांछन-भरे विचार से नीलेश और उसके प्रति अपने प्यार की रक्षा करने को व्याकुल हो उठी। उसे याद आई उस दिन की, जब वह बड़ी होने की प्रक्रिया के दौरान प्रथम बार नीलेश की आगे निकली चौड़ी छाती, नीचे झूलती लम्बी बाँहों और भीगती मसों वाले मुख की गम्भीर रूखी आभा को मुग्ध औत्सुक्य से देखती रह गई थी।

लेकिन यही सबकुछ नहीं था। वह खिंचती गई विशेष रूप से उसके विचारों की वजह से, जो देशभक्ति और प्रगतिशील, सामाजिक नव-निर्माण के अभिप्रायों से ओत-प्रोत थे। जो बचपन में बेहद नटखट, खिलाड़ी और शरारती था, वह बड़ा होकर कितना सद्व्यवहारी, गम्भीर, शालीन, और विचारशील हो गया था, यह देख-सुनकर वह ठगी-सी रह गई। बचपन में सभी शैतान होते हैं, वह भी थी, लेकिन बड़ी होकर वह स्वयं बेहद कोमल हो गई थी। उसके दिल में सदा सबके प्रति लगाव, आत्मीयता और प्यार के जज्चे मचलते रहते थे। उम्र के इस नए दौर में नीलेश के विचारों ने तो उसे एकदम बदल ही दिया और उसने स्वयं उन्हीं विचारों में अपने को ढालने का निश्चय कर लिया।

नीलेश पर उसे अगाध विश्वास था। पुरुष होने के नाते वह निर्मम, चालाक और कुटिल होगा, यह तो सोच भी नहीं सकती और उसके प्रति ऐसा विचार प्रकट करने के लिए वह दुलारी गुरुजी को भी कभी नहीं क्षमा करेगी। नीलेश उसके लिए भावना, स्वप्न, आदर्श, उच्च विचार और पृथ्वी को ऊँचाई देनेवाला निस्सीम आकाश है। त्याग और कुर्बानी के लिए निरन्तर प्रेरित करनेवाला साथी,

सहचर । जसको नीलेश का शरीर प्यारा है. उसका मन प्यारा है. उसकी छवि प्यारी है. उसका नाम और काम प्यारा है. उसका जीवन उसकी हँसी-खशी. खिसियाहट बोली. चाल-ढाल-उसका सबकु प्यारा है उसे. परन्तु उसके साथ अपने को सिर्फ उस क्षणिक तात्कालिक गँवारू मुहावरे के रूप में प्रतिफलित होने की कल्पना कभी नहीं की उसने। नीलेश के लिए उसका प्यार देश और समाज के लिए प्रतिबद्ध जीवन-मरण के साथ-संग की आकांक्षा का परिचायक है। उसको प्यार करने की अधिकारिणी सिर्फ वही है। उस पर क्रोध वही कर सकती है. उसे प्रताड़ना यही दे सकती है, उसका अपमान सिर्फ वही कर सकती है. यह सब कोई अन्य करे, यह उसे एक क्षण के लिए वरदाश्त नहीं। कितना सम्मान करती थी वह दलारी गुरुजी का। लेकिन वही आज उसकी नजरों में तुच्छ बनी हई हैं। उनकी बातें पता नहीं क्यों मन्थरा की याद दिलाती हैं। उस अनुभवी पुरखिन की तरह, जो सदा जवान लडकियों से जलती है और उपदेश देती रहती है उन्हें राधा, मीरा तथा धनिया, प्रो मेहता और मालती के सन्दर्भों से उन्होंने भारतीय नारी की स्वतन्त्रता, संवेदना गरिमा एवं त्याग की जो व्याख्या की थी. वह सब झूठ है? यह सब क्या थोथा. किताबी ज्ञान ही है, भावुक, हवाई उपदेश ही है, उसका व्यावहारिक मूल्य कुछ भी नहीं. लेकिन वह स्वयं कैसे इन विचारों को अपने जीवन में लागू करे ?

वह सहसा डर गई। उसने क्या स्वयं ही प्यार को हवाई ढंग से, काल्पनिक ढंग से नहीं समझा ? उसकी वास्तविकताओं से दूर-दूर नहीं भागती रही ? उन वास्तविकताओं को समझने का उसमें साहस ही कहाँ था ? किशोरी का कच्चा मन, दूसरी जाति, अत्यन्त पिछड़ा समाज, अनुभवहीनता, परावलम्बन, फिर भी कितना प्यार करती थी वह नीलेश को। उसे वास्तविकता की फिक्र भी नहीं थी, वह तो सिर्फ उसे प्यार करते रहना चाहती थी। आह, उसने इस प्यार को महसूस करने के लिए उसकी बार-बार उपेक्षा की, उसकी याद में घुलती-पचती रही, एक बार भी उससे कोई ढंग की बात नहीं की। उससे नहीं पूछा कि वह उसके बारे में क्या सोचता है, कैसे वह उसका साथ निभाना चाहता है ? लेकिन इसमें उसका भी दोष है। वह भी उससे हमेशा भागता रहता है, कोई भी चीज समझता नहीं

और न समझना चाहता है। ऊपर से नामालूम क्या-क्या कह गया। इस तरह का झूठा लांछन वह कैसे बरदाश्त कर सकती है? और यदि उसने दी हुई पुस्तकें लौटा दीं तथा बनारस जाते समय उससे नहीं मिली तो क्या वहाँ से वह पत्र नहीं लिख सकता, इतवार को एक दिन के लिए आ नहीं सकता ? क्या उसका अपराध इतना बड़ा है कि उसका ऐसा कठोर दंड दे दिया जाए?

यह सिर झुकाकर आँखों से बुलका चुआने लगी। रुलाई का वेग बढ़ने को हुआ तो मुँह बन्द करके और दोनों मुट्ठियाँ भींचकर अपने को रोकने की कोशिश करने लगी, जिससे उसका बदन थरथरा गया।

वह सहसा उठ खड़ी हुई। उसने दूसरी ओर मुँह करके आँचल से अपना मुँह पोंछा। फिर बाथरूम में जाकर पानी से मुँह को अच्छी तरह धोया। शाम हो गई थी और पक्षी शोर करते हुए अपने घोंसलों में जा रहे थे। आकाश में बादल जमकर काले हो रहे थे। और सड़क पर कुछ तेज ठंडी जल-भरी हवा चल रही थी।

"अम्मा, मैं जा रही हूँ, शैलजा दीदी के यहाँ"- यह कहकर वह चल पड़ी, लेकिन बाहर के कमरे में सुरेश को देखकर वहीं जा पहुँची।

"सुरेश, तुम्हारे भैया बनारस जाने के पहले दो पुस्तकें तो नहीं छोड़ गए थे ? लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर थे...।"

नम्रता के स्वर में एक शर्म-भरा लड़खड़ाता उत्साह था। परन्तु वाचाल सुरेश ने उसकी ओर देखते हुए मुस्कुराकर कहा, "दीदी, आपने वे पुस्तकें लौटा क्यों दीं ? भैया तो आपके लिए ही लाए थे..."

अपनी शर्म छिपाने के लिए वह सुरेश की बात बीच में काटकर लड़ती हुई सी आवाज में बोली, "झूठ न बोलो सुरेश ! यह गलत बात कह रहे हो। मेरे लिए वे पुस्तकें कहाँ लाई गई थीं, मैं यह एकदम नहीं जानती..."

"मैं क्यों झूठ बोलूँगा, दीदी ? पुस्तकों के शुरू में क्या भैया ने नहीं लिखा है, 'नम्रता के लिए' ? "अरे कहाँ? मैंने तो देखा ही नहीं।"

"जब आप बिना पढ़े ही लौटा देंगी तो देखेंगी कैसे? भैया किताबें दे गए। उन्होंने सिर्फ हमसे यही कहा, 'ये किताबें बहुत अच्छी हैं। ये वही लेखक हैं, जिनकी कविता पुस्तक 'गीतांजलि' पर साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिल चुका है। छोटी-छोटी कहानियाँ बहुत अच्छी हैं। उपन्यास भी अच्छा है।' मैं तो नहीं पढ़ सका, पर वीरेश भैया दोनों किताबें पढ़ चुके हैं। तारीफ कर रहे थे।"

"तो लाओ न वे किताबें। मैं अब पढ़ूँगी। उस समय तबीयत ठीक नहीं थी...।"

"दीदी, अब ये किताबें इस घर में नहीं हैं। इस मोहल्ले में गिद्धेश्वर बाबू को तो आप जानती ही होंगी..."

"मैं कुछ नहीं जानती उनके बारे में, नाम जरूर सुना है..."

"हाँ, पहले वे लोग दूसरे मोहल्ले में रहते थे। बी.ए. फाइनल में दो साल से फेल हो रहे हैं। कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने का उन्हें काफी शौक है। किताबें खरीदते नहीं, बस माँगकर पढ़ते हैं और लौटाते भी नहीं...।"

"सुरेश।" नम्रता रुआँसी आवाज में बोली।

"हाँ दीदी, दो महीने हो गए हैं और वे दोनों किताबें उन्हीं के पास हैं। जब भैया की खरीदी हुई कई किताबें गायब हैं तो क्या आप समझती हैं कि वे पुस्तकें लौटकर आएँगी? भैया तो बहुत संकोची हैं, माँगेंगे भी नहीं। मैं ही टोकता रहता हूँ। आपने बेकार ही ये किताबें भैया को लौटा दीं, इस वजह से भैया काफी दु:खी होकर यहाँ से गए हैं। भैया का दिल बड़ा कोमल है, काफी भावुक हैं वह, ऐसी किसी भी बात से उनके दिल को काफी चोट पहुँचती है। खैर, अगर आप वे किताबें पढ़ना ही चाहती हैं तो मैं उनसे बार-बार माँगूँगा और इतने पर भी नहीं देंगे तो किसी दिन उनके घर से चुपके से उठा लाऊँगा...।"

"सुरेश, तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगी।"

इसके बाद अपनी रुलाई रोकने के लिए वह घूमकर तेजी से अपने घर की ओर प्रस्थान कर गई। वह सुरेश के सामने तो बहुत लज्जित हुई ही, अपने सामने अपने घर के एकान्त में भी वह बहुत लज्जित थी। और उसे आज महसूस हुआ कि कितना भारी अन्याय उसने नीलेश पर किया है। कितना ख्याल करके वे पुस्तकें उसके लिए खरीदकर ले आया था, और सबकुछ जानकर, सबकुछ देखकर भी वह अनजान बनी रही। जो पुस्तकें सर्वप्रथम उसे ही पढ़नी चाहिए थीं, उन्हें कोई दूसरा पढ़े और कोई लम्पट किस्म का व्यक्ति गायब करने की नीयत से उठा ले जाए, यह उसके लिए कितनी लज्जा और नीलेश के लिए अपमान की बात है, यह उसके सिवाय कोई नहीं समझ सकता।

'नीलेश, मुझे माफ करो...।' वह अपने तेज गिरते खारे आँसुओं को पीती हुई गीली-गीले, अवश लाल होंठों में बुदबुदाने लगी।

और रात में अपने कक्ष में जब नीलेश को पत्र लिखने बैठी तो वह अनन्त अनुवर्षा के बीच हजारों बार नीलेश से माफी माँग और पा चुकी थी। उसका क्रोध, अपमान, कुंठा, हीनता, दुःख, पीड़ा, सबकुछ हिरन हो गया था और वह सच्चे पवित्र प्यार से भरकर सफेद रूई और बादल तथा सद्यः प्रस्फुटित बेला-चमेली पुष्प की तरह हल्की हो उठी थी। किस तरह किस नाम से, कैसे सम्बोधित करे वह नीलेश को ? वह इस सम्बन्ध में देर तक सोचती रही, अनेक विचार आए, प्रियतम, प्राणनाथ और नामालूम क्या-क्या। वह कभी मुस्कुराती और कभी झुंझलाती रही। जो सम्बोधन उसके दिमाग

में आते. उन्हें कागज पर उतारती रही लेकिन उनमें सभी या तो प्राचीन, गँवारू लगे अथवा हृदय की गहन भावनाओं को व्यक्त करने में अक्षम प्रिय, प्रियतम, मेरे ये सभी सम्बोधन कृत्रिम और उथले प्रतीत हुए। और बहत सोच-समझकर अन्त में जो सम्बोधन उसने चुना, उसमें कोई

विशेषण ही नहीं था। विशेषण सम्पर्ण स्थिति कहाँ है ? वह तो कुछ छोटा ही बना देता है। यह अकेला था. नीलेश सिर्फ नीलेश, उसके मन, मस्तिष्क, स्वर, होंठों, और प्राण में उगता, चमकता, महकता नीतेश। नीलेश... अच्छा, बुरा सबकुछ सम्पूर्ण ।

तत्पश्चात यह पत्र के मजमून के बारे में सोचने लगी, जो वह नीलेश को लिखने जा रही थी। अनेक बातें, विचार आते रहे, फिर भी वह अन्तिम फैसला कुछ भी नहीं कर सकी। रात सरकती रही, सरकती रही, सोचते-सोचते उसका दिमाग थक गया। जब भोर होने को हुआ और ठंडी ताजी हवा का एक झोंका आँगन से खिड़की के रास्ते भीतर आया तो उसकी आँखें भारी होने लगीं और कुछ ही मिनटों में वह आगे झुककर मेज पर ही अपनी फैली, मुड़ी बाँहों पर सिर टेककर चुपचाप सोने लगी। उसका पत्र उसी की दाईं हथेली से आंशिक रूप से दबकर कभी-कभी हवा से फड़फड़ा उठता था, जिस पर वह सिर्फ निम्नलिखित पंक्तियाँ ही लिख पाई थी:

नीलेश,

मैं आपसे ढेरों बातें करना चाहती हूँ, हाँ बहुत-सी बातें हैं। मैं रोज आपकी प्रतीक्षा करती हूँ, करती रहेंगी। हाँ, आप पढ़ाई का नुकसान न कीजिए...और... और सँभलकर रहिए, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखिए। कई लोग हैं जो आपका हित नहीं चाहते... खरा सोना को खोटा बताना चाहते हैं, इत्र के गुण को सूंघकर नहीं, आचमन करके जानना चाहते हैं। मैं दुःखी हूँ, अकेली हूँ, मैं यह सव बरदाश्त नहीं कर सकती...

नम्रता

लेकिन वह सोचती ही रह गई। अन्त में एक पन्ने के विभिन्न सम्बोधनों और छोटे मजमून वाले पत्र को मोड़कर अपने निजी बक्से में रख दिया और प्रतिदिन स्टेशन से आनेवाला रास्ता देखती रही। इसी में साल बीत गया। दशहरे में उसने अपने काते हुए ढेर सूत देकर खद्दर की दो साड़ियाँ गांधी आश्रम से मँगवाई। साड़ी पहनकर उसे नीलेश की याद आई। घर

और बाहर सभी ने नाक-भीं सिकोड़ी और नसीहत दी। सहेलियों ने टिप्पणी की, "संन्यासिनी सधुआइन बनोगी क्या भाई?" नीलेश होता तो खुश होता, उसकी खुशी से स्वयं वह खुश होती, अपने पर गर्व होता उसे।

इसी तरह अइगा पांडे वाली घटना के समय उसे नीलेश की याद आई थी। नीलेश के विचारों ने ही उसे वह हिम्मत दी थी, जिससे वह अइगा पांडे को फटकार सकी। उसके लिए खुशी की बात तो यह थी कि नीलेश के साथियों ने उसके अपमान का बदला लिया। नीलेश का पूरा परिवार उसके समर्थन के लिए तैयार था। बाबूजी सीतानाथ ने उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की और ढाढ़स बंधाने के लिए उसके घर भी आए। परन्तु एक बात ने जहाँ उसका उत्साह बढ़ाया, वहीं उनकी एक और सूचना ने इसकी खुशियाँ समाप्त कर दीं। उसकी सभी कल्पनाएँ देखते-ही-देखते भूकम्प में ढही किसी विशाल इमारत की तरह उसके सामने टूट बिखर गई। जब उसका रिश्ता ही तय हो गया तो कितना दूर चला गया है वह उससे ? उससे कोई बात कहने का उसे कहाँ अधिकार है ?

एक बात का और दुःख हुआ उसे कि उसके पिताजी, सीतानाथ से अचानक बेहद नाराज हो गए, इसीलिए वह होली के दिन ठीक पाँच बजे सदा की तरह इस बार उनसे मिलने ही नहीं गए। नम्रता की माँ ने उन्हें समझाया कि यह ठीक नहीं है, इसलिए उन्होंने दूसरी ओर देखते हुए मुँह बिगाड़कर कहा, "अरे छोड़ो, मैं ही क्यों जाऊँ हर साल मिलने ?"

नम्रता ने बचपन से आज तक एक बार भी ऐसा नहीं देखा था। रतनसिंह हर साल होली को जिस दिन रंग खेला जाता है, ठीक पाँच बजे सीतानाथ से मिलने जाते थे। वे गले मिलते, एक-दूसरे को अबीर लगाते। रतनसिंह एक बीड़ा पान के सिवाय और कुछ खाते-पीते नहीं थे, लेकिन उसके पूर्व सीतानाथ से दो गाने सुनाने का आग्रह जरूर करते। सीतानाथ एक होली और एक चैता सुनाते। उनकी बुलन्द फिसलती-सी आवाज घर के अन्दर और बाहर दूर-दूर तक सुनाई देने लगती। वह आवाज नम्रता के घर में भी पहुँचती, जिसके बाद माँ-बेटी बरामदे में आकर ध्यान से सुनने लगतीं।

होली के दिन नम्रता दुःखी और भय से अपने कमरे में चुपचाप बैठी थी, क्योंकि यह सब उसी की वजह से हो रहा था। नीलेश उससे छीन लिया गया था, पर सीतानाथ और उनके परिवारजनों ने क्या बिगाड़ा था ? रतनसिंह की वजह से ही उसकी माँ और स्वयं वह उनके यहाँ नहीं गई थी। कितना मनहूस लग रहा है। नम्रता का दिल रो रहा था, वह घुटनों के बीच मुँह डालकर चुपचाप बैठी थी। रात के करीब आठ बजे थे। अचानक वह चौंक उठी, फिर बिजली की गति से चारपाई से उठकर बाहर दौड़ी।

"बाबूजी, चाचाजी आए हैं.."

सीतानाथ की आवाज सबने सुनी थी। नम्रता की माँ जल्दी से उठकर माथे पर का आँचल आगे खींचकर व्यस्ततापूर्वक बोली, "आप क्यों बैठे हैं? अब हँसी-हँसारत की बात हुई न ? हर साल आप जाते थे, इस साल नहीं गए तो खुद आ गए। उनकी एक छोटी-सी बात पर आप नाराज बैठे हैं। नीलेश-नम्रता बचपन से एक-दूसरे के साथ खेलते रहे हैं, अब भी उनमें काफी पटती है, उनकी जोड़ी अच्छी है, यही कह दिया तो कौन अपराध हो गया ? इससे उनकी शादी तो नहीं हो गई ? दुनिया जानती है भाई साहब का दिल बहुत साफ है, कोई मैल नहीं है... उठिए...।"

रतनसिंह उठकर अपनी पत्नी को क्रोध से घूरते हुए बाहर निकल गए। नम्रता ने फुर्ती से बाहर जाकर दरवाजा पहले ही खोल दिया था। सीतानाथ ने उनको देखकर उत्साह से कहा, "वाह, आइए गले मिलें। छोटा भाई मिलने नहीं आ सका तो बड़ा भाई क्यों न आए ! छोटा भाई नाराज है तो बड़ा भाई आकर क्यों न मनाए। यह होली है जनाब, नाराजी, दुश्मनी नहीं चलेगी। मैंने क्या कह दिया है भाई ? यही न कि कभी मैंने नीलेश के लिए नम्रता का हाथ आपसे माँगना चाहा था ? यह मैंने क्या चाहा था ? भगवान शंकर ने यह शुभ इच्छा मेरे मन में जगाई थी। मानता हूँ, मेरी बात से, मेरी इस इच्छा से आपके दिल को चोट पहुँची। आप बड़ी जाति के हैं, क्षत्रियों का कोई क्या मुकाबला करेगा, उन्होंने हमेशा देश पर शासन किया है। अरे, एक-से-एक नामी हो गए हैं। लाला बिलाला उनका क्या मुकाबला कर सकते हैं? मुझसे गलती हुई और मैं उसकी माफी

माँगने भी आया हूँ यहाँ। मुझसे नाराज न होइए। मुझे माफ कीजिए। मैंने आपको अपने छोटे भाई उमानाथ की तरह माना-जाना है। मैंने इस जन्म में एक गलती कर दी, क्या करें हो गई। अब जब तक जिन्दा हैं, हँसी-खुशी से तो रहें, सीतनाथ जब मर जाएँगे तो कैसा साथ-संग, कैसी गलती ? तब सीतनाथ कहाँ गलती करने आएँगे ! आइए, गले मिलिए...।"

पूरे नाटकीय अन्दाज में बोल रहे थे सीतानाथ, जिसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि जब दोनों गले मिले तो छोटा अपने से बड़े के कन्धे पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगा और घर के अन्दर उसकी पत्नी और बेटी की हिचकियाँ बँध गई। जब सारा कलुष आँसुओं से बह गया तो छोटे ने ही फरमाइश की, "भाई साहब, अब होली सुनाइए।"

"अरे जरूर, जरूर, अभी लीजिए...।"

सीतानाथ ने एक ठहाका लगाया। पहले उन्होंने होली गाई, "श्री गिरिराज किशोरी, शम्भू संग खेलें होरी, श्री गिरिजा किशोरी।" उसके बाद चैता का नम्बर था, इस बोल के साथ, "अँगना में बोले पपीहा हो रामा, अंगना में बोले।"

चाँदनी निकलने से रात बड़ी खुशनुमा हो गई थी। सीतानाथ का स्वर मन्द मन्द यासन्ती हवा के झोंकों पर दूर-दूर तक फैल गया था। रतनसिंह सिर झुकाकर मुस्कुराते हुए धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे और अन्दर माँ-बेटी गाने की प्रशंसा में एक-दूसरे की ओर चमकती हुई आँखों से देख रही थीं। मोहल्ले के अन्य सभी पुरुष, स्त्री, बच्चे तथा जानवर, वृक्ष इस स्वर को पहचानते हैं। सभी चुपचाप इसको सुन रहे थे, शायद इस बोध के साथ कि होली का आनंन्द अब आया है। पान खाने के बाद जाते समय सीतानाथ ने नम्रता को बुलाकर उससे कहा :

"बेटी, अपनी माँ को लेकर फौरन हमारे घर में चली आओ। हमारा घर क्या, यह तुम्हारा भी घर है। तुम हमारे घर की बेटी हो। नीलेश, सुरेश, वीरेश संभी तुम्हारे भाई हैं और तुम उनकी बहन। तुम जब चाहे आ सकती

हो बिना किसी संकोच के...।"

सम्भवतः सीतानाथ ने नम्रता से उक्त बात रतनसिंह को खुश करने के उद्देश्य से कही थी, पर नम्रता का मुँह छोटा हो गया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। और यह घूमकर घर के अन्दर चली गई रुआँसी-सी।

बनारस से आने के बाद नीलेश पाँचवें दिन उस समय पहुँचा, जब रतनसिंह कचहरी चले गए थे, उसकी माँ नहा रही थी और नम्रता बाहर के कमरे में बैठी हिन्दी का अखबार 'आज' पढ़ रही थी। नम्रता हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसका चेहरा पीला पड़ गया, असहनीय पीड़ा-एहसास से। कितने दिनों बाद उस प्यारे-से मुख को देख रही थी वह। फिर यह सोचकर कि उसे खुश या नाराज होने का अधिकार नहीं रहा, वह अपने को सामान्य बनाने की कोशिश करने लगी। एका

"बैठिए..." वह मुस्कुराकर बोली।

था। नीलेश के हाथ में वे दोनों पुस्तकें थीं जिन्हें वह गिद्धेश्वर बाबू के यहाँ जाकर स्वयं ले आया

"ये किताबें ले लो..." उसने किताबें उसकी ओर बढ़ा दीं।

किताबें लेकर नम्रता ने कहा, "बैठिए न, अम्मा नहा रही हैं, थोड़ी देर में आ जाएँगी। आप पानी पीएँगे न।"

जा "पी लूँगा कुछ रुककर, अभी नहीं। तुम भी बैठो।" कि

एका नम्रता उसकी आँखों को बरदाश्त नहीं कर पा रही थी। जब पहले इस तरह कभी नहीं देखा तो अब क्यों ? इसका प्रयोजन क्या है? क्या इसमें पुरुष की वही कुटिलता है, जिसकी ओर दुलारी गुरुजी ने इशारा किया था ? उसका माथा चकराने लगा। उसकी मुस्कुराहट लुप्त हो गई डूबते सूरज की अन्तिम आभा की तरह। उसने रूखाई से कहा

"वैसे इन पुस्तकों की जरूरत नहीं थी। अगले वर्ष बोर्ड की फाइनल परीक्षा

है, मैंने आलतू-फालतू पुस्तकें पढ़नी बन्द कर दी हैं। आप लेते जाइए, बाद में कभी मँगा लूँगी।"

"रखी रहो, जब कभी फुरसत हो तो पढ़ लेना। आलतू-फालतू पुस्तकें नहीं हैं ये। दुनिया में प्रसिद्ध हैं। हाँ, तुम अपना हाल बताओ... तुम्हारे साथ वैसा अन्याय हुआ... मुझे उस समय मालूम हुआ वीरेश के पत्र से, जब परीक्षा के अन्तिम पर्चे हो रहे थे। मुझे बड़ा कष्ट हुआ...।" के "इस कष्ट के लिए आभारी हूँ..."

नीलेश का चेहरा फक पड़ गया। बेहद दुःखी होकर बोला, "नम्रता... मैंने तुम्हारे साथ बड़ी ज्यादती की है..।"

नम्रता कुछ नहीं बोली। वह उसे एकटक देख रही थी। भावहीन होकर "तुम नाराज हो...।" उसके स्वर में दुःख पिघलने लगा।ि

"नहीं, एकदम नहीं। इसका कोई कारण नहीं है..."

"मैं तुमसे बात करना चाहता हूँ नम्रता। ढेरों बातें हैं।"

"इससे कोई लाभ नहीं है।"

"क्यों ? कुछ बातें लाभ और हानि से अलग होती हैं।"

"होती होंगी, मुझे नहीं मालूम..." नम्रता का चेहरा पत्थर की तरह कठोर हो गया था। नीलेश निरुत्तर हो गया। कुछ क्षण वह शून्य आँखों से सामने की दीवार को देखता रहा। फिर बहुत मुश्किल से धीमे स्वर में बोला "ठीक है।"

उठकर गया। तत्पश्चात हाथ आगे बढ़ाकर मेज पर रखी दोनों पुस्तकें लेकर और घूमकर कमरे से बाहर निकल

लेकिन नीलेश के बनारस आने के पहले एक अच्छा-खासा नाटक हो गया था। बीस फरवरी सन् बयालीस की शाम को सीतानाथ के परम मित्र सुद्दीलाल पेशकार आ गए थे। देर रात तक गपशप के दौरान उन्होंने सायें-सायँ आवाज में यह बताया था कि कांग्रेस का एक बड़ा आन्दोलन शुरू होनेवाला है, इस बार विदेशी हुकूमत बड़ी सख्ती से पेश आएगी, खूब लाठियाँ और गोलियाँ चलेंगी, जेलों में कोई जगह नहीं बचेगी और उन्हें नीलेश के बारे में सावधान रहना चाहिए।

सीतानाथ किसी भी चिन्ता को मक्खी की तरह उड़ा देने के लिए विख्यात थे, लेकिन लाख कोशिश करने पर भी सुद्दीलाल की बात उन्हें परेशान करने लगी थी। दूसरे दिन उठे तो उनका चेहरा कुछ लटका हुआ था, जैसे किसी उलझन में हों। रोज के नियम के अनुसार, वह सेवेरे बाहर-भीतर घर की झाड़ू से चमाचम सफाई करने के बाद गुसलखाने में घुस जाते थे, जहाँ देह को मल-मलकर नहाते हुए कोई-न-कोई भैरवी जरूर गाते थे, जैसे 'सिया मोरी हो, रानिन में महारानी !' लेकिन घर में खास तरह से आनन्दी को आज बड़ा अचम्भा हुआ, जब वह गाना गाए बगैर ही स्नान करके गुसलखाने से निकल आए।

पूजा के लिए चौकी पर बैठकर श्रीरामायणजी का रामचरितमानस के लिए वह इसी शब्द का इस्तेमाल करते थे-पाठ करते समय भी सीतानाथ का मन अस्थिर था, क्योंकि उनके दस वर्षीय पुत्र धीरेश ने जब दबी जबान में अपनी माँ से जिद्द की, 'मैं जलेबी का नाश्ता नहीं करूँगा, मुझे भर कटोरा दूध में भूजा हुआ चिउड़ा डालकर दो,' तो उन्होंने भड़ककर वहीं से उसे डपट दिया, "मत खाओ, मत खाओ।"

आनन्दी ने शंकित दृष्टि से पति की ओर देखा, फिर भय या आश्वासन वाली कोई बात कहकर धीरेश को वहाँ से भगा दिया।

नित्य की तरह ठीक दस बजे सीतानाथ लिपे-पुते, साफ-सुथरे चीके में खड़ाऊँ खटपटाते हुए जाकर पीढ़े पर बैठ गए। खाना पूरी तरह तैयार नहीं था और आनन्दी के हाथ यन्त्र की तरह जल्दी-जल्दी चलने लगे। उसने माँड़ पसाने के लिए थाली में उल्टी बटलोई को सँड़सी से सीधा किया

और उसका जलता भात दूसरी थाली के अर्धांश में छितराकर परोस दिया। बाकी हिस्से में अरहर की अधपकी, फटी दाल और एक तश्तरी में आलू की मसालेदार लटपट अधपकी सब्जी। अन्त में, एक छोटी कटोरी में भैंस का घी गरम करके डाल दिया, जिससे दाल में कड़-कड़-कड़ की आवाज के साथ जोन्ही उग आई।

हा तत्पश्चात वह जल्दी से आगे खिसककर भाप उड़ते भोजन पर धीरे-धीरे पंखा झलने लगी।

इन्हीं हथियारों से / 161

सीतानाथ जब सामान्य ढंग से भोजन करने लगे तो यह पुनः चौके में जाकर बड़े हनुमानी कटोरे में आधा भरकर दूध ले आई। सीतानाथ अन्त में कछ भात बचा लेते हैं. और दूध में भात डालकर उस मिश्रण का चाव से सेवन करते हुए अपना भोजन समाप्त करते हैं।

आनन्दी ने पति के उदास मुख को उड़ती दृष्टि से देखते हुए कहा, "बीरेश को डॉक्टर के यहाँ..." आनन्दी को बहधा अपनी बात घुमा-फिराकर कहने की आदत है किन्त दोनों के बीच ऐमा ने कहा, "अरे गोली मारो कैसा डॉक्टर, कैसा हकीम मुझे क्या हुआ है. मैं खासा चंगा है तार जुड़ा हुआ है कि किसी को भी एक-दूसरे की बात समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। सीतानाच

कपरन्तु अब भी उनके दिमाग में एक दिन पहले अपने मित्र सुद्दीलाल की कही हुई बातें ही नाच रही थीं। सुद्दीलाल ने सिर को और आगे बढ़ाकर कहा था, "भाई जान, नीलेश बाबू आजकल जिन चक्करों में फंसे हैं, उसमें उनका दोष कुछ भी नहीं। उम्र का दोष है, जिसे गदहपचीसी कहते हैं। पागल गदहे का जिस तरह कोई ठिकाना नहीं होता कि वह कब-किधर दौड़-कूद जाए, उसी तरह सोलह वर्ष से पच्चीस तक की उम्र क्या-क्या नहीं कराती है। नहीं तो पढ़ने में इतना अच्छा दिमाग... जेल में चले जाएँगे तो पूरा कैरियर चौपट हो जाएगा..."

एक गिलास पानी पीकर उन्होंने आनन्दी की ओर देखकर कहा, "शैलजा

की अम्मा, लड़का जब सोलह साल का हो जाए तो उसकी फौरन शादी कर देनी चाहिए...।"

आनन्दी ने पति को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, "कमला भौजी बड़ी तारीफ करती हैं। अपने छोटे लड़के बच्चा के मुंडन में परिवार के सभी लोगों को बुलाया था...।"

"कोई लड़की है क्या ?" सीतानाथ ने दूध-भात का एक कौर डालकर मुँह चलाते हुए सामान्य ढंग से पूछा।

"उनके मायके में पड़ोस में ही तो रहते हैं। कह रही थीं, राजा हैं लोग...।"

"बाप क्या करते हैं ?"

"पटवारी है, बड़ी इज्जत है, काफी खेतीबारी है।"

"अच्छा !"

"भौजी कहती थीं दान दहेज से घर भर देंगे...।"

"अरे, दान-दहेज की बात छोड़ो जी! लड़की अच्छी होनी चाहिए, परिवार अच्छा होना चाहिए। बस सब ठीक है तो 'हाँ' कर दो। औरत के आँचल से बँधने पर गदहपचीसी का भूत उतर जाएगा..." वह ठहाका मारकर हँस पड़े।

खींचा।

"नीलेश बाबू को...।" सिर के आगे आँचल खींचकर आनन्दी ने दूसरी समस्या की ओर ध्यान

"अरे, लड़के से क्या पूछना ? लड़का क्या माँ-बाप की राय के खिलाफ जाएगा ? माँ-बाप तो लड़के के भले के लिए ठीक समय देखकर उसका ब्याह करते हैं। होगी, नीलेश बाबू की यहीं शादी होगी...।"

कमरे में जाकर उन्होंने चारपाई पर बाएँ करवट लेटकर दस मिनट आराम किया। फिर उठकर पैजामा-शेरवानी पहनकर बालों और मूँछों पर कंघी फेरने लगे। इसी बीच कचहरी ले जाने के लिए एक्का दरवाजे के सामने आ खड़ा हुआ। आनन्दी जल्दी-जल्दी पान की तश्तरी ले आई तो उसे पति का प्रफुल्लित चेहरा देखकर आश्चर्य हुआ, जैसे काले बादलों के हट जाने पर कोई अँधेरी कोठरी आलोकित होकर दप-दप करने लगे।

गंगा और घाघरा के द्वाब क्षेत्र में हर वर्ष बरसात में खेतों का भूगोल बिगड़ जाता है, फिर ऐसे इलाके

का पटवारी 'राजा' क्यों न हो? परन्तु सीतानाथ की दिलचस्पी दान दहेज में न पहले थी और न अब है। उनके सबसे छोटे चाचा की मृत्यु के बाद परिवार की जिम्मेदारियाँ जब से उनके कन्धों पर आई, अपनी चार चचेरी बहनों और अपनी बड़ी लड़की शैलजा की शादियाँ उन्होंने एक जवान पर तय कराई। 'भाई साहब, आपका लड़का चाहिए,' बस इतना कहना ही पर्याप्त होता था। शैलजा की शादी तो उस समय तय हुई, जब वह तथा उसका पति दोनों ही पेट में थे। उनकी सच्चाई, ईमानदारी और स्पष्टवादिता की कुछ ऐसी धाक थी कि लोग अपनी लड़कियों की शादी सम्बन्धी बातचीत में उनको अपने साथ ले जाने को उत्सुक रहते थे।

परन्तु 'हाँ' करने के पहले लड़की को दिखा लेना भी आनन्दी ने उचित समझा, जिसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि वह लँगड़ी-लूली, गूँगी, बहरी, अन्धी या एकदम छोटी बछिया तो नहीं है। वह भी इस तरीके से कि लड़की को मालूम न होने पाए। इस महत्त्वपूण कार्य के लिए भीमल-वो दाई उपयुक्त समझी गई जो पैंतालिस वर्ष की उम्र में भी काफी तेज-तर्रार, टाँठ, बातूनी और होशियार थी। चौका-बर्तन करने, कुएँ से पानी भरने तथा अन्य कार्यों के अलावा वह तीज, चौथार, करनी लेकर घर की सभी विवाहित लड़कियों की ससुराल जा चुकी थी।

आनन्दी ने उसे खूब समझा-बुझा दिया। वह लाल रंग में रँगी साड़ी पहन, पाँवों को आल्ता से रंग तथा उनमें 'काड़ा-छाड़ा' डालकर और माथे पर

बड़ी, चमकती टिकुली साटकर शुभ मुहूर्त में खूब उत्साहपूर्वक रवाना हुई। जाते समय आनन्दी ने अपने काँपते होंठों में मुस्कुराते हुए कहा, "दही-मछली लेती आना।" उसके घर मछली बनती नहीं थी लेकिन अपने मांसाहारी मायके की उसकी यह आदत छूटी नहीं थी, जो प्रस्थान के समय शुभ कामना प्रकट करने के लिए उपयोगी समझी जाती थी।

आनन्दी के भाई की ससुराल यानी उसकी कमला भौजी का मायका रानीगंज में था जो एक टीले पर बसा है। बाढ़-ग्रस्त इलाका होने की वजह से उधर के अधिसंख्य गाँव टीले पर स्थित हैं, जो बरसात में द्वीप समूह की तरह नजर आते हैं। भीमल-बो दाई कमला भौजी के मायके में ही रुकी और वहीं से ऐसी छद्म होशियारी से लड़की को परखती रही जो दोनों परिवारों की मिलीभगत से ही सम्भव है। इसी वजह से खातिर बात और हँसी-मजाक करने तथा रंग डालने के कार्यक्रम पड़ोस वालों द्वारा ही सम्पन्न हुए लेकिन समझा यही गया कि मायके वाले की ओर से किए गए हैं। विदाई के समय उसे एक नई साड़ी, झुल्ला का कपड़ा और हाथ में पहनने के लिए चाँदी की एक 'पहुँची' दी गई।

जब वह वापस बलिया स्टेशन पर ट्रेन से उतरी तो उसकी मुस्की बन्द ही नहीं हो रही थी। वह घर की तरफ जैसे उड़ रही थी।

उसके लौटने का दिन और समय तो पहले ही निश्चित था, इसलिए खाने पर दाल-भरी पूड़ियाँ, रसेदार सब्जी, और रसियाव (गुड़ के रस में चावल की खीर) बना था। जब वह भरपेट खाकर पानी पी चुकी तो आनन्दी ने उससे पूछा, "अब बताओ।"

"अरे, क्या बताऊँ, बहूजी, राजा लोग हैं, दरियाव की तरह दिल है..."

"अरे लड़की के बारे में बताओ... लँगड़ी-लूली, गूँगी-बहरी..."

"क्या कहती हैं बहूजी... बिटिया तो इन्नर की परी हैं। उमिर पर हैं, चाहा की तरह आँखें..."

"हराठी-मुराठी तो नहीं... मेरा लड़का बड़ा कोमल है..."

"अरे ना-ना," भीमल-बो दाई ने जीभ निकालकर उसे दाँतों से हल्के-से दबाते हुए अपने दोनों कान पकड़ लिए, "झूठ काहे बोलूँ, लड़िकिया तो बेसवा की तरह सुन्नर है।"

शैलजा, जो उन दिनों मायके आई थी, झनककर बोली, "ए, वेश्या-फेश्या मत कहो, हमारा भाई गांधीजी की पार्टी में है, सुनेगा तो बहुत बिगड़ेगा।"

"अरे, ना ए बच्ची बड़ी चोख हैं वह। तुम समझो, यह अपने मामा के यहाँ कलकत्ते में ही

हैं, पहनने-ओढ़ने और बोलचाल में एकदम बंगालिन लगती हैं।"

"यहाँ, पास-पड़ोस में किसकी तरह हैं?" आनन्दी ने पूछा।

"ए बहजी." भीमल-यो दाई ने माथे पर हाथ रखकर कुछ सोचते हुए कहा, "पड़ो में जतिया न, ठीक उसी तरह हैं वह।"

है आनन्दी और शैलजा ने एक-दूसरे को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। जतिया छकौड़ी कमकर की लड़की थी जो अभी चौदह वर्ष की भी नहीं हई थी, लेकिन उसकी देह बरसाती नदी की तरह बढ़ गई थी। तीखे नाक-नक्श, साफ रंग. वह बीच माँग में सिन्दर की चौड़ी लकीर बनाकर साँझ-सगरे गगरा लेकर कुएँ की ओर जाती-आती दिखाई दे जाती थी।

आनन्दी की कमला भौजी बहत-सी बातें बता ही चकी थीं। भीमल-यो दाई की यह रिपोर्ट मिलाकर उसने अपने मतलब की बात निकाल ली. जिसकी खुशखबरी विस्तार से उसी दिन सीतानाय को दे दी।

"ठीक है," सीतानाथ ने आँगन में खड़े होकर घर-भर को सुनाते हुए ऐलान कर दिया, "नीलेश बाबू की शादी पक्की। बड़ा आला खानदान है। बाबू शिवव्रत लाल पटवारी की सुन्दर, सुशील लड़की श्यामकली से। अरे

पटवारी ! क्या बात है ! निहायत शरीफ और इन्सान आदमी हैं!"

शुभ सूचना पाते ही शिवव्रत लाल आ पहुँचे। लम्बा-चौड़ा शरीर, लाल-लाल आँखें, सिर पर पग्गड़। साथ में सीतानाथ के छोटे साले और कमला भीजी के पति यदुनन्दन प्रसाद भी ठाट-बाट बनाकर आए, जो उम्र में काफी छोटे होने से अपने बहनोई से अब भी शरमाते थे।

शिवव्रत लाल ने जब फौरन कोई रस्म करने की करबद्ध प्रार्थना की, तो सीतानाथ ने हाथ की संक्षिप्त जुम्बिश से मना करते हुए अपनी भारी, उत्साह-भरी नाटकीय आवाज में कहा, "नहीं, एकदम नहीं। अभी नहीं। लड़का क्वीन्स कॉलेज में पढ़ता है, क्वीन्स कॉलेज में ! आला दर्जे का कॉलेज है ! ना, वहाँ पढ़ाई-लिखाई में कोई ढिलाई नहीं होती। लड़का भी इसके सख्त खिलाफ है। मजाल कि वह बीच में एक दिन की भी छुट्टी लेकर आ जाए। जो कुछ होगा गर्मी की छुट्टी में ही।" "बात यह है कि..." है

शिवव्रत लाल की बात काटते हुए सीतानाथ बोले, "नहीं, कोई बात नहीं। लाख बात की एक बात यह कि आज से नीलेश बाबू आपके दामाद और बेटी श्यामकली मेरी बहू। बरक्षा और तिलक में आप एक रुपया भी न लाइएगा... लड़का यह सब नहीं चाहता। बस कुछ पूजा-पाठ हो जाएगा। लड़के को पढ़ने-लिखने का शौक है ही, यह भी बहुत अच्छा है कि बेटी श्यामकली कलकत्ते में पढ़ी है... वह नीलेश बाबू की सेक्रेटरी का काम करेगी!" उन्होंने ऊपर-नीचे हिलते हुए अपने दाहिने हाथ के पंजे को उलट दिया और जोकर की तरह मुँह बना लिया, लेकिन शीघ्र ही उनके मुख की

हास्य-लकीरें नियन्त्रण के बाहर हो गई और वह मुक्त कंठ से ठहाका मारकर हँस पड़े। शिवव्रत लाल और यदुनन्दन प्रसाद दोनों ही भकुआकर उनको देखने लगे, क्योंकि कलकत्ते में पढ़नेवाली बात उनकी जानकारी की हद के बाहर की चीज थी।

घर के अन्दर जाते ही आनन्दी ने आपत्ति की, "वह तो अशुभ है !"

"क्या भाई ?" सीतानाथ उसे अचकचाकर देखने लगे।

"क्यों कहा गया, कुछ न लाइएगा? शादी-ब्याह कहीं इस तरह होता है?"

"वाह, शैलजा की अम्मा कितनी जहीन हैं।" सीतानाथ ने घर के लोगों को सुनाते हुए कहा,

" नहीं, तुम एकदम ठीक कहती हो, शुभ काम में तो रुपया-पैसा लगता ही है !"

वह झेंपकर मुस्कुराते हुए वहाँ से खिसक गए, लेकिन अपने कमरे की ओर चार-छः कदम बढ़ने के बाद रुक गए और लौटकर बोले, "वे लोग कुछ लाएँगे तो लौटा थोड़े ही देंगे। राम, राम, यह

तो बड़ा अशुभ होगा।"

सायंकाल अपने मित्र सुदीलाल पेशकार के घर जाकर उन्होंने बताया, "लड़की कलकत्ते में पढी है। खूब गोरी बंगालिन की तरह सुन्दर है। बडी सुशील। क्या बताऊँ भैया. सलीका तो कोई उससे मीखे। क्या-क्या नहीं जानती है वह। सबकुछ देख-सुन लिया गया है। हमारे यहाँ से भीमल-बो दाई देखने-सुनने के लिए गई थी। अरे भीमल-बो। आला दिमाग पाया है उसने। हर काम में अव्वल । बर्तन क्या मलती है कि सोना-चाँदी की तरह चमका देती है। गर्मियों में शादी होगी, मैंने कह दिया है लेन-देन कुछ नहीं।"

अप्रैल के मध्य में इंटरमीडियेट, प्रथम वर्ष की परीक्षा अच्छे नम्बरों से पास करके नीलेश जब घर आया तो सभी ने पहले मुस्कुराकर कनखियों से उसे वार-बार देखा। लेकिन स्वभाववश शैलजा के पेट में बात नहीं पचती और उसने शीघ्र ही संकेत दे दिया:

"बबुआ, अब खूँटे में बँधने के लिए तैयार हो जाओ।"

"क्या मतलब दीदी ?" नीलेश ने कुछ न समझकर हँसते हुए पूछा।

"जतिया की तरह हैं, भैया !" सुरेश ने तिरछी दृष्टि से देखकर मुस्कुराते हुए सूचना दे दी।

"ऐ, चुप रह, इसकी लड़कबुद्धि कभी नहीं जाएगी।" आनन्दी ने अपनी काँपती मुस्कुराहट भरसक रोकने की कोशिश करते हुए सुरेश को बनावटी गुस्से से देखा, जो उसका तेरह वर्षीय चंचल, शरारती तीसरा पुत्र है।

इस बीच नीलेश अपनी माँ से कह चुका है कि वह संक्षेप में साफ-सीधी बात करे, उसकी सांकेतिक भाषा बाबूजी के अलावा कोई नहीं समझ सकता। फिर भी जितना वह समझ सका, उससे उसका मुँह लटक गया था।

"मुझे बताया क्यों नहीं गया ? चिट्ठी से तो सूचना भेजी जा सकती थी !"

"सुरेश कहना ही नहीं मानता, कई बार दौड़ाया..."

"क्या दौड़ाया... मैं चिट्ठी की बात कर रहा हूँ...।" नीलेश खिसिया गया।

"डाकखाना दूर थोड़े ही है, स्टेशन के पास ही तो है, हमेशा हॉकी फुटबाल में लगा रहता है।"

"भैया मैं दो बार गया, लिफाफा-पोस्टकार्ड था ही नहीं, बाद में आने को कहा था..." सुरेश ने मुँह लटकाकर अपनी सफाई दी थी।

"अच्छा छोड़ो, कुछ खाने को दो..." नीलेश ने माँ की ओर देखते हुए कहा।

इन शब्दों से आनन्दी को विश्वास हो गया कि शादी की खबर से लड़का मन-ही-मन खुश है। शुरू में थोड़ी नाराजी तो स्वाभाविक है। कौन लड़का कहेगा कि मेरी शादी कर दो या इस शादी से मैं खुश हूँ। वह आखिर कहे भी तो क्या कहे। माँ-बाप की कितनी इज्जत करता है, भाइयों-बहनों को कितना प्यार करता है। वह गद्‌गद और कुछ गिड़गिड़ाती आवाज में प्यार से उसकी ठोड़ी छूती हुई बोली, "ए बबुआ, ए बबुआ !"

नीलेश दूसरी ओर देखता हुआ उठ खड़ा हुआ। आनन्दी ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और उसकी आँखें चमक उठीं। उसे प्यार-भरा गर्व हुआ। प्रथम इच्छाओं का लड़का बढ़कर कैसा सुन्दर जवान निकल आया है। लम्बा, छरहरा, ऊँचा ललाट, कुछ सोचती देखती आँखें, शरीर पर खद्दर की चुन्नटदार धोती और कॉलरवाला हल्का, बादामी कुर्ता, फिर शीघ्र ही नजरें झुका लीं और मन-ही-मन प्रार्थना की 'हे राधास्वामी, नजर न लगे मेरे बच्चे को।'

नीलेश को नाश्ता करते समय अपनी दीदी और भाइयों से सबकुछ मालूम हो गया था। वह चुपचाप बाहर निकल गया। घर के लोग उसे जाता हुआ देखकर यह अन्दाजा लगाते रहे कि वह इस समय क्या सोच रहा है, लेकिन उसके चेहरे पर सुख या विषाद का कोई भाव दिखाई नहीं पड़ा तो उसे भी आन्तरिक खुशी का लक्षण मान लिया गया।

आनन्दी की सास जीरादेवी इस बीच आकर चारपाई पर बैठ गई थीं। नीलेश पहले ही चरण छूकर उनका आशीर्वाद ग्रहण कर चुका था। यह सीतानाथ के उस मझले चाचा की पत्नी थीं जिनकी मृत्यु शादी के चार वर्ष बाद ही हो गई थी। बच्चों को मनाकर किस्से कह कहकर खिलाने और सुलाने तथा माँ-बाप की डॉट-फटकार से उनकी रक्षा करने में उनकी भमिका उपयोगी तो थी ही एक महत्त्वपूर्ण काम उन्होंने यह किया था कि पता नहीं कब और किससे राधास्वामी सम्प्रदाय से प्रभावित होने के बाद स्वयं उसमें दीक्षित होकर दूसरी स्त्रियों को भी अनुगामिनी बनाने में सफलता प्राप्त कर ली थी।

जीरादेवी अपने दन्तविहीन मुँह को पाकर पाकर चलाती हई बोली, "शादी-ब्याह की तो यही उमिर होती है दुल्हन। बबुआ खड़ा होगा तो मँड़वा में अंजोर हो जाएगा।"

"दादी. कितने तरह के दल्हा होते हैं. बताइए तो." शैलजा ने दाँत खोलकर हँसते हुए पूछा।

"अरे छोड़ो, कई बार तो बता चुकी हूँ ए बिटिया।"

"एक बार फिर दादी," सुरेश पीछे पड़ गया। इसी समय दूसरा लड़का वीरेश भी आ गया और भी कई बार जिद की।

उसने फिर जीरादेवी ने हार मानकर पोपले मुँह से हँसते हुए बताना शुरू किया, "तो ए बाबू, सुनो। शादी-ब्याह की सबसे अच्छी उमिर होती है सोलह से बीस बरिस तक। इस उमिर के दूल्हा को 'बर' कहते हैं। बर को देखकर सबका जी जुड़ा जाता है। दुल्हन का दिल भी उल्लास से भर जाता है।" वह रुककर खाँसने लगीं तो सुरेश ने अधीर होकर पूछा, "आगे दादी।"

"बताती हूँ, बताती हूँ। अब आगे बढ़ो। बीस-पच्चीस बरिस के दूल्हा में वह बात नहीं, फिर भी कोई हरज नहीं। इस उमिर के दूल्हा को बर नहीं 'बरुल्ली' कहते हैं। अब पच्चीस से आगे बढ़ो, ए बच्चा। पच्चीस से तीस बरिस तक के दूल्हे का चेहरा रूढ़ होने लगता है। मूँछ के बाल कड़े हो जाते है। बोली भी रूखी और कड़कीली हो जाती है। इस उमिर के दूल्हा को 'बरनाठ' कहते हैं। इसके आगे तीस से चालीस बरिस का दूल्हा होता है। इसे 'जरनाठ' कहते हैं। इस उमिर में देह, बोली-किसी में भी नरमाई नहीं रहती। चमड़ी एकदम मोटी हो जाती है। इस उमिर का दूल्हा बड़ा चालाक हो जाता है, हमेशा अपने मतलब की बात सोचता है। रात-बिरात घुमक्कड़ी करने लगता है। कई चक्करों में रहता है, ए बिटिया। बीवी से हराठी-मुराठी की तरह ब्यौहार करता है। हमेशा जली-कटी सुनाता है।"

सबका हँसते-हँसते बुरा हाल था। आनन्दी मुँह पर आँचल रखे हुए थी और हँसी रोकने की कोशिश में उसका चेहरा लाल हो गया था। साँस लेने के बाद जीरादेवी ने खर-खर हँसते हुए आगे कहा:

"हाँ ए बिटिया, चालीस से आगे के दूल्हा को 'खुरनाठ' कहते हैं। इस उमिर में शरीर और मुँह फैल जाता है। चेहरे पर एक-दो गहरी लकीरें दिखाई देने लगती हैं जैसे कच्ची सड़क पर बैलगाड़ी की लीक। अधपके, मूँछों के बाल झाड़ू की सींकों की तरह फरकने लगते हैं। वह बुढ़ौती को छिपाने के लिए

इतर-फुलेल, खिजाब लगाता है। उसके गले में बलगम भर जाता है और वह हमेशा 'खुर-खुर' किए रहता है। वह सबको गुस्से से घूर घूरकर देखता है। सबसे टोका-टाकी करता रहता है। उसकी दुल्हन उससे बहुत डरती है।"

जीरादेवी की बात समाप्त होते ही दबी हँसी का ऐसा विस्फोट हुआ, जिसमें खुशी, चिल्लाहट और चीखें भी शामिल थीं। सुरेश तो उठकर नाचने लगा। वह हाथ उठाकर घुमरी करते हुए बार-बार 'बरनाठ-खुरनाठ, बरनाठ-खुरनाठ' इस तरह कह रह था, जैसे अन्ताक्षरी में वीर-रस की कोई कविता सुना रहा हो।

दूसरे दिन शाम को सीतानाथ के कचहरी में आने के पहले नीलेश दक्षिण वाले कमरे में जाकर बैठ गया, जहाँ आनन्दी नीचे बैठकर बक्से में से कोई सामान निकाल रही थी। वह चार-पाँच मिनट तक कुछ नहीं बोला और आनन्दी ने मुँह घुमाकर दो-तीन बार उसकी ओर उत्सुकता से देखा।

"अम्मा, मैं शादी नहीं करूँगा।" उसने अचानक आनन्दी की ओर देखकर कहा।

आनन्दी घबरा गई। उसका चेहरा फक पड़ गया। वह काम छोड़कर नीलेश के पास जाकर बैठ

गई। उसके मुँह से काफी कठिनाई से आवाज निकली. "बाबुजी..."

"मैं पढ़ रहा हूँ, आगे पढ़ना चाहता हूँ, मेरी पढ़ाई चौपट हो जाएगी।"

आनन्दी ने रुआँसे स्वर में कहा, "इज्जत धूल में मिल जाएगी। बाबूजी की जबान कट जाएगी। सारा जग जान चुका है। क्या कहेंगे लोग ?"

"अम्मा, तू बात को क्यों नहीं समझती ?"

"बिना जबान की लड़की का क्या होगा ? बड़ी बदनामी होगी उसकी। वह तो जान दे देगी। मैं कौन-सा मुँह दिखाऊँगी।"

"इसमें मेरी कोई गलती नहीं। पहले मुझसे पूछ लिया जाता तो यह नौबत न आती। लड़की के लिए मुझे अफसोस है, पर इस समय मैं शादी नहीं कर सकता। बाबूजी को समझा देना। छोड़ो, तुम कुछ न कहना, मेरी यह चिट्ठी उन्हें दे देना..."

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ और अपनी माँ की ओर बिना देखे, नाक की सीध में, कमरा का दरवाजा और उसके बाद कंजास-भरा बरामदा पार करके, बड़े आँगन से होता हुआ बाहर निकल गवा, जबकि आनन्दी अपने उमंग-उत्साह, हौसले और इज्जत के अकस्मात धूल-धूसरित होने पर

आँखों पर आँचल रखकर आँसू के बुलके चुआने लगी। नीलेश को पता नहीं था कि अपने पिताजी पर एक अन्याय तो उसने ऐसा लम्बा पत्र लिखकर किया, जिसमें कठिनतम हिन्दी और उच्च राष्ट्रप्रेम का प्रदर्शन किया गया था। सीतानाथ को सर्वप्रथम उर्दू, फारसी की अपनी पढ़ाई और अपने अत्यल्प हिन्दी ज्ञान पर सख्त अफसोस हुआ। रामायण पढ़ना तो अलग बात है, उसमें हर बात कितनी स्पष्ट और सरल है। पत्र पढ़ने में जब कठिनाई होने लगी तो उन्होंने मदद के लिए अपने दूसरे लड़के वीरेश को बुलाया जो उस समय कक्षा नौ में पढ़ता था और हिन्दी के मामले में वह अपने बड़े भाई का ही अनुकरण कर रहा था। वह डरा-डरा तो जरूर आया पर यह गम्भीर दायित्व सौंपे जाने पर उसे अपने ऊपर गर्व भी हुआ। गम्भीर शब्दों का अर्थ बताते हुए जब उसने पाँच पन्नों का पत्र समाप्त किया तो सीतानाथ को आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, निजी और अन्य कई गूढ़ समस्याओं का विवेचन होते हुए भी उस पत्र के मजमून में सिर्फ एक बात ही स्पष्ट थी कि वह शादी नहीं करना चाहता। एक छोटी-सी बात कहने के लिए हिन्दी में इतने 'लाम-काफ़' की जरूरत होती है? उनको पक्का विश्वास हो गया कि गदहपचीसी ही इसके लिए जिम्मेदार है !

यह तो अच्छा हुआ कि आनन्दी ने उनको नीलेश का पत्र उस समय दिया,

जब वह कचहरी से आने पर आराम, पूजापाठ और नाश्ता के बाद परमानन्द की स्थिति में मन्दिर जाने के लिए तैयार थे। पत्र सुनने के बाद वह कुछ क्षण चुप बैठे रहे, फिर खड़े होकर छड़ी को उठाते-गिराते बाहर निकल गए।

देखते-ही-देखते समूचे घर में मुर्दनी छा गई। सीतानाथ इस अर्थ में भाग्यवादी थे कि उन्होंने अपना भाग्य बदलने की न कभी कल्पना की और न ही कोशिश। ईश्वर में अगाध श्रद्धा रखते हुए वह उसी की मर्जी समझकर हर परिस्थिति को स्वीकार करके मन की शान्ति प्राप्त कर लेते थे अथवा उसी शान्ति के लिए अपनी हर संकटपूर्ण परिस्थति को प्रभु के सुपुर्द करके निश्चिन्त हो जाते थे। ऐसी हालत में, उनका चेहरा एक ऐसे अथाह, शान्त समुद्र की तरह दिखाई देने लगता, जिसमें खुशी,

आनन्द, आस्था, विश्वास की तरंगें एकीकृत होती थीं।

लेकन जब उनकी यह शान्ति भंग होती-कभी-कभी बहुत मामूली यात से भी हो जाती थी तो

यह क्रोध के विस्फोट में ही प्रकट होती। चूँकि उनके अन्दर भीतिक महत्त्वाकांक्षा, झूठ, पाखंड और कुटिलता का कोई स्थान टिक पाता था। उनका चोप्रा या तो आन्तरिक आलोक से दप-दप करता रहता अथवा क्रोध मे उत्तेजित और यह क्रोध मानवीय करुणा की वजह से जल्दी ही एक नाटकीय रूप भी धारण कर लेता था।

पहले तो सीतानाथ को विश्वास नहीं हुआ था कि उनका ही लड़का परिवार की उच्च अनुशासन परम्परा का इस तरह विरोध करेगा। अपने पिता की जबान को काटेगा जिसको आज तक किसी ने भी नहीं काटा, यहाँ तक कि बड़े-बड़े हाकिमों ने भी। दो दिनों तक तो वह इस उम्मीद में भी नहीं बोले कि लड़का अपनी गलती महसूस कर लेगा। उधर नीलेश भी हर टकराहट से यच रहा था। लेकिन जब इतवार आया तो स्थिति को टालना कठिन हो गया।

सीतानाथ की वह असीम शान्ति भंग हो चुकी थी। करीब साढ़े तीन बजे सोकर उठने के बाद हाथ-मुँह धोकर आँगन में, जहाँ से धूप चली गई थी, खड़े होकर उन्होंने आनन्दी से पूछा, "नीलेशजी हैं?"

आनन्दी दक्षिणी बरामदे में बैठी कैंची से कोई कपड़ा काट रही थी। उसने पीछे कमरे की ओर संकेत करते हुए कहा, "लेटे हैं।"

नीलेश उठकर बैठ गया। पहले तो ख्याल आया कि उनके पास ही चला चले, लेकिन यह सोचकर रुक गया कि शायद बुलाएँ। डरा तो उसी दिन से था कि कहीं वह शादी के लिए जिद न ठान लें। अपने पिताजी से उसकी गम्भीर वार्ता आज तक कभी हुई ही नहीं थी। पिता से उसका रिश्ता डॉट-डपट, सीख-उपदेश और एक तरह के अलगाव का ही रहा था। वह सुबह से शाम तक वकालत के ही काम में फंसे रहते और कभी शाम को मुवक्किल आ जाते तो उस समय मन्दिर भी नहीं जाते। उसे याद भी नहीं कि कभी प्यार भी किया हो उन्होंने। यह स्थिति आनी तो थी ही, लेकिन इस समय उसके अन्दर भय और घबराहट ऐसे नौजवान की थी, जिसे संसार का बहुत मामूली अनुभव होता है।

सीतानाथ आँगन में खड़े होकर ऊँची, क्रोध-उत्तेजित आवाज में किसी अभिनेता की तरह हाथ के सांकेतिक संचालन के साथ बोले :

"अरे, तुम अन्दर मुँह छिपाकर क्या बैठे हो, भाई ! उन्नीस वर्ष के हो गए, पूरे मर्द हो, शादी हुई होती तो दो बच्चे हो गए होते। मैं पूछता हूँ, क्यो नहीं शादी करोगे? क्या तुम्हारे शादी करने से देश का काम रुक जाएगा? शादी क्या गांधीजी ने नहीं की या जवाहरलाल नेहरू ने ? जब इतने बड़े-बड़े लोगों ने शादी की तो तुम किस खेत की मूली हो? यह तो समाज का नियम है-इस पर सभी चलते हैं-बड़े-बड़े बादशाह और एक अदना आदमी भी क्या हम तुम्हारी शादी अपने सुख के लिए कर रहे हैं या तुम्हारी औरत आकर तुम्हारी पढ़ाई रोक देगी ? सीतानाथ अपने लड़के और पतोहू से सुख पाने की उम्मीद में नहीं जीते हैं। अरे भाई, तुम शादी करके और कोई काम-धाम पकड़कर अपने माँ-बाप से अलग रहो न प्रभु श्रीरामचन्द्र और

भोलेनाथ शंकर की कृपा के अलावा मुझे क्या चाहिए जी ! जो वह दे देता है, बहुत है। और आगे भी वह देगा, क्यों नहीं देगा ?

"प्रभु की भारी कृपा से सन्तान मिलती है। सन्तान से समाज चलता है। सन्तान माँ-बाप और समाज के धर्म-कर्म को आगे बढ़ाती है। माँ-बाप लड़के की शादी के लिए सुशील लड़की हूँढ़ते हैं, ताकि वह खानदान में घुल-मिल जाए, पति को सुख और नेक सलाह दे, मौका पड़ने पर उसे रास्ता दिखाए। नहीं तो, आशनाई करने के लिए तो सारी दुनिया पड़ी है। रंडी का कोठा है, फाहशा औरतें

भाई, इतना पढ़-लिखकर ऊँचे खानदान के होते हुए एक बेजबान, बेकसूर लडकी की उम्मीदों को हैं. जाओ अपनी तन्दरुस्ती, रुपया-पैसा, इज्जत आबरू, ईमान और इन्सानियत डुबा आओ। अरे खाक में क्यों मिला रहे हो ? तुम क्या समझते हो, सूरत और फैशन ही सबकुछ है ? गाँवों में सलीकेदार लडकियाँ नहीं रहतीं ? सूरत कब तक कायम रहती है मियाँ सीरत न रहे तो खानदान में कुछ ही सालों में मरघट की मनहसियत छा जाए। सीरतवाली औरत को लाचार न समझिए, उसमें बड़ी ताकत होती है, बड़ा दिमाग होता है, बड़ी समझदारी होती है। सही औरत न मिलने पर मरद की जिन्दगी नरक बन जाती है। तुम्हारी माँ जब इस घर में आई थीं तो कौन हूर की परी थीं। लेकिन आला दिमाग पाया है इन्होंने। नेकनीयत, समझदारी, इन्सानियत कोई इनसे सीखे। आलिम-फाजिल, एम.ए., बी.ए. कोई भी औरत इनका मुकाबला नहीं कर सकती। इतने बच्चे, इतने बड़े घर की जिम्मेदारियाँ, अलग-अलग ख्यालों और पसन्द के लोग, पर मजाल है कि चेहरे पर कोई शिकन आ

जाए !" बरामदे में पीढ़े पर बैठी आनन्दी ने शर्म के मारे अपना सिर पीछे घुमाने की कई बार कोशिश की। साथ ही वह खुनसाकर मुँह में बुदबुदाई, "ऐसा भी साफ दिल क्या, न सोचना, न समझना, कोई लेहाज नहीं।"

अचानक सीतानाथ अपनी आवाज को और ऊँची सीढ़ी पर चढ़ाकर बोले,

"क्या कहते हो, शादी नहीं करेंगे ? न करो, लाख बार न करो, सीतानाथ फिर तुमसे कहने नहीं जाएँगे। सीतानाथ अब तुम्हारी शादी की बात जबान पर भी नहीं लाएँगे। बाद में तुम या कोई नाक रगड़कर भी क्यों न रह जाए। सीतानाथ की प्रतिज्ञा अटल होती है। मैंने शराब पी, जुआ खेला, लेकिन एक बार जब छोड़ दिया तो उधर भूलकर भी नहीं देखा। देखा क्या, सोचा भी नहीं। सभी साथ-संग छोड़ दिया। उन दोस्तों को हमेशा-हमेशा के लिए अपनी जिन्दगी से निकाल दिया। ऐसे दोस्त तो दस्तरखान की मक्खी होते हैं। ठीक है, तुम शादी नहीं करोगे तो मैं वीरेश की शादी करूँगा।"

दुर्भाग्य से, इसी समय वीरेश सीढ़ी से नीचे उतर रहा था जिस पर उनकी नजर भी पड़ गई। फिर क्या था, उन्होंने तड़पकर उससे पूछा, "वीरेश, साफ-साफ बताओ, तुम शादी करोगे कि नहीं ?"

वीरेश का शरीर पन्द्रह की उम्र पार करके सोलह की ऊँचाई पर पहुँच गया था। लेकिन शादी के बारे में सपने में भी उसने कल्पना नहीं की थी। फिर पिताजी की ऐसी मुद्रा उसका साहस हिरन हो गया और उसके मुँह से बहुत धीमी आवाज निकली :

"करूँगा...।"

और सीतानाथ ने अपनी आवाज की सबसे ऊँची सीढ़ी पर चढ़कर ऐलान कर दिया, "और तुम शादी नहीं करोगे तो सुरेश की शादी करूँगा और सुरेश नहीं करेंगे तो धीरेश की शादी करूँगा...।"

सहसा वह रुक गए। आगे शायद गम्भीर विचार करने की जरूरत थी, क्योंकि दो अन्य लड़कों की उम्र क्रमशः छः और चार वर्ष की थी। बहरहाल उनकी योजना को सुनकर सुरेश, धीरेश और रमेश तथा उमेश भी घर के पता नहीं किस बिल-सूराख में छिप गए कि उनको ढूँढ़ निकालना भी बहुत कठिन था।

"ठीक है," सीतानाथ ने आगे कहा, "घर में एक लड़का शादी न करे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। खानदान में तरह-तरह के लोग होते हैं, तुमसे अब

शादी करने के लिए कोई न कहेगा। चिन्ता इस बात की जरूर थी कि गरीब महतारी तुम्हारे बारे में हमेशा सोचती है, तुम्हारे लिए आँसू बहाती है। खैर, प्रभु को यही मंजूर है तो यही सही। सीतानाथ को तो प्रभु के चरणों में ही कुछ जगह चाहिए, इससे अधिक कोई तमन्ना नहीं।"

इसके बाद वह कमरे में जाकर कुछ देर लेटे रहे, फिर उठकर कपड़ा बदलने के बाद हाथ में

छड़ी लेकर मन्दिर के लिए बाहर निकल गए। आनन्दी किसी प्रस्तर शिला की तरह बैठी रह गई और उसकी आँखों से झरने प्रवाहित होने लगे। पनय़न

18

सीतानाथ के जाने के कुछ ही देर बाद नीलेश उठा और चुपचाप बाहर निकल गया। वह छाती पर मुँह गाडे सड़क पर चलते हुए कब स्टेशन पर पहुंचकर दसरे प्लेटफार्म पर टहलने लगा, यह पता ही न लगा। रसड़ा और आजमगढ़ होकर शाहगंज जानेवाली ट्रेन जब खुल गई तो वह उस ओवरब्रिज की सबसे ऊँची सीढ़ी पर जाकर बैठ गया जो प्रथम प्लेटफार्म से आरम्भ होकर यहाँ समाप्त होता था। शाम में दिन की एक बहुत क्षीण झलक शेष थी। स्टेशन के सभी लेम्प जल चुके थे। चारों और सन्नाटा व्याप्त हो गया था। हवा तो पहले ही तेज थी, बीच-बीच में और तेज हो जाती, तब लगता कि दोनों ओर बाँधकर फैलाई हुई कोई साड़ी फरफरा रही है।

वह अपने दोनों घुटनों के जोड़ पर सिर रखकर सीढ़ियों को देखने लगा। उसे महसूस हो रहा था कि जब वह बेजबान और निहत्था था, उस पर अनगिनत तीर चलाए गए और बुरी तरह आहत होने से उसके पोर-पोर से कराह निकल रही है। इस अवस्था में उसे दरअसल समझ में नहीं आ रहा था कि उसके दिल में कौन-सी भावनाएँ उमड़ रही हैं। अफसोस, परेशानी, भय या दुःख की ? या क्रोध की ?

क्या माँ-बाप के प्रति उसके दिल में क्षोभ-भरा मलाल है? उसे बचपन से आज तक आकाश-फाड़ आवाज में पिताजी की डाँट-फटकार याद आने लगी। उससे सारा घर काँप उठता-मनुष्य, पशु-पक्षी और दीवारें भी। बाद में वह अवश्य क्षमा माँग लेते थे, चाहे वह छोटा बच्चा ही क्यों न हो। लेकिन ऐसी क्षमा का महत्त्व क्या था ! क्या वह क्षमा माँगकर फिर उसी तरह डाँटने का निरकुंश अधिकार नहीं प्राप्त कर लेते हैं? उसके पिताजी ने उसे अपने पास बैठाकर कभी न पढ़ाया और न कभी खूब परिश्रम करके ऊँचे ओहदे पर पहुँचने के लिए कभी प्रोत्साहित ही किया। बीमार पड़ने पर भी न कभी दवा और न डॉक्टर को ही बुलाकर ले आए। ये सभी काम मुहर्रिर या नौकर छबीला करते थे। जरूर कभी बहुत कम माँ से पूछते और उसके बताने पर असीम आत्मविश्वास के स्वर में कहते- "प्रभु सब ठीक करेंगे।" कैसा रिश्ता था उसके और उसके पिताजी के बीच और आगे कौन-सा रूप धारण करने जा रहा है यह रिश्ता ?

उसके सामने बचपन के कुछ और चित्र उभरने लगे। सबसे बड़ा और कुछ अधिक ही शरारती होने की वजह से वह छोटे भाइयों को सताता रहता। बड़ों के साथ भी अलग किस्म की शरारतें। बाहर निरन्तर खेलकूद में झगड़े होते तो शिकायतें आतीं। आनन्दी तो गृहस्थी के चक्करों तथा छोटे बच्चों के चिल्लपों की वजह से ही परेशान रहती, उसकी हरकतों पर गुस्से से जलती और दाँत पीसती हुई 'पापी' कहकर उसे बेतहाशा धुन देती ! मुक्का, थप्पड़ जो भी सुविधाजनक हो। जो कसर रह जाती उसे शैलजा पूरी कर देती जो हमेशा इसी फिराक में रहती कि कब शिकायत का कोई मौका मिले और वह बाबूजी या माँ से कहकर डॉट या मार खिलवाए। सीतानाथ कभी मारते तो नहीं थे, पर उनकी डाँट ही अधिक दुःखदायी होती थी, जिस दौरान वह उद्दी-खुद्दी सब बाहर निकाल लेते थे।

अपने पिताजी की दूसरी बात उसे अच्छी नहीं लगी, वह उनका कहीं न जाना। रिश्तेदारी में, पर्यटन में, किसी के सुख-दुःख में, कहीं भी वह शहर के बाहर जाते ही न थे। व्यावहारिकता निभाने का जिम्मा उन्होंने अपने छोटे भाई उमानाथ पर रख छोड़ा था। मायका शहर में होने की वजह से

आनन्दी दो-तीन दिन के लिए जाती. फिर उसे आना पड़ता। लेकिन उमानाथ ने गाँव से ऊबकर जब खेत-बारी की अस्थायी व्ययस्था करने के बाद एक प्राइवेट कम्पनी में नौकरी कर ली तो हर साल गर्मियों की छुट्टियों में गाँव जाना भी छूट गया। सभी भाई-बहन और समूचा परिवार जड़ की तरह बारहों महीने उस शहर में ही रह जाता।

एक दिन आनन्दी ने टोका था, "चौपट हो रही है सभी जमीन-जायदाद। बाबू (उमानाथ) ने कहा था महीने में एक बार गाँव जाकर देख-सुन लें। अब तो जो कुछ गल्ला आ जाता था, वह भी नहीं..."

सीतानाथ बिगड़ गए, हाथ नचाते हुए बोले, "चौपट हो जाए, लाख बार गल्ला न आए, सीतानाथ एक साथ दो नावों पर नहीं चढ़ेंगे। मुझसे या तो कचहरी करवा लो या गाँव की खेती। जब से मैंने फैसला किया कि इस बड़े परिवार को चलाने के लिए कचहरी बेहद जरूरी है, मैंने गाँव की खेती-बारी की ओर मुँह नहीं किया। ठीक है, जब तक उमानाथजी करते रहे, कोई परेशानी नहीं हुई। अब वह नहीं करते तो सीतानाथ क्या करें, भाई? जब मेरी बहन सुशीला मर रही थी, मैं उसे देखने एक दिन के लिए भी कचहरी छोड़कर रामपुर नहीं गया। जब बहनोई देवीप्रसाद सख्त बीमार थे, तब भी मैं रसड़ा नहीं गया। आज जब खेत-जमीन चौपट हो रही है तो मैं उसे बचाने के लिए क्या गाँव में जाकर बैठूं ? मैं कौन होता हूँ बचानेवाला? जब तक प्रभु चाहेगा, कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता और जिस दिन वह नहीं चाहेगा तो मेरे लाख कोशिश करने पर उसकी एक धूल भी नहीं बच पाएगी...।"

नीलेश के होंठ बिचक गए। यह तर्क उसे कभी समझ में नहीं आता था। आज तो और नहीं। उसे लगता, उसके पिताजी जिस परिस्थिति में डाल दिए जाते हैं, उसी से प्यार भी करने लगते हैं। क्या परिस्थिति के गुलाम ? उसमें किंचित् भी व्यतिक्रम या बदलाव उन्हें पसन्द नहीं। ऐसा क्यों है ? क्या यह छद्म पलायन नहीं है ?

फिर उसे उन दिनों की याद आने लगी जब वे शहर में प्लेग का प्रकोप होने

पर कई वर्षों बाद गाँव गए थे। शाम को बाहर खुले सहन में उसके पिताजी चारपाई पर बैठे थे और वह पास ही में खड़ा दूर तक लहलहाते खेतों को देख रहा था। तभी गाँव के एक जमींदार का लड़का शिवदर्शन सिंह, जो शहर के राजकीय स्कूल में उसका सहपाठी था, पढ़ाई के बारे में बातचीत करने के लिए उससे मिलने आया। उसके पिताजी ने उसे देखते ही झट 'सलाम बाबू' कहा और उसके बैठने के लिए जगह छोड़ते हुए सिरहाने से पैताने बैठ गए। इससे शिवदर्शन तो संकुचित हुआ ही, स्वयं वह बेइज्जती से इतना शरमा गया कि अपना मुँह कहाँ ले जाए या कैसे रखे, उसे समझ ही में न आया।

सीतानाथ जमींदार वर्ग के न होकर भी एक अच्छे काश्तकार थे और शिक्षा, व्यवहार तथा प्रतिष्ठा के मामले में उस समय के अनेक अशिक्षित, गँवार, ऐंठू, क्रूर और ब्रिटिश-चापलूस जमींदारों से ऊँची हैसियत रखते थे। फिर एक क्रूर जमींदार के लड़के को 'सलाम बाबू', 'अच्छा बाबू' कहने का क्या तुक है ? इसके चार-पाँच दिन पहले ही वह शिवदर्शन के पिताजी की निर्ममता देख चुका था, जब वह उससे मिलने उसके घर गया। उस व्यक्ति ने एक बूढ़े, सूखे, जर्जर असामी को लगान न देने पर पकड़ मँगवाया था और पेड़ से बँधवाकर उस पर गला फाड़-फाड़कर गन्दी-से-गन्दी गालियों की बौछार की थी। उसकी राजनीतिक दृष्टि साफ नहीं थी उस समय, फिर भी उसे बड़ा कष्ट हुआ था, यहाँ तक कि उसने शिवदर्शन सिंह से मन-ही-मन काफी नाराज होकर अपनी आपत्ति भी प्रकट की थी, जिस पर वह हँस पड़ा था। इन बातों को सोचकर उसे आज भी अपने पिताजी का व्यवहार अनुचित लग रहा है और ब्रिटिश हुकूमत से और नफरत हो रही है जो ऐसे सड़े-गले हैवान सामन्तों को पाल-पोस रही है। सन्तोष इसी से होता है कि इस विदेशी सरकार के खात्मे के बाद सामन्तों की यह व्यवस्था भी मिटा दी जाएगी।

आन्दोलन की चर्चा होने पर कही थी. "अरे, अंग्रेज बहादुर का कोई कुछ बिगाड़ सकता है ? उनकी इसी तरह उसे सीतानाथ की यह बात भी नहीं भूलती जो उन्होंने अपने मुहर्रिर से कांग्रेसी हुकूमत का आफताब कभी

इयनेवाला नहीं. चाहे हजारों-लाखों की तादाद में जेल क्यों न जाओ। क्या शान है उनकी अनुशासन उनमें देखिए, लियाकत उनमें देखिए मेहनत उनमें देखिए, हिम्मत उनमें देखिए तालीम और नए ख्याल के लिए प्यार उनमें देखिए । यहाँ क्या है? ठीक उल्टा। यह सब नहीं है तो आजादी लेकर करोगे क्या, भाई ?"

उसे यह विचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। जब समूचे देश में अंग्रेजों के कुशासन के विरुद्ध आन्दोलन तेज होता जा रहा है. उसके पिताजी क्यों ऐसा गुलाम ख्याल रखते हैं? वह क्रूर जमींदार भी तो फिरंगियों का पिट्ठू था, उसमें और उसके पिताजी में क्या फर्क है ?

अचानक टन टन की घंटी बजी। वह चौंक पड़ा, फिर खड़ा होकर पुल के रास्ते पहले प्लेटफार्म पर उतर गया। किसी सवारी टेन का समय तो नहीं था, शायद कोई मालगाड़ी आ रही हो। वह जी.आर.पी. पुलिस चौकी के आगे उस कएँ पर बैठ गया जिसे भरकर पक्के चबूतरे की तरह कर जी. आगया था। बैठते ही उसे महसूस हुआ कि उसकी आँखें भर आई हैं। क्या इसलिए कि आज तक उसने अपने पिताजी के बारे में कभी सोचा न था। आलोचना और अवज्ञा की तो कल्पना ही न की थी ? क्या उस जैसा अदना लड़का उन्हें किसी परिभाषा में बाँध सकता है ? क्या क्षोभ और क्रोध के उतावले प्रयास से उनको समझा जा सकता है ?

वह चबूतरे के किनारे लेट गया। कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात थी। आकाश में तारे चटक दिखाई दे रहे थे। हवा थमने से कुछ गरमी महसूस होने लगी। अब उसका दिमाग दूसरी ही दिशा में दौड़ने लगा। उसके पिताजी अवश्य पुराने जमाने के व्यक्ति थे जिनके अनेक आदर्श पुरातन ही थे। संयुक्त परिवार आदर्शों के स्तम्भ। उनके पिताजी और दो चाचा पहले ही मर गए तो सबसे छोटे चाचा ने उन्हें पढ़ाया-लिखाया जो पक्के जुआड़ी और गुस्सैल भी थे। सीतानाथ कई बार गर्व से सुना चुके थे कि एक दिन जब उन्होंने चाचा का कहना न मानकर अपना समय खेलने में बिताया तो उन्होंने बड़ी पिटाई की-ले खड़ाऊँ, ले खड़ाऊँ पूरे पचास खड़ाऊँ ! चाचा जब मरे तो संयुक्त परिवार का भारी बोझ और हजारों रुपए का कर्ज छोड़कर मरे। तब सीतानाथ के चेहरे पर कोई शिकन नहीं आई। आश्चर्य है

कि किसी आर्थिक परेशानी को लेकर वह आज तक नहीं बिगड़े और ऐसी विकट स्थितियों में भी उनके चेहरे पर अपार धैर्य, शान्ति, आनन्द और ईश्वर की कृपा से विश्वास का जो मिला-जुला भाव प्रतिबिम्बित होता, यह परिवार के हर व्यक्ति के लिए सुरक्षा का दृढ़ आश्वासन होता था।

इस कई व्यावहारिक लोगों तथा स्वयं कर्जदाता के कहने पर भी वह नहीं माने, "चाहे जुए का ही कर्ज क्यों न हो, चाचा का कर्ज मेरा कर्ज है, मैं पाई-पाई चुकाऊँगा। चाचा की आत्मा क्या कहेगी, उसके विश्वास को कितनी चोट पहुँचेगी ?"

वह हर महीने कर्ज की निश्चित किस्त चुकाते रहे। कर्जदाता की शहर में बजाजे की सबसे बड़ी दुकान थी और स्वयं भी वह बड़े शरीफ थे। महीन धोती, रेशमी कुर्ता और काली-सी टोपी पहनकर वह आकर चुपचाप बैठ जाते और एक बीड़ा पान खाकर और किस्त की रकम लेकर चले जाते।

वह उत्साह का अनभव करके बैठ गया। सीतानाथ की जीवन्तता की वजह से उसके बचपन का माहौल कितना खुशनुमा था। वकालत खूब चलती थी और वह ठाट-बाट से रहते थे। यकीलों-मुख्तारों के इस शहर में वह टाउन क्लब के अध्यक्ष थे जो वहाँ का सबसे बड़ा सांस्कृतिक संघटन था। जब टाउन क्लब की हॉकी या फुटबात टीम जीतती तो सभी खिलाड़ी तथा अन्य सदस्य पंक्ति बनाकर शील्ड के साथ आते और सीतानाथ को बीच में खड़ा करके नारे लगाते और 'हिप-हिप

हुर्रे' करते। यह शील्ड साल-भर उसके घर में पड़ी रहती जिससे वह और उसके भाई गर्व से फूले न समाते। वर्ष में क्लब एक नाटक भी करता, जैसे 'राजा हरिश्चन्द्र' या 'दानवीर कर्ण' और उसमें सीतानाथ नायक का ही अभिनय करते। लम्बे-चौड़, छाती आगे निकली हई, बड़ी सँवारी हुई मूँछ, लम्बी बाँहें आगे की ओर झूलती हुईं, बुलन्द आवाज, उनका वास्तविक जीवन और बात-व्यवहार अभिनय की तरह लगता ही था, इस कृत्रिम मंच पर भी यह बेहद सफल थे। विपुल भावात्मकता और गहरी संवेदनशीलता उनके अभिनय को स्वाभाविक और प्रामाणिक बनाती थी जिसे लोग बहुत

दिनों तक याद रखते थे।

बीच-बीच में, ब्रेक में, उनसे गाना गवाया जाता था। एक गाने की कुछ पंक्तियाँ उसके ख्याल में गूंजने लगीं :

काया का पिंजड़ा डोले रे, एक साँस का पक्षी बोले। जाने से ना घबराना, दुनिया है मुसाफिरखाना, काया का...

टाउन क्लब के अलावा संगीत की एक छोटी-सी मंडली भी थी उनकी जिसकी बैठकें सदस्यगणों के घरों पर बारी-बारी से होतीं। उस दिन कचहरी जाने के पहले वह आनन्दी से कहते, "शैलजा की अम्मा, आज शाम को खाने पर आलू-चीनी चावल, चना-उड़द की दाल, कढ़ी-बड़ी, दहीवड़ा, रिकंबछ बनाना...।"

आनन्दी समझ जाती थी। संगीत कार्यक्रम खाने-पीने के बाद ही शुरू होता जब लड़के-बच्चे सो जाते लेकिन कभी-कभी वही जगा रह जाता रसगुल्ले के लालच में जिससे समापन होता था। बाहर के बड़े कमरे में दरी और सफेद जाजिम बिछा दी जाती जिस पर दीवार से सटाकर दो-तीन मसनद भी रख दिए जाते। पास के चौराहे का रघुवीर पनहेरी गैसबत्ती जला देता और बीच-बीच में तश्तरी में चाँदी-वर्क लगे पान के बीड़े रख जाता। वह स्वयं तांजेब का चुन्नटदार कुर्ता, सफेद महीन धोती और तांजेब की ही टोपी पहनकर अन्त तक बड़ा ही व्यस्त नजर आता।

उस समय उसकी संगीत की समझ कुछ ही नहीं थी, लेकिन बड़ा होने पर, खास तरह से बनारस जाने के बाद, दशाश्वमेध घाट पर स्नान के लिए सुबह दालमंडी गली से गुजरते समय कोठेवालियों के रियाज सुनकर, अनेक संगीत सम्मेलनों में गायन का आनन्द लेकर और कई गायकों के सम्पर्क में भी आकर शास्त्रीय संगीत के प्रति उसका प्यार और दिलचस्पी काफी बढ़ गई है। आज की दृष्टि से उस अप्रशिक्षित मंडली के कार्यक्रम के बारे में सोचकर उसे हँसी आती है, लेकिन साधन और सुविधा के अभाव में वे जिस उत्साह की ज्योति जलाए हुए थे, वह प्रशंसनीय है।

धनी बाप के लड़के और शहर के रईस परमात्मानन्द की ख्याति इस वजह

से भी थी कि उन्होंने एक वेश्या से दूसरी शादी कर ली थी और मामूली बातों पर भी मुँह से भद्दी-भद्दी गालियाँ निकाल लेते थे। संगीत के नाम पर तबला बजाते थे उस समय वह काफी गम्भीर होकर और मुँह फुलाकर उसे छाती पर गाड़ देते और दोनों हाथ तबले पर काफी जोर-ताकत से रखकर 'ताक धिना-धिन' बजाने लगते, चाहे ग़ज़ल, भजन, ठुमरी या शुद्ध शास्त्रीय संगीत ही क्यों न हो। जितना बजाते थे, उससे अधिक वह सिर को चारों ओर हिलाते-घुमाते थे यह परवाह किए बगैर कि उनकी गर्दन में मोच भी आ सकती है।

अचानक मालगाड़ी सुपरिचित आवाज के साथ स्टेशन पर आई तो उसका ध्यान भंग हुआ। कुछ रेल कर्मचारी इधर-उधर दौड़े और कुछ अस्पष्ट तेज आवाजें, एक-दूसरे से लड़ती हुई सुनाई पड़ीं। कुछ देर बाद सन्नाटा छा गया। फिर वह संगीत मंडली की ही बातें सोचने लगा जिसके दूसरे

महत्त्वपूर्ण सदस्य सददीलाल पेशकार थे। वह शुद्ध संगीत के पक्षधर थे और उनकी सबसे बड़ी खुयी यह थी कि बहार, मल्हार, विहाग दरबारी आदि सभी प्रकार के उनके गायन में यह समझना बड़ा कठिन था कि कौन-सा राग गा रहे हैं। वह विलम्बित से आरम्भ करने के फौरन बाद अन्तहीन आत्ताप 'आ-आ-आ-आ शुरू कर देते. जिसे वह गले में 'दाना पड़ना' कहते थे। दो विपरीत दिशाओं में जानेवाले आलाप, ताक धिना-धिन तथा हारमोनियम की तीव किन-किन किन-किन और मंजीरे के टुन-टुन से अजीब समा बँध जाता था।

वह बेतहाशा हँसने लगा, इसलिए कि नाटे. हल्के सददीलाल तबला विशेषज्ञ की ओर दोनों हाथ आगे बढ़ाकर आगे-पीछे करते हुए ऐसी कुशलता से गायन करते कि लगता, उछलकर तबले पर ही बैठ जाएँगे।

उसके पिताजी भी कम प्रशिक्षित थे लेकिन उनमें संगीत की ऐसी प्रतिभा थी कि उनका गायन कभी भी अस्वाभाविक और बेताल नहीं होता था। जब वह रात के सन्नाटे में बुलन्द और मयुर आवाज में गाना शुरू करते तो

अद्भुत रौनक आ जाती। वह अधिकतर भजन, ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा और मौसम के अनुसार कजरी, होली और चैता गाते। अन्तरा में वह अपने स्वर को जिन तड़प-भरी ऊँचाइयों पर ले जाते और वहाँ से जिस अप्रत्याशित कुशलता से सम पर आते कि सुननेवालों का दिल नाच-नाच उठता और बरबस सिर हिलने लगते। पलुस्कर, बड़े गुलाम अली और फैयाज खाँ को छोड़कर उसने ऐसी आवाज कहीं और नहीं सुनी है। निरन्तर संगीत-साधना द्वारा विकसित ऐसे स्वर से ही लोगों के दिलों को जोड़ा जा सकता है। उनके इस स्वर से ही उसका संगीत-प्रेम जागा था और उनका यह रूप उसे बहुत प्रिय था। उसने अक्सर सोचा है कि हिन्दुस्तानी संगीत इस देश की आत्मा है, और जिस दिन यह संगीत मर जाएगा, देश की आत्मा भी मर जाएगी।

बाद में ये संगीत-बैठकें समाप्त हो गई थीं और सीतानाथ शान-शौकत छोड़कर धर्म की ओर मुड़े। मंडली के करीब सभी दोस्त छूट गए। एक जून रामचरितमानस का पाठ तो वह करते ही थे, अब शाम को भी करने लगे जिसके बाद वह मन्दिर जाने लगे जहाँ से दस ग्यारह बजे रात तक आते। पहले वह कुएँ से बीसों गगरे पानी स्वयं खींच खींच करके मन्दिर को चमाचम साफ करते और बाद में कीर्तन के समय उनका स्वर मन्दिर में गूंजने लगता 'हरे राम..।' यही उनका पूजा-पाठ था, किसी अन्य कर्मकांड से वह कोसों दूर रहते न व्रत-उपवास, न कोई त्यौहार मनाना, न झाड़-फूंक और न ज्योतिषी-पंडित का चक्कर। सत्यनारायण की कथा पर वह कभी नहीं बैठे। ये सभी धार्मिक कृत्य औरतों के जिम्मे थे जो राधास्वामी सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर भी हिन्दू धर्म की रस्मों का अनुसरण करती थीं। वह महिलाओं के काम-काज में कोई हस्तक्षेप और उसकी आलोचना नहीं करते थे। किसी एक व्यक्ति की शिकायत भी वह दूसरे व्यक्ति से कभी नहीं करते और दूसरों की ऐसी बातें एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते। सभी में वह अच्छाई देखते और अदना-से-अदना आदमी या छोटे बच्चे की तारीफ करके, उसे खूब चढ़ा देते। किसी पर नाखुश होने पर डाँटते-फटकारते या उसी के मुँह पर उसकी साफ-साफ अलोचना करते, लेकिन उनके अन्दर कुछ रहता नहीं था और जल्दी ही अपने सामान्य भाव पर आ जाते।

उनको अचानक संग्रहिणी हो गई थी जो डॉक्टर, हकीम, वैद्य सबका इलाज कराने पर भी ठीक नहीं हो रही थी। कचहरी छूट गई और आर्थिक तंगी से परेशानी होने लगी। घबराकर आनन्दी ने घर के पुरोहित मोहन पंडित को बुलाया जिन्होंने जन्म-कुंडली देखी, पोथी-पत्रा खोलकर देर तक विचार किया और अन्त में काफी गम्भीर स्वर में कहा, "मारकेश लगा है, दो महीने बाद पहले बुधवार को ये नहीं रहेंगे...।"

उस समय जीरादेवी, आनन्दी, शैलजा और नीलेश-वह स्वयं-बाहर के कमरे में पुरोहितजी को घेरकर बैठे थे। जीरादेवी और आनन्दी तो बेहद घबरा गई और आँखों पर आँचल रखकर रोने लगीं।

बाद में जीरादेवी ने रुआँसी आवाज में पूछा-

"ए महाराज, कुछ ऐसा पूजा-पाठ करा दीजिए कि बाबू का सब कष्ट दूर हो जाए।"

"महामृत्युन्जय जाप तो होता है, करा लीजिए, पर इस बार मारकेश इतना प्रबल है कि कोई पाठ काम नहीं करेगा...।"

पूजा-बाहर का कमरा भीतर के उस पहले बरामदे से एकदम सटा है जहाँ बिस्तर पर लेटे सीतानाथ सबकुछ सुन रहे थे। यह अचानक उठकर कमरे में चले आए। काफी दबले हो गए थे वह और शरीर उनका ताजिए की तरह हिल रहा था। लेकिन चेहरे पर नाखशी का भाव था। उन्होंने पूछा:

"पंडितजी आप क्या कह रहे थे- मैं मर जाऊँगा ?"

"वकील साहब, पोथी-पत्रा में जो लिखा है, वही मैंने बताया है।"

सीतानाथ गुस्से में बोले, "क्या आप ईश्वर हैं कि किसी की मौत और जिन्दगी पहले ही से जानते हैं ?"

"ईश्वर नहीं हूँ, पर पोथी-पत्रा ईश्वर से कम थोड़े ही हैं, उसे तो ब्रह्मा ने ही लिखा है।"

"गलत बात।" सीतानाथ हाँफकर एक कुर्सी पर बैठ गए थे, "ये पोथी-पत्रा मनुष्य ने ही लिखा है-कहाँ ब्रह्मा और कहाँ विष्णु और मनुष्य ईश्वर थोड़े हो जाएगा? और मान लीजिए पोथी-पत्रा में ठीक लिखा है और आपने भी उसे ठीक ही समझा है और मैं उस दिन जरूर मर जाऊँगा, पर आपको यह कहकर इन औरतों को रुलाने की कैसे हिम्मत हुई? आप चले जाइए, फौरन चले जाइए यहाँ से और फिर मुँह न दिखाइएगा।"

पुरोहितजी अपनी पोथी बाँधकर फौरन वहाँ से चलते बने। सीतानाथ क्रोध से थर-थर काँप रहे थे। जीरादेवी ने रोते हुए कहा, "अरे बाबू, यह क्या किया। पंडित-पुरोहित को इस तरह दुत्कारते हैं? सराप दे देते हैं। वैसे भी, पता नहीं कैसी जवान बोल गए हैं।"

"अरे चाची, पंडित, विद्वान, महात्मा संसार के कल्याण की बात सोचते हैं या घरों में जाकर मौत का पैगाम सुनाते हैं ? एक तो, मैं उस दिन मरूँगा नहीं, और मर भी गया तो क्या हुआ, चाची ? इस दुनिया में जो आएगा वह मरेगा ही, फिर गम क्या? दवा हो रही है, प्रभु सब ठीक करेंगे। हाँ, ध्यान रहे, पूजा-पाठ के चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं है।"

सचमुच उस दिन उनकी मृत्यु नहीं हुई बल्कि उसके पहले ही एक नए योग्य डॉक्टर की दवा से स्वास्थ्य लाभ करके कचहरी भी जाने लगे।

वह व्याकुल होकर टहलने लगा। कुएँ से उतरकर सामने ही एक सीमित दूरी में। इतना साहसी, मृत्यु की भयावह आँखों में देखनेवाला और दयावान कौन होगा ? उस शहर में किस पारिवारिक जिम्मेदारी को उन्होंने स्वीकार नहीं किया ? वकालत एक दुकानदारी थी जिसे चलाने के लिए शान-शौकत, दबंगई, झूठ और छद्म की जरूरत थी और उनकी प्रैक्टिस गिर गई। कुष्ट रोग हो जाने के बाद नौकर छबीला की नैनी, इलाहाबाद के कुष्ट चिकित्सालय में भर्ती के बाद किस तरह वह स्वयं झाड़ू लगाने, नाली साफ करने और शाम-सबेरे पचासों गगरे पानी भरने का जिम्मा अपने

ऊपर ले लिया था। यह कमीज निकाल देते और ऊपर खोंटी हुई धोती तथा बनियान में जुट जाते। चेहरे पर कोई शर्म-संकोच नहीं। वही शान्ति, प्रफुल्लता और खरापन। अहं का लबादा उन्होंने गिराया या वह स्वयं अनुपयोगी होकर गिर गया, इस पर विचार करना भी उसे आज और इस समय उनके प्रति बड़ा अन्याय लग रहा है।

और सुरेश कक्षा पाँच में पढ़ता था। उसका सहपाठी जयदेव यादव आजमगढ़ के एक गरीब किसान का लड़का था जो इस शहर में अपने पिता के एक परिचित के घर में रहकर पढ़ाई कर रहा था। एक दिन फीस न दे सकने के कारण उसे टीचर ने कक्षा से निकाल दिया। सुरेश ने आनन्दी से कहा जिसने सीतानाथ को बताया। वह कुछ देर तक सोचते रहे, फिर सहसा उत्साह में सुरेश से

बोले. "ले आओ उसे यहाँ ।" दूसरे दिन जब जयदेव उनके सामने लाया गया तो उसके माथे पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "बेटा, तुम मेरे पास ही रहो दूसरे लड़कों की तरह और जितना चाहो पढ़ो। किसी बात की चिन्ता न करो।"

उनके इस निर्णय की औरतों में बडी आलोचना हुई थी। जब कचहरी का यह हाल है तो यह बोझ और लादने की क्या जरूरत है? जीरादेवी ने जरूर सन्तोष प्रकट किया कि 'चलो, घर का काम कर दिया करेगा. सीतानाथ बाब की मदद हो जाएगी। लेकिन इसकी भनक लगते ही उन्होंने आँगन में खड़े होकर कडे स्वर में कहा, "खबरदार, जयदेव से घर का छोटा-से-छोटा काम न लिया जाए।"

ये सारी बातें सोचकर उसका दिल मुँह को आने लगा। छिः, वह उनसे इसलिए नाराज हो गया था कि शादी का प्रस्ताव न मानने पर उसे डाँटा था ? वह क्या उस दिन की बात भूल गया जव घर से भागकर भड़सर चला गया था ?

नम्रता के यहाँ से घर आकर नीलेश ने टैगोर की दोनों पुस्तकें अपने निजी बक्से में सबसे नीचे छिपाकर रख दीं। फिर बाहर आकर कमरे में कुर्सी पर बैठ गया। वह सहज-सामान्य बनने की भी कोशिश करने लगा, जैसे उसके अन्दर अपमान, दुःख, क्रोध कुछ भी न हो, लेकिन उसका चेहरा किसी बँधी गठरी की तरह नजर आने लगा। नम्रता से मिलना तो उसी दिन चाह रहा था, क्या मालूम था कि आते ही उसे शादी का प्रस्ताव थमा दिया जाएगा, जिसे नकारने में पाँच दिन लग जाएँगे ! क्या इसी विलम्ब से इतनी नाखुशी ?

सोचने पर भी कोई कारण समझ में नहीं आया उसे। वह सहसा उठ खड़ा हुआ। इम्तहान की वजह से ही तो वह मार्च के अन्त में गोबर्धन की शादी में नहीं आ सका था। नफीस से पहले ही ज्ञात हो चुका है उसे कि अत्यधिक व्यस्तता की वजह से अब गोबर्धन संगी-साथियों से बहुत कम मिल पाता है। और श्यामनन्दन नामक एक नए, अनुभवी, परिश्रमी और ईमानदार मुनीम को रखकर और अपने रुग्ण पिता की सलाह से व्यापारिक उद्यम का मुस्तैदी से संचालन कर रहा है।

इसी समय, उमस भरी गर्मी में हवा के लिए आई आनन्दी ने उसे कहीं बाहर जाते देखकर कहा, "बबुआ, देर होने से खाना बेस्वाद हो जाएगा...।" "आऊँगा अम्मा, जल्दी ही। शादी के बाद गोबर्धन से नहीं मिल पाया हूँ।"

3 बाहर निकलकर नीलेश सफेद कंकड़ों की वह पक्की सड़क पकड़कर बाईं ओर बढ़ चला, जो नियमित मरम्मत से वंचित और अन्य लापरवाहियों के कारण तेजी से धूल में बदल रही थी। और वह धूल चप्पलों की फटफटाहट के सहारे ऊपर उछलकर पैरों को छन-छन जलाने लगी। पसीने से नहाया हुआ वह स्टेशन के सामने पहुँचकर फिर बाईं ओर मुड़ा और लगातार पड़नेवाली घुघुनी-फुलौड़ी, मिठाई, चना-चबेना, फल और जनरल मर्चेण्ट की दुकानों के बीच से गुजरते हुए चौक के गुदड़ी बाजार की मंजिल की तरफ लपकने लगा।

गुदड़ी बाजार के पहले ही बीच वाली साफ-सुथरी सड़क पर गोबर्धन के पिता सेठ बेचूराम गुप्त का बड़ा और ऊँचा गोला है, जिसके रंग-रौनक में खुशनुमा बदलाव आ चुका है और जो अपने बड़े अहाते के अन्दर अब गुलाबी शान से खड़ा है। आज बन्दी का दिन है, इसलिए गोबर से लीपे-पोते गए अहाते के मैदान में एक भी बैलगाड़ी, बोरा और मजदूर, मोटिया नहीं हैं। मकान में नीचे बाई तरफ लोहे की मजबूत छड़ों से घिरी और मोटे गद्दों, मसनदों तथा लाल-लाल बहियों से सुसज्जित

सेठ की गददी है और एकदम दाई तरफ लम्बे-चौडे गोदाम का ऊँचा मजबूत फाटक। बीच में घर का मझोला, खूबसूरत प्रवेश-द्वार है, जिसके ऊपर की दीवार पर लाल रंग से 'शुभ विवाह' लिखा है और नीचे दोनों तरफ हाथियों मछलियों और पक्षियों की रंग-बिरंगी चित्रकारियाँ।

नीलेश नौकर से गोबर्धन की उपस्थिति का पता लगाकर, इसी द्वार से भीतर बड़े आँगन में प्रवेश कर दाएँ बरामदे की दाई ऊँची-ऊँची सीढ़ियों से ऊपर चला गया, जहाँ गोवर्धन का निजी कारोबारी कक्ष, बैठकखाना और अतिथि कक्ष स्थित है। याएँ बरामदे की बाई सीढ़ी से, अपेक्षाकृत बड़ा जनानाखाना और संयुक्त परिवार की रिहाइश है।

बैठकखाने में दरी और दूधिया सफेद चादर से आच्छादित एक बड़े तख्त पर बैठा गोवर्धन दूर से ही उसे देखकर नंगे पैर उछल पड़ा। नीलेश मन-ही-मन हँसा। उसे उन दिनों की याद करके गुदगुदी हुई, जब गोबर्धन स्कूल के मैदान में फुटबाल मैच खेलते समय इसी तरह बेतहाशा दौड़ने लगता था। कोई अच्छा खिलाड़ी न होने पर भी, उसे स्कूल टीम में अनिवार्य रूप से इसलिए रखा जाता कि उसके पाँव काफी बड़े और रूखे थे, जोश से खेलते समय उसे जान जाने की परवाह नहीं रहती थी और अपने 'पंजेड़ी' नामकरण को सार्थक करते हुए वह सीधे पंजों से ही ऐसे भुतहे किक लगाने शुरू कर देता कि उसके नरहर से (घुटनों के नीचे पिंडलियों की अगली नुकीली हड्डियों से) ठाँव-कुठाँव अप्रिय सम्पर्क हो ही जाता और अच्छे-से-अच्छे खिलाड़ी गिरकर छटपटाने लगते। इन्हीं कुछ क्षणों में

नीलेश ने यह भी अँखियान लिया कि ढेला-वियोग से पूर्व-दुर्बल उसका मुख अब भर आया है, मोटे-मोटे होंठों के ऊपर नरम दूब के समान मूँछों के बाल की अब समानान्तर पट्टीनुमा छँटाई होने लगी है और वह पृष्ठ नितम्ब विभाजनकारिणी दो-पुँछटवा की जगह अग्रिम चुन्नट वाली महीन धोती, रेशमी कुर्ता, सोने की चेन और नगदार अँगूठियों में जगर-मगर कर रहा है। इसी समय उसे हल्का-सा भय हुआ कि इस दौड़ के फलस्वरूप भी उसकी दशा किसी फुटबाल खिलाड़ी की तरह न हो जाए, लेकिन बचाव से पहले ही गोबर्धन उसको अँकवार से भींचकर उसके माथे पर अपने मुँह को रगड़ते हुए चिल्ला पड़ा :

"अरे वाह धोखेबाज राजा! कहाँ थे अभी तक ?"

"कैसे आता ?" नीलेश ने अपने को मुक्त करने की कोशिश करते हुए कहा, "बधाई का कार्ड नहीं भेजा था ? इम्तहान की मजबूरी नहीं बताई थी? हाँ, किसी वजह से यहाँ आने पर भी फौरन नहीं मिल पाया। मेरी बधाई फिर स्वीकार करो।"

"बनावटी बातें छोड़ो। चलो, इत्मीनान से बैठो। कुछ खाओ-पीओ और ठंडे होकर बनारस की बातें बताओ। हाँ, दो-चार गाने भी सुनेंगे तुम्हारे, बहुत दिन हो गए सुने हुए। मैं भी तुमको अपनी बातें सुनाने के लिए कब से तड़फड़ा रहा हूँ। दोस्त, व्यस्तता इतनी बढ़ गई है कि किसी से मिलना-जुलना नहीं हो पाता। दूसरे से मैं निजी बात कर भी नहीं सकता। हाँ, कनिया से भी तुम्हें मिलना है...।"

"कनिया ?" नीलेश चौंका।

"बताएँगे," गोबर्धन ने अँकवार में ही दबाए, अपने मित्र को बैठकखाने में ले जाकर तख्त पर बिठा दिया।

"यार, शादी होने पर भी तुम्हारा बाँगड़ूपन नहीं छूटा। धूल-भरे पाँव तो साफ कर लेने देते।" "इत्मीनान से करना। मैं अभी पानी भिजवाता हूँ।" यह कहकर गोबर्धन तेजी से कमरे से निकलकर दाईं तरफ के रेलिंग-पार्श्व में बने घुमावदार रास्ते से परिवार कक्ष की तरफ चला गया।

कुछ ही देर में उसका अधेड़ नौकर गणेश एक बड़ा लोटा और गिलास लेकर दौड़ता हुआ आया। इस बीच नीलेश बाहर चप्पल उतार तथा पैर झाड़कर खड़ा हो चुका था। उसने बाहर मोरी के सामने इत्मीनान से हाथ-पैर और मुँह धोया, तब तक गणेश तौलिया लेकर फिर आ चुका था, जिसे इस्तेमाल

करने के बाद जब नीलेश कमरे में बैठा, उसके करीब पाँच मिनट बाद ही गोवर्धन का व्यस्ततापूर्वक आगमन हुआ, जिसके हाथ में लड्डू और खाजा-सुशोभित एक बड़ी तश्तरी थी। ससुराल से आया मोतीचूर का लड्डू बड़ा और ललौंछ था, जो मेवे के छोटे-छोटे टुकड़ों और

कहीं-कहीं काली मिर्च के साबुत दाने से युक्त होकर काफी स्वाद दे रहा था। दूसरी मिठाई को तो शुद्ध 'खाजा' नहीं कहा जाएगा. जो बड़ा होता है. बल्कि उसका एक छोटा रूप है, 'खजली' नामकरण के साथ जैसे जहाज की तुलना में छोटी नाव। भैंस के घी में तली और सने हुए मैदा-आटे की फती परतों में उभरी तथा शक्कर की चाशनी में पगी यह सोंधी मिठाई मुख की संकचित सीमा में असंख्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर भर जाती है और स्वाद का असुविधाजनक आनन्द एवं गुदगुदी उत्पन्न करती है। गोबर्धन ने अपने मित्र का साथ दिया, फिर दोनों हकर-हकर पानी पीने के बाद अगल-बगल चित लेटकर गपशप करने लगे।

"मैं एक नई दनिया में चला आया हैं. नीलेश मैंने धन और समृद्धि के लिए जरूर काम शुरू कर दिया है. लेकिन धोखाधड़ी, हेरा-फेरी और लूट-खसोट से दूर रहकर जैसा स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने कहा था। यह सामाजिक-राष्ट्रीय बुद्धि और इरादे से स्थापित उद्यम है और होगा, जो सबके सहयोग और खुशहाली में ही फलेगा-फूलेगा। लेकिन...।"

गोबर्धन सहसा चुप हो गया। वह मुँह बाकर ऊपर छत की ओर देख रहा था। नीलेश उठकर बैठ गया, "क्या बात है ? मैं तो सिर्फ तुमसे ही सुनने आया हूँ। जो कुछ कहना चाहते हो, कह डालो। मुझे बड़ा अच्छा लग रहा

है।"

"लेटो नीलेश, उठ क्यों गए ?"

"इच्छा नहीं है दोस्त। जब से आया हूँ, लेटना ही तो हो रहा है। तुम बिना किसी संकोच के सुनाते जाओ।"

गोबर्धन उसकी ओर करवट लेकर उसके मुड़े घुटने पर एक हाथ रखकर बोला, "अब तो तुम समझ ही गए हो कि कनिया मेरी पत्नी का नाम है। निमन्त्रण-पत्र में महाराजलक्ष्मी था, लेकिन मेरी माँ और घरवाले कनिया कहते हैं। मुझे भी यह नाम छोटा और सुविधाजनक लगता है। वह इसी शहर में अपने मामा के यहाँ रहकर कक्षा नौ पास कर चुकी है। मार्च के अन्त में वार्षिक परीक्षा देकर वह शादी के लिए अपने गाँव चली गई थी, परीक्षा-फल तो बाद में निकला। उसके और मेरे घरवाले कहते हैं कि आगे पढ़कर क्या होगा। मुझे भी कोई आपत्ति नहीं, जैसा सभी चाहें, वैसे ही हो, लेकिन कनिया आगे पढ़ना चाहती है, ऐसा उसकी बात से लगा। तो ठीक है, पढ़े आगे, मगर मायके से नहीं, यहीं से उसे स्कूल जाना पड़ेगा... अरे, तुम्हारे घर के सामने जो लड़की रहती है न, क्या नाम है...अरे जिसे अइगा पांडे ने परेशान किया था... हाँ नम्रता, उसी के साथ कनिया ने भी दर्जा नौ पास किया है... नम्रता पढ़ने में अधिक तेज है...।"

गोबर्धन भी उठकर पाल्थी मारकर बैठ गया। नम्रता का नाम सुनते ही नीलेश का मुँह फक पड़ गया था। हृदय की धड़कन बढ़ गई। कानों में सन-सन होने लगा। अपनी परेशानी दूर करने के लिए सर झुका और आँखें बन्द करके वह पलकों पर दाहिने हाथ की अंगुलियाँ फेरने लगा। सामने धुआएँ-से काँपते अँधेरे में उड़ती और मुस्कुराती नम्रता नजर आई और ओझल हो गई। तत्पश्चात उसे याद आया वह दिन, जब गोबर्धन ने उससे यहीं, सलाह के लिए वीरेश्वरानन्द के पास चलने का अनुरोध किया था। तब छत के इस हिस्से के बड़े-बड़े कमरे पुराने सामानों और कंजास से भरे थे। अब तो सबकुछ बदल गया है, जैसे चारों ओर किसी ने जादू की छड़ी घुमा दी हो। हर जगह चमाचम सफाई और कमरों में नए हल्के साफ-सुथरे सामान। चूँकि बड़ी खिड़कीवाले कमरे की छत भी काफी ऊँची है,

इसलिए बीच-बीच में गर्मी होने पर भी झिर-झिर हवा आ जाती है।

"क्या बात है ? आँखों के अन्दर कोई तिनका-विनका तो नहीं चला गया है?"

"हाँ, गोबर्धन, कोई चीज थी, मगर अब निकल गई है।" नीलेश ने अंगुलियाँ हटाते हुए आँखें खोलकर हँसने की कोशिश की।

"नीलेश भाई, तुमसे बताता हूँ, पता नहीं यह ठीक हुआ या नहीं। शायद नया जीवन शुरू करने के नैतिक जोश में. मैंने पहली ही रात सबसे पहला कार्य जो किया उस पर तुम शायद अचम्भा करो। मैंने स्पर्श किए बगैर अत्यधिक साहस और वीरता के साथ देला के साथ बिताए अपने जीवन की एक-एक बात कनिया को बता दी। तुम पछोगे कि क्यों किया ऐसा मैंने ? काफी बाद में जब कनिया से घनिष्ठता हो जाती. यह कार्य साधारण ढंग से किया जा सकता था। लेकिन मैं उसके साथ एक क्षण के लिए भी झठे की तरह व्यवहार नहीं कर सकता था. उसे धोखा नहीं देना चाहता था..."

"गोबर्धन धीमे, फुसफुसाए-से स्वर में बोल रहा था। उसका मुख एक संक्षिप्त निरुपाय हँसी से किंचित खुल गया था। नीलेश सचमुच उसे आश्चर्य-भरी नासमझी से घूर रहा था।

"ठीक है, कहो..." नीलेश बोला।

"नीलेश, मैं ढेला को भूल नहीं पाया हूँ। उसको अब भी प्यार करता हूँ, उसकी इज्जत करता हूँ। मगर उसी ने मुझे ठेलकर दूर कर दिया है, तो मैं उसकी याद में यह जिन्दगी बरबाद नहीं करना चाहता। इस जीवन में कुछ नया करने की इच्छा रखता हूँ। शायद कनिया के मन में अपने प्रति विश्वास पैदा करने के लिए अपना सबकुछ खोलकर उसके सामने रख दिया, परन्तु ऐसा करके मैंने बेला के प्रति अन्याय किया या कनिया अथवा दोनों के ही प्रति, यह मेरी समझ में नहीं अताा। हल्के घूँघट में वह

शरमा रही थी और खुश भी थी। वह मुझे देख रही थी और नहीं भी। उसके पतले लाल, खूबसूरत होंठ, अवश मोहक मुस्कान में फैल गए थे। वह पति-प्यार की आतुर प्रतीक्षा और विश्वास में छुई मुई बनी थी। पर मेरी बातें सुनकर उसके चेहरे पर गहरी कालिख पुत गई। उसने डर और आतंक से आँखें बन्द कर लीं जैसे अपने सामने किसी शैतान के दर्शन कर लिए हों...."

"गोबर्धन, यह क्या कह रहे हो?" नीलेश का चेहरा किसी परेशानी में सिकुड़ गया। "निश्चय ही, वह बेहद डर गई थी, नीलेश मेमने की तरह निर्दोष चेहरे और नरम नरम पवित्र कनपटियों वाली। पति के प्रति कैसा प्यार और विश्वास लेकर आई थी, कौन-से खूबसूरत सपने लेकर उसने अपनी ससुराल में कदम रखे थे। फिर वह अपने ही आगे झुककर अपनी ही गोद में मुँह छिपाकर सुबकने लगी। मेरी इच्छा हुई, उसे अपने आलिंगन में खींच लूँ या उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे ढाढ़स बँधाऊँ। लेकिन मुझसे कुछ भी नहीं हुआ। कुछ ही देर बाद जब उसका रुदन बन्द हो गया, और पीठ स्थिर दिखाई देने लगी, मैंने निर्ममतापूर्वक कहा उससे, "मैं तुम्हारे विचार जानता हूँ। क्या मैं तुम्हें स्वीकार हूँ अपनी तमाम कमियों और मजबूरियों के साथ ?"

गोबर्धन ने सहसा अपने माथे के पसीने को उँगलियों से काछने के बाद बगल में रखे ताड़ के पंखे को चारों ओर घुमाया। फिर नीलेश के कान की ओर मुँह झुकाकर और धीमे स्वर में बोला:

"नीलेश, मेरी बात सुनकर, कनिया जमीन पर गिरे किसी छोटे बच्चे की तरह अपने ही सहारे धीरे-धीरे उठकर सीधी बैठ गई। आँसू तो पहले ही बन्द हो चुके थे, किन्तु अपनी भीगी आँखों और मुँह को पोंछने की कोशिश नहीं की उसने, जो कुछ देर बाद स्वयं ही सूख गए। आभूषण से दमकते अपने चिकने, सुघड़ चेहरे को मेरी दिशा में थोड़ा आगे बढ़ा दिया, जैसे सम्बोधन का कोई शब्द न सूझने पर ऐसा करना जरूरी हो। वह देख रही थी, मेरी आँखों में नहीं, बल्कि उनके नीचे, आधी झपकी हुई पलकों के साथ। उसमें अब पहले जैसी शर्म या हिचक नहीं थी और चेहरे पर कोई भी भाव नहीं। वह धीमे, मृदु लेकिन स्पष्ट शब्दों में, साहस के साथ,

अनुसिंचित ताजे, लाल होंठों को भूय पुष्पित गुलाब की प्रकम्पित पंखुरियों की तरह संचालित करके इस तरह बोली, जैसे कुछ ही देर में, वह अनुभव में कई वर्ष बड़ी हो गई हो.... नेक চরে সাদী ফ্রি সর্বান

इन्हीं हथियारों से / 179

"तुमने तो खाका ही खींच दिया.

"हाँ. नीलेश, ध्यान से मैं उसे देख रहा था। सच पूछो तो उसका विचार सुनने को मैं चेताव था। मेरा हृदय तेजी से धड़क रहा था. मेरी माँस घट-घुट रही थी। बोलते समय यह हँस तो नहीं रही थी. लेकिन उसका चेहरा हँस रहा था। जैसे सबकुछ जानते हुए भी सहर्ष झेल रहे हो। यह बोली. एक हिन्द लडकी माँग में सिन्दर पड़ते ही अपने पति को अपना स्वामी और सर्वस्व समझने लगती हैं। इसी जीवन में ही नहीं. सदा के लिए, जन्म-जन्मांतर के लिए। आपकी खुशी ही मेरी खुशी है। मैं अनभिज्ञ थी. इसी से मेरी आँखों में आँस निकल आए। इसके लिए क्षमा चाहती हैं। मैं हर परिस्थिति में पति-चरणों को समर्पित एक सम्पूर्ण स्त्री के सुख का अनुभव कर सकती हूँ..."" "कमाल है..." नीलेश नासमझ की तरह देख रहा था।

"मित्र, मैं तो घबरा गया। एक कारण तो यह रहा होगा कि शायद मन-ही-मन अपने को दोषी समझ रहा था मैं। फिर ऐसे उत्तर की आशा भी नहीं थी मुझे। मैंने सोचा था कि वह रोएगी, गिड़गिड़ाएगी, धोखा खाने का रोना रोएगी, माँ-बाप के पास पहुँचाने का अनुरोध करेगी, ढेला के प्रति अपशब्द कहेगी, जहर खाने की कसमें खाएगी। लेकिन यहाँ यह सब या इनमें से कुछ भी नहीं था, बस भ्रामक हँसी से एक पसरा झपकता चेहरा। मैंने तो सोचा था कि वैसी स्थिति में प्यार से उसे समझाऊँगा, आगे की अपनी योजनाएँ बताऊँगा। मैंने परेशानी का अनुभव करके शायद किंचित गुस्से में कहा :

'यह क्या कह रही हो ?'

'आपके सवाल का उत्तर कि एक हिन्दू लड़की के लिए विवाह के बाद

उसका पति ही सबकुछ होता है। मैं पहले ही आपकी पत्नी हो चुकी हूँ और सदा रहूँगी।'

'यह समझ लो कि मैं पत्नी के रूप में ऐसी स्त्री नहीं चाहता, जो पति की दासी हो, जिसमें स्वाभिमान और आत्मसम्मान न हो, अपनी इच्छाएँ न हों। जो बदलते हुए समय में नई सोच-समझ नहीं अपना सके।'

'इसमें कहाँ बाधा है ? मैं अब बड़ी होकर कह सकती हूँ कि स्त्री में बचपन से ही प्यार कूट-कूट भरा होता है। सात फेरे के बाद उसका प्यार साकार होकर उमड़ पड़ता है, उसके जीवन को सराबोर कर देता है। उसे कोई मिटा नहीं सकता। पत्नी के प्यार को गुलामी नहीं कहा जा सकता। वह एकाकी प्यार भी नहीं है। वह किसी भीख में नहीं मिलता। उसका जन्म पति-पत्नी के धार्मिक रस्मों और मन्त्रों के द्वारा पवित्र विवाह-बन्धन में बँधकर आजीवन एक-दूसरे का साथ निभाने की शपय से होता है। वह अटूट है। बिना स्वाभिमान और आत्म-सम्मान के यह प्यार कायम नहीं रह सकता। इसीलिए हिन्दू स्त्री को अपने प्यार की रक्षा में स्वाभिमान और आत्म-सम्मान की रक्षा करनी पड़ती है, जैसे सीताजी पृथ्वी के गर्भ में समा गईं।'

"ए नीलेश भाई, वह मेरी बात का उत्तर इस तरह आसानी से दे रही थी, जिसकी उम्मीद नहीं थी मुझे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे सम्भव है यह एक कमसिन अर्ध-शिक्षित, नव-विवाहित लड़की से। कुछ और सवाल भी मैंने पूछे और वह लगातार जवाब देती गई। मैंने तब उत्तेजित होकर उससे फिर पूछा था :

स्त्री के सम्मान के लिए क्या यही और ऐसे ही उपाय रह जाते हैं तुम्हारे विचार में ?'

' 'स्त्री का सम्बन्ध सृष्टि से, समाज से, नैतिकता से, शान्ति से, संवेदना से होता है। उस पर अनेक जिम्मेदारियाँ हैं और उसे बहुत कुछ सोचना पड़ता है।'

'नारी के प्रति पुरुष या समाज के अन्याय का प्रतिकार तलाक या अन्य

उपायों से नहीं ?' 'कुछ अन्य समाजों में होता है यह, मगर जहाँ होता भी है, वहाँ पीड़ित स्त्री ही होती है। सम्बन्ध विच्छेद के लिए बहुत कम औरतें पहले आगे आती हैं। अक्सर उसको कमजोर समझकर गाली-गलौज

करके निकाल दिया जाता है। जहाँ तलाक है. उसे तलाक दे दिया जाता है। न्याय तो कम ही मिलता है उसे। मैं तो कम जानती है, मगर अपने मामा से सुना है और कुछ पढ़ा भी है। अपने स्वाभिमान के लिए हिन्दू स्त्रियों के सामने सीताजी का ऊँचा आदर्श है। चाहे रामचन्द्रजी के मन में दर्भावना थी या समाज के मन में. सीता जैसी उच्च विचार की त्यागी महिला को निकाल बाहर किया गया, लेकिन सीताजी ने राम की व्यवस्था को फिर स्वीकार नहीं किया और पथ्वी-गर्भ में समाकर अपना विरोध भी प्रकट किया।'

"इसका मतलब यह है कि हिन्दू स्त्री का प्यार और कुर्बानी, दूसरे धर्म और समुदाय की स्त्रियों के प्यार से श्रेष्ठ है और हिन्दू स्त्रियों को अपने स्वाभिमान के लिए सदा आत्महत्या कर लेनी चाहिए ?'

ही "मैं तो यह कह रही थी कि हिन्दू स्त्री के लिए उसका पति-प्यार सबकुछ होता है। उस प्यार के लिए वह कोई भी कुर्बानी कर सकती है और उस प्यार से वह बहुत-सी प्रतिकूल परिस्थितियाँ बदल भी देती है। मगर इसका यह मतलब कतई नहीं कि दूसरे समुदाय की स्त्रियों का प्यार और त्याग छिछला या कम दमदार होता है। हर जगह स्त्री तो स्त्री ही है, उसकी भावनाएँ एक स्त्री की भावनाएँ हैं। स्त्री चाहे कोई भी हो, निम्न वर्ग की हो, कुँवारी लड़की हो, वेश्या हो, अगर सचमुच यह प्यार करती है तो उसका भी प्यार एक हिन्दू स्त्री के प्यार की तरह गहरा और सम्पूर्ण होगा। मैं अपने घर में और घर के बाहर तरह-तरह की स्त्रियों को देखती थी, उनके प्यार को महसूस करती घी और अब तो अपने अन्दर भी महसूस करती हूँ। हर औरत का प्यार सृष्टि से जुड़ा है, कोई भी स्त्री उसे नकार नहीं सकती, उसके लिए वह पूरी सच्चाई है, उसे छिपा नहीं सकती, उसे झुठला नहीं सकती। स्त्री के लिए सबसे बुरा समय वह होता है जब

उससे जबरदस्ती प्यार प्राप्त करने की कोशिश की जाती है, जब उसके प्यार का गलत अर्थ लगाया जाता है या उसका गलत नतीजा प्राप्त करने की कोशिश की जाती है।'

"नीलेश, वह जिस तरह निःसंकोच बोल रही थी, मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा था। यह सब तुम्हें सुनाने को बेचैन था, इसलिए इतने विस्तार से बता रहा हूँ। मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसका चेहरा उसी तरह हँस रहा था। क्या वह इसमें अपने भय को, क्रोध को, व्यंग्य-विद्रूप को या अपने किसी आक्रामक भाव को छिपा रही थी? मैं कुछ भी नहीं कह सकता। उसने एक बार भी मेरी आँखों में नहीं देखा था अभी तक। कुछ क्षणों के लिए अचानक ऐसा लगा कि उसके चेहरे पर भर्राहट की हल्की लकीरें मचल गई हैं, लेकिन शीघ्र ही हँसी का सपाटपन आ गया। मैंने फिर खीझकर व्यंग्यपूर्वक पूछा :

'ऐसा लगता है, तुम वाद-विवाद प्रतियोगिता की बहसों में भाग लेने की अभ्यस्त हो ! और कोई खास बात अपने बारे में बता सकती हो ?'

"मेरे इस प्रश्न पर वह चौंकी पहली बार। और पहली ही बार उसने मेरी आँखों में देखा। अब पहली बार ही होंठों में मुस्कुराकर उसने कहा, 'जब पाँचवीं कक्षा में थी, उस समय शामिल हुई थी। विषय था-'कलम बड़ी है या तलवार ?' मैं पूर्वी जिलों में प्रथम आई थी। दूसरी बार शामिल हुई थी आठवीं कक्षा में। तब विषय था- 'राष्ट्रीय और सामाजिक उन्नति तथा नारी शिक्षा।' समूचे यू.पी. में प्रथम नहीं, द्वितीय आई थी। कक्षा में भी वाद-विवाद प्रतियोगिता और बहसें होती थीं और मैं उनमें भाग लेती थी। घर पर हमारे छोटे मामा श्रीधरजी मुझसे कुछ ही वर्ष बड़े हैं। वह इलाहाबाद में पढ़ते हैं एम.ए. में। वह कांग्रेस के सदस्य बन गए हैं। वह समूचे देश की उन्नति चाहते हैं, सभी धर्मों एवं जातियों के बीच एकता चाहते हैं। स्त्रियों की उन्नति चाहते हैं। उनसे हमारी बातें होती थीं, बहस भी। उन्हीं के बढ़ावा देने से मैं स्कूल के कार्यक्रम में भाग लेती थी- खेलकूद में भी। लेकिन पति-पत्नी की ऐसी समस्याओं पर कभी वहस नहीं हुई...

अच्छा। फिर ?' मैंने यान्त्रिक ढंग से पूछा, नीलेश ! फिर वह नि:संकोच बोलीार हर जवान लड़की इन प्रश्नों पर कुछ-न-कुछ सोचती ही है। पढ़ी-लिखी लड़की इन समस्याओं

से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ेगी और उन पर तर्क से सोचने की कोशिश करेगी। लेकिन यहाँ मैं कोई किताबी या रटी हई बात नहीं कह रही हैं। जब आपने मुझसे अपनी कहानी बताई और सवाल पूछा तो पहले मैं बहुत डरी और रोने लगी लेकिन जल्दी ही मुझमें पता नहीं कहाँ से हिम्मत आ गई। मेरे अन्दर कोई रोशनी जल उठी। मैं स्वयं से कहने लगी- मैं हिन्द स्त्री हैं। सीताजी की तरह मैं हमेशा हिन्द स्त्री ही रहँगी मेरे पास हर चनौती का जवाब है, मुझे हर किस बात का ? स्त्री तो स्त्री है. हर धर्म और समुदाय की स्वाभिमानी स्त्री अपनी चुनौतियों का जवाब दे सकती है। मेरी इज्जत सिर्फ अपने स्वाभिमान से ही नहीं, बल्कि देश-दुनिया की दूसरी सभी स्त्रियों की इज्जत और स्वाभिमान से जड़ी है। दसरे धर्म-सम्प्रदाय की किसी भी स्त्री की बेइज्जती से मेरी इज्जत नहीं बढ़ सकती। यह सब सोचते ही ख्याल आसानी से मेरे दिमाग में आने लगे...'

नीलेश इतना कहकर वह रुक गई। यह अब साहस के साथ मेरी आँखों में देख रही थी। इसके बाद अचानक उसके चेहरे पर अनेक रेखाएँ काँप उठीं तिनकों की तरह और देखते-ही-देखते वह उठी और सिर झुकाकर, तेजी से कमरे से बाहर निकल गई।"

उरोवर्धन बोलते-बोलते थक गया। वह फिर पंखा उठाकर चारों ओर डुलाने लगा। नीलेश ने दोनों हाथ उठाकर जोरों से अँगड़ाई ली, जैसे कोई लम्बी फिल्म खत्म हुई हो।

"नीलेश," गोबर्धन ने धीमे स्वर में कहा, "तुम अब खा-पीकर आराम करो, शाम को जाना। आज तो बन्दी है, आगे फुरसत मिले या न मिले। मैं माताजी के पास अपने आदमी से अभी चिट्ठी भेजवा रहा हूँ। मैं बाद में चलकर उनसे माफी माँग लूँगा। कुछ और गपशप करेंगे, बहुत मुश्किल से

मिले हो, कनिया से भी मिलना है तुम्हें...।"

गोबर्धन की जिद के सामने नीलेश की एक न चली। दोनों ने एक-एक गिलास फिर पानी पीया। फिर गोबर्धन बोला :

"यार नीलेश, यह बताओ कि मैं कनिया से सहज-सामान्य होना चाहता हूँ, मगर ऐसा हो नहीं पा रहा हूँ। उसका भी यही हाल है। उसने तो मुझे सचमुच परमेश्वर ही बना दिया है। मैं उसको अपने निकट लाना चाहता हूँ और स्वयं उसके निकट जाना चाहता हूँ, मगर ऐसा नहीं हो पाता। क्या सचमुच, मैंने उसे अपने व्यवहार से डरा दिया है? मैंने उसे कई बार मना किया है, लेकिन वह साँझ-सवेरे मेरे चरण स्पर्श करती है, रात में देर तक मेरे सिर में और बदन में तेल लगाती है। यह सब क्या है ? मान लेते हैं कि सास-ससुर के लिए तो ठीक है यह सब । पति के साथ इस तरह गम्भीरता और अच्छे भाव ? यह भक्ति है या प्रेम? या मजाक ? मैं भी उससे खुल नहीं पाता, उसके प्रति सहज नहीं हो पाता। ढेला और मैं, एक-दूसरे के प्रति कितने सहज थे। एक घटना सुनोगे ?" "सुनाओ..." नीलेश ने होंठ बिचकाकर कहा। フット

"मैं एक दिन दोपहर ढेला के यहाँ पहुँचा तो वह सर-दर्द से बहुत परेशान थी। वेश्याओं को स्वयं अपनी देखभाल करनी पड़ती है, और कौन करे? उसने सिर-दर्द की गोलियाँ खाई थीं, पर आराम नहीं हुआ था और रो रही थी। उसके मना करने पर भी मैं उसका सिर अपनी गोदी में लेकर दवाने लगा। अपने पिताजी की बीमारी में, मुझे उनका सिर और हाथ-पैर दबाने का काफी अभ्यास है। अंगुलियों के संचालन का तरीका मालूम हो तो बड़ा-से-बड़ा बथा दूर हो सकता है। बोर तो नहीं हो रहे हो ?"

"नहीं, नहीं, काफी दिलचस्प है। कैसा कैसा अनुभव है तुम्हारे पास।" नीलेश हँस रहा था। "हाँ, मैंने अँजुरी में गुलरोगन का तेल लेकर उसके सिर के बीच में चाँद पर रखकर दबाया। तीन-चार बार इस तरह चाँतने से उसकी लाल-लाल खुली आँखें बन्द हो गईं। फिर उँगलियों के बहुत

के संचालन से तेल को सिर में चारों ओर फैलाकर मालिश करने लगा। बहुत जल्दी तेल सूख गया, नीलेश ! एक बार फिर मैं और तेल लेकर उसके सिर पर दवाकर मालिश करने लगा। बीच-बीच में उसकी कनपटियों और पलकों को हल्के-हल्के दवा देता। वह आराम मिलने से बेहद सुस्त पड़ गई। उसके होंठ बिचक गए। फिर कुछ ही देर में नींद के अथाह सागर में डब गई। मैं तब उसका

सिर अलग तकिया पर रखकर और उसकी माँ के सपर्द कर वहाँ से चला आया था।" "तुम्हारी बात सुनकर मेरे सिर में दर्द होने लगा।" नीलेश ने ठहाका लगाया।

"आओ. मेरे पास लेट जाओ. मालिश कर दें..."

"नहीं गोबर्धन, वह सुअवसर नहीं आया है अभी," नीलेश और जोर से हँसते हुए बोला "तुम अपना किस्सा जारी रखो।"

"ठीक है, तो सुनो। मैं कहता हूँ नीलेश कि ढेला से मेरा रिश्ता टूट गया, लेकिन कनिया से मेरा रिश्ता तो सहज हो सकता है। ऐसा पता नहीं क्यों नहीं हो रहा है। इस सहजता का एक और उदाहरण दे रहा हूँ। वेला से कभी हँसी-मजाक की बातें होतीं। लतीफे सुने-सुनाए जाते, कोई मजाकिया संस्मरण या बातें। कभी मजाकिया बकवास। उसे हँसाने के उद्देश्य से एक बार मैंने एक बहुत ही उल-जलूल सवाल उससे पूछ लिया, 'ए, अगर मर्द न होते तो तुम लोग क्या खातीं ?' मैंने सोचा था इस बार खूब हँसी होगी। हर व्यक्ति के मुँह से कभी-न-कभी अटपटी बात निकल ही जाती है, जिसका असर उल्टा ही होता है। इसीलिए बहुत अधिक नहीं बोलना चाहिए, वह भी बिना सोचे-समझे। अचानक ढेला गम्भीर हो गई और क्रोध से उसकी आँखें बाहर निकल आईं। उसने दाँत पीसकर जोर से एक तमाचा जड़ दिया मेरे गाल पर। मैं तिलमिला गया और गुस्से में उठकर अपने घर चला आया। कुछ देर बाद मुझे अफसोस होने लगा। प्रेम के गहरे रिश्ते में ऐसा मजाक कैसे कर सका ? दूसरे दिन पहुँचने पर उसने मेरे घुटनों पर सिर रखकर कहा, 'मुझे माफ करो, बहुत गन्दी हरकत की थी मैंने तुम्हारे साथ। तुमने ठीक ही कहा था, सचमुच तुम मर्दों का बड़ा

एहसान है हम रंडियों पर।' मैं बड़ा शर्मिन्दा हुआ और बार-बार उससे माफी माँगी मैंने। फिर हमारा रिश्ता सहज सामान्य हो गया..."

"यह तो बाताओ कि भाभी के बारे में क्या कह रहे थे..." नीलेश ने उसकी बात काट दी। "माफ करना, मैं कुछ अनर्गल बोल गया हूँ। मैं तो ढेला के बारे में सोचता भी नहीं। मुझे कनिया पसन्द भी है। लेकिन मुझे उसका प्यार चाहिए, सच्ची जीवनसंगिनी की तरह। लेकिन मुझे प्यार नहीं, भक्ति दे रही है। मैं अपने को परमेश्वर नहीं समझ सकता। मुझे तो कभी-कभी लगता है कि यह भक्ति बनावटी है, उसका सभी व्यवहार भी और दरअसल वह मुझे ओछा समझती है। मुझे यह सब अटपटा लगता है और मैं स्वयं उसके प्रति सामान्य नहीं हो पाता। क्या करूँ, समझ में नहीं आता । तुम मेरे सबसे घनिष्ठ दोस्त हो, तुम क्या कोई राय दे सकते हो ?"

नीलेश अपने स्वभाव के अनुसार सिर झुकाकर और आँखें बन्द करके पलकों पर फिर अपनी उँगलियाँ फेरने लगा। अन्त में सिर उठाकर बोला :

"मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि तुम मुझसे कैसी सलाह चाहते हो। मुझे इस सम्बन्ध में कोई अनुभव नहीं, जानकारी नहीं है। अच्छा तो यह होता कि तुम इस बारे में स्वामी वीरेश्वरानन्द या उन्हीं की तरह किसी अन्य बुजुर्ग और योग्य व्यक्ति से राय लेते।"

"यार, यह तो ठीक है, लेकिन तुम भी तो कुछ कह सकते हो। यह मैं जान चुका हूँ कि वह पढ़ने की शौकीन है। छोटे मामा कांग्रेसी हैं लेकिन बड़े मामा कट्टर आर्यसमाजी हैं पुराने ख्याल के और उन्हीं के जोर देने पर वह मुनीमी सीख चुकी है। हमारे यहाँ औरतें मुनीमी-चुनीमी नहीं सीखतीं, पता नहीं किस उद्देश्य से यह ट्रेनिंग दी गई है। चलो, यह भी ठीक है, व्यापार के काम में उससे यदाकदा सहयोग मिल सकता है। लेकिन इन सबसे अलग मैं उससे वैसा ही प्यार प्राप्त करना चाहता

हैं जैसे डेला से मिला था। वैसा ही प्यार उसे देना भी चाहता है। क्या पत्नी होने का अर्थ अपनी आकांक्षा में तटस्थ और भावनाशून्य होकर

सिर्फ शरीर का दान है. जैसे कोई अन्धविश्वासी औरत झाड़-फेंक, पूजा-मन्त्र की जादुई शक्ति में आस्था रखकर असम्भय फल की आशा में किसी ढोंगी, लम्पट साधु को देह समर्पित कर देती है। मैं इन पुरुषों में नहीं हैं, जिनको स्त्री की सिर्फ देह ही चाहिए। स्त्री और पुरुष उन्हीं को कहना चाहिए जो यदि प्यार करें तो अपने प्यार की भावना को निश्छल मानवीय ढंग से प्रकट करने की क्षमता का प्रदर्शन करें, उसे चरितार्थ करें ताकि दोनों को गहरा आत्मिक सुख मिल सके। ढेला चाहे जो भी हो, उसमें यह सच्चाई है...।"

गोबर्धन चप होकर नीचे सिर झुकाकर बिस्तर की चादर को गौर से देखने लगा। नीलेश भी सहसा कुछ बोल न सका। इस बीच उनके आस-पास उभरे सन्नाटे में दर परिवार कक्ष से खर-पर की हल्की आवाज आने लगी. जिस पर कुछ क्षण पर्व उनका ध्यान ही नहीं गया था। नीलेश ऊपर कैवार पर आँखें टाँगे रहा सोचता हुआ-सा। अन्त में धीरे-धीरे उदास स्वर में बोला : "क्या कहूँ गोबर्धन! कोई राय देने लायक मेरा मुँह नहीं है, फिर भी तुम्हारी और कनिया भाभी

की बातया करें और कुछ अन्य भारतीय परिवारिक बातें जानकर भी, मेरे दिमाग में कई तरह के ख्याल आ रहे हैं। ये विचार अभी-अभी आए हैं, हो सकता है इनका कुछ महत्त्व न हो। तुममें पर्याप्त विवेक है और आशा है तुम अपने विवेक से ही काम लोगे। एक बात तो मुझे यह समझ में आती है कि यदि तुमने पुराना जीवन छोड़कर नया जीवन अपना लिया है तो इस जीवन की पुराने जीवन से तुलना करना निरर्थक है। ढेला और कनिया भाभी में और दोनों के जीवन में काफी अन्तर है, चाहे उनकी उम्र और मन की सच्चाई एक ही जैसी क्यों न हो। ढेला दूसरे परिवार और दूसरी परम्परा में पली-बढ़ी है। वह पहले से ही बहुत कुछ जानती है, वह प्रशिक्षित है और पैसे से सबके लिए खुली है, वहाँ जो जाता है वह कीमत चुकाकर सबकुछ प्राप्त कर सकता है। अब उसे वह रंडीबाजी कहें या प्रेम, लेकिन वह प्रेम भी उस रंडीबाजी से ही सम्भव है या उसी में ही निहित है जो एक वेश्या की रोजी-रोटी है। आदर्श और सपनों में रहनेवाली अनजान अनुभवहीन कनिया भाभी की डेला से

तुलना क्यों ? उनसे वैसी आशा क्यों ?" "यह झूठ है। मैं वैसी आशा नहीं करता।" गोबर्धन ने मुँह और नाक फुलाते हुए प्रतिवाद किया।

"एक ख्याल और आता है गोबर्धन, ढेला से तुम्हारे प्यार, सम्बन्ध विच्छेद और बाद में वैदिक रीति से परम्परागत शादी करने के तुम्हारे निश्चय में कनिया भाभी की कोई भी भूमिका नहीं थी, फिर पहली ही रात के नाजुक मौकों पर बिना पूछे ही अपना अप्रिय किस्सा क्यों सुना दिया तुमने ? क्या तुम एक अनजान निर्दोष स्त्री को अपनी उस सच्चाई, ईमानदारी, आत्म-त्याग, पुरुष श्रेष्ठता और आत्म-महत्त्व से प्रभावित करना चाहते थे, जिन पर तुम्हें अगाध विश्वास भी है। ठीक है, किसी से प्रेम हुआ और टूट गया या उसी ने दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर किया, तो उस प्रेम का बोझ क्यों ढो रहे हो ? और अगर बोझ ढोना ही था तो शादी क्यों कर ली? और मान लिया शादी तुम्हारी मजबूरी थी घर-गृहस्थी चलाने के लिए तथा ऐसी स्थिति में भी यह बोझ ढोना तुम्हारी बाध्यता

है तो तुम यह क्यों चाहते हो कि तुम्हारी पत्नी भी तुम्हारे इस बोझ को जीवन-भर ढोती रहे?" लगी। "तुम अपनी बात को गलत दिशा में ले जा रहे हो।" गोबर्धन की आँखों से नाराजी झाँकने

"मेरी बात तो सुन लो। हो सकता है मेरी बातें गलत हों। यदि सुनना नहीं चाहते तो इन्हें सुनाने का मोह नहीं है मुझे।"

"अरे नहीं, नहीं, तुम जो चाहते हो जरूर सुनाओ। अपने हस्तक्षेप के लिए माफी चाहता हूँ।" गोबर्धन हँसने लगा।

"ठीक है। तीसरा ख्याल मेरे दिमाग में यह उठता है कि हिन्दू पत्नी ही तो मैं कनिया भाभी। वैदिक रीति से शादी हुई है तो कौन-सी पत्नी बनेंगी? अपने परिवार में देख-सुनकर और अपनी माँ तथा परिवारजनों. रिश्तेदारों से सीखकर हिन्दू पत्नियों के संस्कार लेकर ही तो आई हैं। अपने प्रतियों का दुर्व्यवहार-निर्ममता, क्रूरता, धोखेबाजी, चढ़याँकई, पाखंड आदि लगातार सहने के बावजूद असंख्य गरीब, धनी, अशिक्षित हिन्दू पत्नियाँ

अपने संस्कार नहीं छोड़ पातीं। फिर भी, मुझे लगता है. कनिया भाभी ने स्वाभिमान और आत्म-सम्मान के साथ तुम्हारे सवाल के उत्तर में अपने पति धर्म विचार कर्म और दृष्टिकोण की व्याख्या प्रस्तुत कर दी है। उनके हिसाथ से उनका पत्नी-धर्म एक व्यापक दर्शन है अन्य सभी समुदायों की स्त्रियों और व्यापक मानव समाज से जुड़ा। और तुम्हें यह चीज परेशान इसलिए कर रही है कि एक दबी-पिसी हिन्दू स्त्री से तुम्हें शायद ऐसे स्पष्ट, साहसिक उत्तर की आशा नहीं थी और इसके साथ यह भी मालूम नहीं कि तुम्हारा पति-धर्म क्या है। ढेला के सिर में तेल लगाना अपने प्यार की सहजता कहते हो और भाभी की इसी क्रिया को भक्ति, पिछड़ापन, बनावटीपन और अलगाव समझते हो। तुम अपने को राष्ट्रवादी, प्रगतिशील, मानवीय, सहज और सच्चा प्रेमी कहते या समझते हो और भाभी के प्रेम को भय-जनित भक्ति की मजबूरी ! ऐसा क्यों ? क्या बलशाली, निर्णायक और निर्मम होने तथा पारिवारिक, सामाजिक और सरकारी कानूनों की शह मिलने के नतीजे से उत्पन्न पुरुष दम्भ की वजह से ?"

"नीलेश !" गोबर्धन ने आगे झुककर अपनी दोनों मुट्ठियों में उसकी कलाई पकड़ ली। उसका चेहरा फक पड़ गया और वह डरकर नीलेश की आँखों में देखने लगा।

नीलेश अपनी कलाई छुड़ाकर अनजान हल्की मुस्कुराहट के साथ बोला :

"कुछ और भी बातें दिमाग में आ रही हैं। प्रेम क्या है, भक्ति क्या है, और इन दोनों में अन्तर क्या है ? सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रेम किसी-न-किसी रूप में है। भक्ति सृष्टि में बहुत बाद में आई। मेरे ख्याल में सृष्टि, समाज, सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व प्रेम के कारण ही अब तक विद्यमान है। प्रेम क्या किसी अन्य से अभिन्न होने की इच्छा का द्योतक नहीं है? प्रेम का रूप, रंग, गन्ध क्या है, यह कौन जानता है? वह सिर्फ अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों और व्याख्याओं द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है। हिन्दू धर्म में सगुण उपासना, निर्गुण उपासना, नाम-स्मरण, प्रार्थना, कीर्तन आदि ईश्वर-प्रेम के विभिन्न रूप हैं। दूसरे धर्मों में भी अनेक तरीके, रास्ते और शैलियाँ हैं। किसी भी तरीके या रास्ते के बारे में आप नहीं कह सकते

कि वह ईश्वर-प्रेम का सही माध्यम नहीं है। यदि भक्ति स्वयं में कोई प्रेम नहीं बल्कि ईश्वर-प्रेम की अभिव्यक्ति की ही एक शैली है तो पत्नी की पति भक्ति क्या उसके पति प्रेम की अभिव्यक्ति की एक शैली नहीं कही जाएगी? पत्नी या पति अपने प्यार की अभिव्यक्ति के लिए एक-दूसरे के प्रति कैसा आचरण करते हैं, सेवा, भक्ति या प्यार यह सब उनकी निजी बातें हैं और उनका महत्त्व है। यदि हृदय में प्रेम नहीं है तो उसकी अभिव्यक्ति की कोई कोशिश पाखंड के अलावा क्या होगा ? कनिया भाभी का ठीक कहना है कि स्त्री का प्रेम सृष्टि की इच्छा और नियति से जुड़ा है, इसलिए उसकी स्थिति मर्द के प्यार की तरह आधी-अधूरी नहीं होती है। वह अपनी असलियत को छिपा नहीं सकती, चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक। एक बात और..."

"हाँ-हाँ, बताओ। पहले तो तुम बोलने में काफी संकोच करते थे। लेकिन अब तो खूब बोलने लगे हो।" गोवर्धन के हतप्रभ चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कुराहट काँप गई।

"नहीं गोबर्धन, मेरी कमजोरी अब भी मेरे साथ है। पता नहीं आज क्या बात है। मेरा कहना है कि कई जगह पतियों की ओर से ही समस्याएँ उठती हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी पति वैसे ही होते हैं। अपनी पत्नियों को प्यार करनेवाले सामान्य हिन्दू पतियों की संख्या कम नहीं है। जैसे हिन्दू पत्नियाँ अपने पतियों का नाम नहीं लेतीं, उसी तरह पुरानी दाम्पत्य नैतिकता को माननेवाले

आज भी अनेक पति अपनी पत्नी का नाम नहीं लेते। 'तुम' या 'त' सम्बोधन वे भूलकर भी नहीं करते। पत्नी को 'राउर' और 'रउरा' काहते हैं। भोजपुरी क्षेत्र में तो इस शहर और गाँव-गाँव में यह परस्पर प्यार और सम्मान देखने को मिल जाएगा। एक बजर्ग को मैं स्वयं जानता है जो अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में उन्हीं की तरह निर्जल तीज व्रत रहते हैं और शिव-पार्वती की पूजा करते हैं। यदि भक्त और भगवान के महावरे में कहना ही पड़े तो जिस तरह भगवान सच्ची भक्ति (प्रेम) से

प्रसन्न होकर सहज भाव से अपने भक्त को अपनाता है. उसी तरह पति भी पत्नी के प्रति सहज प्रेम भाव क्यों नहीं रख सकता ? लेकिन..."

" हाँ-हाँ, रुक क्यों गए ?"

से "यार गोबर्धन, यह सब मैं कहना नहीं चाहता। मुझे अजीब लगता है, जैसे यह कहने का मुझे अधिकार न हो। फिर भी इतना कह दिया है तो बाकी भी सुन लो। अनेक हिन्दू पति अपनी पत्नी परमात्मा की ऊँचाई पाकर स्वयं परमात्मा से भी ऊँचा बनने की कोशिश करते हैं या हो जाते हैं। जो हैं नहीं और जो हो भी नहीं सकते, उस स्थिति तक पहुँचने की कोशिश में उस लम्पट, ढोंगी साधु की गति को प्राप्त होते हैं, जिसका तुम कुछ देर पहले जिक्र कर चुके हो-पत्नी या स्त्री-प्रेम दूर, एक छद्म धोखेबाज। सच्चा स्त्री-पुरुष प्रेम या पति-पत्नी प्रेम क्या सम्भव नहीं है ? है, इसी दुनिया में है, जो साथ-साथ रहने, परस्पर प्यार करने और किए जाने, मिलजुलकर कार्य करने, कुटिल भाव से दूर रहकर एक-दूसरे की भावनाओं को समझने और आदर करने, निरन्तर संवादरत होने और ऊँचे उद्देश्य के लिए साथ-साथ जीवन संघर्षों में जूझने से सम्भव है।" से

नीलेश चुप हो गया। उसके चेहरे पर थकान नजर आई। गोवर्धन भी उससे सीधे आँख नहीं मिला पाया। बीच-बीच में एक क्षण के लिए उसकी ओर नजर फेरकर दरवाजे के बाहर देखने लगता। शायद यह नीलेश की बातों पर ही गौर कर रहा था कि बात क्या-क्या हो गई, कहाँ से कहाँ पहुँच गई।

लेकिन देर तक उन्हें इस स्थिति में बैठना नहीं पड़ा, क्योंकि इसी समय गणेश तेजी से आकर बोला:

कि "सरकार, खाना तैयार है..."

"ठीक है, यहाँ पानी दे जाओ हाथ-मुँह धोने के लिए। और जल्दी से खाना लगवाओ।"

मिली गणेश शीघ्रता से बारी-बारी दोनों मित्रों के लिए चट्टियों (काठ की खटपट्टी) के दो जोड़े और पानी दे गया। रसोईघर के साफ-सुथरे, धुले-

पोंछे बरामदे में दो पीढ़े अगल-बगल रखे थे। रसोईघर से आनेवाली कई प्रकार के व्यंजनों की मिश्रित खुशबू के बीच वे चट्टियाँ निकालकर पीढ़े पर बैठ गए। भोजन आने में विलम्ब नहीं हुआ। कनिया फूल की पहली थाली नीलेश के सामने रख गई। यह हल्के नीले रंग की लाल बार्डर वाली साड़ी पहने थी। माथे पर हल्के घूँघट के बीच से उसका शर्म से बाई ओर घूमा चेहरा दप-दप कर रहा था। हल्की पसरी नाक की नग-जड़ी सोने की कील जोन्ही की तरह चमक गई। नीचे झुकते समय, दोनों हाथों में दो-दो सोने के कंगनों के बीच लाल-लाल चूड़ियों की खनक के साथ खूबसूरत गर्दन की झलक दिखाई पड़ी। जब वह आँचल सँभालकर दूसरी थाली के लिए जाने लगी, गोबर्धन ने कहा :

"यह मेरे खास मित्र नीलेशजी हैं, वैसे मुझसे दो वर्ष छोटे होंगे। पढ़ने में बहुत तेज, मेरे जैसे फिसड्डी नहीं, इसलिए तो मैंने इन्हीं के साथ थर्ड डिवीजन में हाई स्कूल किया। मैं घर में मौजूद न भी रहूँ तो आने पर इनकी विशेष खातिर-बात..."

नीलेश बीच में बात काटकर बोला, "गोबर्धन, कैसी वाहियात बात कर रहे हो। यह तो घर ही है। भाभीजी, आप मेरा नमस्कार स्वीकार कीजिए। आप मेरे प्रिय मित्र की पत्नी हैं और मेरी आदरणीय भाभी हैं, इसलिए मैं यहाँ आपसे स्वयं माँगकर कुछ भी खा सकता हूँ।" हुयी

काकानीलेश ने गौर किया कि जब से उसने कनिया के बारे में विचार प्रकट किए हैं, गोवर्धन गम्भीर बना हुआ है। यहाँ भी नीलेश से परिचय कराते समय भी उसकी विनोदप्रियता बनावटी ही लगी।

पूरा खाना परोसकर कनिया रसोईघर के अन्दर चली गई। बीच-बीच में यह कड़ाही में छान-छानकर गरम-गरम पूड़ी-कचौड़ी देती गई। एक-एक व्यंजन-चीज स्वादिष्ट थी, यहाँ तक कि एक बहुत ही छोटी-सी पथरी में परोसा गया, भिगोए फूले चने का चरपरा अचार भी। खुशबूदार मीठे चावल भी शानदार थे, लेकिन सर्वोतम था 'लेंढ़ा का नकली।' तकनीकी

रूप से तो यह शुद्ध कटहल की शोरवेदार सब्जी थी, लेकिन कई कट्टर वैष्णव घरों में जहाँ गोश्त का नाम भी लेना वर्जित है, उसी की प्रतिद्वन्द्विता या नकल में उपर्युक्त अनोखा नामकरण हुआ है, इस कल्पना के साथ कि लेंढ़ा (कटहल का अविकसित, बतिया रूप) की शोरबेदार सब्जी गोश्त या कलेजी जैसा कटकट मजा देगी।

भोजन का और भी आनन्द इसलिए आया कि आसमान अचानक अनजान बादलों से घिर गया और हवा चलने लगी। लेकिन नीलेश को यह देखकर आश्चर्य-भरा कष्ट हुआ कि जब-जब कनिया बरामदे में आई, वह दो-एक बार दबी सशंकित दृष्टि से गोबर्धन को देख लेती जो अब भी बेहद गम्भीर बना हुआ था। क्या वह ऐसा इसलिए हो रहा है कि एक पिछड़े हुए संयुक्त परिवार में, जहाँ उसके माँ-बाप वहाँ से कुछ दूर ही सही एक अन्य कमरे में विद्यमान हैं, उसकी पत्नी एक विजातीय नौजवान के सामने आ-जा रही है तथा उसे जोर-जोर से या विनोदपूर्ण ढंग से ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जो उन्हें सुनाई दे जाए? लेकिन इसकी जिम्मेदारी तो उसी पर है, वह कमरे में ही भोजन नौकर से मँगा लेता !

वह भोजन करता रहा, लेकिन उसका दिमाग दूसरी ओर दौड़ता रहा। अजीब लगा उसे कि कनिया जैसी बुद्धिमान और साहसी लड़की ने नारी स्वाभिमान के लिए सीताजी का तो उदाहरण प्रस्तुत किया लेकिन इस समय वह अत्यधिक विवश दिखाई दे रही है। अवश्य गोबर्धन की बातों से, उसके बीते हुए जीवन से उसे काफी पीड़ा पहुँची है और उसके मन में अनेक भय, संशय और दुश्चिन्ताएँ उत्पन्न हो गई हैं जिनको बढ़ाने में भी गोवर्धन ही सहायक हो रहा है और इस परिस्थिति की व्याख्या के लिए रामायण कथा का एक प्रसंग पता नहीं कैसे उसके दिमाग में कौंध उठा। एक नवविवाहित पत्नी के लिए पति का प्रेम, सहानुभूति और आश्वासन सबसे बड़ी ताकत और सहारा होता है, लेकिन जब पति ही अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अहंकार में असंवेदनशील, कठोर और क्रोधी हो जाता है तो वह पत्नी के लिए 'बानर राज बालि' साबित होता है, जो उसकी आधी शक्ति हर लेता है और वह अपने स्वाभिमान की रक्षा करने लायक भी नहीं रह जाती। इसीलिए क्या सीताजी ने रामचन्द्र के सामने आना स्वीकार नहीं किया? यह गोबर्धन को क्या हो गया है? यह कनिया को

इतना कष्ट कैसे दे गया ? क्या वह एक सुन्दर वेश्या को प्यार करने के कारण अपने को बहुत

ऊँचा और अपनी पत्नी को साधारण और तुच्छ समझ रहा है ? दोनों भोजन के बाद उठकर उसी कमरे में चुपचाप चले आए। नीलेश के चेहरे से खिन्नता-भरी उदासी साफ झलक रही थी। निश्चय ही यहाँ आने के लिए वह पश्चाताप कर रहा था। फिर धीमे स्वर में बोला :

"मैं अब चलूँगा..."

"क्यों ? अभी शाम कहाँ हुई ? कड़ी धूप फिर निकल आई है.

"हार्डी लोगों को धूप-खूप नहीं लगती..." नीलेश ने एक पुराने मजाकिया मुहावरे का इस्तेमाल अगर

करते हुए बात को उड़ाने की कोशिश की। "और कनिया से कौन मिलेगा

"नहीं गोबर्धन, उनको मेरी वजह से काफी कष्ट मिल चुका है। परिचय हो ही गया। तुम भी काफी थक गए हो, तुम्हें भी आराम की जरूरत है...।"

गोबर्धन कुछ क्षणों तक नीलेश को घूरता रहा, जैसे उसकी भावनाओं को पढ़ने की कोशिश कर रहा हो। फिर धीमे, करुण स्वर में बोला :

"नीलेश, मुझे माफ करो। मैंने आज तुम्हारे साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया। जहाँ तुम्हारे साथ बैठकर प्रेम से भोजन करना था, मैं मुँह फुलाए रहा। शादी के बाद मुझमें एक अजीब दुष्टता, कुटिलता और निर्ममता भर गई है. नीलेश इसी वजह से मैंने कनिया के साथ दुर्व्यवहार किया और उसका समर्थन काने की वजह से तुम्हारे साथ भी। पता नहीं तुमने क्या-क्या सोचा होगा। लेकिन तुम्हारी बातों ने मेरी आँखें खोल दी हैं। उनसे कनिया को समझने में भी बड़ी मदद मिली है। मैं अब सोचता हैं कि यदि कनिया जैसी बुद्धिमान, समझदार पत्नी न मिलकर कोई नासमझ, दुष्ट स्त्री आ

गई होती तो मेरा क्या होता ? नहीं नीलेश, मुझे माफ कर दो

"उनको आराम करने दो..."

"नहीं नीलेश, तुम कुछ देर बैठो. सभी खा चुके हैं. सिर्फ वही बाकी हैं। आधा घंटा बाद जाकर मैं बुला लाऊँगा। तुम तब तक लेटे रहो।"

"तुम लेटो, मुझे दिन में नींद नहीं आती।"

गोबर्धन कुछ प्रतिवाद किए बगैर चुपचाप चित लेट गया। उसने आँखें बन्द करके माथे पर दोनों बाँहों की हथेलियाँ उलटकर रख दीं बाहर से आती तेज धूप की चमक से बचने के लिए। लेकिन करीब आधा घंटे बाद वह सहसा उठकर कमरे से बाहर निकलकर परिवार कक्ष की ओर चला गया।

दूर से ही कनिया को अपने पति के साथ आते देखकर नीलेश हड़बड़ाकर उठ गया। उसने चादर को हल्के से झाड़कर तख्त पर कायदे से फिर बिछाते हुए कहा, "आइए भाभी, आप इस पर ठीक से बैठ जाइए।"

" नहीं, आप..." कनिया की पतली-सी मीठी आवाज इससे अधिक नहीं निकली।

गोबर्धन के व्यवहार में इस बीच जादुई परिवर्तन हो चुका था। उसके होंठों पर एक प्यारी-सी मुस्कुराहट फैल गई थी और उसका चेहरा अत्यधिक आकर्षक दिखाई दे रहा था। उसने अचानक कनिया का हाथ पकड़कर खींचते हुए उसे तख्त पर बिठा दिया और फिर उसकी बगल में स्वयं बैठकर उसके गले में एक हाथ डालकर और नीलेश की ओर देखकर बाई आँख दबाते हुए बोला :

"आइए बीवीजी, आप जबसे आई हैं, मुझसे नाराज हैं। मेरे पास बैठने से इनकार क्यों ? देखिए यह मेरे छोटे भाई नीलेशजी हैं और आपके प्यारे देवरजी हैं। इनके आने की खुशी में एक गाना तो सुनाइए। इसी बहाने मैं भी सुन लूँगा।"

नीलेश हँसने लगा, लेकिन कनिया का चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कृत्रिम क्रोध से मुँह सिकोड़कर बदन के संचालन से गोबर्धन को अलग झटक दिया। नीलेश ने उसे इस बार ठीक से देखा। इस समय वह हल्के काही रंग की रेशमी साड़ी पहनकर आई थी। इसकी आँखें बड़ी नहीं थीं और गाल फूले हुए थे। वह लम्बी थी। दूर से आते समय वह पतली दिखाई दे रही थी, मगर समीप आने पर कमरे के नीचे उसके शारीरिक भारीपन और मजबूती का अन्दाजा होता है। चाँदी के 'काड़ा-छाड़ा' और बिछिया से सुशोभित उसके पाँवों के नाखून और किनारे लाल रंग से रंगे थे जो सीधे न पड़कर बाहर की ओर किंचित तिरछे पड़ते थे, जिससे उसकी कमर लचक जाती थी। नीलेश ने महसूस किया कि उसके सामने एक स्त्री है जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक गुणों को मिलाने पर अपने सम्पूर्ण प्रभाव में आकर्षक है एक पृथक अनोखेपन के साथ।

गोबर्धन अलग हटकर हँसते हुए बोला, "अच्छा भाई, मेरे साथ बैठना पसन्द नहीं तो न सही, मगर अपने देवरजी को कोई गाना तो सुना दीजिए। शादी के बाद पहली बार आए हैं।" "आप ही सुनाइए...।" कनिया ने तिरछी दृष्टि से अपने पति को देखते हुए हँसकर किंचित नखरीले अन्दाज में कहा।

गोवर्धन जहाँ बैठा था, उसी जगह उछलकर जोकर की तरह मुँह बनाकर बोला, "मैं और संगीत ! 'खर को कहा अरजगा लेपन, मरकत भूखन अंग ?' तब तो सभी हरिभक्त यह कमरा छोड़कर भाग खड़े होंगे।"

कनिया खिलखिलाकर हँस पड़ी. कल-कल स्वतः प्रवाहित सरिता की आवाज की तरह। उसकी अद्भुत दंत-पंक्ति विद्युत रेखा की तरह चमक उठी। गोबर्धन अचम्भे से उसको देखने लगा, सम्भवतः पहली बार उसकी ऐसी हँसी वह सुन रहा था। लेकिन शीघ्र ही गम्भीर होकर वह सिकुड़ गई. जैसे कछ याद आ गया हो।

नीलेश ने हँसते हुए कहा, "आप सुनाइए खरबुद्धिजी, हरिभक्त यहाँ से भागेंगे नहीं बल्कि वे भी आपको एक-एक भजन सुनाएँगे।"

"अच्छा तो सुनिए," गोबर्धन ने गम्भीर होकर और कई बार गला खैखारकर कहा, "यह चार लाइनों का बिरहा है। सहानुभूति से सुनिए।"

उसने दाहिने कान के छिद्र में सबसे बड़ी अंगुली रखकर मोटे स्वर में गाना शुरू किया: "चानवा (चाँद) के घेरे ला बदरिया रे

बदरियाऽऽ आ आ आ आ आ आऽऽ
लंका के घेरे हनुमाऽऽ आ आ आ आ न
एक से सहस्र गोपी घेरे ली कन्हैयाजी ि
केऽ ए ए ए ए ए एडडड
माँगे ली बँसुरिया बरदाऽऽ न होऽ
ओ ओ ओ ओ माँगे ली बँसुरिया बरदाऽ
आ आ आ आ आ आ आ आ नऽऽ"

गोबर्धन ने चुप होकर स्वयं ताली पीटी। उसका कंठ मीठा नहीं था, लेकिन गदहे की तरह कर्कश भी नहीं। खास बात यह कि वह चरवाहों के इस बिरहा राग की लीक को शुरू से आखिर तक पकड़े रहा, कहीं भी छोड़ा नहीं। और सुनने में भी वह अच्छा लगा।

"वाह, तुम तो छिपे रुस्तम निकले। कब चरवाही की थी ?"

"बस, अब छोड़ो यह सब। अब कार्यक्रम आगे बढ़ाओ। या तो कनियाजी सुनाएँ अथवा नीलेशजी।"

कनिया की आँखों से उसकी आन्तरिक खुशी छलक-छलक जाती थी। अपने पति के इस स्वभाव से वह परिचित नहीं थी। उसके दिमाग में एक क्षण के लिए गृह ख्याल आया कि अपने इसी नटखटपन की वजह से उसके पति ने वेश्या-पुत्री का मन मोह लिया होगा। लेकिन शीघ्र ही इस ख्याल से उसने अपने को मुक्त कर लिया और दोनों मित्रों के लगातार आग्रह करने पर गाने को प्रस्तुत हो गई।

उसने सिर झुकाकर धीमे, पतले स्वर में गाना शुरू किया

"प्रलय-घन छा रहे साथी।
महा विध्वंस बेला का सन्देशा ला रहे साथी।
प्रलय-धन छा रहे साथी।
पुराने खंडहर ढहते,
गगनचुम्बी महल बहते,
अडिग प्रांचीर वाले दुर्ग भी स्थिर नहीं रहते,
उन्हीं पर झोंपड़ी के तृण उछलते जा रहे साथी,
प्रलय-घन छा रहे साथी।

प्रलय ही सृष्टि है नूतन,
निधन में निहित है नवजीवन,
इसी अवसान में ही है नवल निर्माण परिवर्तन,
मिली इति आज अध-पथ में नए दिन आ रहे साथी,
प्रलय-घन छा रहे साथी।"

"वाह भाभी ! आपने तो बड़ी सामयिक क्रान्तिकारी कविता सुनाई। मैं आज न आता तो पता नहीं कब सुनने को मिलता। आपका स्वर भी काफी अच्छा है।" नीलेश ने हल्की ताली बजाकर प्रशंसा की।

"हाँ नीलेश, मेरी पत्नी ने मुझे ही यह नया सन्देश दिया है, मैं इसे स्वीकार करता हूँ हृदय से। हमारे राष्ट्र को आजादी मिलेगी, गरीबों का दुर्भाग्य मिटेगा और हमारे जीवन में नया सवेरा होगा।"

कनिया का हृदय खुशी से गद्गद हो रहा था। वह हथेली पर मुँह रखकर सिर झुकाकर बैठी थी और अपने आँसुओं को रोकने की कोशिश कर रही थी। राष्ट्रभक्त, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी कवि प्रभुनाथ मिश्र की यह कविता उसने अपने छोटे मामा से सुनी थी, जो हाल ही में लिखी गई थी और

खूब लोकप्रिय हो रही थी। नीलेश ने हँसते हुए कहा :

"भाभीजी, मैं और किसी दिन आऊँगा तो कई गाने सुनाऊँगा। आज देर हो गई है, आप सभी थक भी गए हैं। मैं तो आज सिर्फ अपने मित्र और आपके दूल्हाजी की शान में कविवर देव की चार ही पंक्तियों का सवैया सुनाऊँगा।"

इसके बाद नीलशे ने धीमे मीठे स्वर में गाया :

"पायल नूपुर मंजु बजै कटि किकिन में धुनि की मधुराई,

साँवरे अंग लसें पटपीत हिए हुलसें बनमाल सुहाई।

माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मन्द हँसी मुख चन्द जुन्हाई

जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह देव सुहाई

नीलेश का स्वर अपने पिताजी की तरह बुलन्द और शानदार नहीं था लेकिन उसमें मिठास काफी थी, जो कमरे में गूंज उठी। कनिया खुशी और आनन्द की चमकती आँखों से कभी नीलेश और कभी गोबर्धन को देखने लगी। गोबर्धन उल्लास एवं मुग्ध भाव से नीलेश को देखता हुआ उठ खड़ा हुआ। और उससे हाथ मिलाकर बोला, "बहुत धन्यवाद । तुमने मुझे काफी ऊँचा चढ़ा दिया। बस पाँच मिनट बैठो, कनियाजी यहाँ रहेंगी तब तक मैं भीतर से कपड़े बदलकर आता हूँ। मैं तुम्हारे साथ चौक चलूँगा, एक काम है।"

गोबर्धन के जाने के बाद कनिया ने कृतज्ञता भाव से नीलेश को देखते हुए पूछा "आप अब कब आएँगे? श्रमिक सिर्फ एक है

"आऊँगा भाभी, जल्दी ही।"

"जरूर आइएगा। आज तो मैं जी गई।"

"भाभी, आप कुछ भी न सोचिए। आपने जो गीत गाया है, वही सत्य है। नया जरूर आएगा। गोबर्धन कुछ नया करना चाहते हैं, उन्हें आपका

निरन्तर सहयोग चाहिए, जैसा कोई अभिन्न मित्र खुले मन से देता है। उसकी शुरुआत का संकेत मिल भी गया है।"

"मुझमें पता नहीं कौन-सी निराशा भर गई है, लालाजी।" कनिया ने अपनी आँखों पर आँचल रख लिया।

"पुरानी बातें भूल जाइए, भाभी! जो हो गया सो हो गया। अब कुछ न होगा।"

कनिया ने आँखें पोंछ लीं। कुछ देर चुप रहकर बोली, "नम्रता मेरी सहपाठिनी है। बहुत ही अच्छी मददगार और स्वाभिमानी लड़की है। मैं ही उससे प्रतिद्वन्द्विता करती रही। मैं वाद-विवाद में

आगे रही, खेल-कूद में भी। हिन्दी में उससे कुछ अच्छे नम्बर आते रहे, लेकिन अन्य विषयों में उसके नम्बर मुझसे काफी अधिक आते हैं। मैं उससे जलती रही, पर उसे पछाड़ नहीं सकी। लेकिन अब ऐसा कुछ न होगा। क्या आप मेरी ओर से उससे यहाँ आकर मुझसे मिलने का अनुरोध कर देंगे ?" नीलेश गम्भीर हो गया। फिर कुछ सोचकर बोला, "नहीं भाभीजी में नहीं कर पाऊँगा। आप एक विवाहित स्त्री हैं, ससुराल में हैं, सास-ससुर और पति की राय और अनुमति से ही यह कार्य उचित होगा। मेरे कहने से नम्रता यहाँ क्यों आएगी ? उनके माँ-बाप भी क्यों अनुमति देंगे? उचित यही होगा कि गोबर्धनजी के हाथ अथवा अपने नौकर गणेश के हाथ एक पत्र आप नम्रता या उनके

माँ-बाप के पास भेजवा दीजिए।"
"हाँ, ठीक कहते हैं लालाजी।"

कुछ देर बाद नीलेश जब गोबर्धन के साथ बाहर निकला तो उसके मन की अजीब स्थिति हो रही थी, जिसका विश्लेषण वह फौरन कर नहीं पाया।

दोनों मित्र चौक तक चुपचाप आए, मानो बातचीत के लिए कोई विषय न बचा हो। फीकी धूप मकान एवं वृक्ष के शिखरों पर पहुँच गई है। लू कम होने पर भी उमस काफी बढ़ गई और शरीर पर पसीने की पतली, छोटी धाराएँ पर्वतीय सोते की तरह प्रवाहित हैं। उनके कंठ फिर सूखने लगे। पर्याप्त बर्फ-उपलब्धता, मृदुल व्यवहार-कुशलता, साफ-सफाई, राष्ट्रभक्ति और रोचक गप्पबाजी के कारण, तीन में से सर्वाधिक लोकप्रिय मानिक बाबू की लस्सी-शर्बत की दुकान की तरफ वे फुर्ती से बढ़ चले।

"आइए, आइए..." मानिक बाबू ने होंठों में ही मुस्कुराकर उनका स्वागत किया।

"कुछ ठंडा-वंडा पिलाइए मानिक बाबू।"

दोनों मित्र दुकान के सामने रखी दो खाली बेंचों में से एक पर बैठ गए। मानिक बाबू ने कुछ आगे झुककर, अलग-अलग चौंकन्नी दृष्टि डालते हुए धीमे स्वर में कहा :

"दुकान अभी-अभी खोली है गोबर्धन बाबू। कुछ ठंडा हो लीजिए। जानते हैं, अब घमासान होने ही वाला है। महात्माजी बिगुल बजा ही दिए हैं, उधर से सुभाष बाबू भी पहुँच रहे हैं। लोगों को बीन-बीनकर जेल में डाला जा रहा है। कांग्रेस के जिला अध्यक्ष पहले ही पहुँच गए हैं, अब सेनापति सदाशयव्रतजी और सुरंजन शास्त्री की बारी है

"कैसे जानते हैं, मानिक बाबू ?" नीलेश ने चौंककर पूछा।

"अब लीजिए ! किस दुनिया में रहते हैं, नीलेश बाबू! यह तो शहर का बच्चा-बच्चा जानता है।"

मझोले कद, चकइठ शरीर और कोताह-गर्दनिया मानिक बाबू गप्पबाजी के मूड में हैं क्योंकि बर्फ के लिए गया लड़का अभी तक वापस नहीं आया है। उनकी राय में, उत्तम जायकेदार लस्सी-शर्वत सभी नहीं बना सकते,

वह भी एक कला है, इसीलिए उच्च कलाकार की तरह लम्बे बाल रखने के वह भी शौकीन हैं। लेकिन सूअरबाल होने की वजह से काफी तेल और पानी चपचपाने से नरम नहीं हो पाते उनके बाल। कंघा कीजिए, तब भी बगावत करके सिर के ऊपर किसी पक्षी के घोंसले का आकार ग्रहण कर लेते हैं। यह सही है कि उनके पास खबरों की कमी नहीं रहती, अतः कोई ताजा किस्सा सुनाने की तैयारी में उनका चेहरा बेहद रोचक और चटपटा बनकर दो-तीन बार खुला और बन्द हुआ।

"ए नीलेश बाबू, अब और सुनिए। जिले भर में मुकाबले की जोरदार तैयारियाँ हो रही हैं। दस दिन बाद सदाशयव्रतजी के बैठकखाना में एक जोरदार मीटिंग होनेवाली है. जिसमें जिले-भर के विशेष प्रतिनिधियों और दूसरे विचारों के देशभक्तों को बुलाया जानेवाला है। क्रान्तिकारी लोग भी अपनी अलग तैयारी कर रहे हैं। दयाशंकर ताड़ी-शराब पीकर देर रात तक शहर में चक्कर लगाया करते हैं। सड़क पर गजलें गाते हुए। लेकिन यह सब पुलिस की आँखों में धूल झोंकने की

चालें हैं। भीतर-ही-भीतर तो खूब बम-पिस्तौल इकट्ठे किए जा रहे हैं..."
"अरे मानिक बाबू, छोडिए अपनी लच्छेदार रहस्यमयी बातें। यहाँ तो प्यास के मारे जान ही

निकल जाएगी, देश तो बाद में आजाद होगा..."

मानिक बाबू बेतहाशा हँसने लगे, कोई आवाज नहीं, बस मुँह दोनों ओर फैल गया, पीले दाँत दिखाई देने लगे और छाती हिलने लगी। फिर गम्भीर होकर बोले :

"अभी देता हैं. लड़का बर्फ लेकर आता ही होगा। तब तक एक और जरूरी खबर सुन लीजिए। तीन-चार दिन की बात है... नहीं. आज चौथा दिन है। शाम के समय, सामने चौक कएँ के सामनेवाले तीन चार्क में कम्युनिस्ट भाइयों की मीटिंग थी। दस-बारह मुर्गे रहे होंगे। नीचे एक दरी बिछी थी शायद पब्लिक को आकर्षित करने के लिए। उसके सामने एक लँगड़ी मेज

के सहारे एक लाल झंडा खड़ा कर दिया गया था। ए गोबर्धनजी, इसी पार्क में मैंने पहले भी इसी पार्टी की कई सफल सभाएँ देखी हैं-इतनी भीड़ कि भीतर बैठने की जगह नहीं और कँटीले तार के घेरे के बाहर भी ठसाठस लोग। इस बार की मीटिंग में चारों ओर सन्नाटा था, भीतर कुछ लोग थे, उन्हें नेता कहिए, कार्यकर्ता कहिए, भीड़ कह लीजिए। यह सूरदास भी थे, जो उनकी हर सभा में दिखाई देते हैं। ए नीलेशजी, उसमें आपका दोस्त गोपालराम भी मौजूद था, जो स्टेशन पर और चौक में घूम-घूमकर अपना साप्ताहिक अखबार 'लोकयुद्ध' बेचते समय लोगों से बहसें करता रहता है..."

"मानिक बाबू, संक्षेप में..."

मानिक बाबू ने सड़क के दाएँ-बाएँ देखते हुए कहा, "देता हूँ गोबर्धनजी। हाँ, तो वही सूरदास भाषण देने के लिए उठ खड़े हुए। मगर समझ लीजिए कि श्रोता कोई नहीं था, हाँ जब खूब चिल्ला-चिल्लाकर बोलने लगे तो तार घेरे के बाहर कुछ लौंडे-लपाड़ी और तमाशबीन न मालूम कहाँ से आकर खड़े हो गए। ए भाई, इन लोगों को क्या सूझी है! जब देश का बच्चा-बच्चा अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ गुस्से से उबल रहा है, ये लोग कहते हैं आन्दोलन करने का यह सही समय नहीं है। रूस की मजदूर सरकार को बचाने के लिए हिटलर, मुसोलिनी, तोजो के खिलाफ लड़ना, रूस के साथी अंग्रेज सरकार का साथ देना है। फिर आगे तो जापानियों का साथ देने के लिए सुभाष बाबू की निन्दा होने लगी। बस यही बात आफत का कारण बनी। ए भाई, इस देश में सुभाष बाबू की आलोचना कोई सुन सकता है? बस तड़ातड़ ढेले चलने लगे। ओलों की तरह। सूरदास का सिर फूट गया, गोपालराम पैर में काफी चोट लगने से लँगड़ाने लगा, और लोग भी घायल हुए..."

"अरे, यह तो बहुत बुरा हुआ..."

"हाँ, नीलेशजी, यह तो ठीक ही कह रहे हैं, सचमुच कम्युनिस्ट काफी जीवट के लोग हैं। ढेले बरस रहे हैं और सूरदास भाषण दिए जा रहे हैं। लोग मार और गाली खा रहे हैं, मगर अपनी जगह टस-से-मस नहीं हो रहे

हैं। क्या किया जाए, जब इतने बहादुर लोग मुख्य धारा के खिलाफ खड़े गए हैं तो उन्हें कोई क्यों महत्त्व दे ! यह तो कहिए, चौक के ही कुछ बुजुर्ग और समझदार लोगों ने बाहर खड़े विरोधियों को वहाँ से हटा दिया और कम्युनिस्ट वीरों को अपने संरक्षण में लेकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। खैर छोड़िए, अब बताइए क्या लेंगे, लस्सी या मलाई का शरबत ?" हो

"मलाई का शरबत कब से मानिक बाबू ?"

"समय का तकाजा है. गोबर्धन बाबू! इस समय पुष्टई का सेवन न होगा तो दुश्मन को पछाड़ा कैसे जाएगा ?" मानिक बाबू तोते की तरह तिरछी दृष्टि से देखकर बेतहाशा हँसने लगे।

" तो बनाइए दो तगडे, मलाई गिलास ।"

बाबू!" "भैंस के शुद्ध दूध की ऐसी कलेजातर मलाई जिला-जवार में और कहीं नहीं मिलेगी. गोवर्धन

मानिक बाबू सिर झुकाकर अपने काम में जुट गए। तेरह-चौदह वर्ष का लड़का चीखरी, जो दुकान पर ही काम करता था, इक्के पर एक सिल्ली बर्फ बोरे से ढककर ले आया था। मानिक बाबू के चेहरे पर व्यस्तता का भाव था और होंठों पर ऐसी कंजूस, मीठी मुस्कान, जो आत्म-विमुग्ध कलाकारों या विशेषज्ञों की खास पहचान होती है।

उन्होंने दो बड़े शीशे के गिलास सामने खींचकर, दो बार साफ पानी से मल-मलकर धोने के बाद उलटकर रख दिए ताकि जल की एक बूँद भी भीतर न रह जाए। फिर बोरा हटाकर एक हथौडी से सिल्ली में से दो-तीन बड़े टुकडे तोडकर और उन्हें एक साफ, मोटे कपडे में लपेटकर एक छोटी मुंगरी से पीटने लगे, जब तक महीन बुरादे नहीं बन गए। तत्पश्चात गिलासों को सीधा करके उनमें दो चम्मच शीरा, एक बड़ा चम्मच पिसा बादाम, आधा चम्मच पिसी सौंफ, एक मिट्टी के डोंगे में रखी मलाई में से

चार चम्मच मलाई, मीठा, रंगीन पानी तथा अन्त में बर्फ के महीन टुकड़े और कोई खुशबूदार चीज छिड़ककर समूचे पेय को एक चम्मच से हिलाया और उस शरबत का उपहार बारी-बारी से अत्यधिक आत्मीय भाव से दोनों मित्रों की ओर बढ़ा दिया।

सचमुच वे नए ढंग का शरबत पी रहे थे। बीच-बीच में उन्होंने बर्फ के बुरादे दो बार लिए। सचमुच उनके कलेजे में तरी आ गई और आँखों में दीप्ति, फिर भी वर्फ पूरी तरह कंठ की प्यास नहीं बुझा पाती, इसीलिए उन्होंने बाद में एक-एक गिलास सादा पानी भी ग्रहण किया।

शाम हो गई थी। धूप का कोई निशान नहीं है। नीला आकाश स्लेटी रंग धारण कर रहा है। चौक की पल्ली तरफ पंसारी, मनिहारों तथा सब्जियों की दुकानों के बाजार से हाँव-हाँव, काँव-काँव का शोर उठ रहा है, ठीक पक्षियों की तरह, जो शाम होते ही अपने घोंसलों और रैन बसेरों पर पहुँचने के लिए बेचैन हो जाते हैं। शहर तथा निकटवर्ती गाँवों से जो काफी लोग बलिया के इन बाजारों में इकट्ठे हो जाते हैं, वे ही अब खरीद-सूची के आखिरी सामानों को निपटाने की हड़बड़ी में हैं। कुछ लोग तो अपने भटके हुए साथियों को जोर-जोर से पुकार रहे हैं। इसी में आसपास के घरों की सायंकालीन चिल्लाहटें भी शामिल हैं और एक औरत तो अपने दरवाजे पर खड़ी तीखी तेज आवाज में देर से अपने लड़के को बुला रही है- 'गणेशवा रेऽऽऽ' ।

बलिया के लोगों को अपने चौक पर बड़ा गर्व रहता है अपने दिमाग की तरह। वे कहते हैं, ऐसा छोटा-सा चुनमुनिया चौक उत्तर प्रदेश क्या, देश-भर में शायद ही कहीं हो। किसी सड़क से चलिए, आप चौक में पहुँच जाएँगे। यानी चौक ऐसा केन्द्र-स्थल है, जहाँ से चारों ओर हर दिशा में सड़कें निकाली गई हैं। यह उस स्वस्थ हृदय के समान है, जो शरीर के हर हिस्से में रक्त की आपूर्ति करता है। कैसा सरल और कारगर नियोजन है। इस केन्द्रीय स्थान पर एक खूबसूरत गुम्बद है जिसकी छाया में एक सुन्दर, पक्का कुआँ भी बना है। इसके चारों ओर बराबर स्थान छोड़कर पक्की ईंट की छोटी चहारदीवारी निर्मित कर दी गई है जिसके ऊपर कँटीले तार से भी घेर दिया गया है जिसे चौक का पार्क भी कहते हैं।

जनसभाओं और भूले-भटके मुसाफिरों तथा निराश्रित-भिखमंगों के आरामगाह के रूप में यह जगह मशहूर है। ददरी तथा अन्य स्नानपों पर यह पार्क तीर्थयात्रियों से भर जाता है। स्वातन्त्र्य आन्दोलनों के दौरान इस गुम्बद पर तिरंगा फहराना देशभक्तों और क्रान्तिकारियों के लिए चुनौती रहा है और जब तक उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रान्त) में कांग्रेस मन्त्रिमंडल कायम रहा, दिन-रात इस पर राष्ट्रीय परचम लहराता रहा था।

शरबत पीने के बाद वे उठकर चीक की चारदीवारी के पास जाकर खड़े हो गए। नीलेश चारों ओर हवाई दृष्टि से देखते हुए बोला :

"मालूम होता है, आन्दोलन जल्दी ही शुरू हो जाएगा।"

"नीलेश, एक समय में एक ही काम हो सकता है। मैंने व्यापार में ध्यान लगाने का निश्चय कर लिया है. आन्दोलन की ओर जाऊँगा तो व्यापार चौपट हो जाएगा। पिताजी बीमार रहते हैं, उनको अधिक-से-अधिक आराम देना चाहता हूँ..."

शीघ विदा होकर वे अपनी-अपनी दिशा में चले गए। नीलेश बेमन से अपने घर की तरफ बढ़ने लगा, क्योंकि जैसे बन्द दरवाजा खिड़की खोलने पर बाहर की हया कमरे में तेजी से घुसती है, अकेला होने पर उसे वे सभी घटनाएँ न चाहते हुए भी याद आने लगीं. जो बनारस से आने के बाद उसके साथ घटी थीं। लगा शरीर में ताकत नहीं है। कदम भारी-भारी हो गए हैं।

रात चुपके से उतर आई है। कुछ बड़ी दुकानों पर गैस-बत्तियाँ जगमगाने लगी हैं। और चौक क्षेत्र में इधर-उधर छोटी दुकानों और खोमचेवालों की लाल-पीले ढिबरी-प्रकाश की कतारें। स्टेशन के पास पहुँचकर वह अपने घर की दिशा में जाने के बजाय बाएँ कटहरनाला की तरफ

मुड़ गया। बहुत धीरे-धीरे चल रहा था वह, लेकिन देर लगाने से भी कितनी देर हो सकती है? धूल-भरी सड़क पर कहीं-कहीं ईंट-पत्थर, फल

या सब्जी के छिलके, गन्दगी या कीचड़ से लियड़े चिरकुट, फेंके हुए घरेलू सामान पैरों से टकरा जाते। आगे बढ़ने पर कचहरी जानेवाली सड़क गाढ़े अँधेरे में सायँ-सायें कर रही है। चलता गया वह! मगर रामपुर पहुँचने पर कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यालय में ताला लगा था। क्या गोपालराम गम्भीर रूप से घायल होकर अस्पताल में दाखिल है अथवा गाँव चला गया है ?

वह पलटकर अस्पताल की ओर चल पड़ा जो दक्षिण में विपरीत छोर पर सरयू नदी तट के पास है। सोशलिस्ट होने की वजह से कम्युनिस्टों के विचार से वह सहमत नहीं है, लेकिन क्या इसी से कोई अपने प्रतिपक्षी की तकलीफ से खुश हो सकता है ? गोपालराम तो उसका खास दोस्त है, उसके लिए वह पहले ही से चिन्तित है, फिर भी क्यों कोई अनजान खुशी उसे सहला रही है इस समय ? किसलिए ? वह कारण खोजने के लिए एक पेड़ के नीचे खड़े होकर अँधेरे में सिर गाड़कर सोचने लगा। कुछ हासिल न होने पर वह सिर धुनने लगा। फिर भी किसी नतीजे पर न पहुँचकर वह आगे चल पड़ा अपने को धिक्कारते हुए।

अस्पताल में मालूम हुआ कि गोपालराम या कोई अन्य व्यक्ति घायलावस्था में पिछले एक सप्ताह से दाखिल ही नहीं हुआ। अब क्या करें? वह अस्पताल के बरामदे की सीढ़ियाँ वापस उतरकर, उसके अहाते की तारकोल वाली साफ-सुथरी, घुमावदार और सुनसान सड़क पर चलने लगा। बार-बार पीछे किसी के चलने की आहट या कभी किसी के धीमे-धीमे कराहने की आवाज सुनाई पड़ जाती थी। वह पीछे घूमकर देखता लेकिन कुछ भी नजर नहीं आता। अचानक ही, हर विचार और भावना को विस्थापित करके एक पूर्व-परिचित भय उसके अन्दर कुंडली मारकर बैठ गया।

तभी उसे याद आया, बचपन में जब वीरेश भूचाल में गम्भीर रूप से घायल होकर अस्पताल में दाखिल था, वह कुछ दिनों के लिए माँ के साथ, पास ही, मौसाजी के घर में रुका था, जो इसी अस्पताल में डॉक्टर थे। तब इस इलाके में इक्का-दुक्का मकान ही बने थे और सरयू तट के इधर और अस्पताल के बाद खेत-ही-खेत थे, जिनमें शाम होते ही सियार हुआँ-हुआँ बोलना शुरू कर देते। तभी उसने लड़कों और मौसीजी से भी सुना था कि

शाम के बाद अस्पताल के आस-पास भूत और जिन्न घूमा करते और नाक से बोलते हैं। खास तरह, उस पहलवान को तो कई लोग देख चुके हैं, जो कई वर्ष पूर्व महावीरी जुलूस में पुलिस की गोली से मारा गया था !

जब यह फाटक के पास पहुँचा तो तो उसे फिर अपने पीछे किसी के चलने की आहट मालूम हुई। लगा, उसका खून जम गया है। वह काफी जोर से बोला "कौन है ?" उसकी आवाज ने अन्धकार

को गँजा दिया। लेकिन इस बार पीछे कोई था, जहाँ से धीमी आवाज आई. 'मैं हैं, मेरा लडका बीमार है. चलकर देखता है कि बाहर कहीं दध मिल रहा है या नहीं।' यह रुककर देखने लगा और थोडी देर में एक लम्बा अधेड-सा दिखाई देता आदमी लम्बे कर्त और उदंग धोती में. सिर पर अँगोछा या दुपट्टा बाँधे जोर-जोर से खाँसते हुए बगल से निकल गया। इस अवसर पर स्वयं वह भी जोर-जोर से खाँस रहा था। फाटक से बाहर आकर

वह फिर अपने को धिक्कारने लगा था। कंकड की सड़क पर आगे बढ़कर वह गुदड़ी बाजार की दिशा में मुड़ गया। अब घनी बस्ती ख्यालों के चकोह में घूमने और डबने-उतराने लगा। यहाँ तक कि उसे पता ही न रहा वह किस आ गई थी. जहाँ लोगों का आना-जाना और बोलना-बतियाना जारी था। लेकिन अब वह अजीब सड़क पर घूमा और कहाँ पहुँचा।

पता नहीं, कब से वह कनिया भाभी के बारे में सोच रहा था। अभी कुछ देर पहले ही कनिया से उसकी प्रथम मुलाकात हुई थी, लेकिन अब लग रहा है कि कनिया से उसे मोह हो गया है। पन्द्रह-सोलह वर्ष उम्र, छोटी बच्ची की तरह निर्दोष और अनुभवहीन चेहरा, रेशमी साड़ी, भारी गहनों, हल्के घूँघट में गम्भीर रिश्ते और नई विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों से निबटने को मजबूर। तीन-चार वर्ष छोटी होने पर भी उसका उसे 'लालाजी' कहना कितना अस्वाभाविक और अविश्वसनीय है। वह मन-ही-मन संकुचित हो गया था।

उसे फिर अचम्भा हुआ कि प्रथम रात को अपने पति का अप्रत्याशित, निर्मम व्यवहार झेलने पर भी कितनी होशियारी और समझदारी से उसने स्थिति को सँभालने की कोशिश की थी। इस देश में हर वर्ष असंख्य, कमसिन लड़कियाँ शादी के बाद दुल्हन बनकर अनजान परिवारों के कठोर अनुशासन में चली जाती हैं जहाँ वे प्यार, विश्वास और सहारे की तलाश करती हुई अनेक कष्ट भोगती हैं। उसे यह सबकुछ सिर्फ पति का प्यार ही दे सकता है जिसके अभाव में समूचा परिवार ही उसके विरुद्ध हो जाता है, उसकी उपेक्षा करने लगता है, उसके मैके पर व्यंग्य-बाण छोड़े जाते हैं, लेन-देन आदि को लेकर ताने दिए जाते हैं और दहेज उत्पीड़न होने लगते हैं। छोटी ही उम्र में कैसी गृहिणियाँ पैदा करता है यह हिन्दुस्तानी समाज !

उसे याद आई अपनी बड़ी बहन शैलजा की, जिसकी शादी तेरह वर्ष की अवस्था में हुई, जो बचपन में ही तय कर दी गई थी। पहली बार ससुराल से आने पर कितनी बदली-बदली दिखाई दे रही थी यह। पुरुखिन बनने की हास्यास्पद कोशिश उसकी नजर में फिर घर की अथवा रिश्तों की औरतों की खुसुर-फुसुर, जिसकी भनक से वह समझ गया कि सबको चिन्ता है शैलजा के पैर क्यों नहीं भारी हुए अभी तक, दामाद की नौकरी कब तक लगेगी, दामाद उसे मानते-जानते हैं कि नहीं, सास-ससुर तथा अन्य ससुरालवालों का उसके प्रति कैसा व्यवहार है! वह बेहद दुःखी और विचलित हो गया। इस उम्र में ही अनेक तरह की समस्याओं से परेशान हो गई है उसकी बहन, यह एहसास होते ही वह एक दिन सबसे ऊपर की छत पर जाकर अकेले में फूट-फूटकर रोया। उसी दिन से वह उसे 'दीदी, दीदी' कहने लगा, जबकि पहले उसका नाम लेकर ही उसे पुकारता

रहा था। यह जान देकर भी शैलजा को सुखी करने के संकल्प से भर उठा। उसकी आँखें भर आईं। उसने अपने रिश्ते की अनेक लड़कियाँ देखी हैं जो शादी के बाद अपना स्वरूप बदल लेती हैं। वे बचपन, अपने शिक्षा व तैयारी वर्ष में ही पति-परायणता, कर्मकांडों, तीज-त्योहारों, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और जचगी के रास्तों पर चल देती हैं।

अकस्मात वह चौंक गया। सिर उठाकर सामने देखा। उसे आश्चर्य हुआ। अरे, यह तो सेनापतिजी का मकान है। बैठकखाने के बाहर ही वह एक

तख्त पर दो नौजवानों के साथ बैठे हैं।

धीमे-धीमे स्वर में, आनेवाले आन्दोलन के बारे में ही यात हो रही है।

"आइए, आइए नीलेशजी! कब आए बनारस से ?"

नीलेश हाथ जोडकर नमस्कार करने के बाद तख्त के एक कोने में बैठ गया। सदाशयव्रत तज पर खददर की लंगी और बनियान में पालथी मारकर कोई योजना समझा रहे थे उन नौजवानों को। नीलेश के बैठते ही वे नौजवान उठकर जाने की अनुमति माँगने लगे।

"ठीक है आप लोग चले जाइएगा और उनसे मेरा सन्देश कह दीजिएगा।"

जब वे चले गए तो सदाशयव्रत ने नीलेश से पूछा, "आप अच्छा आए। आपसे काम भी है। कहिए, समाचार ठीक है न ?"

समस्याओं..." "जी हाँ, मैं पाँच दिन पहले ही आ गया था, आपसे फौरन मिलना भी चाहता था, लेकिन घरेलू

"अरे, कोई बात नहीं, जब घर है तो समस्याएँ कहाँ जाएँगी ? ठेकुआ चलेगा ? बड़ी गर्मी है, बार-बार प्यास लगती है। आप तख्त पर इत्मीनान से बैठ जाइए, ठंडा हो लीजिए तो काम की बात होगी..."

नीलेश मना करना चाहता था, लेकिन उसे प्यास भी लगी थी। सदाशयव्रत का यह इतना सम्मान करता था कि इनकार करना भी उससे नहीं हो पाया। सदाशयव्रत ने किसी को पुकारा और थोड़ी देर में एक छिपुली में दो अदद ठेकुए मिर्चा-अचार के साथ पेश कर दिए गए। बगल में पानी से भरा एक लोटा और दो खाली गिलास।

"आप भी लीजिए।" नीलेश ने संकोच से कहा।

"ना ए नीलेशजी, मैं पा चुका हूँ, आप पाइए। मैं तला-भुना कम ही खाता

हूँ। बस दूध की पुरानी आदत छूट नहीं पाई है, जितना मिल जाए। बीड़ी की आदत भी नहीं छूट पाती, नीलेशजी..." वह हँसने लगे।

नीलेश की खास इच्छा नहीं थी, वह सिर्फ एक टुकड़ा खाकर जल ग्रहण करना चाहता था, लेकिन उसने जबरदस्ती दोनों ही ठेकुए ग्रहण कर लिए, इस डर से कि कहीं सदाशयव्रत उसे शहरी मेहमान न समझ लें, जो कुछ छोड़ देने में ही अपना बड़प्पन समझते हैं।

"नीलेशजी," सदाशयव्रत ने भी एक गिलास जल ग्रहण करने के पश्चात कहा, "इस बार लड़ाई बड़ी करीं होगी। सरकार भी समझती है, इसीलिए उसने पहले ही हल्ला बोल दिया है। शहर क्या, छोटे-छोटे गाँवों से भी तपे-तपाए अनुभवी कांग्रेसी पकड़े जा रहे हैं, ताकि आन्दोलनकारियों की कमर तोड़ दी जाए, हौसले पस्त कर दिए जाएँ। इसीलिए हम चाहते हैं कि गिरफ्तारी से जो लोग बच गए हैं, उनकी एक मीटिंग बुलाई जाए, जो विचार करें कि रणभेरी बजे तो क्या किया जाए। हमने इस बार नए-नए नौजवानों, किसानों, मजदूरों में काफी काम किया है, किसी आन्दोलन की असली रीढ़ यही हैं। आपको नारायणगढ़, बैरिया, रानीगंज, बहुआरा, गोन्हिया छपरा इन जगहों पर जाना है। यहाँ कांग्रेस सेवादल के कई कर्मठ बहादुर स्वयंसेवक रहते हैं। मैं कुछ लोगों के नाम चिट्ठियाँ दूँगा। ठीक दस दिन बाद यहाँ मेरे बैठकखाने में ही रविवार को मीटिंग है। कल सवेरे खा-पीकर यहाँ आ जाइएगा..."

नीलेश काफी खुश हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि मानिक बाबू की सूचना एकदम सही है। वह जल्दी-जल्दी अपने घर की तरफ बढ़ने लगा। एक खुशी तो इस बात की थी कि उसके खाली, परेशान दिमाग को एक सार्थक कार्यक्रम मिल जाने से काफी आराम मिला। और तब उसी समय उसे यह भी समझ में आ गया कि शादी न करने से अपने पिताजी की फटकार और उसके बाद नम्रता के अकारण, अपमानजनक व्यवहार से उसकी भावनाओं को काफी चोट पहुँची थी। वह दूर-दूर रहना चाहता था अपने घर से, मोहल्ले से, जहाँ नम्रता भी रहती थी। इसी वजह से गोपालराम

को देखने रामपुर और अस्पताल गया तथा देर तक सड़कों का चक्कर काटते हुए सदाशयव्रत के यहाँ पहुंचा था।

दसरे दिन ही नीलेश नाश्ता करके सदाशयव्रत के घर जा पहुँचा और उनसे पते-सहित चिटिठयाँ लेकर टेन से सुरेमनपुर स्टेशन के लिए रवाना हो गया, जहाँ से बैरिया आदि गाँव नजदीक थे। उन गाँवों में कुछ गिरफ्तारियाँ हई थीं, लेकिन नौजवानों और किसानों-मजदरों का उत्साह देखने लायक था। हर गाँव में उसका बड़ा स्वागत हुआ। कई देशभक्तों ने अपने-अपने घर ले जाकर उसे भोजन कराया। आम, अमरूद, खरबूजा, तरबूज, पपीता, पकवान, दही, दूध, भुजा हलवा खाने को खूब मिला।

देश के लिए काम करनेवालों का वहाँ की जनता बेहद आदर करती थी। हाथ जोड़कर खड़े हो जाते थे, 'चलिए न गरीब के घर पर, रूखा-सूखा खाकर हमें कृतार्थ करें।' घर पहुँचने पर परिवार के सभी और पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो जाते, औरतें अन्दर से झाँकने लगतीं, बच्चे बाहर-भीतर दौड़ने लगते।

नीलेश को बहुत अच्छा लग रहा था। इन गरीब, निरक्षर लोगों में इतना प्यार कहाँ से आया, जो अन्तर की गहराई को स्पर्श करने लगता था। उसे लगा, जैसे एक बड़े परिवार में बड़े-छोटे, सबका स्नेह मिल रहा हो। वह आठ दिन रह गया। किसी-न-किसी गाँव में शाम को ग्रामवासियों की सभा होती थी। ऊँच-नीच सभी लोग बैठ जाते जमीन पर, जैसे बगुलों का एक बड़ा समूह कई कतारों में एक जगह एकत्रित होकर सिर गाड़े सामने चुपचाप देख रहा हो। सर्वप्रथम उनकी आँखों में शंका का अनोखा भाव तिरने लगता, शायद विश्वास के प्रति विरोध का अनजाना-सा खिंचाव। कैसे होगा यह सब ? अंग्रेज कैसे छोड़ जाएँगे हिन्दुस्तान ? कैसे गरीबी दूर होगी? कैसे लोग शिक्षित होंगे ? कैसे पहले की तरह धरती सोना उगलेगी और दूध-दही की नदियाँ बहने लगेंगी ? लेकिन कुछ ही देर में आन्तरिक मुस्कुराहट से चेहरे पर दमक और आँखों में चमक आ जाती। उनकी अटूट एकता, कठिन परिश्रम, आपसी भाईचारे से सबकुछ होगा-हाँ, संघर्ष और

कुर्वानी से शान्ति-सुख की आजाद जनता सरकार अवश्य कायम होगी। इन मामलों में भाषण करने से नीलेश को साधारण लोगों के साथ रहने तथा काम करने का बड़ा अनुभव और आत्मविश्वास प्राप्त हुआ।

सदाशयव्रत के बैठकखाने पर आयोजित सभा रविवार की निश्चित तिथि पर कुछ विलम्ब से आरम्भ हुई। आगन्तुकों ने बलिया बाजार से खा-पीकर आने में बारह बजा दिए। गजब की लू और साथ में उमस। सदाशयव्रत ने बाहर पास ही एक खाली जगह में प्याऊ बैठाकर सूझबूझ का परिचय दिया था जिसे सभी सराह रहे थे।

बैठकखाना भर गया जिसमें मंचनुमा चबूतरा के नीचे करीब दो सौ राष्ट्रीय कार्यकर्ता बैठे थे। वे जिले के दूर-दूर इलाकों से बुलाए गए थे। शहर के लोगों की संख्या चौथाई से भी कुछ कम थी। अधिसंख्य खद्दर की धोती, कुर्ता और गांधी टोपी धारण किए हुए थे, कुछ कन्धे पर तौलिया या दुपट्टा और सोशलिस्ट नौजवान तो लम्बे कुर्ते और पैजामा या धोती में बरात की खातिर-बात करनेवाले प्रबन्धकों की तरह व्यस्त मुद्रा में इधर-उधर उड़ रहे थे।

सभा गुप्त रूप से हो रही थी। पुलिस भाँप नहीं पाई थी अन्यथा जितेन्द्रलाल और मनव्वर अली आस-पास मँडराते हुए नजर आते। कार्यवाही आरम्भ होने के पहले बैठकखाना में एक ओर से दूसरे छोर तक धीरे-धीरे आपस में बातचीत करने की भनभनाहट जारी थी। स्वयंसेवकों ने आसपास के घरों से बाँस के कई पंखे इकट्ठे करके कुछ लोगों को पकड़ा दिए थे। अन्य लोग अँगोछे या दुपट्टे ही घुमाकर हवा कर रहे थे। फिर भी तर-तर पसीना जारी था, जिसकी एक ऐसी अनोखी निश्चित भोयरी गन्ध व्याप्त थी जो स्वच्छ हवा में साँस लेने, रूखा-सूखा, मोटा-झोटा खाने और खेत-जमीन

तथा गोबर-सानी में काम करनेवाले स्वस्थ ग्रामवासियों के शरीर से निकलती है, परिश्रम से दूर रहने तथा महीन खानेवाले शहरवासियों के

तीखे तेजाबी पसीने की गन्ध से अलग।

मंच के नीचे ही शुरू में बैठे सदाशयव्रत ने धीरे से उठकर कहा :

"अब काम शुरू होता है. आप शान्त हो जाइए। देखिए एक खास उददेश्य से आपको यहाँ बम्बई में होनेवाला है। महात्माजी जैसी याणी आजकल बोल रहे हैं, उसमें से क्रान्ति के शोले निकल बुलाया गया है। आप जानते हैं कि आनेवाले अगस्त महीने में कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन रहे हैं। वह साफ-साफ अंग्रेजों से कह रहे हैं कि ये अपना योरिया-विस्तर बाँधकर यहाँ से चले जाएँ। देश की जनता से उन्होंने कह दिया है 'करो या मरो' यानी यह आजादी की आखिरी लड़ाई है आप आगे बढ़कर आजादी प्राप्त करने के लिए अपना सबकुछ कर्बान कर दें। समस्या यह है कि लड़ाई शुरू होने के पहले ही हकूमत ने प्रहार कर दिया है. हमारे बहत से नेताओं को सींकों में बन्द कर दिया गया है। दूसरे लोगों को भी पकड़ने की तैयारी हो रही है। ऐसी स्थिति में साधारण कार्यकर्ता और साधारण जनता के कन्धों पर बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। हमारे नौजवानों के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। हमारे नौजवानों ने देश की आजादी के लिए बड़ी-बड़ी कुर्यानियाँ दी हैं और आशा है कि वे आनेवाले क्रान्तिकारी संघर्ष में विदेशी साम्राज्यवादी शासन के छक्के छुड़ा देंगे और उनको देश छोड़ने को मजबूर कर देंगे। ठीक है, यह अहिंसात्मक लड़ाई है, लेकिन हमने दिखा दिया है कि अहिंसा में बड़ी ताकत है। हम चाहते हैं कि आप अपने-अपने सुझाव दें कि आगे की लड़ाई कैसे संचालित की जाएगी।"

इतना कहकर सदाशयव्रत बैठ गए। कुछ देर के लिए सन्नाटा छा गया। सभी दाएँ, बाएँ और पीछे सिर घुमा-घुमाकर देखने लगे कि बोलने के लिए कोई उठता है या नहीं। अन्त में एक नौजवान खड़ा हो गया जो एकदम पीछे दरवाजे के पास बैठा था। उसने सवाल किया:

"क्या मैं कुछ कह सकता हूँ? मेरा अनुरोध है कि मेरी बातों पर गम्भीरता से विचार किया जाए।"

अब समझ में आया कि वह दयाशंकर था। वह बाद में चुपके से आकर

बैठ गया था और उसके यहाँ आने की किसी को उम्मीद भी नहीं थी। दरअसल शहर में उसके बारे में कई तरह की बातें प्रचारित थीं। लम्बे, गोरे और खूबसूरत उस नौजवान के बारे में एक बात तो यह प्रसिद्ध थी कि वह किसी क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य है। ताड़ी-शराब इसलिए पीता है कि किसी को उस पर शक न हो। लेकिन चोरी-चुपके वह क्रान्तिकारी नौजवानों को संघठित कर रहा है और हिंसात्मक क्रान्ति के लिए जोरदार तैयारी कर रहा है। लेकिन वह क्रान्तिकारियों, समाजवादियों तथा साम्यवादियों का मजाक उड़ाया करता था, अहिंसा को डरपोकों और पलायनवादियों का हथियार बताता था, इसलिए इन दलों में उसकी बड़ी निन्दा होती थी। वे उसको पुलिस का एजेंट समझते और उससे दूर रहते। जब वह आता तो सभी बात करना बन्द कर देते। उसे इस सभा में भाग लेने के लिए आमन्त्रित भी नहीं किया गया था, फिर यहाँ कैसे आ गया, यह सोचकर अनेक शहरी कार्यकर्ताओं तथा नौजवानों की भौंहें तन गई।

लेकिन सदाशयव्रत ने उठकर विनम्र मीठे स्वर में कहा, "कहिए, कहिए, खुलकर कहिए... आपकी बात पर विचार किया जाएगा..."

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि अहिंसा की शर्त लगाकर एक क्रान्तिकारी आन्दोलन की धार को कुन्द किया जाता है। अंग्रेज हुकूमत एक हिंसात्मक शक्ति है, उसका मुकाबला अहिंसा से नहीं किया जा सकता। हिंसात्मक क्रान्तिकारी शक्ति ही उसे जड़ से उखाड़कर बाहर फेंक सकती है। अहिंसा तो समझौते का रास्ता है। क्या दुष्ट, आततायी और साम्राज्यवादी लोगों का हृदय परिवर्तन हो सकता है ? मेरा प्रस्ताव है कि यहाँ जो भी निश्चय हो, उसमें से अहिंसा की शर्त को निकाल

दिया जाए।"

इतना कहकर दयाशंकर व्यंग्य से मुस्कराते हए बैठ गया। चारों ओर भुनभुनाहट होने लगी। राजनाथ यादव उठकर बोला, "भाईजी आप क्या गांधीजी के नेतृत्व में लड़ी जानेवाली लडाई का उत्साह भंग करने आए हैं? कोई रचनात्मक सुझाव देते तो विचार किया जाता। लडाई इतनी बढ़

गई है. अब इस तरह के प्रस्ताव का क्या मतलब? अपनी-अपनी ढपली और

अपना-अपना राग। इससे तो सबकुछ मिटटी में मिल जाएगा..." "बेवक्त की शहनाई !" सभा के बीच से कोई चिल्लाया। "रंगा सियार है !" एक और आवाज आई।

सभा में चारों ओर भनभनाहट व्याप्त हो गई। सदाशयव्रत उठ खड़े हुए। उन्होंने हाथ उठाकर सबको शान्त होने का संकेत दिया। फिर बोले. "आप गुस्सा थूक दीजिए, हर व्यक्ति को अपना विचार प्रकट करने का अधिकार है। दयाशंकरजी, आप खुलकर अपनी बात कहिए। आप कुछ और कहना चाहते हैं ?"

सभा में शान्ति छा गई। दयाशंकर ने उठकर व्यंग्य से मुँह टेढ़ा करके कहा, "कुछ लोगों ने राष्ट्रीयता और देशभक्ति का ठेका ले लिया है, लेकिन मैं उनके आक्षेप का जवाब देकर अपने को छोटा नहीं करना चाहता। गांधीजी को पूरा सम्मान देते हुए भी, मैं उनके अहिंसात्मक तरीकों को अव्यावहारिक और निरर्थक मानता हूँ। पग-पग पर समझौता, पग-पग पर हृदय-परिवर्तन के महत्त्व पर जोर, पग-पग पर सुधारवाद और क्रान्तिकारी राजनीति का विरोध। क्या साधु-सन्त राजनीति चला सकते हैं ? वह राम-राज्य स्थापित करने का सपना देखते हैं। क्या मतलब है इसका ? राम के जमाने में किस तरह का शासन था? आज के बदलते हुए समय और वैज्ञानिक युग में ऐसे उद्देश्यों से हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं? अनेक बातें हैं, जिनसे हम सहमत नहीं हैं। चौरी-चौरा कांड में हम देख चुके हैं कि अहिंसा की वजह से एक आन्दोलन वापस ले लिया गया। हम आनेवाले आन्दोलन का विरोध भी नहीं करते, हम तो यही कहते हैं कि आनेवाले आन्दोलन के तरीके व्यावहारिक और स्पष्ट होने चाहिए..."

दयाशंकर सभा में चारों ओर गर्व से देखते हुए बैठ गया जिसके बाद फिर शोर होने लगा था। "ए भाई, इस कांग्रेस-विरोधी को यहाँ किसने बुलाया ?" कोई चिल्लाया।

"सी.आई.डी.," एक दबी हुई आवाज।

इस शोरगुल से सदाशयव्रत काफी गम्भीर हो गए। उन्होंने जल्दी उठकर कड़े स्वर में फटकारा :

"ये कैसी बातें हो रही हैं? यह एक बड़ा देश है, इसमें अनेक विचार के लोग रहते हैं। कई अन्य पार्टियाँ हैं जो अपने-अपने ढंग से आन्दोलन चलाती हैं लेकिन उनकी नीयत पर सन्देह करने का अधिकार हमको नहीं है। यह सभा भी अपनी-अपनी वित्तारधाराओं पर बहस करने के लिए नहीं बुलाई गई है। हम तो यह चाहते हैं कि यहाँ लोग मिल-बैठकर विचार करें कि 'करो-मरो' के आन्दोलन में कैसे लोग एक-दूसरे को सहयोग दें, क्योंकि यह लड़ाई जनता को लड़नी है, नेता तो पहले ही पकड़े जा रहे हैं। इस आन्दोलन में हमें कुछ ऐसा नहीं करना चाहिए जिससे हमारे मतभेद उभरें या नए मतभेद पैदा हों। दयाशंकरजी अपने मन से यहाँ आ गए हैं तो अच्छी बात है, और उनका स्वागत है। हम उनका जवाब देंगे। लेकिन हम अपने कांग्रेसी साथियों से भी अनुरोध करेंगे कि वे उत्तेजित होकर अनाप-शनाप न बकें। वे अपना धैर्य, अपनी शान्ति और उन अहिंसा सिद्धान्तों को, छोटी-छोटी बातों में ही छोड़ देंगे तो आगे की आजादी की लड़ाई कैसे लड़ेंगे ?"

वह चुप हो गए। फिर शान्ति छा गई। अन्त में दयाशंकर की ओर देखते हुए अत्यन्त कोमलता से बोले :

"दयाशंकरजी, हमारे कुछ साथियों ने आपके प्रति जो अपशब्द कहे हैं, उसके लिए मैं आपसे

माफी चाहता है। उन बातों का ख्याल न कीजिएगा। जो लोग आजादी के लिए लड़ रहे हैं, चाहे उनका विचार कुछ भी हो. हम उनका सम्मान करते हैं। हिंसा-अहिंसा के बारे में पहले भी अनेक सवाल उठाए गए हैं, बहसें हुई हैं, सम्बन्ध विच्छेद हुए हैं। इसी सवाल को लेकर गांधीजी और सुमाय बाब के मतभेद आप जानते ही हैं। चौरी-चौरा कांड के सम्बन्ध में नेहरूजी

ने विरोध किया था। लेकिन यह समय इन बहसों को उठाने का नहीं हैं। हम लोगों से अनुरोध करते हैं कि वे कांग्रेस के नेतृत्व में पर्ण आजादी प्राप्त करने की लड़ाई में अपना सहयोग दें। यह जनता की लड़ाई है, यह लडाई देश में उत्तर से दक्षिण और पर्व से पश्चिम तक हर जगह लड़ी जानी है। देश में कोई भी ऐसी पार्टी नहीं है जो देश भर में गाँव-गाँव फैली हो। क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू से इस देश में है. लेकिन आज तक यह इतना विकसित नाहीं है कि हथियार के बल पर अपने से कहीं अधिक शक्तिशाली बिटिश सरकार को देश से निकाल बाहर करे। कांग्रेस ने रचनात्मक कार्यों, असहयोग, सत्याग्रह आदि तरीकों से जनता में अपनी पैठ बनाई है. लोगों को तैयार किया है। इसलिए कांग्रेस

के नेतृत्व में ही यह लड़ाई लड़ी जा सकती है और..." नेतृत्वाशयव्रत को अचानक खाँसी आई। वह कुछ देर तक खाँसते रहे और अन्त में कन्धे पर रखे अँगोछे से अपने हाथों और मुँह को पोंछते हुए बोले :

"यह बड़े देश की लड़ाई है, युद्ध है। जैसे युद्ध में एक कमांडर होता है, उसके मातहत एक पूरी सेना होती है और उस सेना में पूरा अनुशासन होता है, इसी तरह आजादी की लड़ाई में अनुशासन की जरूरत है। गांधीजी हमारे कमांडर हैं, सेनापति हैं, नेता हैं। देश की करोड़ों जनता उनको अपना नेता मानती है। जैसे कमांडर के हर आदेश का एक अनुशासित सेना पालन करती है जिससे उसकी जीत होती है। इसलिए गांधीजी और कांग्रेस के नेतृत्व में लड़ी जानेवाली लड़ाई में पूरा अनुशासन होना चाहिए। इस लड़ाई के कमांडर जो कुछ कहें उसका पालन होना चाहिए तभी हमारी जीत होगी। यह समझ लीजिए कि युद्ध में जैसे सशक्त, सक्षम और कुशल अग्रिम पंक्तियों की जरूरत होती है, उतना ही पिछली पंक्तियों का महत्त्व है। पिछली पंक्तियों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। हमारी पिछली पंक्तियाँ हैं एक चौकन्ना पूरा देश। पिछली पंक्तियों के दुर्बल होने से लड़ाई व्यर्थ हो जाएगी। कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ताओं तथा अन्य विचारों के राष्ट्रभक्त लोगों का यह कर्त्तव्य है कि ऐसे समय में छोटे-मोटे झगड़े भुलाकर पूर्ण शान्ति और साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने की कोशिश करें। जनता में इन विचारों का प्रचार करें। किसान, मजदूर, दलित, वंचित और हर सम्प्रदाय के लोगों से

आत्मीय सम्बन्ध बनाएँ, आपसी एकता का महत्त्व उनको समझाएँ और अगली लड़ाई के लिए उनको तैयार करें। हाँ, आजादी के शत्रुओं से सावधान भी रहें। वे तरह-तरह की अफवाहें फैलाकर हमारी हिम्मत को तोड़ने की कोशिश करेंगे। और यथासम्भव अपनी गिरफ्तारी से बचें, अन्न और ईंधन बचाकर रखें ताकि संकट के समय कोई कष्ट न हो। खेत-खलिहानी मुस्तैदी से करें और एक-दूसरे की मदद भी करें। इस तरह कर्मठ सक्रिय कार्यकर्ताओं की अगली पंक्तियों तथा सम्पूर्ण जनता की पिछली पक्तियों में पूर्ण एकता व तालमेल कायम रखकर ब्रिटिश सत्ता से पूरा असहयोग करें, उनको इस देश में कमजोर और बेकाम कर दें। अब किसी को कुछ और कहना हो तो कह सकता है..."

वह चुप हो गए। आगे बैठे लोग मुँह पीछे मोड़कर उधर देखने लगे जहाँ दयाशंकर बैठा था, लेकिन सदाशयव्रत के वक्तव्य के बीच में ही यह पता नहीं कब चुपके-से उठकर वहाँ से चला गया था। सभा सफल कही जाएगी और श्रोताओं पर सदाशयव्रत की बातों का गहरा असर पड़ा था। जोश से उनकी गर्दनें अकड़कर टेढ़ी हो गई थीं और नाक फूल आई थी। बेल्थरा रोड से आए एक बुजुर्ग कांग्रेसी ने सभा के बीच में से उठकर कहा : "

सेनापतिजी के सुझावों का मैं अनुमोदन करता हूँ। उन्होंने पिछली पंक्तियों की इतनी सुन्दर

व्याख्या की है कि हर बात साफ हो जाती है। आजादी के दीवाने आगे बढ़कर मोर्चा जमाएँ. अपनी कुर्बानी दें, विजय-पर-विजय प्राप्त करें और पिछली पंक्तियों के लोग, राष्ट्रभक्त जनता सप्लाई लाइन दुरुस्त रखें। एक दीवाना शहीद हो तो उसकी जगह लेने के लिए चार नौजवान आगे बढ़ें। आजादी कीर हालत में जरूरत है. आजादी मिलने पर ही हम नए भारत का निर्माण कर सकेंगे। मैं तो कहँगा कि आजादी के बाद भी यह लड़ाई जारी रहेगी क्योंकि आजादी मिलने पर भी वह निरर्थक सिद्ध होगी. अगर हम किसान-मजदर और साधारण जनता के जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए कठिन परिश्रम न करें। आजादी के बाद जो सरकार बनेगी.

वह भी भारत निर्माण का युद्ध अग्रिम पंक्तियों में लड़े और पिछली पंक्तियों के लोग यानी सम्पूर्ण जनता शान्ति, साम्प्रदायिक सौहार्द, एकता एवं परस्पर सहयोग के वातावरण में निर्माण कार्यों में परी मदद दे। आजादी के बाद लोगों को सावधान होना पड़ेगा कि स्वतन्त्र सरकार गलत हाथों में न पड़े, शोषक विग्रही. देश-विरोधी और जन-विरोधी लोग उस पर हावी न हों..."

"इस सम्बन्ध में, मैं एक सवाल सदाशयव्रतजी से पूछना चाहता हूँ।"

एकदम पीछे बैठे एक नौजवान ने उठकर तेज आवाज में कहा। सभी उधर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। इसके बाद सभा में बैठे कुछ लोग तथा चारों ओर दरवाजों पर खड़े लम्बे कुर्तेवाले समाजवादी पार्टी के कुछ स्वयंसेवक नौजवान हँस पड़े।

"अच्छा तो कामरेड हैं !" एक स्वयंसेवक के मुख से भायँ-भायँ मोटी आवाज में यह टिप्पणी निकली।

सवाल गोपालराम ने ही पूछा था। उस दिन की चौकवाली उनकी सभा पर की गई ढेलेबाजी के परिणामस्वरूप उसके सिर में भी गम्भीर चोट पहुँची थी। पैर की चोट ठीक हो गई थी, मगर सिर में अब भी एक पट्टी बँधी थी।

"कामरेड, अभी सन्तोष नहीं हुआ...।" किसी ने व्यंग्य किया।

"रूस से कोई नया सन्देश आया है क्या, भाईजी?" दबी-दबी-सी तीसरी आवाज आई। सदाशयव्रत ने उठकर कहा, "मैं कई बार अपने साथियों को मना कर चुका हूँ कि इस तरह टोका-टाकी और आक्षेप न करें। अभी कुछ समय पहले गोपालरामजी हमारे साथ थे। अब उनका विचार बदल गया है और अब कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता बन गए हैं। कम्युनिस्ट लोग भी उतने ही देशभक्त हैं, जितने और लोग। मैं उनसे भी अनुरोध करूँगा कि वे भी इस लड़ाई में हमारे साथ आएँ। गोपालरामजी आप खुलकर अपने विचार प्रकट करें।"

गोपालराम धीमी आवाज में बोला, "धन्यवाद, सेनापतिजी! हम लोगों पर

कई तरह के आक्षेप किए जाते हैं, पर हम परवाह नहीं करते। हम कम्युनिस्ट हैं और सोवियत रूस की मजदूरों की सरकार के समर्थक हैं, यह कहने में हमें किसी का भय नहीं है। हमारी नीति है कि हिटलर, मुसोलिनी और तोजो आज जो लड़ाई लड़ रहे हैं, वह दुनिया पर अपनी तानाशाही ही स्थापित करने के लिए, गुलाम देशों को मुक्त करने के लिए नहीं। जापान तेजी से हमारे देश की ओर बढ़ रहा है। उसने स्वतन्त्र चीन के मंचूरिया तथा कुछ अन्य प्रदेशों पर और प्रशान्त सागर के अनेक देशों पर कब्जा कर लिया है, वहाँ की जनता पर जुल्म हो रहा है। फिर क्या सुभाष बाबू के साथ होने से जापानी हमारे देश पर अधिकार करने के बाद हमको आजादी दे देंगे? सुभाष बाबू हिन्दुस्तान पर जापानी तानाशाही स्थापित करने में मदद नहीं दे रहे हैं? इस समय आन्दोलन छेड़ना जापानियों की मदद करना होगा..."

"बन्द कीजिए अपनी यह बकवास...।" राजनाथ यादव ने, जो स्वयंसेवक के तौर पर दरवाजे के पास खड़ा था, उत्तेजना से लाल होकर चिल्ला पड़ा, "यह सब सुनने के लिए हम यहाँ नहीं इकट्ठे हुए हैं।"

"जो सुभाष बाबू को गद्दार कहे. वह स्वयं गददार है।" कोई सभा के बीच में से तैश में बोला। "सुभाष बाबू !" राममूरत ने जो पीछे बैठा था, उठकर नारा लगाया।

"जिन्दाबाद!" सभा का समवेत स्वर गूंज उठा।।

सदाशयव्रत तेजी से उठकर बोले. "अरे भाई. आप लोग शोर क्यों कर रहे हैं? हम जानते हैं कि सुभाष बाबू की आलोचना इस देश में कोर्ड नहीं सुनेगा। फिर भी इस अवसर पर उत्तेजना से बचना चाहिए। गोपालरामजी. यह सब तर्क हम पहले भी सुन चुके हैं। रोज ही आप लोग अपने भाषणों वक्तव्यों और अखबारों में यह कहते रहते हैं। सुभाष बाबू के विचार से मतभेद होने पर भी हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि वह हिन्दुस्तान को जापानियों का गुलाम बनाने के लिए यहाँ आ रहे हैं। हिन्दुस्तान की

आजादी की लडाई के वह भी हमारे एक बड़े नेता हैं। उनका जैसा बहादुर कोई क्या होगा ? यह उच्च्वकोटि के राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ हैं। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए ही वह कफन बाँधकर निकले हैं ताकि युद्ध की परिस्थितियों से लाभ उठाया जाए। एक तो वह जापानियों से आश्वासन पाकर ही उनका साथ दे रहे हैं। और मान लीजिए कि जापानी कोई शरारत करते हैं तो यह स्वयं जापानियों से लड़ेंगे। अपना सबकुछ कुर्बान कर देंगे और अगर एक क्षण के लिए हम मान लें कि आपकी ही बात सही है तो हम कह देना चाहते हैं कि उस हालत

में हम जापानियों से तो लड़ेंगे ही, सुभाष बाबू से और उनकी सेना से भी लड़ेंगे...।" "अहिंसात्मक सत्याग्रह से?" गोपालराम का तीखा प्रश्न गूंज उठा।

"हाँ, अहिंसात्मक सत्याग्रह और पूरे असहयोग और बायकाट से।" सदाशयव्रत ने दृढ़ स्वर में कहा, "जो कोई भी आजादी के रास्ते में आएगा, हम उसका अपने तरीकों से विरोध करेंगे। आप लोग आएँगे तो आप लोगों का भी विरोध होगा। हम खुद चाहते हैं कि सोवियत रूस जीते, जनतन्त्र की विजय हो और सोवियत रूस में सचमुच मजदूरों की सरकार है तो वह हार भी नहीं सकती। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर हम कभी भी विश्वास नहीं करेंगे। उनकी ओर से कई बार वायदा करके धोखा दिया जा चुका है। हमारे असहयोग से वह थोड़े ही हार रहे हैं? उनका शासन अन्यायी, भ्रष्ट और कमजोर हो चुका है। ये लड़ थोड़े ही रहे हैं, जापानियों के आने पर वे देश खाली करके पीछे भाग जाते हैं कायर की तरह। हिन्दुस्तानियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए वे अभी से हिन्दुस्तान की पूर्ण आजादी का ऐलान क्यों नहीं कर देते ? अंग्रेज हों या जापानी, उनकी गुलामी अब एक क्षण के लिए बरदाश्त करने को हम तैयार नहीं। अंग्रेजों का तो विरोध करने हम जा ही रहे हैं, अगर जापानी आएँ तो उनको एक पग भी अपनी जमीन पर आगे नहीं बढ़ने देंगे। पैंतीस-चालीस करोड़ हिन्दुस्तानियों की मजबूत चट्टान को वह लाँघ नहीं पाएँगे..."

"यह हवाई कल्पना है..." गोपालराम ने वैसे ही धीमे स्वर में कहा।

इस पर बड़ा शोर मचा। कम्युनिस्टों के खिलाफ नारे लगने लगे। सभा में बहुत-से लोग उठ खड़े हुए और हवा में हाथ भाँज-भाँजकर क्रोध में अपनी बातें कहने लगे जो आपस में टकराकर अर्थहीन चिल्लाहट में फैल गई। इसके साथ एक नारा यह भी उठा 'गोपालराम, वापस जाओ, गोपालराम वापस जाओ।'

सिदाशयव्रत भी तैश में आ गए थे। फिर भी उन्होंने अपने साथियों को शान्त रहने का सुझाव दिया और आत्म-नियन्त्रण के साथ कहा :

"यह हवाई कल्पना नहीं है। इस तरह की बात कहना हिन्दुस्तान की जनता का अपमान है। जब देश की जनता अपनी आजादी के लिए जीवन-मरण का संघर्ष कर रही है, आप यहाँ सोवियत रूस के लिए संघर्ष कर रहे हैं। आपके हल्ला न करने से सोवियत रूस हार नहीं जाएगा और हल्ला करने से जीत भी नहीं सकता। वह तो अपनी जनता की एकता और जुझारूपन से जीतेगा। अपनी जनता और सेना की मजबूती से विजय प्राप्त करेगा। आप लड़के हैं, लेकिन देश को भी तो समझिए।

"आप क्या कर रहे हैं, कभी सोचा है आपने? इसके नतीजे क्या होंगे, कभी सोचा है आपने ? आप मुट्ठी भर हैं और अपनी नीतियों की वजह से और खखरा हो गए हैं। आज आपकी कोई मीटिंग सफल नहीं हो पाती। क्यों? ऊपर से आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थक होने के नाम पर आप मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग का समर्थन कर रहे हैं। अभी हाल में, इसी शहर में, मुस्लिम लीग के जुलूस में आपकी पार्टी शामिल थी। मुस्लिम लीग के झंडे के साथ आपकी पार्टी का झंडा लहरा रहा था। अंग्रेजों, मुस्लिम लीग और आपके सहयोग से देश का बँटवारा हो जाएगा तो आपको क्या मिलेगा ? आपकी पार्टी को भी भारी नुकसान होगा। इसी तरह दूसरे लोग हैं। कोई 'हिन्दू-हिन्दू' चिल्लाता है, कोई 'सिख-सिख', कोई 'ईसाई-ईसाई'। इसी तरह अन्य लोग अपनी-अपनी जातियों का नाम लेकर चिल्लाते हैं। जब लोग इसी तरह अलग-अलग चिल्लाएँगे तो 'हिन्दुस्तानी' कौन है ? आज तो 'हिन्दुस्तानियत' की जरूरत है..."

"सदाशयव्रतजी, किसी का अपमान करने का मेरा इरादा नहीं है। किसी की भावना को चोट पहुँची हो तो मुझे खेद है। मैंने तो कुछ सवालों का उत्तर चाहा था। आप भी जानते हैं कि हिन्दुस्तान की समस्याओं की बहस बहुत लम्बी है और चीजें खाली बहस से नहीं तय हो पाएँगी। सचमुच मैं बालक हूँ, मुझे बहुत कुछ सीखना है, लेकिन यह मैं कह सकता हूँ कि इस देश में जो समाज-व्यवस्था है, जो गरीबी और शोषण है जिसका अभिशाप मैं खुद पल-पल भुगत रहा हूँ, उसी वजह से मैं साम्यवाद का समर्थक हूँ। इस उम्मीद में कि साम्यवाद हमारे देश में हर प्रकार के शोषण को समाप्त कर देगा। सोवियत रूस में एक नया प्रयोग किया जा रहा है, मैं चाहता हूँ कि यह प्रयोग सफल हो, इस तरह का प्रयोग दुनिया के अन्य देशों में भी हो...।"

गोपालराम ने शान्त स्वर में अपनी बात कही थी। जब वह बैठ गया तो कुछ देर के लिए सन्नाटा छा गया। जब सभा में किसी ने दोनों हाथ उठाकर जमुहाई ली, सदाशयव्रत धीरे से उठकर खड़े हो गए। उन्होंने मुस्कुराते हुए चारों ओर देखा, फिर गला खखारकर कहा :

"यह बहस यहीं समाप्त होती है। आपको जो रास्ता पसन्द हो, उसी पर चलिए। आप इसके लिए स्वतन्त्र हैं। हम अपने रास्ते पर चलेंगे। सम्पूर्ण देश की जनता की एकता और आजादी का रास्ता। आगे किसी भी बड़े परिवर्तन के लिए हमारी राष्ट्रीय आजादी जरूरी है। हमारे देश की गुलामी, उसका जातियों और धार्मिक समुदायों में विखंडन बड़ा ही खतरनाक है। साम्राज्यवादी भी यही चाहते हैं। जनता के बीच आपसी सौहार्द, उनका एका ही हमारी मजबूती है, हमारा उत्साह है, वही हमारी आजादी और सामाजिक परिवर्तन की गारंटी है। इसीलिए कांग्रेस के साधारण-से-साधारण कर्ता का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है कि वह जनता के सम्पर्क में रहे, दुःख-सुख में उनकी मदद करे, उनके बीच आपसी सद्भावना और एकजुटता कायम करने की जी-तोड़ कोशिश करे। साम्यवादी भी इस देश में उसी समय सफल हो सकते हैं, जब वे अपने देश को समझें और अपने उद्देश्यों की सफलता के लिए समूचे देश को एकजुट कर लें। दुनिया के हर देश की अपनी परिस्थितियाँ हैं, समस्याएँ हैं, दूसरे देशों का आँख मूँदकर अनुकरण करने से हम अपनी परिस्थितियों पर विजय नहीं प्राप्त कर

सकते। साम्यवाद कोई ऐसा साँचा नहीं है कि उसमें आसानी से दूसरे देश की जनता को कस दिया जाए। बहरहाल, आपका विचार आपको मुबारक। हमको अपना काम करने दीजिए...

"अन्त में, मैं यह कहना चाहता हूँ कि जापानी अगर हमको गुलाम बनाने आएँगे तो हम, चाहे उनके साथ सुभाष बाबू भी क्यों न हों, उनका डटकर मुकाबला करेंगे। एक-एक हिन्दुस्तानी खड़ा हो जाएगा। एक की गर्दन कटेगी तो दूसरा आगे बढ़ जाएगा। दूसरा गिरेगा तो तीसरा बढ़ेगा। इस तरह आसाम से काश्मीर तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक भले ही एक-एक हिन्दुस्तानी की लाशें बिछ जाएँ, लेकिन हम तोजो, हिटलर, मुसोलिनी किसी को भी इस देश की एक नोक भी जमीन

नहीं देंगे।

"इसके साथ, यह भी समझ लीजिए। हम अहिंसा के समर्थक जरूर हैं, लेकिन कायर और पलायनवादी नहीं हैं। हम अहिंसा को कायरता, मजबूरी, भगोडेपन, पराजित स्वप्नदर्शिता, निरर्थक ढोंग. पाखंड और निरर्थक संतई का रूप ग्रहण नहीं करने देंगे। वैसी हालत में हम हथियार उठा लेंगे जो भी मिले. चाहे वह पत्थर ही क्यों न हो, मुक्का ही क्यों न हो। हमारे देश की धूल-धूल पर आजादी की लड़ाई लड़ी जाएगी। यह कोई शेखी नहीं है। वास्तव में देश की आजादी, जनता की मुक्ति की लडाई अथवा कोई अन्य युद्ध भी पहले मन में जीता जाता है। आस्था, आत्मविश्वास, आपसी एकता, उमंग, उत्साह, अपने उद्देश्य की पवित्रता के प्रति अटूट लगाव ही हमको बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देने के लिए तैयार करता है। इनके बाद ही अन्य तैयारियाँ हैं। ठीक है, जापानी आएँ, कोई भी आततायी आवे, गांधीजी के नेतृत्व में लड़ाई जारी रहेगीं। और हम दुश्मन को अन्त में इस देश से भगाकर रहेंगे।"

जब सभा खत्म हुई तो शाम हो गई थी। सभी पसीने से बेहाल थे। लम्बी बैठकी से थकान के चिह्न भी परिलक्षित हो रहे थे, फिर भी, ऐसी हालत में

उनके मुख पर जोश, उल्लास, आशा और दृढ़ता के भाव उनके व्यक्तित्व को अभूतपूर्व आभा और गरिमा प्रदान कर रहे थे। वे उठ खड़े हुए और बोलते-बतियाते, हँसते, टिप्पणियाँ उछालते विभिन्न दरवाजों से निकल पड़े जैसे किसी सरिता का साफ जल रास्ता पाकर कल-कल तथा अनेक स्वरों-ध्वनियों में प्रवाहित होने लगा हो।

21

नम्रता की माँ इन दिनों अपनी बेटी को लेकर अत्यधिक चिन्तित रहने लगी है। एक तो बढ़ती उम्र, दूसरी चिन्ता यह कि जब देखो, उसका चेहरा किसी सोच, तकलीफ में लटका रहता है। जवान लड़की का, बढ़ती उमंगों की उम्र में इस तरह दुःखी रहना अच्छा थोड़े ही होता है। किस चीज की कमी है उसे ! इकलौती लड़की को मुँह खोलने की देर है, उसके पिता शीघ्र ही उसकी मनपसन्द चीजें ला सकते हैं। 'एक ही तो है हमारी आँखों की लकड़ी, हम तो अब उसी की खुशी के लिए जिन्दा हैं,' वह होंठों में बुदबुदाती और उसकी आँखें भर आतीं।

जब उसकी नींद खुली तो दिन के पौने तीन बजे थे। उसने जमुहाई के साथ हाथ उठाकर अँगड़ाई ली, गुसलखाने में जाकर हाथ-मुँह धोया, फिर रसोईघर में प्रवेश कर भेली का एक टुकड़ा खाकर एक गिलास पानी पिया। तत्पश्चात अपने कमरे में पुनः जाकर बाल झाड़ने और चोटी सँवारने-गूथने लगी।

नम्रता आँगन की दूसरी ओर अपने एकान्त कमरे में सोई है और बालक नौकर बरामदे के बाहरी निकास-द्वार के पास पक्की फर्श पर छितरा पड़ा खर्राटे भर रहा है। गर्मी की दोपहर वस्तुतः आधी रात की तरह होती है, जब घर में सभी अलसाकर सो जाते हैं और चारों ओर सन्नाटा छा जाता है धूल-धक्कड़-भरी हू-हू लू के सिवाय। और ठीक साढ़े तीन-चार बजे के आसपास 'जगहट' शुरू हो जाती है, बाहर से इक्का-दुक्का आवाजें आनी शुरू हो जाती हैं, कौए आँगन में अलगनी पर बैठकर उचरने और चिड़िया फुदकने लगती हैं। बाहर शर्बत और बर्फ-मलाई वाले नरेटी की नस फुलाकर बोलने लगते हैं।

उसकी इच्छा हुई कि नम्रता को जगा दे लेकिन कुछ सोचकर रुक गई। शायद सचमुच उसे नींद आ गई हो। पहले नम्रता दिन में सोती नहीं थी, बल्कि कुर्सी पर बैठकर कुछ पढ़ती-लिखती

रहती थी। लेकिन इधर वह दिन में भी खाने के बाद लम्बी तान लेती है। रात में हो या दिन में. उसके कमरे के पास जाने से भी उसे अब दहशत-भरी परेशानी होती है. क्योंकि जब-जब वह गई है. उसने नम्रता को करवट बदलते देखा है अथवा बैठकर खाँसते हुए। क्या उसे नींद नहीं आती ? आखिर क्यों ?

जब यह चोटी गुध चुकी तो उसे अपने दिन याद आने लगे। बारह वर्ष की उम्र हई तो उसकी शादी हुई. जब वह इतनी लम्बी हो चुकी थी कि 'हथिनी' और 'घोडी' कहकर उस पर डॉट-फटकार पड़ती रहती थी। वह कुछ भी नहीं जानती थी और न कोई शऊर ही सीखा था उसने। दो वर्ष बाद उसका गीना रखा गया। ये दोनों वर्ष कैसे मजे के थे। वह खूब खेली, खूब कूदी। हबककर खाया, पसरकर सोया। जब वह हँसना शुरू करती तो हँसती रह जाती। बार-बार समझाने पर भी वह हड्डु सहेलियों के साथ बारी-बगीचे निकल जाती ओल्हा-पाती और चिक्का कबड्डी खेलने । झूला मई-जून से शुरू होकर सावन-भादों और कभी-कभी क्वार तक जारी रहता। उसकी सहेलियाँ इकटठी हो जाती और घर-आँगन में धमा चौकड़ी शुरू हो जाती. जैसे खेतों में नीलगायों का उत्पात । लम्बे-चौड़े आँगन के बरामदे की मजबूत धरन से अगल-बगल दो झूलों की रस्सियाँ लटका दी जाती और प्रत्येक झूले को फैलाकर उस पर एक-एक पीढ़ा रख दिया जाता, जिन पर धमधूसर दो और दुबली-पतली हुई तो तीन सहेलियाँ बैठकर अपनी चमकती टाँगों से पेंग मार-मारकर आकाश छूने की कोशिश करने लगतीं। एक झूला पूरब जाता तो दूसरा पश्चिम, और दोनों झूले जब एक-दूसरे के सामने आते तो उन पर बैठी सवारियाँ एक-दूसरे को हाथ हिलाकर और चीख-चिल्लाकर चुनौतियाँ फेंकने लगतीं।

अकस्मात उसका हृदय 'धक' कर गया। उम्र बढ़ती रही और उसका अनजान खेल-कूद चलता रहा। वह जान ही नहीं पाई कि उसके शरीर में कब से बदलाव आने लगा और भावनाएँ रंगीन होने लगीं। न मालूम कैसे-कैसे विचार आते। मन कहाँ दौड़ जाएगा, निश्चित नहीं था। आकाश, चिड़िया, पेड़-पौधे, फूल, तारे, चाँद सभी खूबसूरत लगते। खूबसूरत चेहरेवाले युवक और युवतियों की आँखों में वह एकटक देखती रह जाती। बचपन के अनेक साथी लड़के बड़े होकर गम्भीर और शर्मीले बन गए थे। उनकी आँखों में सपने थे, शरारत थी, संकेत थे। होंठों में आत्मविश्वास-भरी मुस्कुराहट। कई हल्की-फुल्की छेड़खानी करते थे और वह उनसे खूब झगड़ती थी। कुछ इतने अच्छे लगते थे कि वह कोई बहाना करके उनसे बातचीत करती। लल्लन बड़ा तेज था पढ़ने में। लम्बा था, खूबसूरत भी। फिर तो वह रोज ही उसके बारे में सोचने लगी। वह उसका आदर्श हो गया। उसकी हर चीज अच्छी लगने लगी। चाल, गम्भीर आवाज, स्वच्छ आकाश की तरह आँखों का फैलाव।

और अचानक सब खेल-कूद खत्म हो गया। उसका गौना हो गया और डरी-डरी ससुराल चली गई। अपने उद्गम स्थान पर पतली धार वाली टेढ़ी-मेढ़ी उछलती-कूदती, छिपती-उमगती सरिता ने एक लीक पकड़ ली, जो गहरी और चौड़ी होती गई दो तटों की बाँहों की सुरक्षा के बीच आबद्ध होकर भी गतिमान। एक लड़की के खेल-कूद के दिन कितनी जल्दी छिन जाते हैं। शादी के बाद तो एक अस्वाभाविक गम्भीरता ओढ़ने की मजबूरी आ जाती है। क्या-क्या झेलना पड़ता है ! स्वाधीनता खत्म हो जाती है। यह सब सोचकर उसे नम्रता से बड़ी सहानुभूति हुई। वह चाहती थी कि नम्रता जब तक मायके रहे, खूब खुश रहे, घूमे-फिरे, बोले-बतियाए, गाए-गुनगुनाए, उछले-कूदे, खाए-पीए-ससुराल में यह सब कहाँ मिलेगा !

उसे अपने पति पर गुस्सा आ गया। नीलेश की उससे शादी करने की इच्छा प्रकट करने पर वह सीतानाथ पर इतना क्यों बिगड़ गए ? इच्छा प्रकट करने से क्यां शादी हो जाएगी ? लेकिन इससे नम्रता का दिल छोटा हो गया, वह जानती है। नीलेश उसके बचपन का साथी है। दोनों

एक-दूसरे को पसन्द करते हैं। दोनों साथ-साथ खेले हैं. लड़े हैं. अगडे हैं। नीलेश के गम्भीर विचारों को वह पसन्द करती है। दोनों अब भी एक-दूसरे को देखकर खुश होते हैं, आपस में बोलते यतियाने हैं- इसमें क्या बराई है। क्या स्त्री पत्थर की होती है, उसका दिल पत्थर का होता है, उसकी इच्छाएँ पत्थर की होती हैं? सभी संगी-साथी चाहते हैं. फिर स्त्री क्यों नहीं चाहे ? ससुराल में तो हर बात में टोका-टाकी पाबन्दी आखिर नीलेश क्यों नहीं आता है उसके घर? और स्वयं नम्रता। उसके घर क्यों नहीं जाती? क्यों वे एक-दूसरे से झगडते हैं? नीलेश तो दिखाई ही नहीं देता। सदा पर से बाहर ही रहता है। इसलिए कि उसकी शादी तय हो गई है? और इसी से क्या नम्रता दुःखी रहती है ? इतना सब सोचकर वह रोने लगी अपने आँचल को आँखों पर रखकर।

उसने आँखें पोंठ लीं और तभी एक और ख्याल उसके दिमाग में उठा कि अगर नम्रता की शादी नीलेश से हो भी जाए तो कौन आफत आ जाएगी ? इतना सोचते ही उसने दहशत में आका कलेजे पर हाथ रख लिया। यह कैसे सम्भव है ? उसके पति तो यह सोच भी नहीं सकते। वह लड़की का गला काट देंगे। खून की नदियाँ बह जाएँगी। वह स्वयं ही यह सब नहीं होने देगी। इससे क्या इज्जत-आबरू धूल में नहीं मिल जाएगी ? वह नम्रता की सुरक्षा के लिए व्याकुल हो उठी। सचमुच नम्रता के दिल में क्या है? आज तक उसने यह सब जानने की कोशिश नहीं की। कैसी माँ है वह ! कैसी माँ है वह !

वह उठ खड़ी हुई। आँगन में निकलकर हल्के उठंगाए हुए दरवाजे के पल्लों को ठेलकर उसने नम्रता के कमरे में प्रवेश किया जो अपने दाहिने हाथ को आँखों के ठीक ऊपर ललाट पर रखकर चित सो रही थी। बायाँ हाथ उसका बिस्तरे पर पड़ा था। कुछ क्षण कमरे के मध्य में खड़ी होकर वह देखने लगी कि यदि नम्रता जागी होती तो कमरे में कोई आहट और अधिक उजाला होने पर जाग जाएगी ! लेकिन लड़की पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उसने कोई हरकत नहीं की और पहले की तरह चुप पड़ी रही। वह आगे बढ़कर नम्रता की बाईं तरफ बैठ गई और धीरे-से उसकी बाई बाँड पर अपना हाथ रख दिया।

नम्रता की आँखें फौरन खुल गई। उसने सिर मोड़कर अपनी माँ की तरफ देखा। उसकी स्वच्छ और गुलाबी डोरों वाली बड़ी-बड़ी आँखों ने तिरछे उलटकर माथे को घेर लिया, जिनमें नींद की खुमारी नहीं थी-वे तो प्रथम प्रयास में ही पूरी-की-पूरी खुल गई थीं। सूखी-सूखी आँखें-विचारों से शून्य, नींदविहीन, भावहीन खोखली आँखें।

"बेटी, कचहरी से आने का समय हो गया है।" उसकी माँ ने प्यार से कहा।

* नम्रता उठ बैठी। उसकी माँ बगल में रखा ताड़ का पंखा डुलाने लगी। नम्रता के माथे पर पसीने की बूँदें थीं। उसका ब्लाउज भींग गया था। उसने आँचल से अपने माथे का पसीना पोंछा और माँ के हाथ से पंखा लेकर स्वयं अपने और माँ पर भी जोर-जोर से झलने लगी। "नींद आती है न?"

इस अप्रत्याशित, अटपटे प्रश्न से नम्रता चौंक पड़ी। उसने तेज, तिरछी दृष्टि से अपनी माँ की तरफ देखकर कहा, "क्या मतलब?"

"मैं जब तुम्हारे कमरे की तरफ आती हूँ तो तुम करवट बदलती रहती हो या खाँसती रहती हो !"

"क्या मैं कोई पत्थर की शिला हूँ? अहल्या हूँ कि हिल-डोल या खाँस नहीं सकती ?" "नाराज न हो, मेरे कहने का मतलब यह थोड़े है...।"

"बात ही तुम ऐसी कर रही हो, अम्मा! ऐसा लगता है, तुम रात-दिन मेरी जासूसी करती रहतीहो !"

"नम्रता, तुम कैसी बोली बोल रही हो। मैं तुम्हारी जासूसी क्यों करूँगी ? मैं तो चाहती हूँ कि

नम्रता अपनी सहेली को अचम्भे से निहारती रह गई। इस बीच कितना परिवर्तन हो गया है। मुख की कुँवारी, सुनहरी, सूक्ष्म आभा गायब होकर नूतन, स्थूल, गाढी लाली में घुल-मिल गई है। बेहरा भर गया है और

कनपटियों के नीचे की हल्की उभरी हड्डियों का कहीं पता ही नहीं। वह कुंवारी लड़की नहीं बल्कि पूरी स्त्री नजर आ रही है देह-धजा से। निश्चय ही यह पहले से अधिक आकर्षक दिख रही थी। उसके पहनावे में स्कूली दिनों के संयम और प्रतिबन्ध का यह अनुशासन नाहीं है बल्कि निश्चिन्त लापरवाही दृष्टिगोचर हो रही है। उसकी आँखों में अधिक चमक, अधिक वशी, साहस और विश्वास था। सबसे आश्यर्य की यह बात है कि वह उसे बेहद नरमाई और प्यार से देख रही थी।

नम्रता को यह सब बहुत अच्छा लगा। वह अब कहाँ प्रतिद्वन्द्वी है ? महाराजलक्ष्मी अव अधिक अनभवी स्त्री बनकर उससे बड़ी बन गई है। मान्य और आदरणीय ? वह अपने को बहत छोटी और बच्ची महसूस करने लगी उसके सामने। महाराजलक्ष्मी उससे हर तरह की बात कर सकती है, बह उसे सिखा सकती है, उपदेश दे सकती है, लेकिन स्वयं वह बदले में उससे सिर्फ स्कूली अनुभव या अपने माता-पिता अथवा रिश्तेदार औरतों की तारीफ जैसी बातें ही कर सकती है।

महाराजलक्ष्मी ने आगे बढ़कर उसको अँकवार में लेकर छाती से चिपका लिया। इसी के साथ यह बिलखते हुए बोली, "मुझे माफ करो नम्रता। मैं कृतज्ञ हूँ कि तुमने मेरे अनुरोध को ठुकराया नहीं। मैं कितनी अकेली हो गई हूँ नम्रता !"

नम्रता की भी आँखें नम हो गईं। उसने अपने को नियन्त्रित करते हुए कहा, "अकेली क्यों, भाई ? इतना अच्छा परिवार है..."

"हाँ नम्रता, सबकुछ ठीक है, लेकिन मैं अपने बचपन से, अपने माँ-बाप से, अपनी सखी-सहेलियों से कितनी दूर हो गई हूँ! नम्रता, आज वे सभी मुझे याद आ रहे हैं, जिनके साथ मैंने कभी रूखाई या कोई और दुर्व्यवहार किया था। नीलेशजी इनके घनिष्ठ मित्र हैं। बड़े समझदार और संवेदनशील हैं। मुझे तो बहुत पसन्द आए। बड़ा अच्छा गाते हैं। एक दिन यहाँ आए थे इनसे मिलने, शादी में नहीं आ सके थे। इनसे दो वर्ष छोटे हैं, इसलिए 'भाभी-भाभी' कहते हैं। जब मुझे मालूम हुआ कि उनके घर के सामने तुम्हारा भी मकान है, तब मुझे बड़ी याद आने लगी तुम्हारी, पता नहीं क्यों

? एक-एक बात। कितना सताया है मैंने तुमको, जबकि तुमने कभी भी मुझसे कोई कटु बात नहीं की। मैं अकेले में जाकर तुम्हारी याद करके खूब रोई। तुमने यहाँ आकर मुझ पर बड़ा उपकार किया है, नम्रता !"

नम्रता कुछ बोल नहीं सकी। वह दूसरी ओर मुँह करके अपने सामने एकटक देखने लगी। उसके दिल और दिमाग में कुछ काँटे उग आए थे जैसे मुँह में कड़वा-कड़वा महसूस होने लगा। वह महाराजलक्ष्मी के बदले हुए व्यवहार से मन-ही-मन खुश थी, लेकिन अब स्कूल का प्रतिद्वन्द्विता क्षेत्र फैलकर मानो यहाँ भी आ गया हो। वह अपने हृदय के एकान्त को सबसे छिपाकर रखती थी, यहाँ तक कि स्वयं भी उससे दूर रहने का भुलावा पालती थी, मगर सहेली की बातों ने उसकी पीड़ा जगा दी, गोया कोई पुराना घाव ताजा हो गया हो। क्या महाराजलक्ष्मी ने उसके मन के एकान्त में झाँकने की कोशिश की है? उसकी भावनाओं से खिलवाड़ किया है? क्या वह उसके बारे में सबकुछ जानती है और उसका अपमान करने के उददेश्य से ही उसको अपने घर आमन्त्रित किया है ? स्कली दिनों में महाराजलक्ष्मी के व्यवहार को कोई महत्त्व नहीं दिया था उसने, मगर इस क्षण, पुराने से लेकर अब तक उनके परस्पर रिश्ते का सबकुछ शरीर में गड़े अनगिनत नुकीले सुओं की पीडा की तरह उसके बरदाश्त के बाहर हो गया। देखते-ही-देखते चेहरा पहले राख की तरह बुझा, फिर पत्थर की तरह कठोर हो गया।

"क्या बात है, नम्रता कोई तकलीफ है तुम्हें ?" उसकी सहेली ने पूछा।

"नहीं, मुझे क्या तकलीफ हो सकती है? लेकिन किसी के पड़ोस में रहने से मेरे प्रति तुम्हारा व्यवहार बदला है. यह उचित नहीं है। एक पड़ोसी का भी अपना व्यक्तित्व होता है. अपना स्वाभिमान होता है। उसकी निजता होती है। पडोसी का अपना विचार होता है। निश्चय ही हम पड़ोसी तो हैं, लेकिन इतने नजदीक नहीं कि तुम मेरे प्रति अपना व्यवहार बदल दो। तुम्हारी बातों का बुरा तो मैं पहले भी नहीं मानती थी, लेकिन किसी मिथ्या कारण से अपना पुराना व्यवहार वदत्तने की जरूरत नहीं तुम्हें। इस

तरह का उपकार मुझे नहीं चाहिए..."

महाराजलक्ष्मी फौरन उठकर उसके पास बैठ गई और उसकी दड्डी को पकड़कर उसका चेहरा अपनी ओर करती हुई दु:खी स्वर में बोली:

"क्या कहती हो मेरी बहन मेरा तो वह मतलब नहीं था. जो तुम समझ रही हो। मेरी भाटी पहले हो गई है और इस नाते तुम अब मेरी छोटी बहन हो। तुम मेरे मायके की हो। नीलेशजी से परिचय के पहले. शादी के बाद ससुराल की पहली ही रात में तुम्हारे प्रति मेरी भावनाएँ बदल गई थीं। मुझे जो भी अनुभव हुआ, उसकी वजह से मैं उन सबके प्रति सदय हो गई, जिनको मैंने सताया था। तभी मैंने गहरे पश्चात्ताप के साथ तुम्हारे बारे में सोचा था। तुम कोई ऐसी-वैसी बात न सोयो, नम्रता, अन्यथा मुझे बड़ा कष्ट होगा। अपने पड़ोसियों से बहुत नजदीकी सम्बन्ध नहीं हैं, यह तो मैं उसी समय समझ गई थी, जब मैंने नीलेशजी से तुम्हारे पास आमन्त्रण-पत्र पहुँचाने के लिए कहा, लेकिन उन्होंने मना कर दिया। मेरे व्यवहार-परिवर्तन में उनका तो कोई हाथ नहीं है...."

महाराजलक्ष्मी फिर रोने लगी, लेकिन उसका नम्रता पर कोई खास असर नहीं हुआ। उसने नीलेश का उल्लेख करके नम्रता का शान्ति-चैन पहले ही नष्ट कर दिया था। उस जैसी तुच्छ औरत नीलेश को समझ सके, उसकी तारीफ करे, यह नामुमकिन है! ऐसा वह सोच नहीं सकती थी, इस तरह की सम्भावना एक क्षण के लिए नम्रता को बरदाश्त नहीं। किस तरह बात बदल रही है, पहले कुछ कहा और थोड़ी देर बाद दूसरी बात कहने लगी। वह इस स्त्री से नीलेश की रक्षा करने के लिए व्याकुल हो उठी। उसका शरीर एक ऐसे ईर्ष्या-भरे गुस्से से जलने लगा, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

मगर शीघ्र ही उसका स्वाभिमान जाग उठा। नीलेश के प्रति उसका प्यार सर्वथा निजी मामला रह गया है। वह अब अपने प्यार की अग्नि में अकेले ही जलना चाहती है, जलकर नष्ट हो जाना चाहती है, नीलेश से इतनी दूर होना चाहती है कि उसके प्यार का ताप, उसकी दमक भी नीतेश तक न पहुँच सके। नीलेश को लेकर दु:खी और अपमानित होने का उसे क्या हक

है ! निश्चय ही, वह नीलेश की उस खुशी से जल उठी थी, जो वह दूसरों को लुटा रहा है और अपनी सहेली की तारीफ से भी, जो एक जवान, खूबसूरत और कुटिल स्त्री है। वह कुछ देर पूर्व इन बातों को सोचकर जलविहीन मछली की तरह छटपटाने लगी थी, किन्तु अब वह निर्जीव-सी हो गई है। उसकी अग्नि बुझकर राख में बदल गई है। वह सहसा उठकर अशक्त वाणी में बोली :

"महाराजलक्ष्मी, मैं जल्दी जाना चाहती हूँ। अम्मा से वादा करके आई हूँ। मेरे दिल में कुछ नहीं है। अभी कुछ देर पहले मेरे मुँह से जो कुछ निकल गया था, वह एक तुच्छ बात थी। उसके लिए मैं तुमसे माफी चाहती हूँ। अब गणेश काका को बुलाओ, मैं घर जाना चाहती हूँ।"

महाराजलक्ष्मी भी उठ खड़ी हुई और उसने अपनी आँखों को पोंछते हुए कहा, "यह नहीं होगा। बिना कुछ खाए कैसे जाओगी? तुम भी मुझे माफ करो, अगर मेरी किसी बात का तुम्हें बुरा लगा हो। मैं तुमसे बहुत-सी बातें करना चाहती थी, लेकिन छोड़ो। बाद में जब तुम अच्छे मूड में होगी तो तुमसे दिल खोलकर बात करूँगी। बोलो, क्या खाओगी। सास-ससुर तो सादा खाते हैं, पर तुम्हारे लिए पूड़ी, कचौड़ी, पुलाव वगैरह बनाए हैं...।"

"मैं तो यह सब खाती नहीं...।" नम्रता होंठों में मुस्कुराई।

"फिर क्या खाओगी ? गोश्त-मछली तो हम खाते नहीं...।"

"इनका भी शीक मुझे नहीं है। तुम यही लाओ, जो बाबूजी के लिए बनाया है। सादा दाल-भात। रोटी भी नहीं...।"

"वाह, कैसी बात करती हो ? मरीज का खाना क्या खाओगी? अच्छा, मैंने ’मली का अंगा बनाया है अपने लिए। क्या तुम खाओगी ?"

"यह क्या होता है ? मैं नया नाम सुन रही हूँ।" नम्रता खुलकर हँसी।

"मछली के झोल की तरह समझो। लेकिन यह अधिक चटक होता है। गर्म

पीसे मसाले और मिर्च, लहसुन, जीरा आदि के तड़के की बात है। मैं तो ऊपर से एक ताजी-हरी मिर्च भी लेकर बैठती हैं। मुझे और कुछ नहीं चाहिए, इसके साथ सिर्फ भात मिल जाए, चलेगा।"

महाराजलक्ष्मी ने मुँह के लार को घोंटते और जवान चटपट चलाते हुए जो सवाल किया, उस पर नम्रता ने हँसकर और अपने सिर को बाएँ से दाएँ ऊपर की तरफ झटककर अपनी सहमति जता टी। हरी मिर्च ऐसी चीज है, जिसको लेकर महिलाओं में आज तक कोई मतभेद देखने में नहीं आया।

भोजन करने में दोनों को ही आनन्द आया। वे इत्मीनान से धीरे-धीरे खा रही थीं। दोनों ही हर कौर जीभ को मुँह से निकालकर ग्रहण करती थीं। वे बार-बार सी-सी करके मिर्च की तारीफ करती थीं, 'भई, खूब तीती है!' इसी सिलसिले में गोरखपुरी मिरचई (छोटी हरी मिर्च) की विशेष प्रशंसा हुई, जिसके सम्बन्ध में भी दोनों में, कोई मतभेद नहीं था, क्योंकि उनको उसके स्वाद का सुखद पूर्व अनुभव भी प्राप्त था। इसके अलावा कुछ और उखड़ी-उखड़ी बातें हुईं घरेलू और स्कूली किस्म की। एक, सिर को ऊपर उठाकर बात का कोई छोटा, सूचनात्मक टुकड़ा फेंक देती थी। कुछ क्षणों बाद दूसरी भी वैसा ही करती थी। असम्बद्ध बातों की निरर्थक कड़ियाँ।

महाराजलक्ष्मी ने नम्रता को हँसी-खुशी विदा किया। नम्रता के जाने के बाद वह अपने कमरे में आकर बैठी तो बैठी ही रह गई। वह स्त्री थी और किसी भी स्त्री का आकलन हवाई नहीं होता। उसकी घ्राणशक्ति बड़ी प्रखर और अचूक होती है किसी कुत्ते की तरह। स्त्री कोई भी हो, वह साबुत अन्न या मसाले की ही तरह सम्बन्धों की घटनाओं को बीन, छाँट और पछोरकर उनमें से असली चीज निकाल लेती है। वह सोच रही थी कि नीलेश का मामूली उल्लेख करते ही नम्रता का बिगड़ना अकारण नहीं है ! जरूर कोई छिपी बात है-यह खयाल आते ही वह जलन का अनुभव करने लगी।

22

घटनाएँ तेजी से घट रही थीं। सदाशयव्रत के घर हुई सभा की बात पुलिस से छिपी नहीं रही। तीन-चार दिन बाद ही सदाशयव्रत गिरफ्तार कर लिए

गए। उसके कुछ दिनों बाद टाउन-हॉल में आयोजित विशाल जनसभा के पश्चात सुरंजन शास्त्री जेल पहुँच गए। नीलेश इन राजनीतिक सरगर्मियों की वजह से काफी व्यस्त रहा। वह नाश्ता करके सुबह ही निकल जाता और देर रात में आता। कभी दो-तीन दिन तक गायब रहता। घर के लोग बड़े परेशान हो रहे थे। एक दिन सीतानाथ ने बाहर से आते ही उससे कहा :

"नीलेशजी, आज सवेरे में पूजा से उठकर कमरे में जाकर बैठा ही था कि लगा, प्रभु श्रीरामचन्द्रजी मुझसे कह रहे हों. 'सीतानाथ, नीलेश को बनारस भेज दो, इस समय यहाँ का आबोदाना उनके लिए ठीक नहीं है। अभी से बनारस जाकर पढ़ेंगे तो बोर्ड की परीक्षा में टॉप करेंगे। बनारस में ही बलिया, बोर्ड और बनारस, तीन 'ब' का योग अत्यन्त शुभकारी है। बस भैया, तुम अभी से अपनी तैयारी शुरू कर दो और कल दस बजे वाली ट्रेन से रवाना हो जाओ। समझे भैया,

अब एक मिनट की देरी न होने पाए।"

आनन्दी ने जो बरामदे में किसी काम से आई थी, टोका, "कल ही कैसे चले जाएँगे। न कुछ खाया, न पीया। मन की चीजें बनाकर कहाँ खिला सकी हैं मैं? चले जाएँगे तो कलेजे में करछुत-सा घूमता रहेगा।"

"अब कितना खिलाओगी-पिलाओगी भाई ? कब तक यह तुम्हारी गोद में लेटे रहेंगे? यहाँ रहेंगे खाने-पीने के चक्कर में और जेल में चक्की पीसने चले जाएँगे तो तुम्हारा कलेजा क्या ठंडा हो जाएगा! अरे, जब प्रभु श्रीरामचन्द्र हक्म दे रहे हैं तो तुम क्यों दाल-भात में ऊँट का ठेहन वन रही हो। समझ लो. जहाँ का आबोदाना लिखा होता है. आदमी वहीं अदवदाकर चला जाता है। अगर कल शाम को इनका आबोदाना बनारस में लिखा होगा तो तुम लाख कोशिश करो, कल सवेरे दस बजे बाली गाड़ी से इनका बनारस जाना रोक नहीं सकती। और इनका आयोदाना बलिया ही में लिखा है तो इनको कोई बनारस भेज नहीं सकता।"

जब आनन्दी ने उनकी बात का प्रतिवाद नहीं किया तो उनका गुस्सा शान्त हो गया। उन्हेंनि धीमे स्वर में कहा, "अच्छा भैया, एक दिन तुम रुक जाओ। वह तुम्हारी माँ है न जी, उनकी भी भावनाएँ हैं। बनाकर खिला लें गिनकर एक-एक चीज... अजका-बजका, पूड़ी-कचीड़ी, ठेकुआ-मालपुआ। हाँ, बनारस जाने पर कोई अफसोस न रह जाए। ठीक है, खा-पी लो जो चाहो और परसों बनारस रवाना ! लेकिन यह न हो कि इधर गरीब महतारी-जायकेदार पकवान बनाकर इन्तजार कर रही है और बबुआजी का कहीं पता ही नहीं है, वह तो कहीं और कांग्रेसियों के साथ बैठकर लाई-चना खा रहे हैं...।"

अन्त में सीतानाथ ठहाका लगाकर हँस पड़े। नीलेश कुछ बोला तो नहीं, मगर उसे अपने पिताजी की हँसी बुरी लग गई। वह क्या मौज-मस्ती के लिए घूम रहा है? राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ देश की आजादी के लिए काम करते हुए रूखे-सूखे पर सन्तोष करना क्या घृणित बात है ? बलिया अब काटने भी लगा था उसे। अनेक लोग तो जेल चले गए थे, जिसकी वजह से उसकी व्यस्तता कम हो गई थी। अब खाली समय में उसे बार-बार उस दिन की नम्रता की अकारण रूखाई का ख्याल आ जाता, जिससे बचने के उद्देश्य से भी वह खूब भाग-दौड़ करता रहा था।

बाद में उसने अपनी माँ से कहा, "मैं कल ही जाऊँगा, माँ! मेरा इस वर्ष फाइनल है, बाबूजी ठीक कहते हैं, अभी से पढ़ूँगा तो नम्बर अच्छे आ जाएँगे। तुम मुझे न रोकना, मैं दशहरे में आऊँगा तो इत्मीनान से अपनी पसन्द की चीजें तुमसे बनवाकर खाऊँगा।"

"अरे बाबू, अरे बाबू...।" आनन्दी रोने लगी।

अब यह संयोग ही है कि रतनसिंह मुख्तार के कचहरी जाने के बाद नम्रता की माँ कुछ फुरसत पाकर बाहर के खुले बरामदे में जब साँस लेने के लिए आई तो उसने नीलेश और उसके पीछे बीरेश और सुरेश को स्टेशन की ओर जाते हुए देखा और जल्दी में कुली न मिलने की वजह से अधेड़ भीमल-बो दाई अपने सिर पर बक्सा और हल्का होल्डाल लादे उनके पीछे-पीछे किसी पैदल चाल-प्रतियोगिता की फिसड्डी-खिलाड़िन की तरह

भाग रही थी। नम्रता की माँ को जिज्ञासा हुई कि क्या बात है। इधर वीरेश और सुरेश भी नहीं आते कि उनके घर का हाल-चाल मिले।

वह कुछ देर तक किसी-न-किसी बहाने बरामदे में ही मँडराती रही। पहले उसने एक परिचित सब्जी फेरीवाली को बुलाकर देर तक मोल-तोल करती हुई बैगन खरीदे। फिर कुछ दूरी पर ही एक एक्केवान के घोड़े के नाल ठुकते देखती रही। फिर दो बार निरुद्देश्य भीतर गई और बाहर आई। तीसरी बार उसने जब यही क्रिया दोहराई तब जाकर भीमल-बो दाई लौटती हुई दिखाई पड़ी, जो नीलेश के घर न जाकर एकदम तिरछे कटती और मुँह को घुमाकर छिपाती हुई इधर से सीधे निकत रही थी। वह किसी ओर नहीं देख रही थी, इसलिए नम्रता की माँ ने मजबूरी में हल्की ताली बजाई।

से उसे पास बुलाया। भीमल-यो दार्ड कोर्ड बहरी नहीं थी. उसने सिर उठाकर देखा तो नम्रता की माँ ने हाथ के हल्के इशारे

भीमल-बो दाई ने सकपकाकर पहले नीलेश के मकान की ओर देखा और आश्वस्त होकर जल्दी-जल्दी तुलबुल चाल से पास पहुँचकर बोली, "अरे जल्दी बताएँ मलिकाइन, देर हो रही है। बच्चे भूखे हैं...।"

"काम-धाम हो चुका है ?"

"अरे हाँ..." भीमल-बो ने सिर घुमाकर फिर नीलेश के घर की तरफ नजर दौड़ाई। "आ जाओ, भीतर आ जाओ... कुछ मीठा खाकर पानी पी लो... बड़ी गर्मी है।"

स्त्री अपनी सीमाओं में सिद्ध कूटनीतिज्ञ होती है। एकदम व्यावहारिक, कभी-कभी तुच्छता की हद तक। अफसोस की बात है कि उसको दबाकर रखा गया। यदि ऐसा न होता तो वह राजनीति और कूटनीति की उच्च खिलाड़ी होती और नियोजन और प्रवन्धन के क्षेत्र में अनेक शारीरिक शक्ति वाले मूर्ख, आलसी, बड़बोले और हीनता प्रलापी पुरुष राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और प्रवन्धकों से अधिक सक्षम और कुशल। और ऐसा भी नहीं

है कि भीमल-बो दाई राजनीति-कूटनीति में कम माहिर हो। वह उसी समय समझ गई कि नम्रता की माँ उससे कौन-सी सूचनाएँ चाहती है और यह भी कि उसे क्या-क्या बताना है।

भीतर बरामदे में पहुँचकर नम्रता की माँ ने भंडारघर से एक बोरा लाकर फर्श पर बिछा दिया। जब भीमल-बो दाई बैठ गई तो एक डलिया में बाजरे का ढूँढा लाकर उसके सामने रखा। फिर एक तोटे में पानी भी। अन्त में एक मचिया लेकर उस पर स्वयं बैठती हुई उच्चवर्गीय चालाकी-भरे स्नेह से बोली :

"लो, इत्मीनान से खाओ। इच्छा हो तो और ले लेना। मेरे मैके से आया है, एकदम ताजा है, पानी भी खूब शीतल है घड़े में का।"

भीमल-बो दाई ने मुक्कों से मार-मारकर बड़े और कड़े ढूँढे के कई टुकड़े किए और एक छोटे-से टुकड़े को मुँह में डालने के बाद अपनी नाक की तरफ देखकर कहा :

"ए मलिकाइन, अलमुनिया के इस लोटे को अब बदल दीजिए। पिचक भी गया है। अब तो बाजार में एक-से-एक फूल के लोटे मिल रहे हैं। मेरा लड़का तो अलमुनिया के बर्तन देखकर बड़ा बिगड़ता है, उसने एक दिन घर के सभी ऐसे बर्तन भिखमंगों को दे दिए। रोज फजीरे बाजार से जिलेबी लाकर फूल के कटोरे में जलखावे के लिए देता है। कहेगा, पैसा रखकर क्या होगा, अम्मा। तुम्हारे दाँत में तकलीफ रहती है तो, भूजा-भूजी, तिलवा-ढूँढा न खाया करो...।"

नम्रता की माँ जल-भुनकर कोयला हो गई। वह बाहर की ओर देखने लगी, जैसे भीमल-बो दाई की बात सुनी ही न हो। फिर यह कहकर, उठकर झूठमूठ बाहर चली गई, "देखूँ, छोकरा कहाँ है। ये छोटे लोग खिलाने-पिलाने का एहसान भी तो नहीं मानते। राजा बाबू की तरह रखा जाता है, कोई खास काम भी नहीं है, पर जहाँ बाबूजी कचहरी गए कि बिना बताए धीरे-से खिसक जाता है खेलने के लिए। पक्का दो घंटे बाद भूत बनकर आता है। इसी से तो कहा है, नौकर-चाकर को दबाकर रखना चाहिए...।"

वह बाहर जाकर जल्दी ही लौट आई। उसे इस समय नम्रता पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। इसी ने इन सबको सहकाया है, नहीं तो जूठ पर पलनेवाली और अंजुरी से पानी पीनेवाली बर्तन के बारे में इस तरह आनी-बानी बोलने की हिम्मत करती ? छोटी जाति की दो औरतों को बुलाकर पढ़ाती है, उनको खरीदकर दो चरखे दे दिए, और तो और जिन बर्तनों में हम खाते-पीते हैं, उन्हीं बर्तनों में उनको भी खाने-पीने को देती है। अन्धेर मचा रखा है इस छोकरी ने। ऊपर से, यदि कुछ कहो तो लड़ती है, 'जमाना बदल गया है। सब बराबर है, कोई भी नीच नहीं है। तुम इनको

लगती है...। नीच जाति न कहो...।' जो ऐरी-गैरी औरत मिलती है. उसको शिक्षा और बराबरी का पाठ पढ़ाने

किन्तु, अन्दर लौटकर यह कुछ व्यावहारिक कारणों से पुनः उदार बन गई। एक डर तो यह था कि नम्रता, जो बगल में ही अपने कमरे में बैठी 'आज' अखबार पढने की कोशिश में असफल होकर अपने दुःख में डूब उतरा रही थी, यह सब देख-सुनकर कोई बवाल खड़ी न कर दे ! फिर भीमल-बो दाई ने कड़ा व्यंग्य करके उसकी जो छवि बिगाड़ दी थी, उसको सुधारने के लिए स्वयं आतुर हो उठी. क्योंकि ये लोग खिलाने पिलाने का जंग-भर में बखान कर आती हैं! मीमल-दो दाई का प्रतिरोध बरा तो लगा ही. लेकिन उसी ने कुछ उदार भी बना दिया नम्रता की माँ को यह आश्चर्य की बात है। और असली बात उससे अभी तक हई कहाँ जो वह उससे जानना चाहती थी !

वह रसोईघर में इस उद्देश्य से तेजी से चली गई कि सवेरे के नाश्ते-हलवा, पूड़ी और चने की घुघनी के अवशेष में से भी थोड़ा-सा निकालकर दे दे; लेकिन वहाँ पहुँचकर उदारता का ऐसा प्रकोप हुआ उस पर कि चार में से दो पूड़ियाँ, एक बड़ा हबक्का हलवा और मजे की मसालेदार घुघनी गृहसेवक की अलग रखी छिपुली में रखकर भीमल-बो दाई के पास ले जाकर हँसती हुई बोली :

"लो, मुलायम-मुलायम हलवा-पूड़ी भी खाओ। गाँव का शुद्ध घी खूब पड़ा है, खाओगी तो नाक और गाल में भी चुपड़ जाएगा। हाँ, अभी-अभी कहाँ से आ रही थी, बाजार गई थी क्या?" हलवा-पूड़ी देखकर भीमल-बो खुश हो गई, जिसकी खुशबू नाक के रास्ते पेट में पहुँचकर एक विशेष प्रकार का क्षुधा हड़कम्प मचाने लगी। उसने एक छोटी, मजबूर हँसी के साथ ढूँढा टुकड़ों की डलिया को हल्के हाथ से परे हटाकर कहा:

"ए मलिकाइन, इसको अभी नहीं खाऊँगी। एक कागज दे दीजिए उसमें रखकर घर ले जाऊँगी, लड़के-बच्चे खा जाएँगे। हलवा बड़ा अच्छा महक रहा है, ए मलिकाइनजी। इतनी उम्र हो गई, एक-से-एक बड़े घरों में खाया, हलवे की ऐसी खुशबू कहीं नहीं मिली।" उसने बाहर की ओर हाथ इशारे से नीलेश के घर का संकेत करते हुए थोड़ा मुँह विचकाकर कहा, "वहाँ हलवा के नाम पर लुआठी बनती है, एकदम गोबर!" अन्त में हाथ से थोड़ा हलवा उठाकर जीभ पर रखकर मुँह चलाती हुई बोली, "गई थी सामान लेकर स्टेशन पहुँचाने। बड़का लड़कया गया है बनारस पढ़ने न!"

"पढ़ने ? अरे, कॉलेज खुलने में तो अभी बहुत दिन हैं। इतनी जल्दी ? मैंने तो सुना था, शादी होनेवाली है इसी गर्मी में ?"

भीमल-यो दाई हलवा-पूड़ी खाने में मस्त थी। उसने मुँह चलाते हुए अर्धचर्वित ग्रास को जल्दी से पेट में पहुँचाने के बाद दाहिने हाथ को आगे हिलाते हुए कहा :

"अरे छोड़िए मालिकाइनजी, किसकी बात करती हैं। भेजा था मुझी को लड़की देखने न। ब्राह्मण-ठाकुर की लड़कियों की तरह सादी, हराठी-मुराठी थोड़े ही थी। कयथिनियों को तो जानती ही हैं। जैसे वे खूब सिंगार-पटार करती हैं, उसी तरह लड़की भी बेसवा की तरह खूबसूरत बनी-ठनी थी। चाहा की तरह आँखें थीं ए मलिकाइनजी।" उसने हाथों, मुख और आँखों के तालमेल बाती नर्तकी मुद्रा बनाई, "खूब जोबन पर थी। रुपया-पैसा, जगह-जमीन, हाथी-घोड़ा सबकुछ दे रहे थे वे लोग। सभी तैयार हो गए, पूरी बातचीत हो गई, लेन-देन सब तै हो गया, बस आखिर में लड़का ही बिदक गया। उसने, सुनते हैं, दस पन्ने की एक चिट्ठी अपने बाप को

लिखी। न मालूम क्या गिटपिट लिखा था। वकील साहब भी उसकी भाखा नहीं समझ सके। फिर छोटे लड़के को बुलाकर उससे सबकुछ समझा। लिखा था-शादी करनी है मेरी तो पहले गोरे लोगों को भगाइए। अब बड़ा

को पकड़नेवाले हैं। यह शादी तो कट गई है। लड़की का बाप यहाँ आकर वकील साहब के पैरों पर गिरकर बिलखने लगा- मेरी लाज बचा दीजिए, सारा जग जान चुका है। वकील साहब ने खतरा हो गया है मलिकाइनजी। सुनते हैं यह सब बात गोरों तक पहुंच गई है, वह नीलेश भैया साफ-साफ कह दिया. 'शादी करनी है तो गोरों को फौरन भगा दीजिए...।' यह बिलखकर चले गए। गिरफ्तारी के डर से लड़के को बनारस भेज दिया गया है, मलिकाइनजी। वहीं स्टेशन गई थी। गाडी में देर थी. मैं सामान रखकर चली आई।"

भीमल-यो दाई घर निर्जन समझकर इशारे से मना करने पर भी जोर से बोल रही थी। नम्रता पहले ही चौकन्नी हो गई थी। नीलेश का नाम और उसके शादी से इनकार करने की बात सुनकर उसके दिमाग में सन-सन, झन-झन होने लगा। उसका कमरा और पूरा मकान उसे उलटा होकर हिलता हुआ महसूस हुआ। वह तुरन्त खड़ी हो गई और दौड़ती हई छत पर पहुँचकर चहारदीवारी से झाँक-उचककर स्टेशन की ओर देखने लगी, लेकिन सामने की मुसाफिरखाने की टिन वाली छत के अलावा कुछ नहीं दिखाई पड़ा। वह नीचे उतर आई और बदहवास सी बाहर की ओर चौड़ी। बाहर उसने नीलेश के घर की ओर, फिर स्टेशन जानेवाली सड़क को दूर-दूर तक निहारा। कोई नजर नहीं आया तो एक बार फिर ऊपर छत पर जाकर स्टेशन की ओर देखा। उसके सामने अँधेरा छाने लगा। यह किसी तरह नीचे उतरी और अपने कमरे में पहुँचकर, दोनों हाथों से हवा में कुछ टटोलती हुई अपने बिस्तरे पर गिर गई। अन्त में उसके मुँह से धीमी आवाज निकली, "अरे अम्मा।"

नम्रता मूर्छित पड़ी थी। उसके दाँतों पर दाँत बैठे थे। उसकी माँ एक कागज देते हुए उसमें बचे हुए पकवान और ढूँढा के टुकड़े को रखकर वहाँ से अब जाने का भीमल-बो दाई को निर्देश दे चुकी थी। भीमल-बो दाई

तीव्र जिज्ञासा होते हुए भी कुछ समझ न सकी और मजबूर होकर जल्दी-जल्दी धूप और सड़क को निहारती हुई वहाँ से चली गई।

नम्रता की माँ दौड़ी हुई कमरे में गई और बेटी की दुर्दशा देखकर उसके मुँह से चीख-भरी आवाज निकली, 'अरे, तुम्हें क्या हुआ है?' वह पास पहुँचकर उसकी परीक्षा करने लगी। पहले उसके चेहरे पर पानी से छींटे डाले। बेहोशी दूर न हुई तो दो-तीन बार अंगुलियों से नाक को बन्द किया। अन्त में मूर्छा टूटी और उसके मुँह से पतली-सी रुदन-भरी आवाज सुनाई पड़ी, "अरे अम्मा...मुझे क्या हो गया है...।"

"तुम्हें कुछ नहीं हुआ है, मेरी बेटी ! तुम बोलो नहीं, जब तबीयत स्थिर हो जाए तो बताना। तुम्हें हुआ कुछ नहीं है, कभी-कभी गर्मी की वजह ऐसा हो जाता है। मुझे कई बार हो चुका है..."

इस आश्वासन के बावजूद नम्रता एक बार फिर मूर्छित हुई। लेकिन होश जल्दी आ गया। वह चैतन्य हो चुकी थी। वह अब पूछने पर कुछ नहीं बोली, बस उसकी आँखों के दोनों विपरीत छोरों से आँसू की धाराएँ उसके कपोलों को भिगोती जा रही थीं।

रोते-रोते वह सो गई। शाम को रतनसिंह आए तो वह बेहद चिन्तित हो उठे। डॉक्टर से दिखाने के लिए कहा गया तो नम्रता ने मना कर दिया। उसने कहा, "मैं अब ठीक हैं। शायद गर्मी की वजह से हो गया था। सिर में पहले सनसनाहट हई. फिर लगा कि चारों ओर अँधेरा छा गया है. साँस डूबने लगी। हवा के लिए ऊपर गई. बाहर गई. कमरे में आई. उसके बाद मुझे कुछ याद नहीं है कि क्या हुआ। लेकिन अब मैं ठीक है। कुछ नहीं होगा मुझे अब, सोऊँगी तो एकदम ठीक हो जाऊँगी।" उसने होंठों में मुस्कराने की चेष्टा की।

शाम को दो संतरे और रात में मैंग की पतली खिचडी खाकर वह सोई तो खूब सोई। सुबह उठी तो पूर्ण रूप से स्वस्थ थी। आँखें खलते ही उसने चौंककर इधर-उधर देखा। फौरन उठ बैठी। एक क्षण के लिए लगा था कि

नीलेश उसके सिरहाने बैठा उससे कुछ कह रहा है। उसके होठों पर वे तकलीफ देह धड़कनें थीं और न ही नैराश्य का अन्धकार। अब हृदय में कोई ताप नहीं था कोई मुस्कुराहट फैल गई। यह फिर लेटकर अलसा गई। अब न उसके शरीर के अन्दर उसके हृदय की भी लटकता हुआ बोझ नहीं बल्कि वह एकदम हल्का होकर आशा और उम्मीद की गुदगुदी से उठन रहा था। उसके मन में एक सूरज उठ रहा था. छूटते हुए धंध में क्षण-क्षण अधिक चमकता हुआ सूरज।

उसके शरीर और मन में चारों ओर आशा की किरणें फैल गई थीं। यह उन किरणों को सदा के लिए अपनी मटटी में पकड़ लेना चाहती थी। वह अब किसी हालत में उन किरणों को नहीं छोडेगी। नीलेश ने ही यह अधिकार दे दिया है उसे। यह सब सोचकर वह फिर दुःखी हो गई। सहसा निसहाय-सी हो गई और झर-झर रोने लगी। कितना दुःख दिया है उसने नीलेश को अब तक और यह चुपचाप सहता रहा है यह सब। कुछ देर तक बिलखने के बाद वह आशा की डोर फिर पकड़कर उठ खड़ी हुई। उसने एक कोने में रखा अपना सूटकेस खोलकर इसमें से वह पत्र निकाल लिया, जो उसने कभी नीलेश के नाम लिखकर भी उसके पास नहीं भेजा था। वह पत्र पढ़कर फिर रोई और रोते-रोते ही उसने पत्र की नीचे बची खाली जगह पर निम्नलिखित शब्द लिखे :

"तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ? क्यों नहीं बताया...

मुझे माफ करो, माफ करो, माफ करो...

अब मैं तुम्हारे अलावा कुछ नहीं सोच पाती... मैं इन्तजार कर रही हूँ..."

उसने पत्र फिर सूटकेस में सुरक्षित स्थान पर रख दिया। उसके आँसू रुक चुके थे। यह खुश थी। उसकी आँखें चमक रही थीं। अचानक उसने देखा कि उसकी माँ डरी-डरी उसके कमरे में झाँक रही है। वह उछलकर दौड़ती हुई अपनी माँ के पास जाकर उसके गले लग गई। चहकती हुई आवाज में बोली, "अम्मा, मैं बहुत खुश हूँ। आज ऐसी नींद आई कि कुछ पता ही नहीं चला। तुमने रात को जरूर मेरे बालों में तेल लगाया, लेकिन उसका

भी मुझे भान नहीं हुआ। अब तुम कोई भी चिन्ता न करो माँ ! मैं आज से पढ़ाई शुरू कर दूँगी। खूब मेहनत करूँगी। और अच्छा नतीजा लाकर तुम्हें दिखा दूँगी...।"

सचमुच उसमें अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। ऐसी खुश तो वह कभी नहीं थी। हँसना और गुनगुनाना उसका फिर शुरू हो गया। इधर धनेसरी आदि को पढ़ाना भी उसने छोड़ दिया था। यह टाल जाती थी और वे आकर लौट जाती थीं। यह अध्यापन अब फिर से चालू हो गया। बनवारी की औरत नियमित नहीं थी, कुछ आलसी भी थी, अपना पाठ तैयार करके नहीं आती थी। लेकिन धनेसरी मेहनती और समझदार थी। अपना पाठ भी वह तैयार करके लाती थी, इसलिए उसे अक्षरों, मात्राओं का लिखना-पढ़ना आ गया था। पचास तक गिनती भी वह लिख लेती थी।

एक दिन धनेसरी आई तो बहुत दुःखी थी। उसका चेहरा लटका हुआ था। आँखें सूजी हुई थीं।

"क्या हुआ है ? इतनी उदास क्यों हो?" नम्रता ने पूछा।

अरे, कुछ नहीं दीदी, आप फिकिर न करें... यह तो हम लोगों में चलता ही रहता है..."

" "क्या चलता रहता है ? मुझे नहीं यता सकतीं ? तुम्हारे हसबैंड ने कुछ कहा है ?" नम्रता ने जिद-भरे स्वर में पूछा।

"अरे क्या सुनेंगी, दीदी ! और बात तो सब ठीक ही है, पीने की लत बहुत बुरी पड़ गई है। अच्छा चलो, पाव, आधा पाव महुआ पी लो, पीकर लात-मुक्का चलाना काहे ? दो पैसे बचाकर

रखती हैं क्या अपने लिए? बच्चे हैं, घर है, गृहस्थी है. हैरानी बीमारी है, वह भी छीन लेता है। मैंने पैसे देने से मना किया तो इतना मारा, इतना मारा कि क्या बताऊँ। मैंने भी हाथ चलाया, लेकिन मर्द-मानष से कहाँ पार पा सकते हैं। सभी पैसे

छीन ले गया। सारा शरीर दर्द कर रहा है. दीदीजी !" धनेसरी रोने लगी। नम्रता को बड़ा गुस्सा आया। फिर उसने उत्तेजित होकर कहा, "चलो. मैं तुम्हारे साथ उनके पास चलकर उनको फटकारती हैं। कानून है, पुलिस है, मजिस्टेट है. कोई मर्द अपनी स्त्री पर हाथ नहीं उठा सकता...।"

"अरे, ना दीदी, आप लड़की-बिटिया कहाँ जाएँगी उस शराबी के पास ? शराबी तो पागल कुत्ते की तरह होता है, दीदी, यह भींकता नहीं, सीधे काट खाता है। उसने आपको कुछ कह दिया तो मैं सीधे गंगा में जाकर डूब मरूँगी, नहीं तो सोते में उसी का गला काट लूँगी...।" धनेसरी ने अपनी आँखें पोंछ लीं।

"खैर, मैं नहीं जाऊँगी, लेकिन तुम उन्हें पहले समझाओ। शराब तो बहुत बुरी चीज है, पूरा खानदान बरबाद हो जाएगा। तुम किसी भी हालत में शराब न पीने दो, चाहे कुछ भी हो। अगर नहीं छोड़ेंगे तो मैं बाबूजी से कहकर उन पर मुकदमा चलाऊँगी, जेल भेजवाऊँगी। मारना-पीटना तो बरदाश्त करना नहीं।"

"अच्छा ठीक है, दीदी! आप चिन्ता न करो...।"

इसके बाद नम्रता इस प्रसंग को भूल गई। दस-पन्द्रह दिन बाद उसे याद आया तो पूछा उसने,

"अरे, क्या हुआ मारने-पीटने का ?"

"अरे ठीक है, दीदी, सब।" धनेसरी हँसने लगी।

"क्या शराब छोड़ दी ? अब मारता-पीटता नहीं ?"

"अब आपको क्या सुनाऊँ मनई-मउगी की बात। अच्छा आज रहने दें, बाद में कभी सुना

दूँगी।" धनेसरी ने दूसरी ओर देखते हुए कहा। "सुनाओ भई। मुझे न

सुनाओगी तो किसे सुनाओगी ?"

धनेसरी कुछ देर तक चुप रही। नीचे जमीन की ओर देखते रही। फिर बोली, "अच्छा लो, सुनो। एक दिन गाली-गलौज करने पर मैंने उससे कह दिया, 'यह आखिरी पैसा है। यह आखिरी शराब है। इसके बाद पीओगे तो ठीक नहीं होगा। और हाँ, यह भी बता देती हूँ, अब आगे से मुझ पर हाथ न उठाना, एक फूल से भी मारोगे तो मुझसे बुरा कोई न होगा, आज तक जो नहीं हुआ है, वह हो जाएगा।' ए दीदी, रात में शराब पीकर दाहा की तरह हिलते हुए आया और अनाप-शनाप बकने लगा। मैं कुछ न बोली। फिर गन्दी गन्दी गालियाँ देते हुए हाथ उठाकर मारने दौड़ा। सचमुच दीदी, मुझे तुम्हारी बात याद आई। हाँ, ठीक ही कहा है आपने, जितना तुम खटते हो, उतना ही मैं भी खटती हूँ। अपना शरीर बरबाद करती हूँ, तुम्हारे बाल-बच्चों का पालन-पोषण करती हूँ तो तुम्हारी मार क्यों सहूँ ? सच दीदी, मुझ पर भूत सवार हो गया। मैं काली भवानी बन गई। मैंने उछलकर उसे जोर का धक्का दिया। वह डगमगाता हुआ बाहर जाकर लुढ़क गया, तब तक मैंने फुर्ती से भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। वह उठकर फिर मारने के लिए आगे बढ़ा। बन्द दरवाजा पीटने लगा...।"

वह गुस्से से हॉफ रही थी और कुछ रुककर साँस लेने लगी। नम्रता की बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य में आगे निगल आई थीं और मुँह से सिर्फ इतना ही निकला, "अच्छा !"

"हाँ, दीदी, बड़ा गुस्सा चढ़ आया था। दरवाजा तो मैंने नहीं खोला, ऊपर से खिड़की से चीख-चिल्लाकर बोली-तू चला जा यहाँ से मरकिलीना, तूने मुझ पर हाथ उठाया है, गाली दी है, मैं यह सब बरदाश्त नहीं करूँगी। जब तक तुम ये गन्दी आदतें नहीं छोड़ते, यहाँ से दूर चले जाओ। बड़ा सस्ता समझते थे, जब देखो चले आते थे, बाप की कसम खाकर कहती हूँ, काली माई की

दुहाई देकर कहती हैं, अब तुम सुग्गी का दर्शन नहीं कर पाओगे. चाहे

कितना भी गिड़गिड़ाओ, नाक रगड़ो...।"

नम्रता कुछ समझ नहीं पाई। मुँह सिकोड़कर बोली, "क्या... सुग्गी? यह क्या है?"

धनेसरी ने चौंककर अपनी जीभ काटकर धीमे स्वर में कहा, "इसी से मैं नहीं बताती थी दीदी। तुम लड़की-बिटिया हो... हम गँवार हैं, बोलने-बतियाने का शहूर नहीं है। उस दिन के बाद से यह टेकुए की तरह सीधा हो गया है, जो कहती हूँ, वही करता है...।"

धनेसरी ने अगल-बगल देखकर मुँह का आँचल माथे के आगे खींच लिया। नम्रता को लगा कि वह कुछ-कुछ समझ रही है। सहसा उसके चेहरे पर हल्की लाली उभर आई। उसकी गर्दन मुड़कर स्थिर हो गई. जैसे अकड़ गई हो। उसकी नजर जमीन में गड़ गई। उसकी बोली कंठ के अन्दर ही जमी रह गई। कमरे में कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा, बस एक चिड़िया के फुदकने की आवाज बीच-बीच में सुनाई पड़ जाती।

फिर वह अचानक उठकर धनेसरी की ओर बिना देखे, अपने लाल मुँह को किसी दूसरी जगह छिपाने में असमर्थ, किसी तरह बोली, "तुम अब जाओ, मुझे एक बहुत जरूरी काम याद आ गया...।"

यह कहकर वह बाहरी बरामदे के कमरे से, जहाँ अध्यापन कार्य होता था, सिर झुकाए फुर्ती से भीतर अपने कमरे में चली गई। दिन के चार बजे थे। लू का अब नामोनिशान नहीं था। कुछ दिनों से पुरुवाई लगातार चल रही थी। उसने अपने कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और चारपाई पर चुपचाप बैठ गई। पर उसकी लज्जा और बढ़ गई। चेहरा बेहद लाल हो गया। तब अपना लाल चेहरा उसे खुद दिखाई देने लगा। वह कहाँ जाए? वह अपने चेहरे को दूसरों की नजरों से तो छिपाना ही चाहती थी, खुद अपनी नजरों से भी।

कमरे में पर्याप्त उजाला था। वहाँ बैठ नहीं सकी वह। अपना ही चेहरा बार-बार दिखाई देने लगा। यह उठी और किवाड़ खोलकर गुसलखाने में चली गई। लेकिन वहाँ तो शीशा टँगा था। फौरन ही वहाँ से निकलकर

छोटी सी कोठरी में चली गई, जहाँ काफी अँधेरा रहता था और वह कई बार परेशान होकर चुपचाप बैठ जाया करती थी। वहाँ सचमुच अँधेरा था, ठंडक थी, वह लेट गई, किन्तु वहाँ भी उसका सिन्दूरी चेहरा साफ दिखाई दे रहा था।

अब उठकर वह कहाँ छिपे ? वह कहाँ जाए? इसके पहले ही उसे गुदगुदी मालूम होने लगी। वह हँसने लगी। अचानक वह हँसी उसके भीतर से छोटी-छोटी तरंगों में ऊपर उठने लगी। ये तरंगें चारों ओर फैलने लगीं। इसमें से कई तरह की आवाजें उठ रही थीं। वह लोट-पोट हो रही थी। कभी बाईं करवट हो जाती कभी दाईं करवट। कभी बैठ जाती, कभी चित लेट जाती। अन्त में ही-ही-ही-ही करते हुए वह बेदम होने लगी, जैसे जान ही निकल जाएगी।

इसके आगे कोई हँसी नहीं बच रही थी। हँसी के ज्वार के बाद भाटा आ गया जो रुदन में परिवर्तित हो गया। अपने को रोकने पर होंठ काँपने लगे और धीरे-धीरे हिचकियाँ शुरू हो गई। शीघ्र ही वह जोर-जोर से सिसकने लगी। सिसकते-सिसकते उसके कंठ में घाव-सा महसूस होने लगा। वह बेहद थक गई थी और उसकी आँखें मुँद गई। वह सो गई, लेकिन सोने पर भी उसकी हल्की-हल्की सिसकियाँ कुछ देर तक जारी रहीं।

करीब डेढ़ घंटे बाद उसके पिताजी के आने पर कई आवाजें होने और उसकी अम्मा के पुकारने पर नींद उचटी। वह उठकर बैठ गई। चारों ओर देखा उसने, फिर सबकुछ याद करने की कोशिश करने लगी। उसकी आँखें मुँद गई। सामने एक फैला अन्धकार था और उसके बीच एक ज्योति उभरकर मूर्ति बन गई थी, जो मुस्कुरा रही थी। वह किसी भगवान की मूर्ति थी या नीलेश की ? उसे अपरिमित प्यार, धैर्य और शान्ति का एहसास हुआ। यह उसका कैसा अनोखा बोध था ! उसे

लगा कि यह धनेसरी की तरह साधारण , सरल और सहज हो गई है।

माँ के फिर पुकारने पर वह उठ खड़ी हुई और जब वह आँगन में पहुंची तो

अपने कमरे में बैठे रतनसिंह अपनी पत्नी से कह रहे थे :

"हाँ. मैं एक बात तो भूल ही गया। चिट्ठी कचहरी में ही पड़ी रह गई। तुम्हारे भाई ने लिखा है कारों से कि 10 अगस्त को उनके छोटेवाले लडके विभतिनारायण का प्रयाग में संगम तट पर मंडन होगा। वहाँ दारागंज में एक मकान लेकर कुछ दिनों तक यह अपने परिवार के साथ रहेंगे। सबको बुलाया है, अनुरोध किया है। क्या कहती हो, बस कचहरी छोड़नी पड़ेगी।"

"दो दिन कचहरी न जाने से कौन-सी आफत हो जाएगी ?"

"अच्छा तो चलेंगे। ठीक है, चलेंगे।"

"कहो नम्रता बेटी, ठीक है न।"

नम्रता एक क्षण वहाँ आकर खड़ी थी। वह खोई-खोई दृष्टि से देखते हुए बोली, "ठीक है बाबूजी !"

23

स्वातन्त्र्य आन्दोलन में बमपुलिस गली की भी एक सार्थक भूमिका है।

गली के लम्बे-तगड़े, छोटे, गोले चेहरे और बड़ी आँखों वाले रमाशंकर सन् '42 के 9 अगस्त से बहुत परेशान थे। थाली में भरे चने को गिनने के उद्देश्य से जैसे कोई चिमटे से एक-एक दाने को बीन-बीनकर दूसरे पात्र में रखता जाए, वैसे ही अंग्रेज हुकूमत की पुलिस ने बलिया के एक-एक कांग्रेसी और क्रान्तिकारी को जेल पहुँचा दिया और जो दो-तीन सम्भ्रान्त देशभक्त बाकी रह गए थे, उन्हें भी उस तिथि को तड़के ही गिरफ्तार करके कांग्रेस के मुख्य कार्यालय में ताला लगा दिया गया।

समस्या यह है कि रमाशंकर को यह भी नहीं मालूम कि इसी नौ अगस्त को बम्बई में सुबह कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्य तथा अन्य प्रतिष्ठित नेता भी गिरफ्तार कर लिए गए थे। बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ से सुबह जो अखबार आए थे, उनमें तो इस सम्बन्ध में कुछ भी

नहीं था। बलिया में उस समय बिजली नहीं होने की वजह से रेडियो और ट्रांजिस्टर कुछ भी उपलब्ध नहीं था। अब शहर में कांग्रेस के एकमात्र पदाधिकारी या डिक्टेटर, जो भी कहा जाए, केवल रमाशंकर ही बचे थे। लेकिन वह भी करें तो क्या करें? हाँ, अकेला चना क्या भाड़ फोड़ेगा ?

रमाशंकर उस गुप्त मीटिंग में उपस्थित थे, जो सदाशयव्रत के घर पर आयोजित की गई थी। तभी से वह अपनी गिरफ्तारी से बचते रहे हैं। वह कब घर पर आते हैं और कब निकल जाते हैं, यह निश्चित नहीं। इधर उनकी दाढ़ी भी बढ़ गई है। पहले वह गांधी टोपी लगाए बिना घर से निकलते नहीं थे। अब कभी सिर पर पगड़ी बाँध लेते, कभी अँगोछा रख लेते और कभी छाता तानकर अपना मुँह छिपाते हुए चल पड़ते। वह उन नौजवानों में हैं, जिन्हें सन् तीस में कोतवाली में बेंत से बुरी तरह पीटा गया था। उस समय उनकी उम्र बीस वर्ष से कुछ कम ही थी। लेकिन जब जेल से छूटे तो उनके पिता का देहान्त हो गया, जिसके बाद सोनारी व्यवसाय का भार उनके कन्धों पर आ पड़ा-उनका छोटा भाई तो उस समय सिर्फ आठ वर्ष का ही था।

यमपुलिस की पतली, अँधेरी और गन्दगी से भिनभिनाती और बजबजाती वह गली मुख्य रूप से निम्न वर्ग के लोगों से आबाद है। उनके पिता कृपाशंकर इन्हीं गरीब लोगों के सोनार थे। अजीब दुनिया थी इनकी। मुख्य रूप से इनमें कमकर-कहार, मोटिया-मजूर, लोहार, मोची, मामूली कारीगर,

भंगी और भिखमंगे भी रहते थे। लेकिन दाने-दाने को मोहताज इन लोगों के हौसले सदा खूब बुलन्द रहते हैं। बच्चे का जन्म हो अथवा शादी-ब्याह का अवसर, वे अपनी सीमा के बाहर दिल खोलकर खर्च करते हैं। यह सब उनके लिए आसान है. क्योंकि वह झट कर्ज ले लेते हैं. चाहे गहनागरिक बेचना पड़े या गिरवी रखना पड़े। वे अपना पुराना कर्जा कभी भी उतार नहीं पाते और नया कर्जा ले लेते हैं। भयंकर गरीबी और गन्दगी में रहनेवाले इन लोगों पर आसानी से भयंकर रोगों का भी हमला हो जाता

है। हैजा, चेचक प्लेग महामारी का यह कुख्यात अड्डा है। तय घर-का-घर वरवाद हो जाता है। टी. बी. भी सर्दी-जुकाम की तरह इस गली का सामान्य रोग है। सबसे भयावह लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि यह रोग अमूमन किसी घर में प्रवेश करके यहाँ के सिर्फ मदाँ का ही सफाया क्यों करता है? और तब खाते-पीते परिवारों की भी कई स्वाभिमानी औरतें देखते-ही-देखते दरिद्रता के अनचाहे सीमान्तों को छूने के लिए भी मजबूर हो जाती हैं। ऐसा ही एक अभिशप्त परिवार है बनवारी का।

एक समय वह भी था जब स्टेशन के पास बनवारी के पिता रमापति की फल और मेवे की दुकान बडी ही शानदार थी। क्या-क्या फल थे और कैसे-कैसे मेवे शहर में हर जगह सिर्फ हाजीपुर का छोटा, पीला चीनिया केला मिलता, किन्तु रमापति हरी छाल के तरह तरह के केले भी रखता। मौसम के अनुसार तरह-तरह के कलमी आम, आडू, खूबानी, इलाहाबादी अमरूद आदि क्या नहीं बेचता था वह। बड़ा शौकीन और अक्खड़ भी था वह। महीन धोती, रेशमी कुर्ता या अधवँही कमीज तथा गले में सोने की जंजीर पहनकर वह दुकान पर बैठता। चाहे शहर के किसी भी कोने में रहते हों, शहर के धनी, रईस, सम्पन्न लोग अथवा बाहर के ऐसे ही शौकीन लोग स्वयं आते अथवा अपने नौकर-चाकर को उसी की दुकान पर दौड़ा देते। वह हर सामान बड़ा महँगा देता, बड़ी रूखी आवाज में बोलता चाहे कोई भी हो और मोल-तोल तो बरदाश्त ही नहीं कर पाता।

"जाइए, जाइए और दुकान भी घूम आइए..."

रमापति बमपुलिस गली को स्टेशन वाली सड़क से जोड़नेवाली एक और भी पतली, अँधेरी गल्ती में निवास करता, जहाँ नालियों में काला-काला गाढ़ा कीचड़ बारहों महीने जमा रहता और निरन्तर दुर्गन्ध उड़ा करती। पर वह बहुत शान से रहता और रात में रेशमी अथवा तांजेब-मलमल के कुर्ते में इत्र मलकर, खुशबूदार पान चाभते और पम्प-शू चरमराते हुए सैर को निकलता और इशरतगंज तक का चक्कर लगा आता। वह किसी रईस से किस माने में कम है? ऊँची जातियों के कई बेचल्लू वकील-मुख्तारों तथा मुदर्रिसों और गरीब ब्राह्मण-ठाकुरों को जब वह कर्ज देता है तो वे बड़े हैं या वह ? घर की औरतें भी खूब ऐश कर रही थीं। रोज ही मांस पकता,

कभी कलिया, कभी मछली, कभी केकड़ा। वे खूब पहन-ओढ़कर और काड़ा-छाड़ा बजाती बाजार या मेला घूमने तथा मन्दिरदर्शन करने जातीं। लेकिन उसी समय तपेदिक ने रमापति पर हमला कर दिया। पता नहीं कहाँ से उसकी छाती में बलगम जमा हो गया। यह खाँसते-खाँसते खून बोकरने लगा। उसकी दुकानदारी चौपट हो गई, जमा पैसे खत्म हो गए, गहने बिकने लगे और वह दो वर्ष के अन्दर हड्डी का ढाँचा बनकर अपने बेसहारे परिवारजनों की चिन्ता लिए इस दुनिया से कूच कर गया।

बनवारी तब चौदह वर्ष का था। चार बहनों में वह एकलौता और पेटपोंछना पुत्र था। सारा परिवार छाती पीट-पीटकरकर विलाप कर रहा था। मगर वह सुन्न-सा बैठा अपने बाप के मृत शरीर को अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से देख रहा था। पिता ने मरने के एक दिन पहले उसे अपने पास बुलाकर कहा था:

"बबुआ, घबराना मति। अब घर का चिराग तुम्हीं हो।"

बनवारी की तीन बहनों की शादी हो चुकी है और गौना भी। चौथी बहन रतिया (रति देवी) का सिर्फ गौना बाकी है। बनवारी अपने बाप की तरह लम्बा नहीं हुआ। पाँच फीट में एक इंच

कम होने पर भी वह तगड़ा जरूर है. खास तरह से उसकी धड़ मोटी और मजबूत, छाती चौड़ी और पीठ कूबड़ की तरह निकली हई। बाप की तरह उसकी गर्दन भी लम्बी और खूबसूरत नहीं, सिर जैसे कन्धों से चिपका हुआ। उसकी आवाज बड़ी मोटी है. जैसे लाउडस्पीकर अथवा भोंपे से बोल रहा हो। जब वह बोलना शुरू करता दाहिनी तरफ उसकी गर्दन की नस काफी फूल जाती और तब तक फली रहती जब तक वह बोलता रहता। पर बोलता कम। यह दिमाग से तेज, समझदार और होशियार भी है। कक्षा चार की उम्र में पढ़ाई तो छूट गई, लेकिन उसे अपने पिता की यात याद रही और उसने संकल्प कर लिया कि जल्द ही वह फल और मेवे की दुकान लगाएगा और उसे अधिक-से-अधिक शानदार बनाएगा।

पिता की मौत के बाद ही बनवारी ने दौड़-धूप शुरू कर दी। कुछ लोगों पर अब भी उसके पिता का कर्ज था, जिसकी वसूली के लिए यह बार-बार तकादा करने लगा। कभी-कभी उसकी माँ भी घूँघट निकालकर उसके साथ जाती। घर में अब भी कुछ गहने बचे थे और साखू के कुछ बड़े सामान थे. जैसे पलंग, फल रखने की कई आलमारियाँ, बडे-बडे टंक वगैरह। फिर वह स्वयं दूसरे फलवाले के यहाँ नौकरी करने लगा। माँ ने बार-बार मना किया:

"तुम्हारे बाप की इतनी इज्जत थी, उसके यहाँ काम करोगे तो बेइज्जती होगी। वह तो मामूली कोइरी था, पहले सिर पर तरकारी की टोकरी लेकर गली-गली बेचता था। कई बार तुम्हारे बाप से उधार ले गया। उनकी बीमारी के बाद जब हमारी दुकान चौपट हो गई तो यह पता नहीं कहाँ से पैसा जुटाकर फल की दुकान लगाने लगा। वह अब घमंड से गर्दन ऐंठकर चलता है, हमेशा मूँछ पर ताव देता है और किसी ओर देखता भी नहीं..."

"माई, जी थोड़ा न करो। किस्मत ने साथ नहीं दिया, हमारी दुकानदारी चौपट हो गई तो घबराने से काम थोड़े चलेगा? इस समय तो धैर्य से काम लेना होगा। घर में पैसा आना जरूरी है। चुपचाप बैठने और कुढ़ने से कैसे पैसा आएगा? मैंने तो सोच लिया है कि फल-मेवे की ऐसी दुकान लगाऊँगा कि लोग अचम्भा करेंगे। पहले रतिया का गौना हो जाए। इसीलिए तकादे से जो पैसा आता है, उसमें से मैं खर्च नहीं करता।"

बनवारी ने सचमुच उस उम्र में अकल्पनीय समझदारी का परिचय देते हुए बड़ी मेहनत की। कर्जा का जो भी पैसा बाकी था, उसने वसूल लिया। फिर कुछ गहने और सामान बेचकर रतिया का धूमधाम से गौना हुआ, जिसके कुछ दिनों बाद उसकी भी शादी एक खाते-पीते परिवार में हो गई। वह खुश था। एक तो उसकी पत्नी भगजोगिनी तीखे नाक-नक्श की एक सुन्दर, मेहनती और बुद्धिमान स्त्री थी। इसके अलावा उसे दुकान फिर खोलने के लिए अपनी ससुराल से कुछ आर्थिक मदद भी मिल गई। और जो कमी रह गई, उसकी पूर्ति दामोदर प्रसाद ने कर दी, जो रमापति के गाँव का और उसका दोस्ता भी था। दामोदर प्रसाद कक्षा नौ से आगे नहीं पढ़ सका, लेकिन वह चूँकि काफी लम्बा-तगड़ा था, इसलिए उसके

वकील पिता ने अपने प्रभाव से एक स्थानीय हाई स्कूल में गेम टीचर के रूप में उसकी नियुक्ति करा दी।

दामोदर प्रसाद की तनख्वाह बहुत कम थी, लेकिन पिता के मरने के बाद वह गाँव की काफी जमीन-जायदाद का मालिक बन बैठा, जहाँ दूर के एक गरीब चचाजात भाई को प्रबन्धक नियुक्त कर धन पैदा करके शहर में दुनिया के मजे लूटने लगा। उसे कुछ आता-जाता नहीं था, लेकिन वह काफी मजाकिया था और मजाकों से ही अपनी मेहनत की क्षतिपूर्ति करता रहता था। अपने स्कूल के खिलाड़ियों को कोई खास प्रशिक्षण देने के बजाय उनको सदा यही बताता रहता कि विपक्ष के अच्छे खिलाड़ी के हाथ-पैर कैसे तोड़ दिए जाएँ। वह टाउन क्लब के वार्षिक नाटक में अनिवार्य रूप से भाग लेता। एक बार उसने कुन्ती का अभिनय किया था और एक अन्य अवसर पर तिष्यरक्षिता का। वह इतना लम्बा था कि अन्य सभी पुरुष पात्र उससे कद में छोटे थे, लेकिन ऐसी

स्थिति में जब वह टेढा बदन करके और जवान ऐंठकर जो कुछ बोलता, उससे बड़ी हँसी होती। लोग सीटी बजाते लगते। अन्त में निर्देशक ने इस भूल से नया सबक लेकर उसे तीसरे नाटक में हास्य-अभिनेता के रूप में प्रस्तुत किया।

वेश्याओं के गाने पेश किए जाते और तत्पश्चात दामोदर प्रसाद को जोकर के रूप में उतारा जाता। इंटरवल का जब पर्दा गिरता उसके बाद दर्शकों को ऊब से बचाने के लिए पहले कुछ मशहूर उसके मुँह की विचित्र चित्रकारी तथा पीछे लगाई पूँछ को देखते ही श्रोता ठहाके लगाने लगते। उसका सबसे लोकप्रिय अभिनय का अंश वह था जब एक लाठी के घोडे पर सवार एक वीर सेनानी के रूप में ऊल-जलूल आत्म-परिचय देते हुए वह स्टेज की दीवार से 'अनजाने' में टकरा जाता। इसके बाद वह दसरे प्रकार का आत्मालाप शुरू कर देता. जिसमें पता नहीं कैसे एक मेंढकी का जिक्र आ जाता. जिसे छोड़कर कए का मेंढक बाहर चला जाता है। अन्त में वह अपने हास्य अभिनेता का एक सर्वाधिक लोकप्रिय गाना बनावटी

फटी आवाज में मेंढकी की प्रशंसा में पेश करता

बीवी मेंढकी हो ! तू तो पानी में की रानी। कौआ तेरा भाई-भतीजा, चील तेरी देवरानी, बगुला तेरा प्यारा देवरा, चोंच लम्बी तानी।

बीवी मेंढकी हो !

दामोदर प्रसाद की और भी कई खूबियाँ थीं। एक तो उच्च रईसों की तरह स्वयं रईस बनने की इच्छा से वह शाम को पैजामा और तांजेब का चुन्नटदार कुर्ता पहनकर शहर का देर रात तक चक्कर लगाता। वह पुलिस का इन्फॉर्मर था और अपने स्कूल के नौजवानों पर कड़ी नजर रखता। शहर में होनेवाली लंठई के प्रति गहरी दिलचस्पी भी थी उसकी और वह अइगा पांडे का साथी भी था। जब सदाशयव्रत के घर पर अइगा पांडे ने हमला किया तो उसने अपने तीन साथी लंठों को उसके साथ भेज दिया था, जो बुरी तरह मार खाकर कई दिनों तक अपने-अपने घर पर हल्दी-गुड़ पीते रहे।

ठीक पन्द्रह वर्ष की उम्र में दामोदर प्रसाद की शादी हो गई। सचमुच उसकी पत्नी काफी सीधी थी। वह शुरू में अपनी पत्नी पर जान छिड़कता था, जिसने तीस वर्ष की अवस्था तक लगातार पाँच पुत्रियाँ उत्पन्न करके शरीर, यौवन, बुद्धि और समझदारी गँवाकर झाड़-फूँक, टोना-टोटका तथा साधु-संन्यासी जिनकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ रही थी, के चक्कर में पड़कर घनघोर पुजारिन बन गई। वह तड़के ही एक डोलची लेकर गंगा-स्नान के लिए चल पड़ती। व्रत-त्योहार तो असंख्य थे, लेकिन वह एक भी नहीं छोड़ती। कलिया मछली का सेवन बन्द हो गया और परिवारजनों को अब अक्सर सिंघाड़े व कुटी के आटे के व्यंजन तथा घुइयाँ तथा शकरकंदी से सन्तोष करना पड़ता। घर के अन्दर ठाकुरजी का छोटा-सा मन्दिर था, उसमें दिन-रात घंटी बजती रहती। सुबह घंटी से ठाकुरजी को जगाया जाता, फिर जलपान, भोजन के भोग पर। फिर दोपहर में शयन कराने तथा सायं शयन से उठाने के अवसरों पर घंटी बजती। इस तरह रात्रिकाल में भोग के साथ घंटी और अन्त में ठाकुरजी के शयन की घंटी।

दामोदर प्रसाद तामसिक प्रवृत्ति का एक दुर्लभ अपराजेय व्यक्ति था और घर का धार्मिक, पूजा-पाठ वाला, उपवास-भरा तथा घंटी-घर का टुन-दुनमय सात्विक माहौल उसे काटने दौड़ता। वह घर में आने के कुछ देर बाद ही उल्टे पाँव बाहर निकल जाता, जैसे वैसाख जेठ की दोपहर में जलती जमीन पर कोई छाँह से निकलकर नंगे पैर चलने की कोशिश करे। उसका बाहरी लम्पटपन बढ़ता

गया और जितना बढ़ता, उसकी पत्नी सुमित्रा के पुजारीपन में भी उतनी ही वृद्धि होती जाती। ऐसी ही परिस्थिति में दामोदर प्रसाद, बनवारी की शादी में शामिल हुआ जहाँ उसे उसकी नवविवाहिता भगजोगिनी को देखने का सौभाग्य मिला। जब यह विदाई के बाद घर आई तो रमापति का दोस्त और हितैषी बनकर वह भीतर चला गया और एक बार फिर उसे अँखियाया। अब उसका दिल काबू में नहीं रहा और उसके अन्दर एक शैतान का जन्म हुआ।

शैतान का जन्म क्यों? दरअसल हर दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति की तरह उसे शैतानी कल्पनाओं में आनन्द आता। उसे अपने दोस्त रमापति की उन्नति और बरबादी का किस्सा अच्छी तरह मालूम है। जब रमापति बीमार पड़ा. उसी समय से उससे कटना शुरू कर दिया था उसने। एक कौड़ी की मदद नहीं की और मुफ्त की सहानुभूति प्रकट करने भी नहीं आया। वह उसी समय दिखाई पड़ा, जय रमापति की अर्थी उठ रही थी। तब वह इतना फूट-फूटकर रोया कि उन लोगों की नजर में. जो किसी बात की गहराई में न जाकर ऊपरी ताम-झाम से तत्काल प्रभावित हो जाते हैं. एक सर्वाधिक दुःखी सच्चे मित्र की प्रतिष्ठा प्राप्त करने में भी सफलता प्राप्त कर ली उसने। इसी खास कारण से उसे बनवारी की शादी में सादर बुलाया गया, जिसके बाद वह उस परिवार का परम हितैषी बन गया। तभी से उसे यह चिन्ता सताने लगी कि कहीं लड़खड़ाता बनवारी अपने पैरों पर न खड़ा हो जाए लेकिन साथ ही उसे यह सोचकर भी खुशी हुई कि जैसे रमापति जैसा शक्तिशाली, चतुर और स्वाभिमानी व्यक्ति रोगग्रस्त और दुर्बल होकर बरबाद हो गया, उसी तरह क्या उसका लड़का उससे भी अधिक

दुर्गति को प्राप्त नहीं होगा? टी.बी. क्या इस बार ईश्वरीय न्याय बनकर इस परिवार में पुनः आएगा ? हाँ, ईश्वरीय न्याय-क्योंकि भगजोगिनी जैसी सुन्दरी का ब्याह इस नटुरे, नसफूले और निखट्टू व्यक्ति से होना सरासर अन्याय है। और यह क्या कम अन्याय है कि उसी जैसा तेजस्वी पुरुष एक सूखल-संठ पुजारिन का पति बना दिया गया है? हाँ, ईश्वर जरूर न्याय करेगा और उस हसीन, नाजुक और खिले फूल को उसकी गोद में जरूर डाल देगा।

इस विचार से वह इतना खुश और आशान्वित हुआ कि शाम को मन्दिर में जाकर भगवान की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर सच्चे मन से प्रार्थना करने लगा 'हे अन्तर्यामी, गिरिधारी, छैलबिहारी, एक सीधी-सादी पवित्र भारतीय नारी पर काफी अन्याय हो गया है। उसका हाथ एक कुरूप और निकम्मे व्यक्ति को दे दिया गया है। इसी तरह मेरे साथ भी बड़ा अन्याय हो गया है। मेरी शादी एक बज्र पुजारिन से कर दी गई है, जिसने मेरे जीवन को रेगिस्तान बना दिया है। हे सच्चिदानन्द, यदि आपकी कृपा हो जाए और उसकी वजह से वह सुन्दर, दुःखी स्त्री मुझे प्राप्त हो जाए, तो मैं पचास रुपए की मिठाई चढ़ाकर गरीबों में बँटवाऊँगा।"

इसमें अचम्भे की बात कुछ भी नहीं है, क्योंकि ईश्वर को लालच देने का काम भक्तों द्वारा निरन्तर होता रहता है। खैर, दूसरे दिन शाम को वह बनवारी के घर जा पहुँचा और तरह-तरह के दुर्गन्धों से भरे बाहरी बरामदे में बैठकर बार-बार दरवाजे की ओर मुँह करके अन्दर झाँकते हुए दूसरी बँसखट पर विराजमान बनवारी से बोला :

"रमापति मेरे दोस्त तो थे, लेकिन मैं उनसे उम्र में काफी छोटा हूँ। लम्बे-चौड़े शरीर से पता नहीं लगता। मेरी उम्र अभी तीस नहीं पहुँची। हँसने की बात नहीं। सच कहता हूँ। मैं तो पारिवारिक झंझटों में फँस गया था, नहीं तो मैं रमापति को पटना-कलकत्ता ले जाकर दवा-दारू कराता। गाँव के नाते भी रमापति मेरे चाचा ही लगते थे। तुम आज से मुझे अपना बड़ा भाई समझो। तुमको आज से किसी बात की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। बहुत पैसा है मेरे पास। किसी बात की कमी नहीं। कोई भी जरूरत पड़े, बिना संकोच कहना। खैर, छोड़ो इन छोटी बातों को। खास बात में

यह कहने आया हूँ कि तुम रमापति की फल की दुकान फिर खड़ी कर लो, और जो पैसा लगे साफ-साफ बताओ। किसी बात की फिक्र न करो। जो पैसा मैं दूँगा, वह तुम्हारा होगा। उसे लौटाने

की जरूरत नहीं होगी, फिर जरूरत होगी तो और दूँगा..."

"चाचा, सोच तो मैं भी रहा हूँ..."

"अरे चाचा नहीं भाई... भाई साहब कहो। मुझे... मुझे अपने सगे बड़े भाई से भी अधिक सगा समझो। मैं रमापति को गाँव के नाते से चाचा कहता था, क्योंकि यह मेरे चाचा के असली दोस्त थे और मेरे पिताजी को 'भैया' कहते। ठीक है, तुम क्या कह रहे थे ?"

"मैं कह रहा था... मैं कह रहा था. पैसा कछ मैंने जोड लिया है। कुछ की कसर रह गई है यही समझिए डेढ़-दो हजार रुपए हो जाएँ तो अच्छी दुकान खुल जाए। आप कर्ज समझकर दे दें पाई-पाई चुका दूँगा। या इस धन्धे में चार-छह आने के भागीदार बन जाएँ...दुकान हम दोनों चलाएंगे और साल के आखिर में नफा-नुकसान का हिसाब होगा..."

दामोदर प्रसाद गम्भीर होकर कुछ देर तक सोचता रहा, फिर मीठी हँसी हँसकर बोला :

हाँ, "अरे यंगर ब्रदर, तुम जो कहोगे यही कर दूँगा। चलो छह आने का भागीदार बन जाता हूँ। पैसे कल ले लो और काम शुरू कर लो। मैं कहीं और काम करता हूँ, दुकान पर नहीं बैठ सकता। दौड़-धूप के लिए कहोगे तो दूसरे शहरों में दौड़ जाऊँगा। लिखा-पढ़ी में में यकीन नहीं करता। कोर्ट-कचहरी में विश्वास नहीं है मेरा। जबान असली चीज है। एक बार जो जबान से निकल गया, वह पत्थर की लकीर है। चलो, एक कच्चे कागज पर लिखा-पढ़ी भी हो जाएगी। एक कॉपी तुम रखना, एक कॉपी मैं। खुश ?"

"चाचा..."

"फिर वही... भाई साहब, या भाई कहो ब्रदर।" दामोदर प्रसाद ने टोका।

"भाई... साहब, पक्के कागज पर लिखा-पढ़ी ठीक होगी..."

आग &

"खैर, ठीक है, जो तुम कहोगे, वही करूँगा। कल कचहरी चलो, वहाँ वकील से पक्का कागज बनवाकर उस पर हम दोनों दस्तखत करेंगे। चलिए, यह भी ठीक है...।"

बनवारी सरल, ईमानदार, बुद्धिमान, विश्वासी, परिश्रमी और हौसलेवाला व्यक्ति था। उसे अपनी पत्नी से भी बड़ा सहयोग मिला। भगजोगिनी ने सारा घर सँभाल लिया। वह उन्हीं स्त्रियों में थी, जो अपने को सती की तरह पतिव्रता मानकर अपने पति को, चाहे वह जैसा भी हो, साक्षात् शिव समझती हैं। फल-मेवे की दुकान खुल गई। इसके लिए बनवारी ने बड़ी दौड़-धूप की। वह पुराने थोक व्यापारियों से मिलने दिल्ली और पेशावर तक गया। उसने काफी विनम्रतापूर्वक अपने सभी धनी-मानी और रईस ग्राहकों के घर जाकर हाथ जोड़कर कहा :

"अब आपको बढ़िया फल-मेवे के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। आपकी दुकान फिर खुल गई है, आपको कहीं जाने की जरूरत नहीं है, आप घर बैठे रहें, आपका फलवाला फिर आपको नागपुर का संतरा, हरी छाल के केले, चमन के अंगूर, शिमला-काश्मीर के सेब और काबुल के मेवे रोज खिलाएगा। किसी को भी दुकान पर भेज दीजिए, वाजिब दाम पर सबकुछ मिलेगा ताजा-ताजा। बस, सेवा का मौका देते रहें। शादी-वारात, पूजा-पाठ, छठी-वरही, ओछवानी-हरीरा, बीमारी-हैरानी, हर मौके पर यह सेवक आपकी खूब सेवा करेगा...।"

बनवारी अपने पिता की तरह अकड़ू और घमंडी नहीं था। वह कम बोलता, लेकिन मीठा बोलता। उसकी भाषा और मुहावरे बदल गए। वह घर के लोगों का ख्याल रखता और पास-पड़ोस का भी। उसने दुकान खुलने के

लिए मन्दिर में प्रसाद चढ़ाया और मोतीचूर के चार-चार लड्डू पास-पड़ोस, रिश्तेदारों, मित्रों और खास-खास ग्राहकों के यहाँ भेजवाए। रमापति का पूजा-पाठ में खास विश्वास नहीं था, लेकिन बनवारी रोज रात में नहा-धोकर मन्दिर जाता, कीर्तन सुनता और आरती के बाद भगवान की मूर्ति के सामने सिर नवाकर प्रार्थना-विनती करता।

उसकी दुकान चल निकली। फिर तो खूब चली। शायद रमापति ने भी ऐसे बढ़िया सेब, अनार

और अखरोट-किशमिश न बेचे होंगे। रमापति तो हर ग्राहक को थोड़ा या बहुत दुःखी जरूर कर देता, मगर उसका बेटा बोली, वचन से मिठास बढ़ाता, मोलतोल में भी मुरव्वत करता, इसलिए उसके और मेवे और भी भीठे तथा जायकेदार लगते ।

फल भगजोगिनी अपने पति पर निहाल थी। वह ऐसा मर्द पाकर अत्यधिक सन्तुष्ट और खुश थी। लम्बा, तगडा और सुन्दर मर्द किस काम का अगर वह कामचोर, झूठा तथा विश्वासघाती हो ! मर्द विजय प्राप्त करनेवाला हो। यह रोज ईश्वर से प्रार्थना करती. 'हे प्रभु, मेरे शिवजी को मजे में रखना, यह है जो हिम्मती, समझदार, मेहनती. विश्वासी, संकल्पी और समस्याओं का सामना करके उन पर उनकी रक्षा करना, उनको काम-धन्धों में तरक्की देना। अपने पति के लिए वह तीज व्रत का बड़ी कडाई से पालन करती। वह उसके पास बैठकर उसे डॅस-ठुसकर नाश्ता और भोजन कराती। रात में देर तक उसके सिर में तेल लगाती और बदन को चाँपती। उसके कपड़े साफ रखती और उसका हर सामान तैयार करके निश्चित जगहों पर रख देती। शाम को दुकान बढ़ाकर जय बनवारी फल-मेवों को पेटियों में बन्द करके घर ले आता तो उनको सहेजकर रखती। सवेरे फिर बाजार ले जाने के पहले पति-पत्नी उन पेटियों की पूजा करते, उनके सामने अगरबत्ती जलाते।

बनवारी की पत्नी ने कभी किसी दूसरे मर्द को ठीक से देखा भी न होगा।

अनेक सुन्दर मर्दों के सामने भी उसका मर्द उसे सबसे खूबसूरत लगता। लेकिन वह ऐसी दुनिया में रहती थी, जहाँ उसका मर्द तो दूसरों की पत्नियों से सिर नवाकर इज्जत से बात करता और दूसरे अनेक विवाहित पुरुष उसको अपने पति के साथ शान्तिपूर्वक नहीं रहने देकर सदा ताकझाँक की कोशिश करते, आँखें फाड़कर घूरने लगते, अश्लील इशारे करते। विशेष रूप से वह दामोदर प्रसाद से बहुत परेशान रहती। वह धन्धे का पार्टनर होने के अधिकार से बिना जरूरत, अनचाही और कुटाइम सलाह के लिए रात-विरात या तड़के अँधेरे में पहुँच जाता। लेकिन उसके बदले वह अश्लीलता-बोझिल चुटकुले और अपने अभिनय की प्रशंसा के किस्से रंगमंच के जोकर की तरह सुनाने लगता। बनवारी अपनी पत्नी से उसका स्वागत-सत्कार करने के लिए कहता। भगजोगिनी का मुँह गम्भीर हो जाता। वह कभी हलवा बनाकर खिलाती और कभी पकौड़ी। वह अपने पति का जी दुखाना नहीं चाहती थी। लेकिन एक बार खीझकर उसने कहा :

"आपमें सभी अच्छाइयाँ हैं, मगर इतनी सिधाई ठीक नहीं। इससे आपकी बीवी हल्की बनती है। मुझे यह आदमी ठीक नहीं लगता, इनसे साफ क्यों नहीं कहते कि यह नौ बजे रात के बाद और सुबह तड़के न आया करें। हर बात के लिए समय होता है। इनकी बातों में धन्धे-वन्धे के बारे में कुछ नहीं होता, बस हँसी-मजाक करते रहते हैं! क्या मतलब है इसका ?"

"अरे, गाँव के हैं, धन्धे में भागीदार हैं, छह आना लगाया है तो साल में उसका मुनाफा भी पहुँचा देता हूँ और कोई मदद नहीं करते। उम्र में मुझसे बड़े हैं, बाबू के दोस्त भी रहे हैं, इसी वजह से लेहाज भी करता हूँ। क्या कुछ कहा है तुमसे ?"

"मुझसे कुछ बोलेंगे तो जवान खींच लूँगी। मैं दलसिंगार राउत की बेटी हूँ। वह सीधे-सादे हैं, मगर ब्राह्मण-ठाकुर, खाँ-मुगल किसी का बरदाश्त नहीं करते। मैं सती हूँ, पार्वती हूँ, उसने ऐसा-वैसा कुछ कहा तो उसके लिए काली भवानी बन जाऊँगी। इस बारे में आप चिन्ता न करें, मैं तो कह रही थी कि यह कोई कायदा नहीं है। यह आराम करने का समय है, अपने घर जाकर अपने बच्चों के बीच आराम क्यों नहीं करते तुम ?"

बनवारी कुछ सोचने लगा। फिर धीरे-धीरे बोला, "मैं समझ गया। कल ही में साफ-साफ कह देगा। इधर मैं धन्धे का रिश्ता तोडना नहीं चाहता, दुकान और जम जाए तो इनको अलग कर दूँगा। इनके रहने से नुकसान भी है, कुछ करते-धरते नहीं। एक बार इनसे पेशावर जाने के लिए कहा तो तरह-तरह के बहाने करने लगे। मुझे ही अकेले सबकुछ करना पड़ता है। सोचता हैं इस बार

गर्मी में आम और कटहल के बगीचों का ठेका मिल जाए तो धन्धा कुछ आगे बढ़े। इसी शहर में हमारे कई धनी-मानी गहकी हैं, उनके गाँवों में बड़े-बड़े बगीचे हैं, जिनकी ये देखमाल नहीं कर पाते। खा-पचा जाते हैं। मैंने दो-तीन जमींदार-रईसों से बात की है, जब यह मामला फिट हो जागा तो इस मामले में ये दिलचस्पी भी नहीं लेते. बगीचों के फल-वल गाँव के लोग और उनके भी आदमी-जन तुम्हारे छोटे भाई बृजलाल को यहाँ बुला लूँगा, वह बेकार में ताडी पीकर इधर-उधर घूमता रहता
है...।" "अच्छा! तो क्या कहा आपने उन रईसों से कि वे बगीचे ठेके पर देने को तैयार हो गए ?" भगजोगिनी की आँखें कुतूहल से चमकने लगीं।

बनवारी ने गर्व से अपनी फूली हुई छाती को और भी फुलाकर कहा :

"मैंने साफ-साफ कह दिया कि फल-फूल की कीमत आप लोग नहीं समझ सकते, यह तो हम लोग ही जानते हैं। चलिए हमारे साथ सेब, सन्तरे, अखरोट के बगीचों में, यहाँ उनकी शुरू से ही इस तरह सेवा होती है, जैसे बच्चों को पाल-पोपकर बड़ा किया जाता है। आप लोग अपने पेड़ों की भी कद्र नहीं करते। जो चाहता है पेड़ काट लेता है, लकड़ी बेरहमी से तोड़ लेता है, वीर-सूत लगने के बाद ही कच्चे फलों पर ढेले चलने शुरू हो जाते हैं। पेड़ तो इनसान के सेवक हैं बाबूजी, उनमें दया-माया होती है, उनको भी दुःख-दर्द होता है। वे तो छाया और ठंडक देते हैं, फल-फूल देते हैं, जड़ी-बूटियाँ देते हैं, उनके साथ इतना अन्याय क्यों? आप हमें इन बगीचों का ठेका दे दीजिए, तब आप देखिएगा कि किस तरह आपके पेड़ों

और उनके फलों की सेवा होती है। आपके पास सुन्दर फल भी पहुँचेंगे, आपको और हमें दो-दो पैसे भी मिलेंगे और दूसरे लोग भी खाएँगे। एक फल भी बरबाद नहीं होगा...।"

वह हाँफ गया। भगजोगिनी उसे आश्चर्य-भरे प्यार से देखने लगी। दूसरे दिन बनवारी ने दामोदर प्रसाद से विनम्रतापूर्वक ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया:

"भाईजी, हमें तड़के ही उठकर फलों को झाड़-पोंछकर दुकान भेजने के लिए तैयार करना पड़ता है। अगर जल्दी न सोएँ तो भोर में उठ न सकेंगे, शरीर अकड़ा-का-अकड़ा रहेगा, कोई काम भी नहीं हो सकेगा। जब से बाबू मरे हैं, मेरी माई भी बीमार रहने लगी है, उसे कुछ-न-कुछ लगा रहता है। अब सारा भार हमारी जनानी पर पड़ रहा है। आपको मुझसे कोई काम हो तो अपने घर पर बुला लिया करें या दुकान पर आ जाएँ, 9 बजे के बाद आने से हम सो भी नहीं पाते...।"

दामोदर प्रसाद क्रोध-भरे अचम्भे से उसे देखने लगा। इसकी इतनी हिम्मत ? किसी तरह उसने अपने क्रोध को दबाया और टेढ़ी मुस्कुराहट के साथ कहा, "अरे ब्रदर, पहले ही क्यों नहीं बता दिया यह सब ? यह तो आपस का मामला है, कोई समस्या नहीं है इसमें, मैं तो तुम्हारा हितैषी हूँ, जान कुर्बान कर सकता हूँ तुम्हारे लिए।"

इसके बाद सबकुछ ठीक चलने लगा। दुकान अच्छी जम गई। शहर में उसकी दुकान और स्वयं वह, दोनों ही लोकप्रिय हो गए। महीन धोती, कुर्ता, पहनकर, आँखों में काजल या सूरमा, गले से लटकती काले धागे में बँधी ताबीज। कभी-कभी उत्साह में होता तो सोने की पतली चेन पहन लेता। कमी यही थी कि दौड़-धूप करनेवाला कोई और सहयोगी नहीं था उसका। समस्या उस समय होती, जब दोपहर में दुकान बन्द करके भोजन के लिए उसे घर जाना होता। उसने अपने छोटे साले को बुलवाया था, मगर उसने मना कर दिया। वह किसी का 'गुलाम' बनकर रहने को राजी नहीं हुआ, भले ही वह अपना खास बहनोई क्यों न हो। वह खुद अपना एक स्वतन्त्र धन्धा करना चाहता है। तब बनवारी अपनी माँ को कुछ देर के

लिए बिठा देता दुकान पर, लेकिन जब माँ की तबीयत ठीक न होती तो समस्या फिर खड़ी हो जाती। अन्त में वह सवेरे ही अपने साथ खाना एक डिब्बे में बन्द करके ले आने लगा, साथ ही दौड़-धूप करनेवाले एक ऐसे विश्वासी आदमी की तलाश भी

करने लगा, जो धन्धे को आगे बढ़ाने में उपयोगी हो।

परन्तु छह वर्ष बीतने के बाद सातवें वर्ष में प्रवेश करते ही उसको बुखार और खाँसी आने लगी। देखते-ही-देखते उसकी छाती के अन्दर बलगम भर आया, जो बाहर से भी सुनाई देने लगा, जैसे कोई हिंसक जानवर धीरे-धीरे गुर्रा रहा हो। भगजोगिनी और उसकी सास का रो-रोओं कॉप उठा। इस बीच भगजोगिनी को दो बच्चे हुए थे- पहली लड़की और दूसरा लड़का। दोनों ही बच्चे अपनी माँ पर गए थे-यानी खूब स्वस्थ और सुन्दर ! भगजोगिनी के स्वास्थ्य पर भी कोई असर नहीं था, वह अब भी एक अविवाहित लड़की की तरह चंचल व जीवन्त थी। बीस की सीमा भी कहाँ छू पाई है वह । ि

24

पडित बुलाया गया, पत्रा दिखाया गया। महामृत्युंजय जाप भी हुआ। मामूली वैद्य-हकीम से आरम्भकरके एलोपैथिक डॉक्टरों तक कई दौडों के बाद झाड़-फूंक, ओझा सोखा, सबकुछ हुआ। दिन-पर-दिन हालत बिगड़ती गई। दुर्लभ अवसर जानकर सबने रोगमुक्त कराने के 'ईश्वरीय' आश्वासन दे-देकर खूब चूसा ।

दुकान पहले चौपट हो गई थी। बहुत-से फल सड़ गए। जो सामान बचे वे कई फलवालों को औने-पौने दाम में बेच दिए गए। कई बार विभिन्न शहरों से फलों-मेवे की बिल्टियाँ आकर लौट गई। उन्हें छुड़ानेवाला कोई नहीं था। भगजोगिनी घबरा गई। सभी गहने बेचे जा रहे थे। घर में पैसे अब थे ही नहीं। रोगी की महँगी दवा करें, मरीज को दूध-पनीर, अंडा खिलाएँ, बच्चों को दें खुद रूखा-सूखा खाएँ। विवाहित लड़कियों से कुछ आर्थिक

मदद मिली थी, भगजोगिनी के मैके भी कुछ आया। लेकिन उनकी ऐसी हैसियत नहीं थी-भगजोगिनी के मैके वाले तो पहले ही दुकान के लिए पैसे की मदद दे चुके थे। इसी समय किसी डॉक्टर ने सलाह दे दी कि बनारस जाकर कबीर चौरा अस्पताल के डॉक्टर व्यास को या मशहूर वैद्य सत्यनारायण शास्त्री को दिखाएँ, 'इस शहर का कोई भी डॉक्टर इनको अच्छा नहीं कर सकता।'

भगजोगिनी फूट-फूटकर रोने लगी। यह देखकर उसके दोनों बच्चे भी गला फाड़-फाड़कर चित्ताने लगे। उसकी सास काठ का कलेजा लिए हुए यह सब सूखी आँखों से देखती रही। फिर वह बिना कुछ बोले अपनी कोठरी के अन्दर चली गई और वहाँ से सोने के दो मोटे कंगन के साथ वापस आकर बहुत धीमे स्वर में बोली :

"दुःख न करो दुल्हन, हिम्मत से काम लो। विपत्ति में हिम्मत ही काम देती है। बहुत ही गहने थे मेरे पास। तुम्हारे ससुर की कमाई से मैंने कौन-सा सुख नहीं भोगा। पर दैव से मेरा सुख देखा नहीं गया। किसी के सामने कभी माथा नहीं झुकाया तुम्हारे ससुर ने। उन्होंने सबको दिया, किसी से कुछ लिया नहीं। जब उनके मुँह में खून नहीं रहा, आँखें एकदम धंस गई और दो-चार साँस ही बाकी रही, तब भी उनकी गर्दन तनी रही। ईश्वर-भगवान से भी उन्होंने अपनी जान की भीख नहीं मांगी..." अपनी सुबकियों को नियन्त्रित करने के बाद उसने कहा, "तब से कलेजे पर पत्थर बाँधकर रह रही है। तुम बबुआ को बनारस जरूर ले जाओ। मैं भी चलेंगी। यह आखिरी गहना है, कुछ और जुटाने की कोशिश करूँगी। बबुआ अच्छे होंगे। हाँ, बबुआ को गहने की बात न बताना। यह सोचना पड़ेगा कि वहाँ कहाँ ठहरा जाएगा। कोई धर्मशाला मिल जाएगी..." "मेरे सगे मौसा पियरी मोहल्ले में रहते हैं। बड़ा रुतबा है उनका। कचहरी में अफसर के अर्दली है। ऊपर की आमदनी बहुत है, रोज काफी रुपए लाते हैं घर पर। मौसा-मौसी, दोनों ही काफी

ख्याल-बात करते हैं...।"

"तब तो ठीक ही है। अरे, कुछ दिनों तक रहेंगे. डॉक्टर दवा बता देगा तो यहाँ लौट आयेंगे और यहीं रहकर दवा दारू होगा। बीच-बीच में कोर्ड चला जाएगा, मैं ही चली जाऊँगी हाल-चाल बताने।"

भगजोगिनी की सास पहले कंगन लेकर रमाशंकर सोनार के पास गई थी। वह काम में ग्रस्त था, इसलिए आँखें उठाए बगैर धीरे से बोला, "मैं तो यह काम नहीं करता अब। हमारे पिताजी यह सब करते थे। गहनों को गिरवी रखना, उस पर रुपए देना कर्ज देकर सदखोरी का धन्धा-यह सब मैंने छोड़ दिया है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। गरीब लोगों की आदत खराब हो जाती है उनका पैसा डूब जाता है...।"

उसने सिर उठाकर देखा। सहसा चौंक गया, "अरे चाची, तुम हो। क्या हो गया...।" बनवारी की माँ अब अपने को रोक न सकी। रो-रोकर उसने सबकुछ बता दिया। रमाशंका कुछ देर तक सिर झुकाए बैठे रहा। फिर बोला :

"देखो चाची, रमापति चाचा जब मरे तो मैं जेल में था। जेल से आने पर पिताजी मर गए और मुझ पर घर-गृहस्थी का बोझ आ पड़ा तो मुझे किसी बात के लिए फुरसत नहीं मिली। खैर, छोड़िए उन बातों को। कितने रुपयों की जरूरत होगी तुमको चाची...।"

"कितने मोटे कंगन हैं...।"

"कंगन का हिसाब छोड़ दो और अपनी जरूरत बताओ...।"

"दो सौ रुपए मिल जाते तो...।"

"चाची, घबराओ नहीं, बिना किसी संकोच के अपनी जरूरत बता दो। दो सौ से अधिक जरूरत होगी तो मैं उसका भी इन्तजाम करूँगा...।"

"तब भैया तुम जो समझो, दे दो...।"

रमाशंकर ने गौर से उसे फिर देखा। फिर वह भीतर जाकर कुछ देर में लौट आया और उसके हाथ में साढ़े तीन सौ रुपए रखते हुए बोला :

"चाची, ये रुपए ले लो और कंगन अपने पास ही रखो। मैं साढ़े तीन सौ रुपए दे रहा हूँ तुम पर बहुत भारी विपत्ति पड़ी है। तुम बनवारी भाई को बनारस ले जाकर दिखाओ। यह कोई कर्ज नहीं है, जब बनवारी भाई अच्छे हो जाएँगे और उनकी दुकान फिर खुल जाएगी तो तुम स्थिति सुधरने पर जब इच्छा हो इस पैसे को लौटा देना। इस पैसे का कोई भी बोझ अपने दिल और दिमाग पर न रखना और इसका कोई सूद भी नहीं लगेगा। बनारस से आकर कोई भी समस्या हो तो मुझे अवश्य बताना। कोई भी जरूरत हो...।"

बनवारी की माँ को इससे और हिम्मत मिली। कंगन रह जाने से उसे इतना इत्मीनान हुआ, जैसे वह अब बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का सामना कर लेगी। जिस सामाजिक व्यवस्था में विपत्ति के समय कोई आर्थिक सहारा न हो, अच्छे, कुशल और सस्ते डॉक्टर, वैद्य और अस्पताल दूर-दूर तक उपलब्ध न हों, वहाँ सोना, गड़ा हुआ धन आदि बड़ा आश्वासन देते हैं। इसके बाद तो कर्जा, बंधुआ मजदूरी, गुलामी और बरबादी है।

उसी दिन वह दामोदर प्रसाद से मिली। घर पर तो वह रहता ही न था, तो उसके स्कूल गई। उसे देखकर दामोदर प्रसाद का चेहरा फक पड़ गया। मालूम तो उसे सबकुछ था, लेकिन जब से बनवारी बीमार पड़ा, वह दृश्य से ओझल हो गया था। बनवारी की माँ को अलग ले जाकर उसने आश्चर्य-भरी चिन्ता से पूछा:

"चाची. क्या बात है ? समाचार है न? क्या बताऊँ. में इधर आ न सका। खाँसी-बखार से परेशान था। हाँ. बताओ चाची. कोई खास बात है ? बनवारी की तबीयत खराब थी. अब तो ठीक

हो गए होंगे....."

"अरे, वह तो सात-आठ महीने से बीमार हैं, तुम तो भैया इधर दिखाई ही नहीं दिए, यहाँ तो सब धौपट हो गया। वैद्य, हकीम, डॉक्टर सबको दिखाया, हालत बिगडती जा रही है। कुछ पैसे की जरूरत थी. विपत्ति का समय है, चार सौ-पाँच सौ रुपए की मदद दे देते... बड़ा उपकार मानूँगी...।" उसकी आँखों से आँस गिरने लगे, जिन्हें वह अपने आँचल से पोंछने लगी।

"अरे चाची, रोती क्यों हो? मैं तो जिन्दा हैं। वैसे मेरी माली हालत ठीक नहीं. मैं काफी बीमार था चाची। खूब दवा दारू करना पड़ा, सभी रुपए खर्च हो गए, कुछ कर्जा चढ़ गया। मैं तो सोचता था कि चलें बनवारी भाई से कुछ उधार माँग। अगले साल होनेवाले नफे में से एडवांस बनवारी बडा अच्छा काम कर रहे थे. बड़ा नफा पीट रहे थे। आज तुम कुछ दूसरा ही बता रही हो। मैं दर रहता है, किसी ने बताया नहीं। बीमारी की वजह से इधर आया नहीं। खैर, मैं कुछ-न-कुछ मदद जरूर करूँगा चाची, तुम्हारी। मेरी तबीयत अब कुछ सँभल गई है. इसलिए कर्ज ली गई रकम में से ही में कुछ दूँगा। अरे, कोई चिन्ता न करो, अब स्कूल आने लगा हूँ, तनख्वाह मिलनेवाली है। सगले महीने गाँव जाऊँगा तो पैसा-ही-पैसा हो जाएगा। तुम शाम को...नहीं मैं खुद आकर दे जाऊँगा सौ रुपए। अभी इतना ही, बाद में देखना में बनवारी के लिए क्या करता हूँ, जरूरत पड़ी तो विलायत ले चलूँगा। दवा-दारू के लिए...।"

शाम को नहीं, ग्यारह बजे रात को वह पहुँचा, जब गली में कुत्ते भौंक रहे थे और घर के अन्दर से बनवारी के लगातार खाँसने और कराहने की आवाज आ रही थी। उसने दबे पाँव बरामदे में जाकर धीरे-धीरे दरवाजे को खटखटाया। भगजोगिनी ने ही दरवाजा खोला। दामोदर प्रसाद खुश होकर उसे लोलुप आँखों से देखने लगा। वह बोला :

"अरे, तुम हो ? तुम मुझसे इतना बचती क्यों हो? मैं तो तुम्हारा हितैषी हूँ। तुम्हारे और बनवारी के लिए तो मैं जान भी दे सकता हूँ। तुम्हारी सास ने दो सौ रुपए ही माँगे थे मगर मैं तीन सौ रुपए दे रहा हूँ। तुम्हारा मुँह कितना सूख गया है। तुम अपनी तन्दरुस्ती का ध्यान रखो। कोई भी जरूरत हो, मेरे पास किसी से सन्देश भेजवा दो। तुम मुझे गलत न

समझो, मैं एक नेक इनसान हूँ और तुम्हारी भलाई चाहता हूँ...।"

उसने भगजोगिनी का हाथ पकड़कर उस पर रुपए रखना चाहा, मगर वह हाथ झटककर पीछे हट गई।

"माफ करो, मेरा मतलब गलत नहीं था, मैं तीन सौ रुपए गिनवाना चाहता था। खैर, ये सौ-सौ के तीन नोट हैं, दे देना चाची को। मैं कल बनवारी भाई को देखने आऊँगा...।"

दामोदर प्रसाद तो दूसरे दिन नहीं आया, परन्तु तीसरे दिन सुबह की ट्रेन से भगजोगिनी अपने पति, सास और दो बच्चों के साथ बनारस के लिए रवाना हो गई। बड़ी पियरी की गली-दर-गली के एक मकान की तीसरी मंजिल पर भगजोगिनी के मौसा बलेसर अपनी पत्नी किशोरी, चार लड़कों और एक अविवाहित बहिन दमयन्ती के साथ रहता था। जब भगजोगिनी ने सपरिवार ऊपर पहुँचकर आधा किलो मिठाई दमयन्ती के हाथ में देकर अपने मीसा-मौसी के पैर छुए तो वे अवाक् रह गए और आँखें फाड़कर इस तरह देखने लगे जैसे वे किसी को पहचानते न हों। कभी भगजोगिनी ने विवाह से पूर्व अपने मौसा बलेसर की उस समय बड़ी सेवा की थी, जब वह संग्रहिणी से घबराकर एक मशहूर वैद्य से इलाज कराने अपनी ससुराल में चले आए थे। उस समय भगजोगिनी भी अपने ननिहाल में ही थी। भगजोगिनी को मौसा-मीसी पर बड़ा विश्वास था कि वे इस विपत्ति में उसकी मदद करेंगे, मगर उनका ठंडापन देखकर वह सबकुछ समझ गई। यह विनती के स्वर में बोली:

"मौसाजी, कुछ ही दिन की बात है। आपके दामाद बीमार पड़ गए हैं, यहाँ के डॉक्टरों को

मानेंगे...।" दिखाने उन्हें ले आई हैं। ये लोग किसी होटल, धर्मशाला में जाना चाहते थे. मैंने कहा, जब हमारे खास मौसा-मौसी इसी शहर में राहते हैं तो मैं इधर-उधर क्यों भटक ? जब ये सुनेंगे तो बुरा भी

किशोरी एक विचित्र स्थिति में फँसी हई थी। तिरछे खड़े अपने शरीर के ऊपर तिरछी आँखों से वह कभी भगजोगिनी को देखती, कभी उसकी सास को कभी एक टूटही-सी कुर्सी पर बैठकर लगातार खाँसते हुए बनवारी को। भगजोगिनी स्वयं अपने आठ मास के पुत्र को गोद में लिए हुए थी और उसकी ढाई वर्षीया पत्री लीला उसकी बगल में खड़ी, बार-बार अपनी समझ में धीमी आवाज में, सिर ऊपर उठाकर अपनी माँ से कह चुकी थी, "माई, भूख लगी है।"

समस्या तो थी. लेकिन उसका समाधान किशोरी के वश में नहीं। यानी उसे समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। इसीलिए वह बार-बार पति को भी घर रही थी। यह सही है कि वह भगजोगिनी की सगी मौसी है और उसकी शादी के समय तथा एक बार जब अपने पति और परिवार के साथ उसके यहाँ जाकर बीस दिन तक खूब स्वागत-सत्कार और आराम पा चुकी थी। उसने काफी आग्रहपूर्वक बनवारी से भी कहा था कि यह भगजोगिनी के साथ उसके यहाँ बनान आकर रहे, गंगा स्नान करे और विश्वनाथजी का दर्शन करे। किशोरी सुन्दर थी भगजोगिनी की में की तरह। वह अपने पति की दुलारी थी, जो एक कलक्टर का चपरासी होने के कारण अपने को अफसर ही समझता था। वह दोनों जून अपने अफसर के यहाँ हर तरह का काम करता, औरतों व बच्चों से डॉट-फटकार सुनता लेकिन यहाँ से उसे खाने का सामान, पुराने कपड़े, कोट वगैरह भी अक्सर मिल जाते और कचहरी में अपनी हिकमत से दो-चार रुपए भी रोज कमा लेता। उसने किशोरी से कह दिया था कि वह अफसरों की बीवियों की तरह रहे, इसीलिए पड़ोस की औरतों से अधिक मिले-जुले नहीं तथा गाँव के अपने गरीब फटीचर रिश्तेदारों को बुलाए नहीं। पहले उसके कई अन्य रिश्तेदार उसके यहाँ से धक्के खाकर लौट चुके थे।

बलेसर, किशोरी के आराम के लिए अपने गाँव से अपनी बहिन दमयन्ती को यह कहकर ते आया था कि यह उसे पढ़ाएगा-लिखाएगा, लेकिन यहाँ वह सवेरे से रात तक घर-गृहस्थी का काम सँभालती रहती। अब किशोरी को अपने हाथ से एक गिलास पानी भी लेना होता तो पहाड़ की तरह भारी लगता। वह हमेशा चारपाई पर बैठकर हुक्म चलाती रहती। घंटों अपने सिंगार-पटार में लगाती और सबसे, यहाँ तक कि कुटिलता की बात

भी बहुत धीमे-धीमे नाजुक मीठे स्वर में बोलती। यदि दमयन्ती, पड़ोसी, यहाँ तक कि अपना बच्चा भी उसके मन के विरुद्ध कोई बात करता तो वह अमूमन कुछ कहती नहीं बल्कि अपने पति की ओर ऐसी शिकायती नजर से देखती जिसका यह मतलब बलेसर फौरन समझकर कि 'देखिए, आपके रहते यह सब हो रहा है!' तेज आवाज में गर्जन-तड़पन करने लगता। किशोरी जानती थी कि एक अच्छे और सगे रिश्तेदार का स्वागत करना उसका कर्त्तव्य है, फिर भी एक चापलूस, घूसखोर, स्वार्थी, तुच्छ पति का प्यार-दुलार पाकर वह ग्रामीण कर्मठता, उदारता, सामाजिकता, स्वतन्त्र निर्णय बुद्धि और इन्सानियत खोकर स्वयं आलसी, आरामतलब और कुटिल बन चुकी थी। इसीलिए वह बार-बार अपने पति को अपनी परिचित शिकायती नजरों से देख रही थी

बलेसर पहले स्वयं पशोपेश में पड़ गया था। उसे सचमुच कुछ क्षणों के लिए यो दिन याद आ गए थे जब भगजोगिनी ने उसकी तीमारदारी की थी अथवा जब वे उनके यहाँ बलिया शहर जाकर रुके तो दोनों पति-पत्नी द्वारा उसका कितना स्वागत-सत्कार किया गया। कितने तो दुर्लभ फल और मेवे खाने को मिले। लेकिन उसकी चमड़ी अब उतनी संवेदनशील नहीं रह गई थी और उसकी पली की नजर ने उसके तन-बदन में आग लगा दी और वह फौरन सबकुछ भूलकर अपनी पत्नी पर ही गरजने-तड़पने लगा :

"तुमसे बार-बार कहा कि चारपाई पर लेटी रहो। जब डॉक्टर ने मना कर दिया है कि एक तिनका भी न उठाओ तो क्यों जान दे रही हो। मैं तो हमेशा यहाँ रह नहीं सकता। अफसर लोगों ने कितनी जिम्मेदारियाँ मुझ पर छोड़ रखी हैं। यह तो आज संडे है तो मैं यहाँ इस समय हूँ। मैं किसी ससरे की परवाह नहीं करता। बच्चों को आराम मिले या नहीं मिले. कोई रहे या जाए, तुम्हें चारपाई से नहीं हिलना। दमयन्ती, एक कमरा खाली कर दो. देखना तुम्हारी भाभी कुछ करने-धरने न पाएँ। मैंने तो तुमसे कई बार कहा है कि तुम्हारी भाभी को तकलीफ न हो, मगर तुम भी दृष्ट

होती जा रही हो। जिसको देखो वही हमें तकलीफ देने चला आ रहा है।

जल्दी करो...।" आखिरी वाक्य उसने तड़पकर इतने जोर से कहा कि आस-पास की मक्खियाँ और मच्छर उड़ गए और वहीं छिपा कोई छोटा-सा चूहा निकलकर बाहर की ओर भागा।

दमयन्ती फौरन कमरे में बिछी दो चारपाइयों के विस्तरे उठाकर दूसरे कमरे में रख आई। उसने फिर भगजोगिनी के दोनों बँधे बिस्तरों को खोलकर दोनों खाली चारपाइयों पर बिछा दिए। अन्त में भगजोगिनी के पास आकर उसके बच्चे को अपनी गोद में लेकर कहा :

"आप लोग आराम कीजिए। मैं इनको दूध पिलाती हूँ... बच्ची को अभी दाल-भात देती हूँ। कोई चिन्ता न कीजिए... कोई परहेजी खाना हो तो बता दीजिए...।"

भगजोगिनी ने सूखी हँसी हँसते हुए कहा, "दूध ले आई हूँ, उस डोलची में है, अभी पिला देती हूँ। खाना बनाने की जरूरत नहीं है। मैं साथ में रोटी, पूड़ी, ठेकुआ, सब्जी बनाकर ले आई हूँ। काफी है, खाना बनाना बाकी हो तो ये सब ले जाओ, सभी खा-पी लेंगे...।"

"माई, दाल-भात खाऊँगी..." लीला ने बीच में टोका।

दमयन्ती ने आगे बढ़कर लीला को गोद में ले लिया, "दाल-भात अभी मैं तुम्हें खिलाऊँगी। चतो हाथ-मुँह धुला लाती हूँ...।"

किशोरी चुपचाप लेट गई थी और बलेसर कपड़े बदलकर व्यस्तापूर्वक नीचे उतर गया था, जैसे उसे कहीं बहुत ही जरूरी काम से जाना हो। दमयन्ती छोटी बच्ची को बाथरूम में ले गई थी और उसे फ्रेश कराके तथा उसके हाथ-मुँह धोकर एक तश्तरी में ताजा दाल-भात और निमकी (नींबू का अचार) के साथ वापस आई थी। लेकिन वह अचम्भे से देखती रह गई क्योंकि भगजोगिनी अपने बिस्तरे फिर बाँध रही थी।

उसे देखकर भगजोगिनी उसके पास आई और उसे अलग ले जाकर हँसकर बड़े प्रेम से बोली, "बात यह है कि... तुमसे बताती हूँ, इनकी तबीयत बहुत खराब है... इन्हें अभी-अभी डॉक्टर के यहाँ ते जाना है। यहाँ

से डॉक्टर का घर दूर है, हम वहीं रहेंगे। एक रिश्तेदार हैं इनके। तुम कोई चिन्ता न करो... मौसी से कहकर उन्हें परेशान न करो, मेरी कसम। यह बच्ची खा लेती है, तब तक मैं सब सामान बाँध-यूँध लेती हूँ...।"

"अरे, यह आप क्या कर रही हैं?" दमयन्ती हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर बोली, "खाना सब तैयार है, गुसलखाने में पानी भरा है, तब तक आप लोग नहा लें। मैं सब्जी जल्दी ही बना लूँगी। भैया की बात का बुरा न मानें, मैं आप लोगों की सभी सेवा करूँगी...।" वह रोने लगी।

लेकिन भगजोगिनी नहीं मानी। दरअसल जब दमयन्ती छोटी बच्ची को तैयार कराने भीतर ले गई थी, बनवारी ने धीरे-से कहा, "माई, अभी कुछ देर पहले यहाँ आते समय मैंने एक धर्मशाला देखा था, वहीं चलो, यहाँ मेरी साँस घुट रही है। ये विस्तरे फिर से बाँध लो...."

"अब बेटा आए हो तो एक-दो दिन आराम कर लो, फिर कहोगे तो धर्मशाला चलेंगे...." "नहीं माई, यह ठीक नहीं है। मौसी भी बीमार हैं। माई. मैं मरूंगा नहीं. धर्मशाला में आराम से रहेंगे. डॉक्टर को दिखाएँगे और दस-पन्द्रह दिन दवा कराके घर लौट जाएँगे। फिर वहीं से दवा चलेगी। मैं अच्छा हो जाऊँगा माई! यह मेरा फैसला है. मुझे ले चलो यहाँ से...।"

यह हॉफ तो रहा ही था. जसे जोर की खाँसी भी आई। भगजोगिनी ने भी उसका समर्थन किया। वह सब तैयारी करके अपनी मीसी के पास गई विदा लेने। उसने अपनी बात बताई। किशोरी ने एक बार भी रुकने को नहीं कहा। बस, दकर-दकर देखते हुए बहुत ही अशक्त आवाज में
बोली : "जा रही हो ? हाँ, देखो तुम लोग आए हो और मैं बीमार पड़ गई हैं! इनको तो फुरसत ही नहीं। किसी बात की जरूरत पड़े तो सन्देश कहला देना।"

दमयन्ती सारी परिस्थिति समझ चुकी थी। जब ये चले गए तो वह अकेले में फूट-फूटकर रोने लगी। वह जानती है कि उसकी भाभी को कुछ भी नहीं हुआ है। इस तरह का नाटक यह अक्सर देखती है. जब पड़ोस की

स्त्री या कोई रिश्तेदार आता है। उसके दिल को आघात लगता है। उसके गाँव में तो लोग एक-दूसरे से सहयोग करने को तैयार रहते हैं। हर मौके पर दौड़ पड़ते हैं। शहर में क्यों ऐसा होता है? यह देख चकी है कि उसके भाई अपने अफसरों की किस तरह चाटुकारी करते हैं. हमेशा उनके स्त्री-बच्चों के सामने भी सिर झुका रहता है. धिग्धी-सी बँधी रहती है, ठीक से हँस-बोल नहीं सकते. 'अच्छा हजुर' के अलावा कुछ भी नहीं निकलता मुँह से। और यहाँ घर में अफसरों की नकल करने की कोशिश करते हैं. सबसे घुड़क-घुड़क बोलते हैं. अपने को सबसे ऊँचा दिखाने की कोशिश करते हैं। क्या इसे ही शहर कहते हैं? कैसे सन्तोष मिलता है ऐसे व्यवहार से? क्या शहर का हर आदमी अपने से जोरदार की चापलसी और अपने से कमजोर को सताता

रहता है ? धर्मशाला मिलने में उन्हें बहुत कठिनाई नहीं हुई। पन्द्रह दिनों के लिए एक कमरा मुफ्त मिल गया, उससे अधिक रहना हो तो किराया लगेगा। कमरे के साथ एक छोटा-सा बरामदा लगा है जिसमें भोजन बनाया जा सकता है। शौच और स्नान के लिए कुछ दूर जाना पड़ता है, करीब पचास गज। धर्मशाला में एक भोजनालय भी है, वहाँ भी जो चाहे खा सकता है। कोई चारपाई तो नहीं है, मगर कमरा अच्छा-खासा और उसकी फर्श भी पक्की और साफ-सुथरी है, अतः भगजोगिनी ने एक ओर किनारे सामान करीने से रखकर बीच में फर्श पर बनवारी का विस्तर लगा दिया, जिसके लिए वह एक गद्दा भी ले आई थी। दूसरे किनारे उसने दो दरियाँ अलग-अलग बिछा दीं, जिन पर बच्चे सो सकते हैं और वे सास-पतोह भी जब चाहे पीठ सीधी कर सकती हैं।

भगजोगिनी एक बोरे में दो बाल्टियाँ, लोटा, गिलास और कुछ हल्के बर्तन भी ले आई थी। वह दौड़कर नल से दो बाल्टी पानी ले आई और बरामदे में रखे एक पुराने स्टूल पर बनवारी को बिठाकर स्वयं उसके पैर, हाथ और मुँह धोए, उनको अच्छी तरह पोंछा और अन्त में उसको विस्तरे पर बिठाकर खाने के लिए उसके सामने एक छिपुली में रोटी, आलू की मसालेदार लटपट सब्जी, एक उबला अंडा और आधा गिलास दूध रख दिया।

बनवारी की भूख मर चुकी थी, उसे किसी चीज में कोई स्वाद नहीं मिलता। मुँह में हमेशा थूक भरा रहता, उबकाई आती रहती। उसके गालों के गड्ढे बहुत गहरे हो गए थे, धँसी आँखें, किसी दूर, घोर अन्धकार में टिमटिमा रही थीं। हाथ के गट्टे किसी पतली लकड़ी की तरह सूख गए थे, जैसे हल्का जोर लगाने या आघात लगने से दो टुकड़ों में टूट जाएँगे। हथेलियों की हरी-नीली नसें ऊपर-नीचे दिखाई दे रही थीं और पतली-सूखी भिंडियों की तरह उसकी उँगलियाँ रोटी-सब्जी के हल्के निवाले का भार भी नहीं उठा पा रही थीं। बस उसकी धड़ ही मोटी और फूली थी जिसके अन्दर रुके अनन्त बलगम की हल्की गड़गड़ाहट बीच-बीच में उभर आती।

भगजोगिनी ने उसे चिन्ता से देखा। फिर वह अपने हाथ से कौर बना-बनाकर उसके मुँह में डालने लगी। जिद्द करने पर वह मुश्किल से डेढ़ रोटी, अंडा और दूध ग्रहण कर सका। पानी पीने के बाद वह विस्तरे पर लेट गया। उसकी आँखें मुँद गई। कुछ देर बाद आँखें खोलने के बाद क्षीण

मत्कराहट से यह बोला:

"माई. यहाँ कितना इत्मीनान है। जिसने भी धर्मशाला बनवाई है. वह कितना बड़ा आदमी होगा। सच्चा इनसान ! मुझे कल ही डॉक्टर के यहाँ ले चलो। माई. मैं मरना नहीं चाहता। मैं दी-से-जल्दी अच्छा हो जाना चाहता हूँ...।"

"तुम अच्छा तो हो ही जाओगे, बबुआ, बाबा विश्वनाथ तुम्हारा सभी क्लेश दूर करेंगे।"

बरामदे में एक छोटा-सा चूल्हा बना था। दोनों सास-पतोह पूछताछ कर पास ही से आटा-दाल, सभी मोमबत्ती माचिस, थूकने के लिए छोटी-सी हँडिया तथा कुछ अन्य जरूरी सामान ले आई। एक ग्वाला आता था, उससे साँझ-सवेरे दूध देने को कह दिया गया था। दूसरे दिन के नाश्ता-पानी, भोजन के लिए सभी चीजें तैयार थीं। रात में तो वही भोजन हुआ,

जो भगजोगिनी बलिया से बनाकर ले आई थी।

जब रात में खा-पीकर सभी सो गए यानी बनवारी को भी कुछ देर के लिए नींद आ गई तो भगजोगिनी बरामदे में आकर स्टूल पर बैठ गई। सितम्बर का महीना बीत रहा था, दिन में गर्मी पडती थी. लेकिन रात अपेक्षाकृत कुछ ठंडी हो जाती थी। पहले तो उसे लगा कि उसका कलेजा मेह के रास्ते बाहर आ जाएगा। फिर यह मुँह को आँचल से दबाकर निःशब्द रोने की कोशिश करने सगी। काफी हिम्मत बाँधे हुए थी वह। उसे अपने ऊपर विश्वास था। अपने सौभाग्य तथा भगवान और देवी-देवताओं पर भी अगाध विश्वास। मगर इस समय सब्र का उसका बाँध टूट गया। दरअसल वह अपनी मौसी और मीसा के व्यवहार से अत्यधिक आहत थी। एक गुम चोट की तरह पहले उसे महसूस न हुआ, जिसका दर्द इस एकान्त में उभर आया था। वह छटपटा रही थी और इस विचार की छुरी पर सिर धुन रही थी कि क्यों पियरी वाले घर में ले जाकर उसने अपने पति की बेइज्जती

कराई ! दूसरे दिन डॉक्टर ने बनवारी को देखकर उसकी माँ और भगजोगिनी को डाँटा :

"आप लोगों ने काफी देर कर दी है। शुरू में आप लोग घरेलू दवाओं, सस्ते वैद्य-हकीमों, झाड़-फूंक के चक्कर में पड़ते हैं, फिर दौड़े चले आते हैं। इनको थायसिस है, टी.बी., इसका लम्बा इलाज है। इनको पहाड़ पर ले जाइए, खूब पनीर, अंडा, दूध, उबला गोश्त, रोटी खिलाइए। खूब आराम दीजिए, इनको खुश रखिए...।"

बनवारी की माँ रोने लगी। हाथ जोड़कर बोली, "सरकार, हम गरीब हैं, इनकी बीमारी से धन्धा चौपट हो गया है, बड़ा नाम सुना था, किसी तरह पैसे का इन्तजाम करके आपको दिखाने ले आए हैं। इनको अच्छा कर दीजिए, हम पाई-पाई चुका देंगे... डॉक्टर एक गोरा, स्मार्ट नवयुवक था। वह सिर झुकाकर कुछ देर सोचने

के बाद बोला: "बूढ़ी माई, मैं कुछ नहीं हूँ। एक साधारण डॉक्टर हूँ। यह राजा-महाराजा, धनी-मानी लोगों का रोग है, पता नहीं गरीबों को क्यों यह

रोग देता है ईश्वर। आप दवा चलाइए, मैं आपसे अपनी फीस नहीं लूँगा, कभी-कभी दवाइयों से भी मदद मिल जाएगी। और सब तो आपको करना ही होगा। इनको अधिक-से-अधिक दूध, अंडा, पत्नीर दीजिए। पनीर न मिले तो छेने के रसगुल्ले खिलाइए। हम एक गुलाम देश हैं, विदेशियों ने हमारे देश को काफी चूसा है। चारों ओर भयंकर गरीबी है, अस्पताल, डॉक्टर वगैरह बहुत कम हैं। यह सोचकर सन्तोष कीजिए कि जब देश आजाद हो जाएगा तो गरीबी दूर होगी और लोगों की तन्दरुस्ती का भी काफी ख्याल रखा जाएगा। मैं दवा लिख देता हैं. रोज नियमित समय पर दवाई देते रहिए, नागा न होने पाए। हफ्ते हफ्ते हाल बताइए...।"

दवा होने लगी। डॉक्टर की योग्यता, सदाशयता, आंशिक मदद और हिदायतें बहुत काम न आई। अपने घर में स्वास्थ्य की सामान्य हालत में दो सखी रोटी खाकर सन्तुष्ट हो जाना एक बात है, लेकिन एक गरीब परिवार का बड़े शहर में रहकर टी.बी. जैसे मर्ज का इलाज अनेक समस्याएँ

उत्पन्न करता है। हर चीज महँगी है, दवाएँ तो और भी कभी-कभी कोई दवा भी नहीं मिलती, फिर अनुभवहीन औरतें एक अपरिचित शहर में दवाई की खोज में कहाँ-कहाँ जाएँ? अभाव की स्थिति में दवाएँ और भी महँगी। खाने-पीने के मामले में वही समस्याएँ हैं। दूध शुद्ध नहीं, बलिया के मुकाबले काफी महँगा तथा पनीर तो दर्लभ ही है। छेने के रसगुल्ले बनवारी की पसन्द है, मगर उसकी भी एक सीमा बनानी पडती है। इसलिए दवाई में कभी-कभी नागा हो जाता है। पोषक खाद्य पदार्थ तो अपर्याप्त हैं ही. लेकिन सबसे अधिक छाती के अन्दर एक चिन्ता बनवारी को भीतर-ही-भीतर और खदड़ रही है। उसके बाद भगजोगिनी और उसके दो बच्चों का क्या होगा ? इसकी माँ का क्या होगा ? पहले ऐसा ख्याल आता भी नहीं था. यदि कभी आया तो उसे आशा-भरी हिम्मत निष्कासित कर देती. लेकिन अब तो वह हिम्मत ही दरक और टूट गई है। चारों ओर से एक अन्धकार उसे घेरता आ रहा है।

उसकी हालत जब और बिगडी, डॉक्टर ने कहा कि इनको पहाड़ पर ले जाइए, भवाली, राँची, पचमढ़ी कहीं भी। वे घबराकर और डॉ. व्यास की दवा छोड़कर सत्यनारायण शास्त्री के पास चले गए। वह तो नहीं मिले, लेकिन उतने ही योग्य दूसरे वैद्य ने इतने महँगे भस्म बता दिए कि उनकी रही-सही हिम्मत ही साथ छोड़ गई। बनवारी ने उनकी घबराहट देखकर कहा:

"माई, मुझे बलिया ले चलो। वहाँ मैं जरूर अच्छा हो जाऊँगा। वहाँ दूध, अंडा भी सस्ता है और वहाँ का पानी तो दूध से भी अच्छा है, माई! मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा। सुनते हैं होम्योपैथी वाले डॉक्टर चटर्जी बहुत काबिल हैं, रोग जड़ से अच्छा कर देते हैं। बुखार, खाँसी सबकुछ ठीक हो जाएगा...।"

और कोई चारा भी नहीं था। भगजोगिनी और उसकी सास किसी तरह बनवारी, बच्चों और सामान को ट्रेन में लाद-लूदकर वापस आ गई। शाम को डॉक्टर चटर्जी को घर पर बुलाकर दिखाया गया, जिन्होंने एलोपैथी डॉक्टरों से भी अधिक फीस लेकर नाराजी से कहा, "आप लोग महँगे डॉक्टर और महँगे शहर में विश्वास करते हैं। खूब पैसा खर्च करके जब निराश हो जाते हैं और 'केस बिगड़ जाता है तो यहाँ दौड़े आते हैं। शुरू में पहले आए होते तो कब के चंगे हो गए होते, मगर आप सोचते हैं कि छोटी-सी मीठी गोली से इतना बड़ा मर्ज कैसे अच्छा हो सकता है ? खैर, धैर्य से और नियम से दवा चलाइए, समय लगेगा मगर रोग जड़ से चला जाएगा।"

यह तो जरूर हुआ कि दवा खाने से खूब बलगम निकलने लगा। डॉक्टर ने कहा कि इतने दिनों से जमा बलगम निकल रहा है, निकलने दीजिए। दवा बन्द न कीजिएगा। इससे मरीज और उसके घरवालों को भी बड़ा इत्मीनान हुआ। बलगम दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था और एक दिन रात में खाँसते-खाँसते मरीज को खून की उल्टी हुई, जिससे वह स्वयं भयभीत होकर दाएँ-बाएँ देखने लगा।

"अरे माँ..." वह ज़ोर से चिल्लाया। 155 हाथ या तो चेक किए जाते हैं या टॉपिक बैंग द्वारा दिया जाता है।

इस मर्ज का पूरा किस्सा यह है कि डॉक्टर अन्त तक अत्यधिक आत्मविश्वास से आश्वासन देता रहा और परिवारजन भी विश्वास करते रहे तथा एक दिन रात में करीब तीन बजे मरीज खाँसते-खाँसते और एक साधारण खून-उल्टी के बाद बिस्तरे पर गिरकर परलोक के सफर पर निकल गया।

25

अभी कुछ देर पहले बारिश हुई थी। अँधेरी बरसाती रात है। हवा गुमसुम। करीब नौ बजे रात में

राममूरत दाहिने हाथ में लालटेन लटकाए और बाएँ हाथ में मुड़ा हुआ हिन्दी दैनिक अखबार पकडे दाहिनी तरफ उस गली में घुस गया जिसमें स्टाम्प-फरोश गिरिधर गुप्त और सस्ते वैद्य रामचरित्तर अपने घर से बाहर निकला। उसने चारों ओर देखकर चौराहा पार किया और नीलेश के घर के पूर्व पंडित रहते थे और जो आगे घूमकर बमपुलिस गली से मिली जाती है। लालटेन इस समय बड़ी उपयोगी है। एक तो वह घोर अन्धकार में रास्ता दिख रही है. जिससे यह कीच-पानी से बचने में समर्थ है। उसकी धीमी लाल-पीली रोशनी में इधर-उधर इकट्ठा बरसाती पानी सहसा चमक जाता है। इसके ही साथ, वह यह भी जानता है कि कस्बे के बहुसंख्यक घरों की तरह रमाशंकर के परिवारजन भी रात में दीये और ढिबरी-कृप्पी से काम चलाते हुए शीघ्र ही सो जाते हैं, इसलिए लालटेन की रोशनी में अखबार पढ़ना अधिक कठिन नहीं होगा।

रमाशंकर के मकान के सामने घोर अन्धकार-भरा सन्नाटा पसरा है। वह छोटे-से ओसारे में घसा और भीतर से बन्द दरवाजे को खटखटाते हुए बँधी

आवाज में पुकारा, "भाईजी...।" काफी देर तक कोई जवाब नहीं आया तो उसने रुक-रुककर तीन बार और खटखटाया, तव भीतर से एक स्त्री की आवाज आई :

"कौन है ?"

"रमाशंकर भाईजी हैं ?"

"वह तो नहीं हैं, काम से कलकत्ता गए हैं..."ना

"कलकत्ता ? कब आएँगे ?"

"ठीक नहीं है, देर हो सकती है..."

राममूरत को यह सूचना बड़ी अटपटी लगी। रमाशंकर से इधर कई बार उसकी मुलाकात हुई है, आज भी मिले थे और कल भी मिले थे, कलकत्ता के वारे में तो उन्होंने कभी नहीं बताया। तब उसे याद आईं उनकी अन्य बातें भी। वह खुश थे कि उन्होंने खानदानी कारोबार और घर-गृहस्थी के सभी काम अपने छोटे भाई गणेश को समझा-बुझा दिया है। वह बहुत होशियार है और सबकुछ उसने सँभाल लिया है। अब वह स्वतन्त्र और निश्चिन्त हैं और इस बार आजादी की लड़ाई में जी-जान से भाग लेंगे। यदि कलकत्ता जाना होता तो वह जरूर बताते-फिर उनके जैसा बहादुर और सच्चा आदमी, ऐसे समय में यहाँ से पलायन क्यों करेगा ?

उसे सहसा यह सोचकर खुशी हुई कि पुलिस का गुप्तचर समझकर उससे झूठ बोला जा रहा है, जबकि हकीकत यह है कि रमाशंकर इस समय घर में मौजूद हैं। उसने अपनी आवाज में गाढ़ा विश्वास भरकर कहा :

"आप विश्वास कीजिए, मैं कोई गैर नहीं हूँ। राममूरत हूँ, कांग्रेसी हूँ, भाईजी को एक बहुत जरूरी बात बतानी है। बम्बई का सब समाचार मिल गया है जिसे भाईजी जानने के लिए आज सवेरे से ही परेशान हैं..."

कुछ देर तक सन्नाटा रहा, फिर हल्की खड़-खड़ के साथ दरवाजा खुला

जिससे फॉफर से सिर निकालकर एक स्त्री ने उसको घूरा। वह दो कदम पीछे हट गया था। धीमे स्वर में बोला :

"एक जरूरी अखबार भाईजी को दिखाने के लिए ले आया हूँ... राममूरत हूँ..."

"भीतर आइए..."

जब वह भीतर चला गया तो उस स्त्री ने धीरे से दरवाजा बन्द कर लिया। गलियारे में घोर अन्धकार था लेकिन लालटेन के प्रकाश में उसका एक धुँधला अस्तित्व प्रकट हो गया। यह पतला, जाती और साफ-सुथरा था, लेकिन दरवाजे के पास टीन की एक पुरानी कुर्सी रखी हुई थी। चारों और मच्छर उड़कर भन-भन कर रहे थे। स्त्री के पीछे-पीछे गलियारे को पार करके जब यह छोटे-से ओसारे में पहुंचा तो एक तख्त पर रमाशंकर बैठा नजर आया।

"आओ, आओ. बैठो। क्या बताऊँ पुलिस की सरगर्मी बड़ी तेज हो गई है। सन्देह होने पर किसी को भी गिरफ्तार कर लेती है। कई निर्दोष लोग जेल में बन्द कर दिए गए हैं। तुम भी बचकर रहो. दयाशंकर नफीस वगैरह को मैंने मना कर दिया है। खैर ये भी काफी होशियार हैं। हाँ तो. ए राममूरत बबुआ, क्या समाचार है ?"

रमाशंकर तख्त पर पालथी मारकर धोती और खददर की बनियाइन में बैठा था। उसके पीले ताक पर एक दीया जल रहा था जिसकी धीमी पीली रोशनी परे ओसारे में फैल भी नहीं पा रही थी। लालटेन को ईंट की फर्श पर रखकर राममूरत तख्त पर एक किनारे बैठ गया और अखबार खोलकर आगे बढ़ाते हुए बोला :

"अरे भाईजी. वहाँ तो सबकुछ हो गया। अंग्रेजों ने गांधीजी नेहरूजी मौलाना आजाद, आचार्य नरेन्द्र देव, सबको पकड़कर जेल में बन्द कर दिया है। देश में आग लग गई है। एक रिश्तेदार आज शाम इलाहाबाद से

पहुंचे तो उनके पास वहाँ का 'भारत' दैनिक अखबार था। अब तो सभी अखबारों पर सेंसर लग गया है..."

रमाशंकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को आश्चर्य से बाहर निकालकर बोला, "अच्छा ! और यहाँ हम हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं। बबुआ, वह स्टूल उठाकर पास रख लो और लालटेन की रोशनी में सबकुछ पढ़कर सुनाओ। हाँ, जल मँगाएँ? मीठा के साथ...।"

"नाहीं ए भाईजी," इतना कहकर राममूरत उठा और कोने में पड़ा एक पुराना जर्जर स्टूल ले आया और उस पर लालटेन रखकर अखबार की जरूरी खबरें पढ़कर सुनाने लगा।

सबसे पहले उसने 7 अगस्त, 1942 को बम्बई की एक विशाल जनसभा में दिए गए महात्मा गांधी के भाषण का सार-संक्षेप सुनाया। गांधी ने कहा था, "हम अपनी स्वतन्त्रता लड़कर प्राप्त करेंगे। वह आकाश से टूटकर नहीं आ सकती। यह मेरे जीवन की अन्तिम लड़ाई होगी, लेकिन जो मेरे अहिंसा के सिद्धान्त से थक गए हों, वे मेरे साथ न आयें।"

इसके पश्चात राममूरत ने 8 अगस्त, 1942 को जनता के सामने अपने आन्दोलन की रूप-रेखा प्रस्तुत करते समय गांधीजी के भाषण का यह अंश पढ़कर सुनाया :

"हर देशवासी आज से अपने को स्वतन्त्र माने। सरकारी कर्मचारी कांग्रेस का साथ दें। अध्यापक और विद्यार्थी मैदान में आ जाएँ। सभी का मन्त्र एक ही होगा- 'करो या मरो'। हम या तो हिन्दुस्तान को आजाद करके रहेंगे अथवा शहीद हो जाएँगे।"

राममूरत ने गहरी साँस लेकर रमाशंकर से पूछा, "भाईजी, इसमें नेहरूजी, सरदार पटेल और मौलाना आजाद के भाषण हैं। उसके कुछ अंश सुनाएँ ?"

"अरे हाँ बबुआ, हमें सबकुछ सुनाओ। हम अभागे हैं, हमारी मातृभूमि की इतनी दुर्दशा हो रही है, हमारे प्यारे नेता जेल में हैं, और हम यहाँ निष्क्रिय

बैठे हैं..." स्वतन्त्रता के भावावेश में रमाशंकर काँपने लगा और उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

राममूरत की भी आँखें आवेश में डबडबा आई, लेकिन उसने किसी तरह अपने को रोका और सबसे पहले पं. जवाहरलाल नेहरू के भाषण का अंश सुनाया कि 'कांग्रेस तूफानी सागर में उत्तर रही है। वह या तो देश की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगी या डूब जाएगी। यह आन्दोलन चन्द दिनों का नहीं है बल्कि आखिरी दम तक या आजादी मिल जाने तक के लिए है।'

इसके बाद सरदार वल्लभ भाई पटेल के भाषण का अंश था, "भारत केवल भारतीयों का है। जापान के आक्रमण से भारत की रक्षा तभी सम्भव है, जब अंग्रेज समानता के आधार पर भारत की जनता का सहयोग प्राप्त करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो हमें स्वतन्त्रता के लिए उनसे संघर्ष करना ही पड़ेगा। इस बार का आन्दोलन बहुत बड़ा और कड़ा होगा। यह केवल कांग्रेसजनों तक सीमित नहीं होगा, बल्कि वह अपने दायरे में सभी भारतीयों को खींच लेगा।"

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपने ओजस्वी भाषण में ललकारकर कहा था, "काश, हम अपने गुस्से को जाहिर कर पाते। इन बैठकों में फँसे रहने के बजाय इन रिवाजों में बँधे रहने के बजाय अब तक हम गदर की आवाज उठा दिए होते."

राममूरत जरूरी खबरें पढ़ता गया जिनमें 8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में पारित वह 'भारत छोडो' प्रस्ताव भी था जिसमें कहा गया था. "अंग्रेजी राज को खत्म करने का सवाल एक महत्त्वपूर्ण जरूरी सवाल है जिस पर युद्ध का भविष्य आजादी की सुरक्षा तथा लोकतन्त्र की सफलता निर्भर करती है। इसलिए कांग्रेस, अंग्रेजी सत्ता के भारत से अविलम्ब हट जाने की माँग करती है... भारत के स्वतन्त्रता के अधिकार को स्वीकार कराने के निमित्त कांग्रेस अब जनता को बड़े पैमाने पर अहिंसात्मक सामूहिक आन्दोलन प्रारम्भ करने की भी

अनुमति देती है। यदि कभी हिदायतें पहुँच न पाएँ तो इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्त्री-पुरुष स्वयं आम हिदायतों के आधार पर कार्य करें। इस हालत में प्रत्येक भारतीय अपना पथ-प्रदर्शक बने और

भारतीय स्वतन्त्रता की मंजिल पर पहुँचने तक बढ़ता रहे।" प्रस्ताव के अन्त में गांधीजी से अनुरोध किया गया था कि वे पहले की तरह इस आन्दोलन का भी पथ-प्रदर्शन करें।

इस प्रस्ताव को भारत की निरंकुश अंग्रेज सरकार बरदाश्त नहीं कर सकी और 9 अगस्त 1942 की सुबह उसने अपनी क्रूर शक्ति से महात्मा गांधी और नेहरू के साथ आए शीर्षस्थ कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करके भारत की निहत्थी जनता के विरुद्ध अपना अमानवीय खूनी दमनचक्र चालू कर दिया।

राममूरत अखबार पढ़ना समाप्त करके कुछ देर सिर झुकाकर बैठा रहा, इस आशा में कि रमाशंकर हर बात सुनने के बाद आगे के कार्यक्रम के बारे में कोई हिदायत देंगे। लेकिन ऐसा न होने पर उसने सिर उठाकर देखा और देखता ही रह गया। क्रोध और जोश से रमाशंकर का मोटा-तगड़ा शरीर हिल रहा था। उसकी साँस फूल रही थी। उसकी छाती ऊपर उठती और नीचे गिरती धौंकनी की तरह। बड़ी-बड़ी आँखें सामने स्थिर थीं, जैसे किसी दुश्मन को घूर रही हों।

राममूरत को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उम्र में बहुत छोटा था। अनुभव भी उसका कितना कम है! एक बहादुर और धैर्यवान व्यक्ति के रूप में रमाशंकर की वह बेहद इज्जत करता। उसने अनेक किस्से सुने थे रमाशंकर के, जब सभी लोग धीरज छोड़कर घबरा जाते लेकिन रमाशंकर अविचलित भाव से आगे बढ़कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। भूकम्प के समय उनके उस साहस की चर्चा अब भी होती है, जब वीरेश दीवार की ईंटों के भीतर दबा था, सभी किंकर्तव्यविमूढ़ देख रहे थे, सीतानाथ बेहोश हो गए थे उस समय भी रमाशंकर ने आगे बढ़कर खून से लथपथ वीरेश को गोद में उठाया और तेजी से अस्पताल की तरफ दौड़ गए। ऐसी परिस्थितियों में वह दो ही व्यक्तियों को जानता और मानता था-हाँ,

सदाशयव्रत तथा रमाशंकर को उसने कभी भी मामूली लोगों की तरह शुद्ध एवं विचलित नहीं देखा। रमाशंकर को उसने कई बार कहते सुना था कि संघर्ष, आन्दोलन और लड़ाई के दौरान क्रोध में अपने होशोहवास नहीं खोना चाहिए बल्कि ठंडे उत्साह से अपने को प्रशिक्षित करके योजना बनानी चाहिए कि कैसे दुश्मन को परास्त करके संघर्ष में विजयी हुआ जा सकता है।

"भाईजी !" राममूरत तेज आवाज में बोला जो अन्धकारमय सन्नाटे में गूंज उठी जिससे आँगन के पार तीन कमरों से कई चेहरे बाहर निकलकर इधर झाँकने लगे। इसका रमाशंकर पर भी असर हुआ और उसने चौंककर राममूरत को देखा। उसका मुँह खुल गया था और होंठ नीचे लटक आए थे। उसके मुँह से इतना ही निकला, "ऐं ?"

"भाईजी, क्या सोच रहे हैं? यह तो काम का समय है। हमारे सभी पथ-प्रदर्शक जेल में हैं,

जिले के हजारों-लाखों नौजवान क्या करेंगे?" अब आप ही बच रहे हैं। आप ही अपना सन्तुलन खो देंगे तो हमारा मार्गदर्शन कौन करेगा? इस

क्रोधोन्मादी, अस्वाभाविक रेखाएँ सन्तुलित एवं स्थिर होती गई। आँखों की लाली लुप्त होती गई रमाशंकर कुछ देर तक राममूरत के चेहरे को एकटक देखता रहा। धीरे-धीरे उसके चेहरे की और उसमें स्वाभाविक रंग आ गया। होंठ बन्द हो गए और उस पर हल्की-सी मुस्कुराहट उभर आई। कुछ देर बाद यह धीमे और मीठे स्वर में बोला

"बबुआ, मैं लज्जित हैं, अब ऐसी गलती नहीं होगी। बात यह है कि तुमने जो कुछ पढ़कर बन्द है और हम आलस्य में बैठकर समय काट रहे हैं। हम जागरूक रहते तो सवेरे से ही सुनाया उसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। हमारा नेता 'करो या मरो' का सन्देश देकर जेल में बनारस-इलाहाबाद या छपरा-मुजफ्फरपुर से आनेवाली गाडियों के मुसाफिरों से पूछताछ करते, तब पहले ही सबकुछ मालुम हो गया होता और आज बलिया के लोग

'भारत छोडो' आन्दोलन शुरू कर चके होते। नौजवानों के नारों से सारा शहर गूँज रहा होता । तुम चिन्ता न करो, कल तडके सवेरे मे ही यह काम शुरू हो जाएगा। तुम सवेरे पाँच बजे उठकर साइकिल से घूम-घूमकर पूरे शहर में ऐलान कर देना कि लोग इस देश में अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फेंकने की लड़ाई में शामिल होकर सभी स्कूल, दफ्तर, बाजार बन्द रखें और अपने नेताओं को जेल में बन्द करने के विरोध में भारी जुलूस प्रदर्शन करें...हाँ, चौक और स्टेशन का इलाका छोड़ देना, वहाँ का काम में देख लूँगा। ठीक हैन ?"

"जी हाँ, भाईजी।"

रमाशंकर अचानक जल्दी-जल्दी बोलने से हाँफ रहा था। कुछ देर तक चुप रहकर सुस्थिर होने के बाद उसने पूछा :

"साइकिल है ? न हो तो मेरी साइकिल ले जाओ...।"

"हे भाईजी, भइया की साइकिल है, उसे ले लूँगा..."

"भोंपा है कोई ?"

"अखबार या किसी दफ्ती का भोंपा बना लूँगा..."

"नहीं बबुआ," रमाशंकर ने प्यार से कहा, "ऐसे छोटे भोंपे से काम नहीं चलेगा। एक तो तुम्हारी आवाज मोटी नहीं है। नफीस की आवाज मोटी है, मगर इस समय उसके पास जाने की राय नहीं दूँगा। मेरे पास टिन का एक हल्का लेकिन बड़ा भोंपा है, तुम्हारे लिए ठीक है। मैं लालबाबू का भोंपा ले लूँगा, वह सिनेमा हॉल में चौकीदारी करता है और आनेवाली फिल्मों का दिन में भोंपा से प्रचार करते हुए इश्तेहार भी बाँटता है। इस गली में ही रहता है वह। हाँ, यह बताओ, स्कूलों के ऐसे सीनियर लड़कों से तुम्हारा सम्पर्क है न, जो देश के लिए कुछ करने को तैयार रहते हों ?" "हाँ भाईजी...।"

"तो ठीक है। भोंपू से ऐलान करने के बाद इन लड़कों से मिल लेना और

सभी बातें समझाकर स्कूलों, बाजारों आदि में हड़ताल कराके शहर में जुलूस निकालने और कलक्टरी में विरोध प्रदर्शन का कांग्रेसी कार्यक्रम बता देना। देश की आजादी के लिए यह हिन्दुस्तानी जनता की आखिरी लड़ाई है। विरोध का यह प्रदर्शन रोज होगा जब तक कि विदेशी हुकूमत ठप्प नहीं हो जाती और अंग्रेज बोरिया-बिस्तर बाँधकर यहाँ से चले नहीं जाते। यह गांधीजी, कांग्रेस का फैसला है, सबको अच्छी तरह समझा देना..."

"समझ गया, भाईजी। मेस्टन स्कूल में वासुदेव, गौरीशंकर हैं, गवर्नमेंट स्कूल में नफीस, अम्बिका, वीरेश हैं, टाउन स्कूल में पंचदेव, विहारी हैं। जनता के बीच भी बहुत से लोग हैं भाईजी, जो प्रभातफेरी के जुलूसों में हमेशा शामिल होते रहे हैं। सबसे मिलूँगा और आपका हुक्म बताऊँगा।

हमारे नेता जेल में हैं तो क्या, हम सभी गांधीजी और आपका हुक्म मानकर अंग्रेजों से अपनी आजादी छीन लेंगे... कल जो जुलूस निकलेगा. उससे हुकूमत काँप जाएगी..."

"ठीक है. जाओ। अब समय हो गया है। मैं चाहता है कि इस 'करो या मरो' की लडाई से मिलूँगा। उनसे अनुरोध करूँगा कि वे कल के जुलूस में जरूर आएँ। बबुआ, इस शहर में ऐसी में स्त्रियाँ भी शामिल हों। मैं कल सुबह ही दुलारी देवी, नम्रता, धनेसरी देवी, भगजोगिनी देवी रेवियाँ हैं जो अनेक कष्ट सहने के बाद भी देश के लिए त्याग और कर्बानी करने को तैयार हैं। इस थम्पुलिस गली में भगजोगिनी देवी ऐसी स्त्री है जो विपत्ति सहने के बाद भी स्वाभिमान से तनकर खड़ी है. निरन्तर संघर्ष कर रही है।" "मैं जानता हूँ भाईजी." राममूरत संकोचपूर्वक बोला ।

"अच्छा ! कैसे ?" रमाशंकर की आँखें अचम्भे से फैल गई।

"एक बार नम्रता दीदी ने बताया था..."

"अच्छा अच्छा ! ठीक है, तुम जाओ। समय अधिक हो गया है। संभलकर जाना, आजकल पुलिस बहुत घूम रही है...।"

जब राममूरत, जिसे छोड़ने के लिए रमाशंकर बाहर बरामदे तक आए, गली में सतर्कतापूर्वक आगे बढ़ा तो सन्नाटे में झींगुरों एवं मेंढकों की मिली-जुली तेज आवाजें उभर रही थीं, गोया दुतलय मैं वायलिन और सरोद की युगलबन्दी हो रही हो। आसमान में बादल फिर एक जगह इकट्ठे होकर गाढ़े हो रहे थे और कुछ देर की उमस के बाद ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। राममूरत के दाहिने हाथ में पहले ही की तरह प्रकाशित लालटेन लटक रही थी, लेकिन इस बार बाएँ हाथ में भोंपा शोभायमान था।

राममूरत जिस रास्ते से आया था उसी से गया भी, लेकिन स्टेशन के चौराहे पर दो लाठीधारी पुलिस कांस्टेबलों को देखकर वह सड़क के एक किनारे ठिठककर खड़ा हो गया। उसने लालटेन पीछे की ओर कर ली। कुछ देर बाद कांस्टेबल जब बाईं ओर मुड़कर चौक की तरफ बादशाही इत्मीनान से खाना हुए तो राममूरत ने कुछ दुबके दुबके आगे बढ़कर चौराहा पार करने की कोशिश की। दुर्भाग्य की बात यह हुई कि उन दोनों में एक कांस्टेबल तजम्मुल नामक नौजवान था जो कभी दयाशंकर का साथी रह चुका था और जिसकी बीच-बीच में पीछे सिर घुमाकर 'थू-थू' करने की आदत अभी भी नहीं छूट सकी थी। इसकी वजह से वह अन्य कांस्टेबलों से अपने को श्रेष्ठ और आधुनिक समझता तथा वे भी उससे प्रभावित रहते थे। परिणामस्वरूप उसने जब एक बार सिर मोड़कर 'धू' कहा तो उसकी नजर किसी चोर की तरह भागते राममूरत पर पड़ गई। वह चौकन्ना होकर घूम गया और तेज आवाज में बोला :

"हई देखिए... कौन है रे ? भागना मत भूतनी के..."

राममूरत ठिठककर खड़ा हो गया। दोनों कांस्टेबल लौट पड़े। सीनियर कांस्टेबल ने अपनी मूँछों पर ताब देते हुए उसे घूरा, लेकिन एक दुबले-पतले नाटे किशोर को देखकर कुछ नरम पड़ते हुए खोखली आवाज में डपटने का नाटक किया:

"क्यों रे, आधी रात को तू कहाँ से आ रहा है और कहाँ जा रहा है ? झटपट उगल दो.... नहीं तो यहीं, अभी मुर्गा बनाकर पीछे से दो लात

जमा दूँगा..."

राममूरत ने पहले से ही सोच लिया था कि उनसे क्या कहना है। बोला, "अरे सिपाहीजी, मैं विद्यार्थी हैं न ! आप लालबाबू को जानते हैं न. अरे वही सिनेमा वाला चौकीदार उनका लड़का विधानदेव हमारा क्लासफेलो है। उसका गणित बहुत तेज है और उसके साथ कम्बाइंड स्टडी करने गया था। मैं तो पहले ही चला आता, क्या बताऊँ. उसी समय लालूबाबू के पेट में दर्द होने लगा और मुझे विशनदेव के साथ वैद्यजी के यहाँ दवा लाने जाना पड़ा...

"अच्छा बच्चू, तुम्हारा गड़बड़झाला मैं खूब समझता है। तुम किस खेत की मूली हो, मैं तो उडती चिडिया के चूतड़ में हल्दी लगा देता हैं. दो हाथ देंगा तो सब यक दोगे। अच्छा, यह बताओ कि हाथ में यह लालटेन क्यों ? और दसरे हाथ में क्या लिए हो ? यह कोई असलहा है या क्या है?"

"सिपाहीजी. मैं आपसे झूठ नहीं बोलूँगा। मैं राजा हरिश्चन्द्र की कसम खाकर कहता है कि मेरी एक-एक बात सच है। लालबाबू के यहाँ दिबरी जलती है. लालटेन न ले जाता तो कम्बाइंड स्टडी नहीं हो पाती न। और यह कोई असलहा नहीं. यह तो लालबाबू का भोंपा है। उनका पर बड़ा छोटा है. सामानों से भरा है. इसको रखने की कोई जगह ही नहीं है। यह आँगन में पड़ा पानी से भीग रहा था तो लालबाबु ने मुझसे अपने साथ ले जाने के लिए कहा। मेरे घर में यह भोपा सुरक्षित रहेगा और जब जरूरत पड़ेगी तो लालबाबू मेरे घर आकर ले जाएँगे। एक राज की बात बताना चाहता हूँ सिपाहीजी, आप विश्वास करें तो कहूँ..."

सीनियर अधेड़ सिपाही का मुँह अचम्भे से खुल गया, "बताओ क्या बात है ? मेरा नाम बैकुंठ राय है, मुझसे झूठ न बोलना, नहीं तो मारते-मारते हलवा बाहर कर दूँगा..."

"अरे नहीं सिपाहीजी, मैं आपसे झूठ बोलूँगा ? आप लोग जिस मुस्तैदी से ड्यूटी दे रहे हैं उसकी चारों ओर बड़ी तारीफ हो रही है। लोग कह रहे हैं

कि ऐसा अमन-चैन तो शहर में कभी नहीं रहा। यह सही है सिपाहीजी, खबर के कागज में निकला है कि गांधीजी बम्बई में गिरफ्तार हो गए हैं और सभी शहरों और गाँवों में इस विदेशी सरकार के खिलाफ बगावत हो रही है, यही ऐसा शहर है जहाँ शान्ति और चैन की बंसी बज रही है। हाँ, मैं यह कह रहा हूँ कि आप लोग जल्दी से चौक की ओर जाइए। ये कांग्रेसी बड़े बदमाश हैं, मैं जब उधर गली से आ रहा था तो दो कांग्रेसी नौजवान मेरा भोंपा छीनने की कोशिश करने लगे। कह रहे थे कि आजादी की लड़ाई में यह बहुत काम देगा। मैं जब बहुत परेशान हुआ तो जोर से चिल्ला पड़ा, 'अरे, पुलिस !' और पुलिस का नाम लेते ही वे भोंपा छोड़कर भाग गए चौक की ओर...।"

बैकुंठ राय कांस्टेबल उसकी बात आश्चर्य-भरी दिलचस्पी से सुन रहा था, लेकिन तजम्मुल अब दाँत खोलकर हँसने लगा। बात यह है कि तजम्मुल देर से सोच रहा था कि इस लड़के को कहीं देखा है, मगर कहाँ और कब, यह याद नहीं आ रहा था। लेकिन जब राममूरत 'बगावत' वगैरह की बात करने लगा तो उसे सहसा याद आ गया कि इस लड़के को उसने जरूर दयाशंकर के साथ कहीं देखा है। बस इतना काफी था। वह समझ गया कि यह लड़का शुरू से आखिर तक सफेद झूठ बोल रहा है। वह स्वयं कभी दयाशंकर के प्रभाव में उसकी क्रान्तिकारी पार्टी में शामिल होना चाहता था, लेकिन घर की गरीबी के कारण उसे पढ़ाई छोड़कर कांस्टेबल की नौकरी करनी पड़ी थी। चूँकि अब भी उस पर दयाशंकर और उसके क्रान्तिकारी विचारों का असर रह गया था, इसलिए हल्के-फुल्के ढंग से हँसकर उसने कहा :

"अरे छोड़िए उस्ताद, आप किसके चक्कर में पड़े हैं। गणित की पढ़ाई इतनी मुश्किल है कि शहर के बहुत-से लड़के रोज कम्बाइंड स्टडी करते रहते हैं। इसकी एक-एक बात सही है। यह खुराफाती कांग्रेसी या कोई चोर होता तो लालटेन लेकर क्यों चलता ?"

"हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। अच्छा, जाओ बबुआ, जल्दी से घर जाओ। क्या करें, हमारी ड्यूटी ही ऐसी है। हाँ, तो कहाँ मकान है आपका विद्यार्थीजी ?"

"कटहर नाला की तरफ, सिपाहीजी।" राममूरत इस बार भी सरासर झूठ बोल गया। वे दोनों सिपाही फिर घूमकर चौक की तरफ चले गए और राममूरत अपने घर की तरफ, जो

वहाँ से काफी निकट था, कटहर नाला तो दूर है। दरवाजा खोलते ही उसकी माँ ने डपटकर पूछा, "कहाँ था रे अब तक तू ? तेरी वजह से तो घर के सभी लोग परेशान हो गए हैं। तू तो जेल जाएगा

ही. घर के लोगों को फँसाएगा, काम-धन्धा भी चौपट कराएगा। सीधे-सीधे बता दे कि तु कहाँ से आ रहा है और तेरे हाथ में यह क्या है ?"

राममूरत ने हाथ जोड़कर धीमे स्वर में गिड़गिड़ाते हुए कहा, "धीमे बोल माई, तुझसे मैं झूठ नहीं बोलूँगा।" इसके बाद उसने सच-सच सबकुछ बताकर कहा, "देश की आजादी का काम बड़ा पवित्र काम है, माई ! इससे बड़ा पुण्य कुछ भी नहीं है। इससे मुझे मति रोक, माई।"

"इससे तुझे क्या मिलेगा ? तेरे बाप मुसाफिरों को चाय-विस्कुट खिलाकर खानदान को किसी तरह पालते-पोसते हैं, आजादी क्या दे देगी उन्हें? क्या ये कलक्टर हो जाएँगे या तुम ? राजा-महाराजा, ठाकुर-जमींदार, धनी-मानी इस समय भी हैं, आजादी के बाद भी रहेंगे। तुम्हारे बाप चायवाले-के-चायवाले ही रह जाएँगे। दुकान पर काम करनेवाले दोनों नौकर राजपति और धनेश तो मजूर और नौकर ही बने रहेंगे। ठीक है, तुमने भी अब तक अपने मन की कर ली, अब चुपचाप घर में बैठो और सबको चैन से जीने दो...।"

"माई, मैं आजादी मिलने तक चुपचाप नहीं बैठ सकता, चाहे मेरी जान ही क्यों न चली जाए। आजादी मिलने पर गरीबी दूर होगी, माई क्यों नहीं होगी? इसीलिए तो लाखों-करोड़ों गरीब भी अपनी कुर्बानी दे रहे हैं। मैं छोटा हूँ, तुझसे बहस नहीं कर सकता, मुझे तेरा सिर्फ आशीर्वाद चाहिए।"

उसकी माँ धीरवन्ती देवी उसे कुछ क्षण एकटक देखती रही, फिर

मुस्कुराकर बोली, "अच्छा चल, हाथ-मुँह धोकर खाना खा ले। जिद्दी और नटखट तो तू बचपन से ही है।"

26

रमाशंकर सवेरे-सवेरे पहुँचा। अँधेरा कुछ-कुछ फट गया है और आकाश के बादल भी। रात की उमस के बाद उस सँकरी गली में भी प्रभात की चंचल हवा सुख दे रही है। कल की बारिश का काफी पानी निकल चुका है और पहले से ही जगह-जगह रखी पुल की तरह ईंटों की कतारें हैं, जिन पर चढ़कर कीचड़ से बचते हुए मकानों तक पहुँचा जा सकता है। रमाशंकर अपने सिर पर एक दुपट्टा साफे की तरह बाँधे हुए है। पैरों में पानी से भीगी, दफ्तीनुमा चप्पलें और हाथ में टिन का एक भोंपा। सँभलकर दो-तीन सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद बरामदे में पहुँचकर उसने पुकारा : "चाची ! चाची !"

भगजोगिनी की सास यानी लीला की आजी जल्दी ही बाहर आ गई।

"अरे, तड़के कैसे बाबू ? किसी से कहला दिया होता, मैं मकान पर पहुँच जाती। कोई खास बात है ?"

रमाशंकर अपने सिर को बाईं तरफ लटकाकर धीरे-धीरे बोला, "चाची, क्या बताएँ, अंग्रेजों ने गांधीजी, नेहरूजी और सभी बड़े-बड़े नेताओं को जेल में ठूंस दिया है। यह बड़ा जुल्म है चाची। इसको हम कैसे वरदाश्त कर सकते हैं? आज इसका विरोध किया जाएगा। शहर में हड़ताल होगी और जुलूस निकलेगा। यह अंग्रेजों से हमारी आखिरी लड़ाई है न, चाची! जब तक अंग्रेज इस देश को छोड़कर नहीं जाएँगे, हम लड़ाई चलाएँगे। तो हम यह चाहते हैं, चाची, कि इस बार आज के जुलूस में जनाना लोग भी भाग लें। हम नेवता देने आए हैं, इस घर से कोई एक जरूर चले।"

इस बीच भगजोगिनी भी अपनी सास के पीछे आकर खड़ी हो गई थी हल्का घूँघट काढ़कर। साथ में उसकी पुत्री लीला यानी बच्ची भी थी, जो अचम्भे से अपनी बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर रमाशंकर को एकटक देख रही थी। भगजोगिनी अपनी सास के कान के पास अपना मुँह ले जाकर

धीमे स्वर में बोली:

"अम्माजी, मैं जाऊँगी जुलूस में। गांधीजी को पकड़कर तो बड़ा जुलुम किया है अंग्रेजों ने " बह की बात सुनकर सास जल-भुन गई। उसने सिर पीछे मोडकर आँखें तरेरकर देखते हुए

कहा: "हाँ, तुम क्यों न जाओगी? सबसे तेफा तुम्हीं न हो ! सबकुछ हो गया, सब दुर्गति हो गई. पर तुम नहीं चेती। जब मेरे शिवजी देखते-ही-देखते चले गए और मुझ पर बज्जर गिर पड़ा, तब तो कोई नहीं आया। मेरा सोना. मेरा लाल चला गया छोडकर हमें और किसी ने नहीं पूछा। उस कलमुँहे, रईस के बच्चे ने मुझे और तुझको कितना धोखा दिया। हमने किसका क्या बिगाड़ा है. गांधी-नेहरू का क्या नुकसान किया है. कि सब दुःख-अपमान सहने के बाद मेहनत कर दो रोटी कमा रहे हैं तो यह भी किसी से देखा नहीं जा रहा है। मेरे तो हाथ-पैर नहीं चल रहे हैं, अब तुप कुला चली जाओगी तो तुम्हारे बाल-बच्चों को कौन सँभालेगा ? तुम जानती हो कि जेल जाओगी तो इज्जत बढ़ेगी तुम्हारी ? इन मर्दों को नहीं जानती हो ? सिपाहियों के बारे में नहीं सुना कुछ ? ये सभी धनी-मानी की इज्जत करते हैं, हमारी जैसी गरीब औरतों की तो हर दुर्गति करते हैं...

"चाची," रमाशंकर ने दुःखी होकर बीच में ही टोका, "आप लोगों का दुःख हम जानते हैं। इसीलिए यह लड़ाई हो रही है कि जब देश आजाद हो जाएगा तो गरीबी दूर होगी, लोगों का दवा-इलाज होगा, गरीब ऊँचा उठेंगे, घी-दूध की नदियाँ बहेंगी... इसीलिए तो गांधीजी और लाखों लोग जेल जाते हैं, लाठी-डंडा सहते हैं, अपने सीने पर गोली रोकते हैं और अपनी जान कुर्बान कर देते हैं। आजादी की इस लड़ाई में अधिकतर गरीब ही तो शामिल हैं, धनी-मानी तो बहुत कम हैं। खैर, मेरी बात से दुःख पहुँचा हो तो माफ कीजिएगा..."

"ए बाबू, मैं तुमको नहीं कह रही हूँ। तुमने तो बहुत कुछ किया है। मैं मूर्ख हूँ... ये ऊँची-ऊँची बातें मैं नहीं जानती। मैं तो इस समय चौका-बासन

करने के लिए जा रही हूँ। पहले अकेले जाती थी, अब बच्ची को, अपनी इस पोती को ले जाती हूँ। पाँच साल की उम्र हो गई है इसकी, बाप का सुख नहीं जाना, घी-दूध के लिए तरसकर रह गई। इसका बाप मेहनती था, नेक इनसान था, सुख से रहा, अपनी बीवी, बच्चों को सुख से रखा। किसी को सताया नहीं। लोग कहते हैं, ईश्वर सब दुःख काटेगा। कैसा ईश्वर ? कितना पूजा-पाठ किया, विनती की, ईश्वर ने नहीं सुना। जब ईश्वर से ही विश्वास उठ गया तो गांधी-फांधी कौन हैं? ए बाबू, हमें धन नहीं चाहिए। यह मेरी पतोह बड़ी हिम्मती है, यह मुझे छोड़कर कहीं न गई। चली गई होती तो मैं कभी मर-बिला गई होती।

मैं तो इन्हीं लोगों के लिए जिन्दा हूँ..." "ठीक है चाची, आप जाइए, मेरी बात का बुरा न मानिएगा। आप आशीर्वाद दीजिए कि आजादी की इस लड़ाई में हम सफल हों..."

"मैं क्या आशीर्वाद दे सकती हूँ, बाबू ? मैंने अपने लाल को कितना आशीर्वाद दिया होगा... मेरे आशीर्वाद से तो काम ही बिगड़ जाता है..."

यह सिर मोड़कर घूम गई और अपने पीछे खड़ी भगजोगिनी तथा बच्ची को ठेलकर भीतर चती गई। पतोहू और पोती ने भी उसका अनुगमन किया।

रमाशंकर भी घूमकर ओकडनगंज और चौक क्षेत्र में हड़ताल और जुलूस की घोषणा करने के लिए चल पड़ा यह सोचते हुए कि राममूरत भी शहर के दूसरे क्षेत्रों में साइकिल से पहुँचकर पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार यही कर रहा होगा।

कुछ ही देर बाद लीला बच्ची की आजी, बच्ची के साथ चादर ओढ़कर बाहर निकली। अभी कुछ-कुछ

अंधेरा शेष था, एकदम पतला और धीमा, बढ़ते हुए उजाले को ढकने की निर्बल कोशिश करते हुए। शुरू-शुरू में यह और भी पहले निकलती थी, जिससे कोई देख न सके। तब सिर से ओढी चादर की पतोह और बनवारी की जनानी ने कभी दूसरे के घर में चौका-बासन किया है कि आज ही का

घूँघट भी अधिक लम्बा होता। अपनी बह को तो वह जाने ही नहीं देती। क्या रमापति राउत करेगी। मगर जब वह एक बार बीमार पड़ी, तो भगजोगिनी को मजबूर होकर जाना पड़ा था, जो खूप लम्बी घूँघट काढ़कर लकते-छिपते पहली बार अपनी बच्ची के साथ गई। तब बच्ची और छोटी तथा कमजोर थी।

लेकिन मुहल्लेवालों से कोई बात कहाँ छिपती है। जैसे दाई से पेट। बच्ची की आजी अव पहले से कमजोर भी हो गई है। पैर अब सीधे नहीं पड़ते। आँखों की ज्योति काफी मंद। पास-पास बने चार घरों में से पहले घर वह अँधेरे में ही पहुंचकर बाहर से दरवाजा खटखटाती है तो मलिकाइन सकलनबीसिन आँचल से आँखें मलती हई भीतर से सीकडी खोलती है। बच्ची की आजी आँगन के एक कोने में जल से भरे गंगाल में से दो बाल्टी पानी निकालती है. बच्ची छोटे-छोटे बर्तन चौके से बाहर लाकर आँगन में रखती जाती है और मलिकाइन रात का बचा हुआ खाना एक छिपुली में निकालकर अलग रखते हुए भारी बर्तन खाली करके बाहर रख देती हैं। वहाँ आजी बर्तन मलना शुरू करती है मुँह से कुछ बुदबुदाती हुई और भीतर पोती बचा हुआ खाना चुपचाप खाकर चौके

में झाड़ू लगाने के बाद एक हँडिया में रखे पोतन से चूल्हे और चौके को लीपने-पोतने लगती है। कभी-कभी नकलनबीसिन खीझकर गम्भीर स्वर में कहती है, "अरे बच्ची की आजी, इतनी नाजुक बच्ची को क्यों ले आती है? इससे कुछ होता-जाता भी नहीं, न चूल्हे को ठीक से लीपती है। चौका भी गन्दा-गन्दा रहता है। इसकी माई को क्यों नहीं भेजती, उसका शरीर भी कितना टाँठ

बच्ची की आजी ने सिर घुमाकर कुछ क्षण घूरकर मलिकाइन को देखा। ऐसा लगा मानो कोई तुत्ती उसकी आँखों से छटककर बाहर आ गई। फिर उसने मुँह से विष ही ढकच दिया :

"मेरी पतोह पर सवेरे-सवेरे नजर न लगाइए, ए मलिकाइन ! कुछ साल पहले मेरी पतोहू रानी की तरह रहती थी। इन्दर की परी थी। पास-पड़ोस में उसके गोड़ के धोअन के बराबर भी कोई नहीं। शर्म-हया इतनी कि

चिरई-चुरंग भी उसके हाथ-पैर की उँगलियों के पोर तक नहीं देख सके। हमारा जमाना खराब आ गया है तो यही सब सुनने के लिए काम थोड़े ही करते हैं !"

नकलनबीसिन क्रोध से तिलमिला-सी गई। उसका चेहरा ईगुर की तरह लाल हो गया। इच्छा हुई कि अभी उद्दी-खुद्दी निकालकर कमर पर चार लात जमाकर घर से बाहर कर दे। मगर बहुत कुछ सोचकर मुश्किल से आत्म-नियन्त्रण करने पर भी उसके मुँह से कटु वचन निकल ही गया:

"बच्ची की आजी, इतना गुस्सा करना ठीक नहीं है। जमाना खराब आ गया है तो उसी के हिसाब से सिर नवाकर रहना चाहिए। हमसे किसी का हाल छिपा थोड़े ही है। प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र को तो डोम की नौकरी करनी पड़ी थी, यहाँ तो तुम खूब ऊँचे खानदान में काम करती हो। भाग्य मनाओ। यहाँ से खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता, रुपया-पैसा ऊपर से पाती ही रहती हो। इस शहर में बड़े-से-बड़े घर में चली जाओ, कोई सूखी रोटी का पपरा तक देता नहीं। रिश्तेदार आते हैं तो जरूर ही कुछ-न-कुछ दे जाते हैं। तुम्हारे लिए मैंने तो कुछ कहा भी नहीं। जो भी इतना रुपया-पैसा देगा

वह अच्छा काम नहीं चाहेगा? तुम्हीं बताओ..." "आप तो चिटकी भर कुछ देती हैं तो चारों ओर गाती रहती हैं। किसी घर में ऐसा नहीं है। अधिक बरबराइए नहीं. आपको काम पसन्द नहीं तो कल से कोई दसरी खोज लीजिए...।"

"लो. बिगड़ गई। मैं तो बच्ची के लिए कह रही थी. हड्डी कमजोर है. उसको नुकसान करेगा। खैर, तुम्हें बुरा लगता है तो कुछ नहीं कहँगी। हम लोग काम से किसी को नहीं निकालते. आखिर

तक निभाते हैं। नौकर-चाकर को घर का समझते हैं। हाँ. जाते समय दारा (मकर्ड की दलिया) ले जाना, हमारी माई ने गाँव से भेजवाया है..."

नकलनबीसिन का मैका और ससुराल, दोनों ही सम्पन्न हैं। गाँव में खूब

खेती-बारी है, दोनों जगहों से हमेशा कुछ-न-कुछ आता रहता है। गेहूँ, चावल, जी, मकई, बाजरा, दूध, दही, वी, मट्ठा, लावा, ढूँढा, तिलवा, सत्तू, चना, चयेना सबकुछ। फिर नकलनबीसिन का दिल बड़ा और हाथ भी खुला है। अच्छी और मामूली, हर चीज में से थोड़ा निकालकर बच्ची की आजी या दूसरी पवनियों को जरूर देती।

एक बार नकलनबीसिन ने साठी का चावल (बरसात में साठ दिनों में तैयार होनेवाला धान) जिसका भात लाल होता था, अपने गाँव-खेत की अरहर दाल और जमे हुए दानेदार भैंस घी का एक छोटा-सा पिंड दिया था, जिन्हें पकाने के बाद नाक सुड़क-सुड़क खाने पर इतना स्वाद-सुख मिला कि अपने पति रमापति और पुत्र बनवारी का समय याद करके उसकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। नकलनबीसिन जानती है कि बच्ची की आजी कमजोर भले ही हो गई है, लेकिन काम बहुत ईमानदारी से करती है, धीरे-धीरे ही सही, बर्तन चमचमा देती है और नागा तो यह करती ही नहीं। इसलिए जाते समय उसने दारा के अतिरिक्त दो बड़े आलू और एक पुड़िया में गर्म मसाला के साथ कुछ मीठी-मीठी बातों से भी स्वागत करके उसको खुश कर दिया था।

सहते-सहते बच्ची की आजी की छाती पत्थर बन गई है। उसके हाथ-पैर यन्त्र की तरह चलते हैं और मुँह से शाप-भरी बुदबुदाहट निरन्तर निकलतीं रहती है। शाप किसके लिए? तब वह अपने को गरियाने लगती है। दामोदर की बातों में वह क्यों आई थी ?

मरते समय भगजोगिनी के लिए बनवारी के पास कहने को कुछ भी नहीं था। दो दिन पहले से ही, जब वह या बच्चे निकट आते, वह दूसरी ओर मुँह घुमा लेता। आखिरी दिन उसने अपनी माँ से कहा था :

"माई, भगजोगिनी से कहना...किसी का हाथ पकड़ ले, बच्चे पल जाएँगे... तुम्हारी जिनगी भी कट जाएगी..."

वे उजड़ गए थे। बनवारी की अन्त्येष्टि के लिए भी उनके पास कुछ नहीं था। महासमुद्र के बीचोबीच वे हाथ-पैर कैसे मारें? सभी गहने और बचे हुए

बड़े सामान बिक गए। अब क्या करें वे ?

लेकिन दामोदर प्रसाद के व्यवहार से उनको बड़ा सहारा मिला। प्रत्येक व्यक्ति में, चाहे वह कितना भी हैवान हो, इन्सानियत का कुछ अंश तो रहता ही है, अतः बनवारी की मृत्यु के बाद पता नहीं कैसे दामोदर के अन्दर की 99 प्रतिशत शैतानियत के अन्दर दबी उसकी एक प्रतिशत मनुष्यता जाग उठी और वह आँगन में खड़ा बिलख-बिलखकर रोने लगा। उसको लगा कि सचमुच वह सच्चे मन से दुःखी है, आदर्शवादी है और वह इस परिवार के लिए इस समय कोई भी कुर्बानी कर सकता है। कुछ देर बाद छाती पीट-पीटकर विलाप करती भगजोगिनी और उसकी सास के पास गया और उनके पास नीचे बैठकर, भयभीत होकर जोर-जोर चिचियाते बच्चों को अँकवार में लेकर आँसू चुआते हुए बोला :

"चाची, मैं कैसे बताऊँ कि बनवारी भाई के जाने से मुझे कितना दुःख हुआ है। हो सकता तो मैं छाती चीरकर दिखा देता। मगर, प्रभु को यही मंजूर था, चाची, तो हम क्या कर सकते हैं! मुझे खुद समझ में नहीं आता कि यह दुःख में कैसे बरदाश्त कर सकूँगा ! खैर, चाची मैं तुमसे यही कहूँगा कि एक लड़का गया तो तुम्हारा यह दूसरा लड़का मौजूद है। तुम मेरी माँ की तरह हो, तुम्हारी पतोह मेरी भाभी, और ये बच्चे मेरे बच्चे की तरह हैं। मैं जब तक जिन्दा हूँ, तुम लोगों की जी-जान से सेवा करूँगा। तुम किसी बात की चिन्ता न करो... मैं जिन्दा हूँ..."

और सचमुच वह किसी भी समय और किसी बात के लिए वहाँ से टला नहीं बल्कि हर वक्त पर खड़ा रहा। अन्त्येष्टि के लिए रिश्तेदारों, कुछ मोहल्लेवालों की मदद को अस्वीकार करते हुए उसने संजीदगी से कहा था:

"बनवारी काम-धन्धे के ही मेरे पार्टनर नहीं थे, वह मेरे भाई की तरह थे। मुझ पर उनका यहा कर्जा है। यह कर्जा तो नहीं उतार पाऊँगा, फिर भी इस समय जो कुछ कर सकता हैं, उससे तो मुझे न रोकिए...और जो मैं खर्च कर रहा हैं, यह भी उन्हीं का है. उन्होंने ही कमाकर मुझे दिया

"वह सदा खूब गम्भीरं रहता। उसने आगे बढ़कर सभी काम अपने कन्धे पर ले लिया था, इसलिए अब उसका घर में आना-जाना बेरोक-टोक था। अन्दर आकर वह भगजोगिनी की ओर भूलकर भी नहीं देखता जैसे बहुत चरित्रवाला और कर्त्तव्यपरायण हो. लेकिन उसकी सास के पास जरूर दो मिनट बैठ जाता, बच्चों में से किसी को देखता तो गोद में उठा लेता। उसकी ऐसी संजीदगी, ऐप्सी व्यस्तता इसके पूर्व किसी ने भी न देखी होगी, जैसे पढ़ाई से जी चुरानेवाला कोई शरारती और शैतान लड़का अपने माँ-बाप से अपनी जिद का कोई सामान खरीदने का आश्वासन पाकर खूब मेहनत से पढ़ने का नाटक करने लगे।

वह सवेरे-शाम जरूर आता। बच्चों के लिए हर दिन जरूर कुछ-न-कुछ लाता। राशन-पानी किसी चीज की कमी नहीं होने पाती थी। दिन-पर-दिन बीत रहे थे। उसके अन्दर अब खुशी की फुलझड़ियाँ छूटने लगीं।

लेकिन गम्भीरता का मुखौटा उसने नहीं उतारा। उसका चेहरा और दिल, दोनों परस्पर-विरोधी स्थितियों में थे, फिर भी दोनों में कितना तालमेल था। दोनों ही एक-दूसरे पर अवलम्बित थे, दोनों एक-दूसरे को उत्तेजित भी करते थे।

मगर वह जल्दी में नहीं था। समय अब उसका था, जिस पर अपनी पकड़ और मजबूत करने के लिए वह और भी फूंक-फूंककर कदम रखने लगा। वह बोली-वचन, प्रसाद, खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता द्वारा अत्यधिक उदारतापूर्वक आत्मीयता, एहसान और आश्वासन बाँटने लगा। ईश्वर-भगवान के मोर्चे पर भी वह कोई भूल-चूक नहीं होने देना चाहता था। वह अब रोज मन्दिर जाने लगा। पहले तो उसने पिछली मनौती के अनुसार पचास रुपए की मिठाई आत्मीय जनों तथा गरीबों और भिखमंगों में बँटवाई। फिर वह रोज सच्चे मन से भगवान की मूर्ति के सामने विनती करता। कभी-कभी तो वह भक्ति से भरकर रोने लगता। उसके जैसे भक्त के लिए जब भगवान ने इतना किया है तो क्या वह आगे नहीं करेगा ?

एक दिन उसने 'भारत भंडार' से एक बड़े दोने में मगद खरीदे, उसको मन्दिर में चढ़ाया, पूजा-अर्चना तथा विनती-प्रार्थना की और अन्त में करीब आठ बजे रात में उस समय पहुँचा, जब रसोई में चूल्हे के पास बैठी भगजोगिनी रोटी सेंक रही थी, उसकी सास कमरे में एक खाट पर बैठी खाँस रही थी और दोनों बच्चे एक-दूसरे पलंग पर खर-खर सो रहे थे। चूँकि बाहर का दरवाजा भीतर से उठेंगाया हुआ था, इसलिए वह आसानी से अन्दर घुस गया और बरामदे में पहुँचते ही उसकी नजर सामने रसोई की ओर गई, जहाँ भगजोगिनी का चेहरा चूल्हे की जलती लौ में दमककर और भी खूबसूरत हो गया था। उसका दिल आशा की पुलुंगी पर चढ़कर पहले से ही तेजी से धड़क रहा था। जब उसने भगजोगिनी की ऐसी खूबसूरती देखी तो लगा कि वह मूर्छित होकर गिर जाएगा।

भगजोगिनी ने आहट मिलने पर घूमकर बाहर बरामदे की ओर देखा। उसका मुँह सिकुड़ गया और उसने आँचल सँभालकर हल्का घूँघट निकाल लिया। दामोदर कुछ क्षणों तक खड़ा होकर उसकी ओर देखता ही रह गया। फिर जल्दी से वहाँ से टलकर कमरे में अन्दर पहुंचकर बच्ची की आजी से बोला :

"चाची. बच्चे तो सो गए हैं। खैर, आप पहले शिवजी का प्रसाद ले लीजिए। मगद का एक लड्डू आप ले लीजिए. एक उधर बच्ची की अम्मा को दे आइए और एक मैं लै लेता है। मैंने मन्दिर में ही सोच लिया था कि यहाँ घर में ही एक साथ प्रसाद ग्रहण करेंगे। ठीक है न चाची ?" एक चापलूस हँसी से उसके होंठ दोनों ओर फैल गए।

"नहीं बाबू, यह तो इस समय नहीं लेगी। बच्चे संझा को काफी परेशान करने लगे, रसोई में देर हो गई। माँ और उसके बच्चों का प्रसाद रख दो- हाँ, मुझे दे दो और अपने ले लो।"

दामोदर प्रसाद अचानक गम्भीर हो गया, लेकिन कुछ बोला नहीं। उसने चुपचाप एक मगद लड्डू निकालकर दे दिया. और दूसरा अपने लिए लेकर

शेष पाँच लड्डुओं से भरे दोने को एक ताक पर रखकर उसे कर्ते की जेब में रखे. इत्र की सुगन्ध से मह-मह महकते अपने रूमाल से ढक दिया। फिर वह खाट के पैताने बैठकर सिर झुकाकर शिष्टतापूर्वक मुस्कुराने लगा।

बच्चों की आजी ने कछ देर तक बार-बार सिर उठाकर उसे घूरकर देखा. फिर अचानक पूछा: "दामोदर बाबू, क्या सोच रहे हैं, कुछ कहना चाहते हैं?"

"अरे, कुछ नहीं चाची... क्या बताऊँ।"

"अरे बताओ न भैया...हमारा तो तुमसे कुछ भी नहीं छिपा है, तुमको कोई दुःख-तकलीफ, परेशानी हो तो बता दो... हम तो किसी लायक नहीं हैं।"

"अरे ऐसा नहीं कहिए, चाची," उसने अपना मुँह आगे बढ़ाकर बहुत धीमे स्वर में लगभग फुसफुसाई आवाज में एक आतुर मुस्कुराहट के साथ लपलपाते होंठों को कुछ गोल-गोल घुमाते हुए बोला :

"चाची, तुमसे कैसे बताऊँ, तुम चाहो तो सबकुछ कर सकती हो। तुम्हारे ही हाथ में सबकुछ है। मगर हिम्मत नहीं हो रही है...।"

"अरे, कहो न बाबू, ऐसी ही बात है तो सबकुछ करूँगी तुम्हारे लिए...।"

वह अचानक बहुत ही गम्भीर हो गया और कुछ आगे खिसककर अत्यन्त दुःख भरे धीमे स्वर में कहा :

"चाची तुम मेरी माँ की तरह हो। मुझे बनवारी समझो, चाची मुझे चौबीसों घंटे तुम लोगों की ही चिन्ता रहती है। सच पूछो तो मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है चाची! माँ बहुत पहले मर गई थी, पिता का साया भी उठ गया। घर में बीवी है, मगर क्या बताऊँ चाची, इस उम्र में यह दिन-रात पूजा-पाठ में ही रहती है। उसने हमारे जैसे पति के सभी अरमान नष्ट कर दिए। सिंघाड़े और कुटी के आटे की चीमड़-चीमड़ पूड़ियाँ खिला-खिलाकर उसने तबाह कर दिया है। कोई मतलब नहीं रखती, प्यार से देखती भी नहीं, एक दिन बहुत खुश हुई तो अपनी भक्ति से सराबोर आँखों को

आसमान की ओर उलटकर देखती हुई बोली, 'आप विष्णु भगवान हैं और मैं लक्ष्मी हूँ। मुझे हमेशा अपने चरणों में स्थान दे दीजिए। हमारा आपका सम्बन्ध देह का नहीं, आत्मा का है।' मैं फौरन वहाँ से भाग चला और बाहर जाकर एकान्त में खूब रोया। ऐसी पगलेट औरत को लेकर मैं क्या करूँ, चाची।"

बच्चों की आजी पहले तो पशोपेश में पड़ी कि क्या उतर दे, फिर धीमे से बोली, "जो औरत अपने मर्द से हँसे-बोले नहीं, वह किस काम की? तुम अच्छी तरह देख-सुन, समझ-बूझकर कोई दूसरी ले आओ बाबू...।"

"तुमसे यही उम्मीद थी, चाची! कितनी पक्की सलाह है। यही बात मेरे दिमाग में आई है, मगर एक दिक्कत है। जब से बनवारी भाई गए हैं, मैं चिन्ता से मंरा जा रहा हूँ। इस परिवार को अधिक-से-अधिक कैसे सुख पहुँचाऊँ, यही में हमेशा सोचता रहता हूँ। मैं दूसरी शादी तो कर कै. मगर मैं दूसरी झंझटों में फँस जाऊँगा, फिर यहाँ के लिए कुछ नहीं कर पाऊँगा। तब स्वार्थ में फैस

जाऊँगा। यह दुनिया कितनी स्वार्थी है, तुम तो जानती ही हो चाची। फिर शिवजी ने मुझे रास्ता भी सुझा दिया है।"

"अच्छा कौन-सा रास्ता है, दामोदर बाबू !"

"साची. बता तो दें. मगर कसम खाओ कि तुम उसका गलत अर्थ नहीं लगाओगी...।"

"अरे. कैसी बात करते हो, बाबू, कसम मैं किसकी खाऊँ, सबकुछ तो मेरा लुट गया। अब कसम खाने को क्या रहा? हाँ. यह समझ लो कि इतना सब तुम करते हो तो तुम पर मुझे पूरा विश्वास है...।"

"अच्छा तो सुनो, चाची... क्या कहूँ... खैर सुन ही लो." और आगे खिसककर तथा अपना मुँह उसके और निकट ले जाकर उसने इस तरह

कहा, जैसे कोई राज की बात बता रहा हो. "मैं आज मन्दिर में जब पूजा-अर्चना के समय शिवजी के सामने अपनी दुर्दशा और चिन्ता बयान करके कोर्ड रास्ता सुझाने की विनती कर रहा था कि तुमसे कसम खाकर कहता हूँ, चाची, मेरे कानों में ठीक उसी समय एक स्नेह और आशीर्वाद से गाढ़ी आवाज आई। उस आवाज ने कहा, 'भक्त, बनवीक के परिवार की इतनी ही फिक्र है तो तुम्हें और किसी जगह दूसरी शादी करने की जरूरत नहीं है, सीधे बनवारी की माँ के पास चले जाओ, वह स्त्री देवी है, बड़ी दया और समझदारी है उसमें। उस देवी से कहो कि वह अपनी पतोह का हाथ तुम्हारे हाथ में दे दे। तुमको एक सुशील, बुद्धिमान स्त्री मिल जाएगी और तुम्हारे पास इतना रुपया-पैसा है, उससे उस परिवार का सुख के साथ गुजारा हो जाएगा। उस घर में स्वर्ग आ..."

बच्ची की आजी का मुँह अचानक बवा गया और आँखें बाहर निकल आई। स्वार्थ की खुशी श्री अथवा भगजोगिनी के इनकार की आशंकाजनित भय एवं घबराहट, उसका हृदय बैठने लगा, जैसे अन्दर की हवा पूरी तरह बाहर निकल गई हो। उसका मुँह फक पड़ गया। चेहरे पर पसीने की बूँदें दीया की रोशनी में भी नजर आने लगीं। स्वयं उसके दिमाग में भी एक बार ऐसा विचार आया था लेकिन भगजोगिनी के डर से उसने अपना मन दबा दिया।

मगर भगजोगिनी का वह क्या करे ? इतनी नाजुक उम्र है और आगे पहाड़-सी जिन्दगी। कैसे कटेंगे उसके दिन ? और अगर भगजोगिनी कहीं चली गई तो इस बुढ़ापे में उसका सहारा कौन होगा ? अब तो उसके मैके से भी कोई उसका हाल-चाल लेने नहीं आता और ससुराल की रिश्तेदारी, यानी उसके पति-बेटे की रिश्तेदारी-पट्टीदारी में कौन है जो सहारा देगा? क्या लात-जूता खाने के त्तिए लड़कियों के साथ जाकर रहे? यहाँ तो उसका अपना मकान है, अपनी बहू है, उसके पोता-पोती हैं, उनको देखकर, उनके सहारे जिन्दगी कट जाएगी, किसी की गुलामी तो नहीं सहनी पड़ेगी। उसकी बहू भी बड़ी नेक और समझदार है, हिम्मती है, अपने मौसा-मौसी के व्यवहार-बात से उसका दिल इतना फट गया है कि वह कहीं भी नहीं जाना चाहती। वह अपनी सन्तान को पाल-पोसकर पार-घाट लगाना चाहती है।

बच्ची की आजी ने किसी तरह अपने को सँभाला, फिर ऊपरी मन से रूखाई से किन्तु धीमी आवाज में बोली, "यह कैसे होगा, बाबू ? जाति-बिरादरी नहीं है? इज्जत-आबरू नहीं है ? टोला-मोहल्ला क्या कहेगा ? ऐसा कहीं होता है ?" अन्त में उसके होंठों में एक अनियन्त्रित ठूंठ-सी हँसी फिसल गई।

शो इन "चाची, मैंने शिवजी की इच्छा बताई। कोई ढिंढोरा पीटना थोड़े ही है ! भगवान की भी यही इच्छा है कि किसी को कुछ न बताया जाए और दोनों परिवारों में सुख का सागर लहराता रहे। मेरा दुर्भाग्य है कि पहले से ही अपना एक घर-परिवार है. उनके लिए मेरा फर्ज तो कुछ-न-कुछ होता ही है। उनको छोड़ दें और यहाँ धूमधाम से शादी कर लें तो बड़ा भभ्भड होगा। बवाल मचेगा। यह बड़ा जालिम शहर है चाची. लोग जीने न देंगे। मेरे पास बड़ा पैसा है चाची। बनवारी भाई को

मैंने खूब पैसा दिया। खैर, वह तो पार्टनर थे. मेरे भाई थे। मैं सबको खूब सुख दूँगा चाची, तुम्हारे लिए नाइन लगा दूँगा. रोज तुमको उबटन, तेल लगाएगी। दोनों जून खाना बनाने के लिए किसी गरीब होशियार खाना बनानेवाली को रख दूँगा। तुम्हारी बह को साड़ी-गहने से लाद दूँगा। यच्ची को पढ़ाकर शादी करूँगा. बच्चे को पढ़ाकर सरकारी नौकरी दिला दूँगा। सब चुपचाप, शान्ति से होगा. जाति-बिरादरी का सवाल नहीं उठेगा सबकी इज्जत बची रहेगी. तुम पछती हो कि ऐसा कहीं होता है ? तुम मुझसे बही हो, तुमने मुझसे अधिक दनिया देखी है. मैं तुम्हें क्या बता सकता है। तुम खुद ही जानती होगी कि ऐसा होता है या नहीं..."

इसके बाद यह अत्यधिक गम्भीर होकर उठ खड़ा हुआ और दसरी ओर देखते हुए कुछ सखाई से बोला "मैं अब चलता हैं। जो कुछ कहा है मैंने भगवान की प्रेरणा से ही मेरा इसमें निजी स्वार्थ क्या है? मैं तो तुम लोगों की सेवा करना चाहता है। मैं कल इसी समय आऊँगा. मेरी बात ठीक न लगे तो साफ कह देना, मुझे बुरा न लगेगा।"

यह अचानक अपने लम्बे शरीर से कमरे की नीची धरन को नापने की असफल कोशिश करते हुए कमरे से तेजी से बाहर निकल गया। उसे एक क्षण के लिए आँगन की ओर पैरों की आहट मालूम हुई। जैसे कोई जल्दी-जल्दी चल रहा हो। उसने सिर घुमाकर देखा, लेकिन कहीं कोई नहीं भावमार रसोई का दरवाजा बाहर से बन्द। बाहर का दरवाजा भी उसी तरह उठेंगाया हुआ था, जैसा यह कुछ देर पहले छोड़ गया था, जिसे फिर खोलकर वह बाहर निकलकर दरवाजे को फिर वैसे ही भेड़कर बरामदे की सीढ़ी से नीचे उतरकर बाईं ओर गली में अँधेरे में गायब हो गया।

सदा वह मन-ही-मन अत्यधिक प्रसन्न था, एक घाघ, बेईमान राजनीतिज्ञ की तरह जिसने अपनी चालें बहुत सँभालकर चली हों। वह गर्व से इतराकर चल रहा था। जिस क्षण बच्ची की आजी उसके प्रस्ताव का रूखाई से जवाब देती हुई होंठों के अन्दर ही हँस पड़ी थी, उसी समय वह समझ गया कि सारी परिस्थितियाँ अब जाकर उसकी मुट्ठी में आ गई हैं। खुशी अब उसके कितने निकट है! दिल से एक आह-सी निकल गई उसके। पहले ही दिन से, जब उसने भगजोगिनी को देखा, वह उसके लिए व्याकुल रहा है। वह उन सुन्दर स्त्रियों में है, जिसे देखकर कभी भूला नहीं जा सकता। उसके सरल, सच्चे, गम्भीर चेहरे में भी एक ऐसी कोमलता और तिरछी अदा है, जो किसी भी पुरुष को घायल कर दे। उसका शरीर कितना स्वस्थ और ठोस लेकिन अनन्त ऊर्जा से भरा हुआ है, जैसे वह निरन्तर प्यार पाने के लिए पैदा हुई हो। कितना अन्याय हुआ था उसके साथ... लेकिन अब वह उसको प्यार से भर देगा, उसे सह सबकुछ देगा, जो उसे कभी नहीं मिला और न उस नटुरे के साथ जीवन बिताने से उसे कभी मिल सकता था।

यह सड़क पर चला जा रहा था। अक्तूबर का महीना बीत रहा था, और हवा में कुछ ठंडक थी। लेकिन ऐसे ही रूमानी विचारों में उड़ान भरता हुआ वह कहाँ-कहाँ चक्कर लगाता रहा, उसे कुछ भी मालूम नहीं हुआ। सफलता की आशा में उसके शरीर में अजीब सनसनी हो रही थी। हृदय उछल रहा था। लेकिन इसी समय अचानक उसके मन में यह आशंका उठी कि यदि उसका सोचा हुआ न हुआ तो ? वह घबरा गया। उसने अपने मन के लगाम को रोका। नहीं, नहीं, इस तरह उतावला नहीं होना चाहिए। उसे

गम्भीर रहना चाहिए। सफलता के पहले खुश होनेवाले का तो भाग्य भी मजाक उड़ाता है, उल्टी चाल चल देता है। ईश्वर भी नाराज होता है। सब कोशिश भी बेकार जाती है। वह अब काफी गम्भीर होकर उस समय तक कोशिश करता रहेगा, जब तक जवानी और सुन्दरता की वह देवी उसके कदमों पर आकर गिर नहीं जाती।

इसीलिए जीवन-शतरंज की विसात पर उसने अपनी अगली कोशिश का एक जोरदार मोहरा फिर चल दिया यानी यह अगले दिन क्या अगले सात दिन तक बच्ची की आजी के पास नहीं गया ताकि पूरी तरह मजबूर होकर हवाई ऐंठ छोड़, परिपक्व कार्य-निर्णय लेने का उस पर आवश्यकता

से भी अधिक दबाव पड़ जाए। वह सातों दिन दिल के अन्दर उछलती खुशी, बेकरारी, दुःख तकलीफ को अपनी गम्भीरता से ढककर और गैर-जिम्मेदारी-भरा अपना व्यवहार त्यागकर सबसे सन्तुलित व्यवहार करता रहा, यहाँ तक कि आठवें दिन बच्ची की आजी दर से ही सफेद चादर ओढकर तीन बजे उस समय नजर आई जब वह कक्षा चार के छोटे बच्चों को मैदान में डिल करा रहा था। सबकुछ फौरन जानने के लिए इतना बेचैन हो गया कि उसकी जान हास्यास्पद तेजी से बढी आती बुढिया को एकदम देखती-फैली. छोटी आँखों में आकर बैठ गई और दिल ने जैसे धड़कना ही बन्द कर

दिया। उसका सोचना सचमुच सही था, यद्यपि विपरीत आशंकाएँ उसकी परेशानी और भी बढ़ा रही श्रीं। उस रात को दामोदर प्रसाद के जाने के बाद बच्ची की आजी ने प्रतिवाद और इनकार के गुस्से में चिल्लाने की कोशिश की थी लेकिन उसके मुँह से कोई भी आवाज नहीं निकली, बल्कि उसे यह महसूस कर अचम्मा हुआ कि उसके दिल में पहले से ही एक बड़ा ही मुद्दल और स्नेहिल सुकून आराम से पसरकर बिहँस रहा है। और दिमाग भी बहुत ही होशियारी से मनोवांछित प्रमाण और तर्क खोज-खोजकर तरतीब से सहेज रहा है।

हाँ, होता क्यों नहीं ? होता है, होता है ! आखिर एक गरीव औरत बेसहारा

होकर कहाँ जाए ? अकेली रहकर मजूरी भी करना चाहेगी तो कोई चैन से करने देगा ? मर्द की जाति तो चील-कौवों की जाति है, औरत की जवानी को तो वैसे ही समय-बेसमय नोचने-खसोटने को तैयार रहती है. अगर अकेली हुई तो उस गुड़ की तरफ तगड़े, कमजोर, अच्छे, बुरे सभी तरह के चींटे चल देते हैं। औरत की जवानी तो बाढ़ की तरह होती है। उस बाढ़ को तो वह खुद नहीं संभाल पाती, परिवारजन भी नहीं सँभाल पाते। पुरुष की बलशाली भुजाओं का बाँध ही उसको वश में कर सकता है। इसीलिए माँ-बाप, बेटी जवान होते ही डर जाते हैं और उसकी जल्दी-जल्दी शादी करके अपने घर से विदा कर देते हैं। जो गरीब माँ-बाप शादी नहीं कर पाते, वे बूढ़े-ठूढ़े से शादी कर देते हैं या किसी को बेच ही देते हैं। भगजोगिनी तो दो बच्चे होने पर भी अब भी लड़की की तरह लगती है, शरीर जस-का-तस है, उसको क्या वह खुद सँभाल सकती है ?

*और एक विचार से वह काफी डर गई। अगर आज ही भगजोगिनी किसी दूसरे मर्द का हाथ पकड़कर इस घर से चली जाए, तो वह क्या कर सकती है ? तब तो उसके सड़क पर घूम-घूमकर भीख माँगने की नौबत आ जाएगी। कौन पूछेगा उसे? अरे, इस मामले में एक दिन की भी देर करने की जरूरत नहीं है। दामोदर जैसा मनई कहाँ मिलेगा ?

दामोदर तो उसके पति के गाँव का है, भगजोगिनी से उम्र में जरूर बड़ा है, फिर भी लम्बा है, टाँठ है। खूब खेत-जमीन है, बाप भी उसके लिए खूब पैसा छोड़ गया है। खुद स्कूल का मास्टर है, जाना-पहचाना है, संकट में काम आया है, आ रहा है। ऐसा नेक मर्द भगजोगिनी का हाथ थाम ते, तो क्या बुरा है ! सबको सुख देगा। सबका कष्ट दूर हो जाएगा। कितनी गरीब औरतें किसी धनी-मानी रईस के सहारे अपनी जिन्दगी सुख से नहीं काट देती हैं ? इसमें हेठी क्या है ? धनी लोग अपनी विधवा लड़कियों को बनारस में छोड़ आते हैं वह क्या अच्छा है ? धनी औरतें विधवा होने या मर्द के छोड़ने पर क्या घर के नौकर-चाकर या पास-पड़ोस से अपने मन की प्यास नहीं बुझातीं, भले ही ऊपर से वह सती-सावित्री बनें ?

इन तर्कों से खुश होकर वह कमरे से बाहर निकल आई, यह देखने के लिए कि इस समय भगजोगिनी क्या कर रही है ? लेकिन आँगन के अँधेरे

में छोटे-से चबूतरे पर बैठकर भगजोगिनी बिलख-बिलखकर रो रही थी। वस्तुतः उसने दामोदर की छिपकर सभी बातें सुन ली थीं और अब

सास को देखकर वह हाथ से छाती पीट-पीटकर चीखकर बोली: "आप उस भेडिए के हाथ ममुझे बेच देना चाहती हैं अपने स्वारथ के लिए? जिस घर में मैंने

इतना सुख किया. अपने भोले-भाले पति का इतना प्यार पाया. उसी घर में एक धोखेबाज की रखेल बनकर रहेंगी? मैं जहर खा लेंगी. अपने दोनों बच्चों के साथ कुएँ-तालाब में इय मरूँगी, उस बेईमान के साथ नहीं रहूँगी। मैं जानती हैं, शुरू से ही उसकी नजर मुझ पर है। इसी ने मेरे पति को सरापा है. इसी का सराप उन पर पड़ा। इसी ने उन्हें मार डाला. जिससे मुझ पर हाथ डाल सके। आप जाइए यहाँ से, मुझसे कुछ न कहिए..."

भगजोगिनी की सास का चेहरा भय से फक पड़ गया. जिसके शेड की भिन्नता ऊपर आकाश में उगे तारों की चमक से प्रभावित अन्धकार में स्पष्ट पहचानी जा सकती है। यह तो कुछ देर से अपने अन्दर अत्यधिक स्वादिष्ट ख्याली पुलाव पका रही थी, लेकिन लगता है यह जिद्दी औरत सबकुछ चौपट कर देगी। वह स्वयं स्वाभिमानी थी, यदि अपने पति के मरने के बाद यह खुद इसी तरह बेसहारा हो जाती तो क्या किसी दूसरे मर्द का हाथ थाम लेती ? इतना सोचकर वह और घबरा गई, क्योंकि उसके पास इसका कोई जवाब नहीं था और तब उसके दिमाग में पहली बार यह सवाल उठा कि एक औरत क्या अपना शरीर किसी ताकतवर मर्द को सौंपकर ही अपने को बचा सकती है ? लेकिन कब तक ? औरत क्या सिर्फ शरीर है? वह अपने बूते पर अपने शरीर और मन की रक्षा नहीं कर सकती ?

उसके पास इन प्रश्नों का जवाब नहीं था। चारों ओर भय और आतंक से भरा एक निरुपाय अन्धकार मिला। वह रुआँसी हो गई। वह आखिर करे भी तो क्या करे ? भगजोगिनी की सिसकियों के बीच में उसका दिमाग

तलाशता रहा, लेकिन उसे और सभी रास्ते अनिश्चिता से भरे, खतरनाक और विनाशकारी लगे। जब वह थक गई तो स्वयं धीरे-से चबूतरे पर बैठ गई और भगजोगिनी का सिर अपनी गोद में लेकर उसके बालों को सहलाने लगी। और कुछ देर बाद प्यार से बोली :

"दुल्हन, मेरी बच्ची, तुम लोगों के सिवाय अब मेरा कौन है? मैं जो कुछ भी कहूँगी, तुम लोगों के भले के लिए ही। मुझे अब कितने दिन जिन्दा रहना है? तुमने सबकुछ सुन ही लिया है तो क्या तुम कह सकती हो कि मैंने कोई वचन दिया है? तुमसे भी क्या मैंने कभी कुछ कहा है ? ऐसा तो खयाल ही नहीं आता मुझे। हाँ, आज दामोदर ने मुझे अपना दुखड़ा सुनाया तो मुझे बड़ी दया आई उस पर। बीवी का तो कोई सुख नहीं मिला उसे। न वह उसे ठीक से खाना देती है और न उससे ठीक से हँसती-बोलती है। बड़ा दुःखी रहता है। वह अपने को बड़ा अभागा समझता है। बनवारी बाबू तो मेरे लड़के थे, लेकिन मैं कैसे झूठ कहूँ कि दामोदर ने उनको मार डाला। हाथ में उनके जिनगी की लकीर थी ही नहीं तो अधिक जिन्दा कैसे रहते मेरे बाबू। दामोदर ने तो बीमारी में मदद भी की थी और आज जो कुछ कर रहा है, वैसा अपना सगा भी कोई क्या करेगा ? स्वारथ के लिए भी क्या कोई इतना कर सकता है? मैं तो यही समझती हूँ, मुँह से जो कुछ भी बोल दे, भीतर से दिल का बहुत कोमल है। वह अपना फर्ज समझ यह सब कर रहा है..."

कुछ देर वह चुप होकर भगजोगिनी की प्रतिक्रिया भाँपने-परखने लगी, जिसका बिलखना-सिसकना बन्द हो गया था। उसने उत्साहित होकर आगे कहा :

"तुम कहती हो कि उसकी पहले से ही तुम पर नजर थी। मैं इसे नजर नहीं कहूँगी। नजर तो तब होगी, जब वह तुम्हारे साथ कोई बुराई करता, हमारे बाबू से धोखा करता, उनको फँसाने, गिराने के लिए कोई जाल रचता। हाँ, यह कह सकती हूँ कि वह तुम्हारी खूबसूरती को पसन्द करता था। खूबसूरत तो तुम हो ही, देव ने तुम्हारा मन भी बड़ा खूबसूरत बनाया है। मर्द हो या औरत, कोई भी तुम्हें पसन्द करेगा। इसी वजह से मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ, तुम मेरे बच्चे की अमानत भी हो, मैं तुम्हें एक क्षण

के लिए भी अपनी आँखों से दूर नहीं करना चाहती। खूबसूरती कौन नहीं पसन्द करता। हाँ, औरत के मामले में मर्द थोड़ा दिलफेंक होता है। वह हर जवान और खूबसूरत औरत को चाहने लगता है। यह स्वभाव है उसका। इस स्वभाव को हर औरत

अंकुश लगाती है। जानती -पहचानती है। जो अच्छी औरत होती है, वह बुद्धि से साफ, ईमानदार व्यवहार से मर्द पर

"अच्छा मर्द वह है जो औरत के अंकुश को पहचानकर अपने को सुधारता है, गलत रास्ते करता रहे, अगर वह औरत से बदसलूकी नहीं करता तो वह चाहता रहे, इसमें किसी का नुकसान पर आगे बढ़ने से अपने को रोकता है। भले ही आगे चलकर यह मर्द उस औरत को मन में पसन्द घोडे ही है। जो तुम कह रही हो अगर वह सही है, तो मेरा इतना ही कहना है कि दामोदर अपनी चाह को मन में दबाए रहा, उसने तुम लोगों का कोई नुकसान नहीं किया। वह घर के अन्दर बीवी से दुःख पाता रहा, तम्हारी चाह में गलता-पचता रहा, मगर जबान से कुछ नहीं कहा। और आज श्री उसकी चाह बनी हुई है. वह चाह वरदान बन गई है। शायद जमी चाह के कारण इस परिवार पर वह अपना सबकुछ न्यौछावर करना चाहता है। मेरे बाबू तो चले गए, वह तो आएँगे नहीं. हाँ. तुम्हें मैं सुखी जरूर देखना चाहती हैं, तुम्हारी उम्र कुछ भी नहीं, किसी ऐरे-गैरे के चक्कर में पड़ोगी तो पता नहीं वह तुम्हारे साथ कैसा सलूक करे। जाति-बिरादरी के सभी तो दरिद्र हैं, कोई तुम्हें क्या देगा? तुम्हारा सारा रस चूसकर तुम्हें सिटठी की तरह छोडकर किसी दूसरी के चक्कर में चल देगा। यह मकान भी तुम्हें नहीं मिलेगा। जब तक मैं जिन्दा हूँ इन बच्चों को भी तुम नहीं ले जा सकती

मकान के असली मालिक यही बच्चे हैं इसीलिए मेरा मन कहता है कि दामोदर से अच्छा..." अकस्मात भगजोगिनी अपनी सास की गोद से उठकर गला फाड़कर चीख पड़ी :

"बार-बार कहती हूँ मैं किसी की रखैल नहीं बनूँगी। नहीं बनूँगी, नहीं बनूँगी, नहीं बनूँगी..." बच्ची की आजी सिर से पाँव तक काँप-थरथरा गई। उसने छाती पर हाथ रखकर सायें-सायँ आवाज में बोली:

"आहि ए दादा, जोर से न चिल्लाओ। पास-पड़ोस के हर घर में तो दुश्मन बैठे हैं, जो हमेशा अपने कान उघारे बैठे रहते हैं कि हँसी-हँसारत की कोई बात ऊपर से टपक जाए। अभी तो न कोई बात न चीत। यह तो एक सुझाव आया है, ऐसी कोई बात अगर बनेगी तो इसी शर्त पर कि हिन्दू समाज के किसी विधि-नियम से शादी हो। यह मंजूर न हो तो जाएँ लोग अपना मुँह लेकर अपने घर।"

तीसरे दिन भी जब दामोदर नहीं आया तो बच्ची की आजी बड़ी परेशान हुई। घर में दो-तीन दिन का ही राशन था। वह हर क्षण दामोदर का इन्तजार करती। कोई खटका या आहट होती तो लगता कि दामोदर आ गया। दिल तेजी से धड़कने लगता। दामोदर एक हफ्ते के राशन-पानी के लिए पैसा दे जाता, वह उससे घर का काम चलाती। समस्या तो यह थी कई दुकानों पर अब भी उघार था और बनवारी की मृत्यु के बाद अब कोई उधार देता भी नहीं था। दूध वाले ने भी मना कर दिया था।

भगजोगिनी भी अब भी रोने बैठ जाती। उसकी सास भी रोज उसके पास बैठकर प्यार से देर तक समझाती। रोज तंगी और बढ़ जाती और रोज भगजोगिनी की रुलाई कुछ कम हो जाती। सातवें दिन सामने मुख्तारिन के घर से कुछ आटा उधार लेकर किसी तरह काम चलाया गया। बच्चे दिन-भर भूख से रोते रहे। इस दिन भी बच्ची की आजी ने भगजोगिनी को समझाया था।

भगजोगिनी इस दिन एकदम नहीं रोई। उसने बड़ी-बड़ी आँखों से अपनी सास की उत्सुक आँखों में देखा। उन आँखों में संवाद था और सखे बन्द होंठों की अस्पष्ट क्षीण हरकत में इच्छित शब्द थे।

तब आठवें दिन वह अनेक आशकांओं और चिन्ताओं से भरी हई दामोदर से मिलने उसके स्कूल में गई थी। प्रिजर्ट लेग-टायर्स रेली इस फोर फॉर

तब यह सिर झुकाकर और फर्ती से पानी काटनेवाले किसी कुशल तैराक की तरह दोनों हाथों को उसने डिल करते बच्चों की छुट्टी कर दी. जो हल्ला करते हुए अपनी कक्षा की ओर दौड़ गए। भौजते हुए बच्ची की आजी की ओर बढ़ गया। दोनों जय घास मैदान की बढ़ती पसरती छाया में बैठ गए तो दामोदर ने दूसरी ओर देखते हुए कृत्रिम रूखाई से पूछा :

"क्या हाल है, चाची ?" बच्ची की आजी ने उसे लाचार उत्सुकता से देखा "भैया, तुम तो दसरे दिन ही आने को कह गए थे। तुम्हारी राह देखते-देखते तो मेरी आँखें पत्थर हो गईं। तुमने ही अपनी इच्छा बताई थी, तुम्हारी खुशी के लिए मैंने सभी काम बना दिया तो तुम्हीं गायब हो गए। मर्द का काम है यह थोड़े !"

होंठों में हँसते हुए वह अनजान की तरह बोला, "कैसा काम, चाची? मुझे तो कोई काम याद ही नहीं आ रहा है। कुछ कहा था. क्या मैंने ? साफ-साफ क्यों नहीं कहीं? मुझसे किस बात का संकोच ? मैं तो घर का आदमी हूँ...।"

असली बात तो वह पहले ही समझ गया था. जब उसने निकट आकर उसका झुका हुआ दयनीय चेहरा देखा। लेकिन वह उसी के मुँह से सबकुछ साफ-साफ सुनकर उसे और भी दयनीय

बनाना चाहता था। बच्ची की आजी ने उसकी ओर बिना देखे अपने से लडती-सी आवाज में कहा, "क्या बाबू क्या तुम इतनी जल्दी भूल गए ? उधर भगजोगिनी कब से तुम्हारे लिए आँखें बिछाए बैठी है..."

वह आगे कुछ न कह सकी जैसे गले में कुछ अटक गया हो। किसी शर्म और अपमान की भावना से, जो अब भी उसमें बाकी थी, उसका रसहीन चेहरा धूल-धूसरित ताँबे के किसी टुकड़े की तरह लाल हो गया। दामोदर का दिल खुशी से उछल गया। ऐसे उत्तर की तो उसने कल्पना भी नहीं की

थी। उसका चेहरा चमकने लगा और आँखें भी। उसने आगे झुककर बच्ची की आजी का पैर छू लिया और चहकती आवाज से बोला

"शिवजी ने ठीक ही कहा था कि तुम देवी हो। तुमने मेरा सभी दुःख हर लिया, चाची ! तुम सबकी मैं सेवा करना चाहता था, वह तमन्ना मेरी पूरी हुई। जो भी दोष हो मुझमें उसके लिए क्षमा करो, चाची, मुझे।"

"हाँ, एक बात है। भगजोगिनी रखैल बनकर नहीं रहेगी। किसी विधि-नियम से शादी करनी पड़ेगी...।"

"यह क्या कहती हो चाची? यह कैसे हो सकता है? भभ्भड़ से तो सारा खेल ही बिगड़ जाएगा।" दामोदर का चेहरा सहसा लटक गया था।

"सुना है, हिन्दू समाज में कई तरह की शादियाँ होती हैं। तुम भगजोगिनी से गन्धर विवाह कर लो...।"

"गन्धर विवाह ? यह कैसा विवाह है, चाची ?" दामोदर की छोटी आँखें आगे निकलकर बटन की तरह चमकने लगीं

"जैसे शकुन्तला ने एक राजा से किया था। राजा का नाम नहीं याद आ रहा है।"

"क्या दुष्यन्त नाम है ?"

"हाँ-हाँ, वही। गन्धर विवाह में सबकुछ चुपचाप हो जाता है, दुनिया को नहीं मालूम होता-दूल्हा-दुल्हन एक-दूसरे को वचन देते हैं। तुम दोनों एक-दूसरे से कसम खा लेना। तुम भगजोगिनी को नई साड़ी और गहने पहनने को देना और उसकी माँग में सिन्दूर लगा देना। फिर

तुम दोनों अपनी नई दुनिया हँसी-खुशी सँभालना।" दामोदर हैरत से उसे कुछ देर तक देखता रहा। फिर सोच-सोचकर धीमे स्वर में कहा उसने

"घाची. तुम्हारा मतलब गन्धर्व विवाह से है। वाह चाची, तुमने तो मुझे दुष्यन्त बना दिया। सचमुच तुम्हारा सोचना ठीक है, मैं दुष्यन्त से किसी माने में कम नहीं हैं। मैं दुष्यन्त की तरह हिम्मती और खूबसूरत मर्द हैं और भगजोगिनी भी शकुन्तला की तरह सुन्दर, जवान और कोमल है। हाँ, गन्धर्व विवाह में सिन्दूर नहीं लगाया जाता। तब तो भम्भड़ हो जाएगा। साडी-बाड़ी तो ठीक है; लेकिन गहना में अभी अँगूठी ही। मैं उसे अँगूठी पहनाऊँगा, जैसे दुष्यन्त ने शकुन्तला को पहनाया था। बाद में सबकुछ होगा, जो भगजोगिनी चाहेगी। ठीक है न, चाची! अच्छा मैं अब चलता हूँ। अभी कुछ देर तक स्कूल चलेगा। आज शाम को या कल किसी समय घर आकर दूसरी बातें भी

तय करूँगा।" जब वह घूमकर जाने लगा तो बच्ची की आजी ने उत्सुक निगाहों से उसे देखते हुए अत्यन्त गिडगिडाहट-भरी आवाज में कहा:

"अरे, बाबू, घर में कुछ नहीं है, सवेरे से ही बच्चे भूख-भूख चिल्ला रहे हैं।"

"अरे..." दामोदर का चेहरा गम्भीर हो गया। उसने जेब से दस रुपए के दो नोट निकालकर दिए। फिर वह घूमकर स्कूल की ओर चल दिया।

27

भगजोगिनी का आत्म-समर्पण आसानी से नहीं हुआ। उसकी सास लगातार उसके पीछे पड़ी रही, उसे हर तरीके से समझाती तथा अनेक उदाहरणों के साथ डराती रही और अन्त में एक बड़े झूठ के हथियार से उसके विरोध-किले पर ऐसा जबरदस्त प्रहार किया उसने कि भगजोगिनी टूट-विखर गई। उसने अपनी पतोह से फुसफुसाई आवाज में कहा था

"तुमसे आज बता रही हूँ। हमारे बाबू ने हमसे रूठकर जाने के एक दिन पहले मुझे पास बुलाकर कहा था, 'माई, भगजोगिनी से कहना वह दामोदर भाई का हाथ पकड़ ले... मेरी जीभ गले मैं झूठ कह रही होऊँ...'"

यह आखिरी वाक्य था, जिसने भगजोगिनी को स्वाभिमान भावना और दामोदर-विरोधी दुर्भावना से खाली कर दिया। वह उस समय तो कुछ नहीं

बोली, लेकिन दो घंटे बाद उसने अपनी सास से बेजान स्वर में कहा :

"अम्माजी, आप जो अच्छा समझें वही करें..."

भगजोगिनी की सास अपनी कायरता और झूठ की जीत से अपने मन की गहराई में कतई खुश नहीं हुई, लेकिन बाहर की दुनिया में निरुपाय दरिद्रता, भाग्य की मार और बेसहारापन से इस हद तक घबरा गई थी कि एक बेहद हिम्मती और स्वाभिमानी पुरुष की पत्नी होने का गौरव भूलकर वह क्रूर परिस्थितियों के समक्ष दंडवत हो गई। लेकिन शायद यह उसकी ग्लानि ही थी कि भगजोगिनी की सहमति के बाद वह एकान्त में जाकर जोर-जोर से अपने गाल पर दो थप्पड़ जमाकर दाँत पीसती हुई बोली, "अरे हरामजादी ! अरे हरामजादी !!"

दामोदर प्रसाद अपनी खुशी एकदम नजदीक देखकर गम्भीर हो गया था। उसे कभी अपने ऊपर गर्व होता। गन्धर्व विवाह की कल्पना ने तो उसे बेहद बेचैन कर दिया। तब उसे लगता कि वह राजा दुष्यन्त से किसी अर्थ में भी कम नहीं है। लेकिन वह अपने कदम फूंक-फूंककर रख रहा था कि कहीं उसकी बेवकूफी उसका खेल ही न बिगाड़ दे। अपने घर में भी यह बहुत सन्तुलित और स्वाभाविक व्यवहार कर रहा था। घर में ही अब वह अधिक समय व्यतीत करता। अपनी पत्नी के पास कुछ देर तक बैठने की कोशिश करता, यद्यपि वह सदा पूजा और भक्ति के मूड में ही रहती।

एक दिन उसने एकान्त में चापलूसी द्वारा भ्रम उत्पन्न करने के लिए अपनी पत्नी को अपने पास खींचने की कोशिश की तो यह गुल्ली की तरह छटककर अलग हो गई और भी सिकोड तया जीभ काटकर धीमे स्वर में बोली:

"यह क्या करते हैं? देखते नहीं ठाकुरजी जगे हैं?"

दामोदर प्रसाद गम्भीर हो गया। एक क्षणिक नाराजी से उसका चेहरा बिगड़ गया। फिर एक व्यंग्य-मुस्कुराहट के साथ बोला, "क्या बात है जब

मैं घर में रहता है तो तुम्हारे ठाकुरजी जागे ही रहते हैं ?"

"हाय दादा, ऐसी भाषा मुँह से न निकालिए। मैं कौन होती हैं उन्हें सुलाने और जगानेवाली ? वे अपनी नींद सोते हैं. अपनी नींद जागते हैं। आप ही समय पर घर नहीं रहते। शाम से ही निकाल जाते हैं और बारह-एक तक घर लौटते हैं। आते ही पीठ उधर करके सो जाते हैं। खैर छोडिए इन बातों को। बड़ी लड़की तेरह वर्ष की हो रही है। हाय राम, कितनी बड़ी अभी से लगती है। आपको अब साधु-सन्त की तरह रहना चाहिए। बच्चियों पर ध्यान देना चाहिए. बडी के लिए अभी से घर-यर देखना चाहिए..."

"कैसी बात कर रही हो? तुम्हारी वजह से तो मैं न मालूम कब से साधु-सन्त की तरह रह रहा हूँ। तुमने इस घर को सचमुच किसी साधु का आश्रम बना दिया है। लेकिन मेरे जीवन को नर्क"

"अब अधिक मुझसे न कहलाइए। मुझे सबकुछ मालूम है। आपने शुरू से ही जो गुलछरें उड़ाए हैं, वह में खूब जानती हूँ। मैं ही क्या, मोहल्ला-टोला सभी जानते हैं। आपकी आदतों से बाबूजी, हाँ आपके पिताजी, कितना चिन्तित रहते थे। यह तो कहिए कि वह एक नामी वकील थे, पैसा खूब कमाते थे, गाँव में खूब जगह-जमीन थी, उन्होंने कोशिश करके आपकी गेमटीचरी स्कूल में लगा दी, सिर्फ इसलिए कि आपका समय कटेगा, इधर-उधर नहीं घूमेंगे। मगर वहाँ भी..."

"खबरदार, जबान सँभालकर बोलो। मनहूस कहीं की। उलटे चोर कोतवाल को डाँटे..." दामोदर प्रसाद को न चाहते हुए भी गुस्सा आ गया।

दामोदर प्रसाद ने चिल्लाकर उसकी आवाज को दबाने की कोशिश की, मगर उसकी पत्नी पर उसकी बात का कुछ असर नहीं हुआ बल्कि वह कुछ सिर झुकाकर सैंधे हुए गुस्से की मध्यम आवाज में लगातार प्रहार करने लगी :

"ठीक है, आप सुनना चाहते हैं तो सुनिए। मैं आज मानूँगी नहीं। जिन्दगी-भर आपका बड़ा सहा। मैं सोचती थी कि औरत जात हूँ, चुप रहूँगी तो आप खुद शर्म करके सँभल जाएँगे। आप समझ लीजिए कि आज मेरी जो

हालत है, परिवार और समाज से कटकर मैं पुजारिन की जो जिन्दगी बिता रही हूँ, वह सब आपकी ही वजह से। नहीं तो, जिस स्त्री को पति का प्यार मिला हो, जिसके बच्चे समझदार हों, उसे पूजा-पाठ की क्या जरूरत है। एक स्त्री के लिए प्रेमी पति और प्यारे बच्चों की सेवा तो सबसे बड़ी पूजा है। आपके कुटेवों ने, आपकी कठोरता ने मेरे सभी अरमान नष्ट कर दिए हैं, मैं अपने को भूलने के लिए ही कंठी-माला पहन, पुजारिन बनकर चौबीसों घंटे घंटी टुनटुनाती रहती हूँ। यह तो भगवान की भारी कृपा है, उन्होंने मुझे बड़ी ही बुद्धिमान और समझदार बेटियाँ दी हैं, उन्हीं के लिए मैं जिन्दा हूँ..." वह आँचल से अपने आँसू पोंछने लगी।

"बकवास बन्द करो... बुलका चुआकर प्रपंच न करो। इस तरह का तुम्हारा नाटक बहुत देख चुका हूँ।

"आपको आज मेरी बात सुननी पड़ेगी। हो सकता है, आप मन-ही-मन अपने को बहुत ही पाक-साफ और सचरित्र समझते हों। इसलिए कि घर में आपको कभी किसी ने कुछ कहा नहीं। माँ-बाप के दुलरुआ रहे और बीवी भी सीधी-सादी, बेजबान मिली। मेरी बात ध्यान से सुनिएगा।

ये गन्दी बातें नहीं हैं जो मैं आपको सुनाने जा रही हूँ। मैं आपका अपमान भी नहीं करना चाहती। सही बातें तो सही बातें होती हैं, कड़वी जरूर लगेंगी आपको, मगर उनको सुनकर आप अब भी महसूस कर लें कि आपने गलती की है. और आप लगातार गलतियाँ करते जा रहे हैं तो आप जसर अपने को सुधार लेंगे। यह आपके परिवार के लिए, बाल-बच्चों के लिए बहुत अच्छी बात होगी

"जब मैं शादी करके आई तो मेरी उम्र तेरह वर्ष से अधिक नहीं थी। वृद्धि, समझ कुछ भी नहीं। बचपन से ही आपका साथ-संग अच्छा नहीं था। आप बाहर ही सोते थे. अन्दर आते ही न थे। आपके माँ-बाप बड़े परेशान थे। एक दिन मेरी सास रात में मेरे पास आकर बैठ गई। वह धीरे-धीरे मुझे समझाने लगीं

"ए दुल्हन, घबराना नहीं। शादी के बाद मेरे बबुआ तुम्हारे कमरे में नहीं आते, तुमसे हँसते-बोलते नहीं. इससे मुझे भी दुःख है। तुम्हारे बाबूजी बड़े चिन्तित हैं। अकेला लड़का है, साथ-संग ठीक नहीं है। बड़ा दरिद्र शहर है यह। यहाँ के कई मर्द घर में सुन्दर बीवियाँ रहने पर भी छोटे-छोटे लडकों के पीछे पड़े रहते हैं। मासूम लड़कों को ये बरबाद कर देते हैं। वे अपने को रईस कहते हैं, नाटक-वाटक करते हैं, गवनई-बजनई करते हैं मुँहझौंसे। मेरे बाबू उन्हीं के चक्कर में पड़ गए हैं। ये कमक्कल हैं, तुम्हारे बाबूजी सब ठीक कर देंगे एक दिन। बहुत नाराज हैं तुम्हारे बाबूजी। शादी हो ही गई है, कोई नौकरी दिला देंगे तुम्हारे बाबूजी तो सब ठीक हो जाज है इसलिए बता रही हूँ कि तुम सावधान रहो, मौका मिलने पर अपने पति को समझाओ। क्या बताऊँ, एक लड़का है-नाम है मिठाई... बड़ी कच्ची उम्र है उसकी। इस लड़के का साथ छूट जाए किसी तरह 15

दामोदर सहसा डर गया। उसने अपनी पत्नी का ऐसा रूप कभी नहीं देखा था। अब तक प्रेम का और बाद में क्रोध का नाटक इसलिए किया था उसने ताकि उस पर अपना रोब डाल सके कि वह तो उसके प्रेम के लिए परेशान है, लेकिन वही उसकी उपेक्षा कर रही है! उसकी उम्मीद थी कि पत्नी जवाब में पहले की तरह उदासीन भक्तिन का व्यवहार करेगी, तब वह पूरी तरह निश्चिन्त हो जाएगा, सन्देह से परे, एकदम छुट्टा। यह अपराधी मन की तसल्ली के लिए तिनका का सहारा ही था, लेकिन पता नहीं कहाँ उससे भूल हो गई कि वह भी जाता रहा। उसकी चालाकी काम न आई और जब उसे यह खयाल आया कि उसकी पत्नी दब्बू नहीं है, और जीवन से कटी पुजारिन भी नहीं है, जैसा उसने सोचा था, बल्कि तन-मन की सताई हुई और किए गए अन्याय और अत्याचार के प्रति जागरूक है, तो उसका भय और अपराध-भाव और बढ़ गया।

"भाई, तुम बेकार में बात का बतंगड़ बना रही हो। अब छोड़ो उन बातों को। जो बीत गया सो बीत गया, अब गड़ा मुर्दा उखाड़ने से कोई फायदा नहीं। मैं बहुत बदल गया हूँ। अनजाने में मुझसे कुछ गलतियाँ हो गई थीं, उनसे अब मैं बहुत दूर हो गया हूँ। हाँ, रात में थोड़ा घूमने की आदत जरूर है।

और "मगर अब मैं घर से सीधे मन्दिर जाता हूँ। पूजा-पाठ, भक्ति में मुझे भी आनन्द आने लगा है। मैं नहीं जानता, हो सकता है, मुझ पर तुम्हारा ही असर पड़ा हो। देर रात तक मन्दिर में कीर्तन आरती में शामिल रहता हूँ, विभोर हो जाता हूँ, सुध-बुध नहीं रहती। फिर मन्दिर से निकलकर सरयू की तरफ चला जाता है. वहाँ नदी के किनारे बैठकर साफ-पवित्र हवा में प्रभ की याद करता रहता हूँ कुछ देर तक । अजीब-अजीब खयाल आते हैं। प्रभु की कृपा से कभी-कभी विचार आता है कि किस तरह अपने घर को स्वर्ग बना दूँ..."

क्या करते हैं। कभी-कभी क्या, वर्षों मैं रात-रात भर आपके लिए तड़पती रही. चिन्ता में घुलती-पचती "आप मुझे सफाई क्यों देते हैं ? अब मैंने सोचना बन्द कर दिया है कि आप कहाँ जाते हैं.

रही। कभी क्रोध आता, प्रतिशोध से जलने लगती और कभी-कभी गुस्से में सोचती कि मैं पी मोहल्ले-टोले के किसी मर्द को घर में बुलाया लिया करूँ। तब मैं सोचती. इसमें बुरा क्या है, जब मर्द घर में कुछ मिनटों की तफरीह के लिए जवान बीवी के शरीर को नोचने-बकोटने के बाद बाकी समय लौंडों और पतरियों के चक्कर लगाता रहे तो क्या उसकी बीवी ऐसा नहीं कर सकती ? नहीं. मुझे रोकिए नहीं, कहने दीजिए। मेरे दिल में कब से ये बातें जमी हुई हैं। कई बार सोचती थी कि कह दूँ, पर हिम्मत नहीं हई। आप शायद सोचते हैं कि मुझे कुछ भी नहीं मालूम में पतिव्रता, पुजारिन हैं. मर्द जो कुछ भी करे लेकिन दो जून का खाना मिलता रहे तो मैं खुश रहेंगी। ऐसा नहीं है. ऐसा नहीं है। अपनी लडकियों की वजह से जिन्दा हैं. नहीं तो कभी जहर खाकर मर गई होती। हाय, मेरा जीवन डर और दहशत में ही बीत गया... मुझे तिल-तिल सताया गया मैं उजड़ गई. मैं उजड़ गई"

यह अपने को सँभाल न सकी और अपनी छाती पर जोर से हाथ मारकर बिलखने लगी। दामोदर प्रसाद के तो होश फाख्ता हो गए। चेहरा काला पड़ गया। कुछ क्षणों तक तो उसके मुँह से आवाज नहीं निकली। इच्छा

हुई कि फौरन घर से भाग चले और सड़कों पर सरपट दौड़ लगाते हुए किसी जंगल-यंगल में घुसकर अपने को छिपा ले। लेकिन यह भी खयाल विद्युत की तरह कौंधकर गायब हो गया। अन्त में उसकी धीमी बकार फूटी :

"अरे भाई, जोर से न चिल्लाओ। तुम्हारी आवाज बगल में जा रही है। चलो, माफी माँग लेता हूँ... अब तो चुप रहो..."

दामोदर प्रसाद ने डर से सकपकाकर अपने चारों ओर देखा। उठकर बाहर के दरवाजे के पास गया यह देखने के लिए कि लड़कियाँ स्कूल से तो नहीं आ गई हैं अथवा कोई छिपकर उसकी बात तो नहीं सुन रहा है। जब वह वापस आकर बैठा तो उसकी पत्नी ने अपने को काफी नियन्त्रित कर लिया था। उसने हल्की सिसकी से भरी लड़खड़ाती धीमी आवाज में कहा :

हाँ, मुझे सबकुछ मालूम है। अम्माजी ने शुरू में ही मुझे सबकुछ बता दिया था। अम्माजी जैसी सास तो भगवान सबको दे। वे जल्दी ही चली गईं, मैं उनकी बहुत सेवा भी न कर पाई। बाबूजी भी देवता थे। वह जब तक रहीं, पुलिस-सिपाही, नककटा नज़ीर, अइगा पांडे, दो छोकरे मिठाई और शिवदर्शन को गालियाँ देती रहीं, सरापती रहीं। इन सबों ने आपकी आदतें बिगाड़ दी थीं। बाबूजी काफी बूढ़े हो गए थे, उनकी बातों का आप पर कोई असर नहीं था। आप माँ-बाप दोनों को झिड़क देते थे, आँगन में खड़े होकर उन पर चिल्लाते भी थे। आप उनके साथ लड़कों के किसी-न-किसी गिरोह में शामिल रहते, मार-पीट करते, कभी मार भी खा जाते।

"कहते शर्म आती है, मगर अम्माजी ने ही मुझसे कहा था रोते हुए, 'ए दुल्हन, मेरा इकलौता लड़का है तो क्या, इसे नज़ीरवा और अइगवा खा गए। पता नहीं कैसा सिपाही है नज़ीरवा, उम्र भी अधिक हो गई है इसकी, लड़कों की हर लड़ाई में शामिल होता है। इसकी कहीं बदली भी नहीं होती, इसके अफसर भी इसको छुट्टा साँड़ की तरह छोड़े रहते हैं। अइगवा भी परले नम्बर का बदमाश है। इन सबों ने मेरे लाल को बड़ी खराब आदतें सिखा दी हैं। पता नहीं, हरामजादे क्या-क्या मँगाते थे मरकिलीने।

घर में ताखों पर की कुप्पियाँ गायब हो जाती थीं। हमने तो छाती पीट ली, ए दुल्हन ! तुम्हारे बाबूजी ढह गए हैं। ये पता नहीं कहाँ-कहाँ घुमाते हैं मेरे लाल को। तुमसे इसलिए कह रही हूँ कि तुम उसकी बीवी हो, तुम उसको हिम्मत और प्यार से समझा सकती हो। मर्द जात को क्या कहूँ, उसकी आदतें खराब हो जाती हैं तो उसे किसी बात का हब-खब नहीं रहता। दुनिया-भर की बहानेबाजी करता है। बीवी क्या करे, वह सहती है, उसे बाल-बच्चों को इज्जत से पालना-पोसना पड़ता है। मुझे माफ करो, में तुम्हें सुख क्या दूँगी, यह सब सुना करके तुम्हें दुःखी कर रही हूँ, इसलिए कि सोचती हूँ तुम इस खानदान की इज्जत लौटा लाओगी..."

इसके पश्चात उस पर फिर रुदन का दौरा पड़ा और इस बार दो हाथ अपनी छाती पर जड़कर ओ-हो-हो' करके विलाप करने लगी। दामोदर की तो समस्त हिम्मत ही हिरन हो गई। यह सहसा उठकर यह कहते हए कि 'अब तुम मेरा मुँह कभी नहीं देख पाओगी जिन्दा या मुर्दा।' यहाँ से तेजी से चल पड़ा और बाहर निकलकर सड़क पर चप्पलें चटकाते हुए जल्दी ही दृश्य से ओझल हो गया।

ऐसी ही चाल से एक पुरुष अपनी औरत को शह देकर पैदली मात दे दिया करता है। उसकी श्रीवी के पास कुछ नहीं था- शरीर अथवा भावना। यह कहना मुश्किल है कि पहले किसका नाश हुआ, लेकिन इतना सब होने पर भी वह विद्रोहिणी नहीं बन सकी। क्या एक औरत विद्रोह कर सकती है विचार का माहौल न होने पर ? शायद इसलिए जब दामोदर अपनी दृढ़ चेतावनी-भरी उदघोषणा के बाद वहाँ से चला गया तो उसकी पत्नी के दिमाग में घबराहट भरा पहला खयाल यह आया-खयाल ही नहीं. उसका चित्र भी कि उसका पति घर से सीधे स्टेशन जाकर शंटिंग करते हए किसी इंजिन से कट गया है। कुछ क्षणों के लिए उसने अपनी आँखों के सामने देखा था कि उसके दुःखी पति की लाश लोग दरवाजे पर ले आए हैं. जिसकी छाती पर वह सिर रखकर धारोधार रो रही है। इस खयाल ने पता नहीं कैसे उसके सुखे दिल को मथकर उसमें से कहाँ से प्यार का तैनू भी निकाल दिया, जैसे बालू में से तेल।

उस पर बदहवासी छा गई। लड़कियाँ आ गई थीं, लेकिन उनकी ओर भी ध्यान न देकर वह आँगन में बैठकर फूट-फूटकर रोने लगी। अपने को कोसती हुई। इस बीच लड़कियों से बुदबुदाकर उसने क्या कहा कि उन्होंने यह समझकर कि उसके पिताजी की मृत्यु हो गई है, स्वयं भी रोने लगीं। कुछ ही देर में घर में ऐसा कोहराम मचा कि पड़ोस की कई बुजुर्ग औरतें आ गई और फौरन सबकुछ समझकर स्वयं आँसू बहाकर समझाने लगीं कि 'हिम्मत से काम लीजिए, अब बच्चियों पर तो ध्यान दीजिए

बहुत बाद में यानी जब दो बज गए तो मोहल्ले में दुःखन पान वाले ने भीतर आकर बताया कि 'दामोदर बाबू घर से निकलकर स्टेशन की ओर थोड़े ही गए, वह तो शायद स्कूल की ओर गए हैं। जब वह स्कूल जाते हैं तो रोज ही इसी सड़क से जाते हैं...मांग

इस पर दामोदर की पत्नी जोर से चीखती हुई चिल्ला पड़ी, "अरे नहीं हो दादा, मेरा दिल कहता है वह स्टेशन ही गए हैंाचालान नेतार

किसी बुद्धिमान, अनुभवी पड़ोसिन ने उसका समर्थन किया, "अरे, रेल की पटरी क्या सिर्फ स्टेशन पर ही है ? स्टेशन के दोनों ओर पूरब पश्चिम में भी तो रेल पटरियाँ हैं..."

बहरहाल, अनेक मत-मतान्तर के बीच दुःखन पनवाड़ी ने सुझाव दिया, "आप घबराइए नहीं, मैं अपने लड़के को स्टेशन भेजता हूँ और खुद भैयाजी के स्कूल जा रहा हूँ..."

और सचमुच दुःखन अपने सुझाव को कार्यान्वित करते हुए स्वयं भी तेजी से स्कूल की तरफ प्रस्थान कर गया, जहाँ से लौटने पर उसने यह सूचना दे दी कि जब वह पहुँचा तो खुद अपनी आँखों के सामने देखा उसने कि दामोदर बाबू टीचर-रूम में एक मास्टर के साथ कटोरदान में से पूडी-दमालू निकालकर गप-गप खा रहे हैं। उसने यह भी बताया कि वह खूब खुश थे, बीच-बीच में मजाक की कोई बात कहके ठहाके भी लगा रहे थे और उन्होंने बाद में अपने मुँह से कहा कि छुट्टी होने पर वह सीधे घर ही आएँगे।

इस सूचना से घर में एकत्रित सभी कोमल, दया-आतुर पड़ोसिनें बड़ी

निराश हुई और वे यह कहते हए कि 'समय बड़ा बरबाद हुआ' फौरन घर खाली करके चली गई. जैसे शीत ऋतु में काले-काले डरावने बादल अचानक छट जाएँ और चमकती खुशनुमा धूप निकल आए। माँ और लड़कियों ने दुःखन को घेरकर कई बार कई तरीके से खोद-खोदकर इतना पूछा कि वह जब बिगड़ उठा तभी वे आश्वस्त हो सकीं। इसके बाद ही दुःखन को उसकी सेवा के लिए पाँच रुपए इनाम

देने की कोशिश की गई, जिस पर मुँह ऐंठकर उसने कहा :

"आपने क्या मुझे भिखमंगा समझ लिया है? मैं पड़ोसी हैं। दामोदर बाबू पान के शौकीन है उन्हीं के लिए मैं अपनी दुकान बारह-एक बजे रात तक खोलता हैं। मेरी दुकान का पान खाए बिना वे न कभी बाहर जाते हैं और न घर के भीतर ही हमेशा पचास-सी रुपए उधार रह हैं, इसकी मैं परवाह नहीं करता। आप उनके स्वागत की तैयारी करें, वे आते ही होंगे।"

घर में रोने-पीटने की दुःखन से शुभ सूचना प्राप्त कर दामोदर प्रसाद ने अचानक महसूस किया था कि उसका कद बढ़ गया है. जैसे एक छोटी लकीर के बगल में उससे भी छोटी कोई अन्य लकीर खींच दी जाए। वह इतना प्रसन्न हुआ कि परिवारजनों को और छोटा करने के लिए बेचैन हो उठा। सौभाग्य से स्कूल मैदान में होनेवाले फुटबाल टुर्नामेंट के फाइनल मैच में उसकी स्कूली टीम विजयी होने के बाद हेडमास्टर और अन्य टीचरों से नकद इनाम पाकर जब मिठाई की दुकान पर चलने लगी तो उसने दामोदर प्रसाद को भी निमन्त्रित किया, जहाँ उसने भी भर पेट भारत मंडार की शुद्ध घी की मिठाइयाँ खाई।

ठीक दस बजे रात में वह जब घर पहुँचा तो मिठाई की हुँसाई से उसका पेट थपथपाने से टन-टन बोल रहा था। पूरा घर जाग रहा था। सभी घबराए हुए थे कि सचमुच यह अभी आएगा कि नहीं ! थोड़ी-थोड़ी देर पर कोई-न-कोई सदस्य दरवाजे पर आकर बाहर झाँक जाता। जब वह भीतर घुसा तो काफी गम्भीर था, लेकिन दबाई हुई हँसी और खुशी की वजह से

उसकी नाक का बायाँ नधुना और ऊपरी होंठ का एक छोटा-सा भाग बीच-बीच में फरफरा जाता।

उसके भीतर बरामदे में आते ही उसकी पत्नी रोती हुई उसके पैरों पर गिरकर कहने लगी : "मुझे माफ कीजिए... अब कभी ऐसी गलती नहीं होगी। आप मेरे देवता हैं, मैं आपकी दासी हूँ। मुझे अपने चरणों में जगह दिए रहिए, मुझे इन चरणों से दूर न कीजिए... आप जैसे चाहे रहिए, शौक से घूमिए-फिरिए... पता नहीं मुझे क्या हो गया था। मैं सिर्फ यही चाहती हूँ, आप हमेशा खुश रहें..."

दामोदर प्रसाद अभी कुछ देर और खूब गम्भीर रहना चाहता था, जैसे वह बहुत सीधा-सादा हो और उस पर झूठे लांछन लगाए गए हैं। लेकिन नथुने की फरफराहट पर नियन्त्रण रखना अब उसके वश में नहीं रहा। वह जोर से ठहाका लगानेवाला ही था कि इस बार फिर भाग्य ने उसका साथ दिया क्योंकि उसी समय उसके बाएँ गाल पर एक छोटा-सा मच्छर आ बैठा, जिसे भगाने के लिए उसने दाएँ हाथ से जोर का ऐसा थप्पड़ मारा, जिसकी आवाज से सभी चौंक उठे। बहरहाल, तत्काल ही उसके कई लाभ हुए, जिसमें एक यह कि उससे मच्छर फौरन मारा गया, दूसरा उसे दुःखी पत्नी के पश्चात्ताप का परिणाम समझा गया और अन्तिम यह कि उसी थप्पड़ ने हास्य के आवेग को गम्भीरता में बदल दिया।

उसके बाद उसने अपनी बड़ी लड़की अरुन्धती की ओर, जो कुछ दूरी पर सिर झुकाकर रुआँसी खड़ी थी, घूमकर संजीदगी से पूछा, "बेटी, क्या तुमने फिक्र की अपनी अम्माँ की ? उन्होंने खाना खाया कि नहीं ?"

अरुन्धती साड़ी में लम्बी लग रही थी, लेकिन उसने कोई उत्तर न देकर दूसरी ओर मुँह कर लिया। पाँचों बहिनें एक छोटा-सा दल बनाकर अलग एक ही साथ खड़ी थीं, यहाँ तक कि सबते छोटी पाँच वर्षीया नीलिमा भी, जो बड़ी बहिन से सटी हुई थी। वस्तुतः अरुन्धती अपनी छोटी बहनों के लिए माँ की तरह थी, और वे भी कोई बात, तकलीफ या जरूरत पड़ने पर बड़ी दीदी के पास ही दौड़ी आतीं।

अरुन्धती टूटी-बिखरी, उपेक्षित और पूजा-पाठ के सिलसिले में सदा गम्भीर रहनेवाली अपनी माँ के लिए दस वर्ष की उम्र के बाद सदा चिन्तित रहने लगी थी। और माँ का भार हल्का करने

के लिए यह टट्टी-पेशाब से लेकर नाश्ता-पानी, स्नान, पहनाने ओढ़ाने, भोजन, स्कूल के लिए तैयार कराने, बीमारी में तीमारदारी करने और पढ़ाई में उनकी मदद करने के मामलों में कभी माँ के साथ और कभी स्वयं अकेली इधर-उधर नाचती रहती। कुछ कारण तो अवश्य ही थे- शायद फिफ, परवाह, सलीका और अनुशासन - कि छोटी बहनें अपनी माँ से भी अधिक दीदी का कहना मानतीं और होंठों पर एक जंगली रखते ही वे गाना रोना या चिल्लाना बन्द कर देतीं।

यह भी एक अच्छा सहारा था कि जब माँ खुद परेशान, दुःखी, लाछित, निराश, अक्षम या बीमार हो जाती तो जी भरकर अपनी बड़ी लड़की पर ही चिल्लाती और कोई प्रतिवाद न होने पर और श्री अधिक चीखने लगती उस समय तक, जब तक स्वयं अशक्त होकर चारपाई पर गिरकर छाती में पीटने लगती। बाद में अरुन्धती चुपचाप आकर माँ के सिरहाने बैठ जाती और कुछ देर पश्चात तगती- लगाती रहती देर तक आश्चर्य की बात यह थी कि दामोदर प्रसाद पढ़ने-लिखने में हमेशा चुप शान्त हो जाने पर वह चमेली या गुलरोगन का तेल ले आती और माँ के माथे पर लगाने फिसड्डी रहा, उसकी पत्नी तीन या चार कक्षा से अधिक न पढ़ सकी, लेकिन उनकी लड़कियाँ घास-फूस की तरह बढ़तीं. बाप-माँ के प्यार दुलार से वंचित और सिर्फ स्कूल की पढ़ाई पर निर्भर रहकर अच्छे नम्बरों से पास होती जातीं।

मुँह *दूप्तरी और तीसरी लड़कियाँ- ग्यारह वर्षीया सीता और नौ वर्षीया सुभद्रा भी तेजी से शरीर बँक रही थीं। वे अपनी बड़ी दीदी की तरह ही जल्दी ही समझदार हो गई थीं और उन्होंने भी अपने दूसरी ओर कर लिए थे। केवल चौथी पुत्री देविका अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर अपने पिता को अनोखी, आत्मीय पहचान से देख रही थी। वस्तुतः वह काफी सुन्दर

और वाचाल भी थी और दामोदर प्रसाद भी उससे और नीलिमा से ही अधिक बात करता था।

"कहो देविका, तुमने कुछ खाया भी था ? तुम्हारी माँ ने कुछ..."

"बाबूजी, हम खा चुके हैं। पड़ोस की मोटी वाली चाचीजी रात का बचा पराठा ले आई थीं। बड़ी दीदी ने मना कर दिया। बाद में बड़ी दीदी ने जल्दी-जल्दी खिचड़ी, चोखा बनाकर खिलाया। अम्मा ने कुछ नहीं खाया है तब से...।"

इससे उत्साहित होकर अरुन्धती के साथ डरी-सहमी खड़ी नीलिमा ने पूछा :

"बाबूजी, आप मर गए थे न ?"

इस सवाल से दामोदर प्रसाद के कंठ से एक स्वतःस्फूर्त हँसी फूट पड़ी। जैसे एक ऐसा फव्वारा हो, जो निरन्तर चालू रहता है। दामोदर प्रसाद की हँसी, ठहाके, अट्टहास, जोकरी आदि में कुछ अंशों में कुटिलता और कृत्रिमता जरूर होती थी, इसलिए उसका कोई भी हास्य-भरा प्रयास जल्दी ही समाप्त हो जाता है, लेकिन समस्त विकारों से मुक्त यह निर्मल हँसी तो रुकने क्या नाम ही न तेती, यहाँ तक कि उसका दम ही निकलने लगा और आँसू भी आ गए।

अन्त में उसने गम्भीर होकर कहा, "अरे बेटी, मैं कहाँ मरा था ? मैं तुम लोगों के लिए जिन्दा हूँ और जिन्दा रहूँगा। तुम मेरी बेटियाँ ही नहीं, मेरे बेटे भी हो। मैं तुम सभी को खूब पढ़ाऊँगा-लिखाऊँगा और अच्छी-से-अच्छी शादियाँ करूँगा..."

"बाबूजी, बड़ी दीदी, सीता दीदी, सुभद्रा दीदी शादी नहीं करेंगी। वे लोग खूब पढ़कर अम्मा के साथ रहेंगी। कहती हैं, ससुराल जाने पर अम्मा की देखभाल कौन करेगा...।"

"बाबूजी, मैं शादी करूँगी। मेरे लिए खूब अच्छा दूल्हा ला देना। बच्चा तो

बहुत मारता है..." नीलिमा ने शाबासी प्राप्त करने के लिए तोतली जबान से कहा।

"अच्छा तो तुम किससे शादी करोगी बेटी ? तुम्हें कैसा दूल्हा चाहिए ?" अपनी ही बच्ची की बात पर मुग्ध होकर, जिसका अवसर उसे पहली ही बार मिल रहा था, कुछ देर और बात करने की इच्छा से उसने पूछा।

"बाबूजी, मैं तुमसे शादी करूँगी..."

"अरे, ये देखो इसको अरे पगली. कहीं बाबूजी से शादी की जाती है?" देविका ने नीलिमा की ओर दाहिना हाथ बढ़ाकर इशारा करते हुए उसे चिढ़ाया।

इसके बाद ही अरुन्धती, सीता और सुभद्रा वहाँ से अपने कमरे में चली गई और उनकी माँ ने, जो उठकर खड़ी हो गई थी. नीलिमा को अपने पास खींचकर झिड़का, "क्या बक बक कर रही है ? जाकर दीदी के पास सोओ..."

दामोदर प्रसाद भी कुछ क्षणों के लिए शरमा गया-शायद इसलिए कि उसके घर में इतना भोलापन, प्यार और लगाव है और उससे विमुख होकर वह पाखंड, कुटिलता तथा धोखों से भो षड्यन्त्रों में लिप्त है। और क्षणिक चिन्ता भी हुई उसे कि बड़ी लड़की क्यों उससे कटी रहती है और तीनों लड़कियाँ शादी क्यों नहीं करना चाहतीं-नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, वह जल्दी अपने को सुधार लेगा और शेष जीवन अपने परिवार को स्वर्ग बनाने में खर्च करेगा।

"अरे देविका, बड़े जोरों की भूख लगी है। कुछ खिलाओगी या इसी तरह समय कटेगा ?" उसने सभी बातें उड़ाकर दूसरी ओर मोड़ दीं।

"आज तो अम्मा ने अकेली ही बहुत-सा सामान बनाया है बाबूजी ! दोस्ती, खोवा डालकर सेवई, हलुआ, तरकारी वाली चने की गाढ़ी दाल, नमकीन

चावल, आलू के रिकंबछ...।" कोशिश करके जल्दी-जल्दी इतना बताने पर देविका हाँफ गई।

"फिर तो चलो खाया जाए..."

खाना सचमुच इतना स्वादिष्ट बना था कि जगह न होने पर भी दामोदर प्रसाद ने ऊपर से और जमाया, जिसके लिए वह शहर में मशहूर था। बाद में रात में पत्नी के प्रति प्यार का उसका प्रदर्शन भी अप्रत्याशित था।

वह बेहद खुश और प्रसन्न था। निद्रा की उसकी शुरुआती, झपकती कल्पनाओं में भगजोगिनी का तीखा सौन्दर्य झिलमिल-झिलमिल कर रहा था।

***** भाग 1 समाप्त *****

sjeet